हिन्दू-विश्वविद्यालय-ग्रंथमाला

प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान

लेखक

निहालकरण सेठी, डी० एससी०

प्रकाशक

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय

संवत् १९८७

प्रथम संस्करण

प्रास्ताविक उपोद्घात

हमारे देश में नवीन शिक्षा की स्थापना हुए एक शताब्दी हो चुकी; पर शोक है कि अद्यापि हमको शिक्षा—विशेषतः उच्च शिक्षा—अँगरेज़ी भाषा द्वारा ही दी जाती है।

ई० स० १८३५ में कलकत्ता की 'जनरल कमिटी ऑफ़ एड्युकेशन' ने अपना मत प्रकट किया था कि—

"We are deeply sensible of the importance of encouraging the cultivation of Vernacular languages......... . We conceive the formation of a Vernacular Literature to be the ultimate object to which all our efforts must be directed."

अर्थात् देश का साहित्य बढ़ाना ही हमारी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है।

सन् १८३८ में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने "हिन्दुस्तान में शिक्षा" विषयक जो लेख लिखा था उसमें भी इस विद्वान् ने कहा है—

"Our main object is to raise up a class of persons who will make the learning of Europe intelligible to the people of Asia in their own languages."

अर्थात् हमारा उद्देश्य ऐसे सुशिक्षित जन तैयार करने का है जो यूरोप की विद्या को एशिया के लोगों की बुद्धि में अपनी भाषा द्वारा उतार दें।

ई० स० १८३६ में लार्ड ऑकलेंड (गवर्नर-जनरल) ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा था कि—

" I have not stopped to state that correctness and elegance in Vernacular composition ought to be sedulously attended to in the superior colleges."

अर्थात्, उच्च विद्यालयों में मातृभाषा के निबन्धों में वाणी का यथार्थ रूप और लालित्य लाने पर विशेष ध्यान देने की बात मैं बिना कहे नहीं रह सकता।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने आशा की थी कि अँगरेज़ी शिक्षा पाये हुए लोगों के संसर्ग से साधारण जनता में नवीन विद्या का आप ही आप अवतार होगा। लेकिन यह आशा सफल न हुई। अतएव ईस्ट इंडिया कम्पनी के अन्तिम समय (१८५४) में कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कंट्रोल' (निरीक्षण समिति) के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड ने एक चिर-स्मरणीय लेख लिखा, जिसमें उन्होंने प्राथमिक शिक्षा से लेकर यूनिवर्सिटी तक की शिक्षा का प्रबन्ध सूचित किया। पश्चात् कम्पनी से हिन्दुस्तान का राज्याधिकार महारानी विक्टोरिया के हाथ में आया और बड़े समारोह से नवीन शिक्षा की व्यवस्था हुई—तथापि पूर्वोक्त उद्देश्य बहुशः सफल नहीं हुआ। यूनिवर्सिटी के स्थापनानन्तर २५-३० वर्ष बाद भी सर जेम्स पील (बम्बई के कुछ समय तक शिक्षाधिकारी) निम्न-लिखित रूप में आक्षेप कर सके थे—

" The dislike shown by University graduates to writing in their vernacular can only be attributed to the consciousness of an imperfect command of it. I cannot otherwise explain the fact that graduates do not compete for any of the prizes of greater money value than the Chancellor's or Arnold's Prize at Oxford or Smith's or the Members' Prizes of Cambridge. So curious an apathy, so discouraging a want of patriotism, is inexplicable, if the transfer of English thought to the native idiom were, as it should be, a pleasant exercise, and not, as I fear it is, a tedious and repulsive trial."

हमारे नव शिक्षित बन्धुओं ने देशभाषा द्वारा देश का साहित्य बढ़ाया है। इससे इनकार करना अकृतज्ञता करना है, तथापि इतना कहना पड़ता है कि वह साहित्य-समृद्धि जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं हुई है।

इसका कारण क्या है? कई विद्वानों ने इसका कारण देशी भाषा का अज्ञान और विश्वविद्यालयों में देशी भाषा के पठन-पाठन का अभाव माना है। लेकिन वास्तविक कारण इससे भी आगे जाकर देखना चाहिए। मूल में बात यह है कि परभाषा द्वारा विद्यार्थियों को जो विद्या पढ़ाई जाती है वह उनकी बुद्धि और आत्मा से मेल नहीं खाती। परिणाम यह होता है कि सब पाठ उनकी बुद्धि में—भूमि में पत्थर के टुकड़े के समान—पड़े रहते हैं, बीज के समान भूमि में मिलकर अंकुर नहीं उत्पन्न करने पाते।

यह सुसिद्धान्तित और सुविदित है कि बालक मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा में सफलता पा सकते हैं क्योंकि मातृभाषा शिक्षा का स्वाभाविक वाहन है। इस-लिए हमारी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा मातृभाषा द्वारा ही होनी चाहिए। केवल सिद्धान्त रूप में ही हम ऐसा नहीं कहते, बल्कि यह व्यवहार में भी हिन्दुस्तान की सब प्राथमिक और अनेक माध्यमिक शिक्षणशालाओं में स्वीकृत हो चुकी है। तथापि उच्च शिक्षा के लिए इस विषय में अभी तक कुछ उपक्रम नहीं हुआ है। विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जब महाविद्यालय में प्रवेश करता है तब भी मातृभाषा द्वारा ही उच्च शिक्षा ग्रहण करना उसके लिए स्वाभाविक देख पड़ता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान ऐसा विशाल देश है कि इसकी एकता साधने के लिए हर एक प्रान्त की (मातृ) भाषा के अतिरिक्त समस्त देश की एक राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है। ऐसी राष्ट्रभाषा होने का जन्मसिद्ध और व्यवहारसिद्ध अधिकार देश की सब भाषाओं में हिन्दी भाषा को ही है। उचित है कि हिन्द के सब विद्यार्थी जब विश्वविद्यालय में प्रवेश करें तो स्वाभाविक मातृभाषा से आगे बढ़ के राष्ट्रभाषा—हिन्दी—द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करें। वस्तुतः प्राचीन काल में जैसे संस्कृत और पीछे पाली राष्ट्र भाषा थी उसी प्रकार अर्वाचीन काल में हिन्दी है। इस प्रान्त में हिन्दी का ज्ञान मातृभाषा के रूप में होता ही है। लेकिन जिन प्रान्तों की यह मातृभाषा

नहीं हैं वे भी इसको राष्ट्रभाषा होने के कारण माध्यमिक शिक्षा के क्रम में एक अधिक भाषा के रूप में सीख लें और विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा इसी भाषा में प्राप्त करें; यही उचित है। तामिल देश को छोड़कर हिन्दुस्तान की प्रायः सभी भाषाएँ संस्कृत प्राकृतादि क्रम से एक ही मूल भाषा या भाषामंडल में से उत्पन्न हुई हैं। अतएव उनमें एक कौटुम्बिक साम्य है। इसलिए अन्य प्रान्तीय भी, अपनी मातृभाषा न होने पर भी, हिन्दी सहज ही में सीख सकते हैं। ज्ञान-द्वार की स्वाभाविकता में इसमे कुछ न्यूनता ज़रूर आती है तथापि एकराष्ट्र की सिद्धि के लिए इतनी अल्प अस्वाभाविकता सह लेना आवश्यक है। उत्तम शिक्षा की कक्षा में यह दुष्कर भी नहीं है; क्योंकि मनुष्य की बुद्धि जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे स्वाभाविकता के पार जाने का सामर्थ्य भी कुछ सीमा तक बढ़ता है।

आधुनिक ज्ञान की उच्च शिक्षा में उपकारक ग्रन्थ हिन्दी में, क्या हिन्दुस्तान की किसी भाषा में, अद्यापि विद्यमान नहीं हैं—इस प्रकार का आक्षेप करके अँगरेज़ी द्वारा शिक्षा देने की प्रचलित रीति का कितने ही लोग समर्थन करते हैं। किन्तु इस उक्ति का अन्योन्याश्रय दोष स्पष्ट है, क्योंकि जब तक देश की भाषा द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती तब तक भाषा के साहित्य का प्रफुल्लित होना असम्भव है और जब तक यथेष्ट साहित्य न मिल सके तब तक देश की भाषा द्वारा शिक्षा देना असम्भव है। इस अन्योन्याश्रय दोषापत्ति का उद्धार तभी हो सकता है जब अपेक्षित साहित्य यथाशक्ति उत्पन्न करके तद्द्वारा शिक्षा का आरम्भ किया जाय। आरम्भ में ज़रूर पुस्तकें छोटी छोटी ही होंगी। लेकिन इन पर अध्यापकों के उक्त-अनुक्त-दुरुक्त आदि विवेचन रूप एवं इष्टपूर्त्ति रूप वार्तिक, तात्पर्यविवरणरूप वृत्ति भाष्य-टीका, खण्डनादि ग्रन्थों के होने से यह साहित्य बढ़ता जायगा और बीच में अहरहः प्रकटित अँगरेज़ी पुस्तकों का उपयोग सर्वथा नहीं छूटेगा। प्रत्युत अच्छी तरह से वह भी साथ साथ रह कर काम ही करेगा। इस रीति से अपनी भाषा की समृद्धि भी नवीनता और अधिकता प्राप्त करती जायगी।

इस इष्ट दिशा में काशी-विश्वविद्यालय की ओर से जो कार्य करने का ारम्भ किया जाता है वह दानवीर श्रीयुत घनश्यामदासजी बिड़ला के दिये ;ए ५०,००० रुपये का प्रथम फल है। आशा की जाती है कि इस प्रकार और ान भी मिला करेगा और उससे अधिक कार्य भी होगा। इति शिवम्।

अहमदाबाद
ैशाख शुक्ल पूर्णिमा
वि० सं० १९८७

आनंदशङ्कर बापूभाई ध्रुव
प्रो-वाइस चांसलर, काशी-विश्वविद्यालय,
अध्यक्ष, श्री काशी-विश्वविद्यालय हिन्दी-
ग्रन्थमाला-समिति

—

लेखक की भूमिका

यह पुस्तक मुख्यतः उन विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है जो हाई स्कूल की उच्च कक्षाओं में पढ़ते हैं अथवा जो हिन्दू-विश्व-विद्यालय के आयुर्वेद-विभाग में प्रवेश कर चुके हैं। किन्तु प्रयत्न इस बात का किया गया है कि विद्यार्थियों को छोड़कर अन्य पाठक भी पुस्तक को पढ़कर भौतिक विज्ञान की मूल बातों को बिना कठिनाई के समझ सकें। लेखक का उद्देश्य परीक्षाओं के लिए संक्षिप्त नोट प्रस्तुत करने का नहीं है। मूल सिद्धान्तों को स्पष्टतया सरल भाषा में समझाकर हृदयङ्गम कर देना ही उसे अभीष्ट है। यही कारण है कि पुस्तक की पृष्ठ-संख्या कुछ अधिक जान पड़ती है।

किसी विशेष पाठ्यक्रम का अनुसरण करने का भी प्रयत्न इस पुस्तक में नहीं किया गया है। साधारण पाठ्यक्रमों की अपेक्षा इसमें अनेक बातें अधिक मिलेंगी। विद्यार्थी तथा शिक्षक उन्हें आवश्यकतानुसार छोड़ सकते हैं। इन्हें पुस्तक में सम्मिलित करने का मुख्य कारण यह है कि लेखक का विश्वास है कि प्रारम्भिक अध्ययन में भी इन विषयों का ज्ञान आवश्यक है। क्लिष्ट विदेशी भाषा के माध्यम होने के कारण इस समय विवश होकर पाठ्यक्रम हलका रखना पड़ता है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जब मातृभाषा के द्वारा शिक्षा दी जायगी तब थोड़े समय में ही विद्यार्थी बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। तब क्रमशः पाठ्यक्रमों को भी परिवर्धित करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह भी न भूल जाना चाहिए कि हमारे दुर्भाग्य से अनेक विद्यार्थियों के लिए यही प्रारम्भिक पुस्तक भौतिक विज्ञान की अन्तिम पुस्तक भी होगी। इसको छोड़कर वे किसी अन्य बड़ी पुस्तक का दर्शन भी न कर सकेंगे। अतः इसमें आधुनिक आविष्कारों का भी कुछ थोड़ा वर्णन रहना आवश्यक है।

पारिभाषिक शब्दों की समस्या बड़ी कठिन है। उस पर अनेक दृष्टि-कोणों से विचार किया जा सकता है। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने जो संशोधित वैज्ञानिक शब्दावली गत वर्ष प्रकाशित की है उसमें उन सब दृष्टिकोणों को यथोचित महत्त्व दिया गया है। अतः इस पुस्तक में उस ही का अनुसरण किया गया है। पुस्तक के अंत में अनुक्रमणिका के रूप में हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के अँगरेज़ी रूपान्तर भी दे दिये गये हैं। आशा है कि इससे उन लोगों को लाभ होगा जो इस विषय की अँगरेज़ी पुस्तकों का अध्ययन कर चुके हैं या करना चाहते हैं।

अनुक्रमणिका मेरे मित्र श्रीललितकिशोरसिंह एम० एससी० की कृपा का फल है। संख्यात्मक प्रश्नों के उत्तर भी उन्हीं के परिश्रम से दे सका हूँ। इसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

आगरा
ता० १ जून १९३१.

निहालकरण सेठी

विषय-सूची

प्रथम भाग

विषय पृष्ठ

द्रव्य के सामान्य गुण तथा गति-स्थिति-विज्ञान

परिच्छेद १—वैज्ञानिक नाप तौल

परिच्छेद २—द्रव्य के सामान्य गुण

द्वितीय भाग

विषय पृष्ठ

ताप

परिच्छेद ८—ताप तथा तापक्रम

परिच्छेद ९—ताप के साधारण परिणाम

परिच्छेद १०—तापमापक या थर्मामीटर

परिच्छेद ११—प्रसार के गुणक

तृतीय भाग

विषय पृष्ठ

प्रकाश

परिच्छेद १७—प्रारम्भिक बातें

परिच्छेद १८—प्रकाश के सरल रेखागमन के परिणाम

परिच्छेद १९—समतल दर्पण से प्रकाश का परावर्तन

परिच्छेद २०—गोलीय दर्पण से प्रकाश का परावर्तन

चतुर्थ भाग

विषय पृष्ठ

शब्द

पञ्चम भाग

विषय पृष्ठ

चुम्बक और विद्युत्

परिच्छेद २९—चुम्बक

परिच्छेद ३०—चुम्बकीय क्षेत्र

परिच्छेद ३१—विद्युत्

परिच्छेद ३२—वैद्युत क्षेत्र, दंहक और विद्युत्-यंत्र

विषय | पृष्ठ

परिच्छेद ३३—विद्युत्-धारा

परिच्छेद ३४—विद्युत्-धारा के चुम्बकीय गुण के उपयोग

परिच्छेद ३५—विद्युत्-धारा पर चुम्बक का बल

परिच्छेद ३६—उपपादन

परिच्छेद ३७—विद्युत् से ताप और प्रकाश की उत्पत्ति

विषय पृष्ठ

प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान

प्रथम भाग

द्रव्य के सामान्य गुण तथा गति-स्थिति-विज्ञान

परिच्छेद १

वैज्ञानिक नाप-तौल

१—जीव तथा अजीव । यह संसार अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरा हुआ है। जल, स्थल, वायु और आकाश सर्वत्र ही अगणित वस्तुएँ हमारे अनुभव में आती हैं। कोई पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष, फल-फूल आदि के समान जीव-सहित हैं और कोई लोहा, सोना, जल, वायु आदि के समान जीव-रहित हैं। इन वस्तुओं में हम अनेक प्रकार के परिवर्तन भी देखते रहते हैं। जीव-जन्तु उत्पन्न होते हैं, धीरे धीरे उनके शरीर की वृद्धि होती है, समय पर वे सन्तान उत्पन्न करते हैं और अन्त में उनकी मृत्यु हो जाती है। यद्यपि अजीव जगत् में यह जन्म-मरण नहीं होता किन्तु वहाँ भी अनेक अद्भुत घटनायें होती रहती हैं। कभी जल जमकर बर्फ़ बन जाता है तो कभी वह भाप बनकर उड़ जाता है। कोई वस्तु जल पर तैरती है तो कोई उसमें डूब जाती है। पतंग वायु में उड़कर ऊपर को जाता है तो पुस्तक हाथ से छूटने पर नीचे गिर पड़ती है। किसी दर्पण में हमारा मुख ठीक आकार का देख पड़ता है तो किसी में बहुत बड़ा या बहुत छोटा दिखलाई देता है। कभी कभी बिजली मकानों को तोड़-फोड़ डालती है

और मनुष्यों की मृत्यु का कारण भी होती है किन्तु बहुधा वह मनुष्य की प्रकाश, ताप आदि के द्वारा अच्छी सेवा भी करती है।

२—**विज्ञान**। जो मनुष्य थोड़े भी विचारशील हैं उनके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है कि ये वस्तुएँ क्या हैं? इनमें क्या क्या गुण विद्यमान हैं? उनका मनुष्य कैसे उपयोग कर सकता है? प्राकृतिक घटनायें कैसे होती हैं? उनके क्या कारण हैं? उन पर मनुष्य का अधिकार कैसे हो सकता है? मनुष्य-जीवन को अधिक सुखी और आनन्दमय बनाने में उनसे किस प्रकार सहायता ली जा सकती है? इत्यादि। विज्ञान इन्हीं प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर देने के लिए अध्ययन और प्रयत्न करता है। जो विज्ञान जीवों के जन्म-मरण, उनके स्वभाव, उनके शरीर के संगठन, तथा उनकी भोजन, पाचन, प्रजनन इत्यादि शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन करता है उसे जीव-विज्ञान कहते हैं। इसके जन्तु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान आदि मुख्य विभाग हैं। और जिस विज्ञान का विषय अजीव पदार्थ है, और जिसमें उपर्युक्त घटनाओं का रहस्य समझने का प्रयत्न किया जाता है उस विज्ञान के भी सुविधा के लिए कई विभाग कर दिये गये हैं जिनमें भौतिक विज्ञान और रसायन-विज्ञान प्रधान हैं। यद्यपि यह बताना कठिन है कि भौतिक तथा रसायन-विज्ञान में वास्तविक भेद क्या है, तथापि स्थूल रूप से जिस विज्ञान में ताप, प्रकाश, विद्युत् और शब्द का अध्ययन किया जाता है तथा पदार्थों के स्वाभाविक गुणों की मीमांसा होती है वह तो भौतिक विज्ञान कहलाता है। और रसायन-विज्ञान उसका नाम है जिसमें पदार्थों के उन परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है कि जिनके कारण या तो पदार्थ विच्छिन्न होकर दो या अधिक सर्वथा भिन्न प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करता है अथवा दो या अधिक भिन्न पदार्थों के संयोग से नवीन प्रकार के पदार्थ की सृष्टि होती है। जैसे जल जब तक जल रहता है तब तक तो उसके रूप, रंग, प्रवाह, बर्फ़ और भाप की अवस्थाओं मे उसका परिणमन आदि का अध्ययन भौतिक विज्ञान का विषय है। किन्तु किसी कारण जल का हाइड्रोजन और ऑक्सिजन नामक दो वायु-सदृश पदार्थों में

विभक्त हो जाना रसायन का विषय है। इसी प्रकार लकड़ी का जलकर नष्ट हो जाना और उससे कई सर्वथा भिन्न पदार्थों की उत्पत्ति भी रसायन-विज्ञान के अन्तर्गत हैं।

३—**इन्द्रियाँ** । समस्त भौतिक ज्ञान हम इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त करते हैं। आँख, नाक, कान, जिह्वा और स्पर्श ही के द्वारा हमारा मन वस्तुओं और घटनाओं का अनुभव करता है । कुछ लोगों की धारणा थी और कदाचित् अब तक है कि मन में बिना इन्द्रियों की सहायता के ही सब कुछ जान लेने की शक्ति है और इसी लिए कहा जाता है कि प्राचीन काल के ऋषि जंगलों के निर्जन स्थानों में जाकर आँख मूँद महीनों और वर्षों तक ध्यान करते रहते थे और इसी रीति से उस समय का सब ज्ञान प्राप्त हुआ था। किन्तु यह धारणा सर्वथा निर्मूल है । जब तक हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा किसी वस्तु की अच्छी तरह परीक्षा नहीं कर लेते तब तक उसके विषय में कुछ भी जान लेना असम्भव है। यह हो सकता है कि किसी दूसरे ने यह ज्ञान प्राप्त किया हो और वह भाषा के द्वारा हमें उसे सिखा दे। किन्तु इस प्रकार प्राप्त किया हुआ ज्ञान मनुष्य-समाज के लिए नवीन ज्ञान नहीं है। जिसने पहले-पहल यह ज्ञान प्राप्त किया था उसने अवश्य ही इन्द्रियों की सहायता ली थी। प्राचीन ऋषियों ने भी अनुभव तथा प्रयोग ही के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया था।

४—**यंत्र** । किन्तु यह न समझना चाहिए कि इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ ज्ञान हमें प्राप्त होता है वह सदा यथार्थ ही होता है। कभी कभी हम धोखा भी खा जाते हैं और अच्छे से अच्छे अभ्यासवाले मनुष्य भी उस धोखे से नहीं बच सकते। जैसे पानी में हाथ डालकर यह बता देना बहुत साधारण बात है कि पानी ठण्डा है या गरम। किन्तु यदि हम पहले गरम पानी में हाथ डुबा लें और तब उसे गुनगुने पानी में डालें तो अवश्य ही हमारा हाथ उस गुनगुने पानी को भी बहुत ठंडा बतलावेगा । यदि पहले बहुत ठंडे पानी में उसे डुबा लेते तो वह उसी गुनगुने पानी को अधिक

गरम बतलाता। इसी प्रकार के और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इसलिए स्पष्ट है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारा ज्ञान सत्य हो तो हम केवल इन्द्रियों पर ही निर्भर नहीं रह सकते। हमें ऐसे साधन अवश्य बनाने पड़ेंगे कि जिनके द्वारा यथार्थ बात का संशयरहित ज्ञान प्राप्त हो जाय।

इसके अतिरिक्त केवल इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान की कुछ सीमा है। उससे अधिक जानने के लिए इन्द्रियों को भी अन्य साधनों की आवश्यकता होती है। यह सच है कि कोई कोई मनुष्य अभ्यास के कारण अपनी किसी एक इन्द्रिय को बहुत तीक्ष्ण बना लेते हैं और उसकी सहायता से आश्चर्यकारक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जैसे कोई कोई दूकानदार वस्तु को हाथ में रखते ही उसका प्रायः ठीक तौल बतला सकते हैं। कोई कोई डाक्टर स्पर्श-मात्र ही से रोगी के ज्वर की तीव्रता बिलकुल ठीक जान लेते हैं। तथापि साधारण मनुष्यों को उतने ही ज्ञान के लिए यन्त्रों के द्वारा इन्द्रियों की सहायता करना पड़ता है। और जब ज्ञान की सीमा को और भी अधिक बढ़ाने की आवश्यकता होती है तब तो बिना यंत्रों के काम चल ही नहीं सकता। जैसे यदि बहुत दूर की वस्तु देखना हो तो अवश्य ही दूरबीन की आवश्यकता होगी। जल-बिन्दु में स्थित जीवाणुओं को देखने के लिए सूक्ष्म-दर्शक का प्रयोग करना ही होगा। लन्दन में दिये गये व्याख्यान को सुनने के लिए बेतार के ग्राहक यंत्र का व्यवहार करना ही पड़ेगा। ऐसे यंत्रों का निर्माण भी विज्ञान का एक मुख्य काम है।

५—नाप-तौल। और जब हमारा लक्ष्य वस्तुओं और घटनाओं का रहस्य समझना है तो हमारा काम केवल यह कहने से भी नहीं चल सकता कि अमुक वस्तु लम्बी है या अमुक वस्तु भारी है। हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम यह भी ठीक ठीक जान लें कि यदि वह लम्बी है तो कितनी और भारी है तो उसका तौल कितना है। इस प्रकार के माप के

लिए हमें गज़ और तराज़ू तो बनाने ही पड़ेंगे किन्तु लम्बाई भार आदि के एकांक भी नियत करने पड़ेंगे। भौतिक विज्ञान में लम्बाई और भार के माप ही सबसे अधिक आवश्यक हैं। अतः हम यहाँ सबसे पहले उन्हीं का वर्णन करेंगे।

हमारे देश में लम्बाई नापने के लिए गज़ का और भार के लिए सेर का प्रयोग होता है। किन्तु खेद की बात है कि भिन्न भिन्न स्थानों के गज़ भिन्न भिन्न लम्बाई के होते हैं और सेर का परिमाण भी सर्वत्र एकसा नहीं होता। यहाँ तक कि एक ही स्थान में भिन्न भिन्न वस्तुओं को तौलने के लिए भी भिन्न भिन्न सेर हैं। कोई सेर ९० तोले का, कोई ८६ तोले का, कोई ८० तोले का होता है और बम्बई में तो उसका परिमाण २८ तोले ही रह गया है। इस अनियमित माप-तौल से क्रय-विक्रय में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं और उन्हें दूर करने के लिए सरकारी क़ानून के द्वारा माप-तौल के एकांक नियत कर दिये गये हैं। किन्तु अभी तक भारतवर्ष में पूर्णरूप से उनका प्रचार नहीं हुआ है।

लम्बाई के इस क़ानूनी एकांक का नाम **गज़** ही रखा गया है और उसकी लम्बाई इँगलेंड देश के **यार्ड** के बराबर नियत कर दी गई है। ब्रिटिश-सरकार के व्यापार-सम्बन्धी दफ़्तर में एक काँसे की छड़ रखी है और उस पर दो रेखायें खींच दी गई हैं। इन्हीं दो रेखाओं के बीच की लम्बाई का नाम **यार्ड** है, और इसी के बराबर हमारे देश का गज़ भी होता है। गज़ के सोलहवें भाग को **गिरह** कहते हैं।

किन्तु आज-कल गज़ के अँगरेज़ी विभागों का भी बहुत प्रचार होगया है। वे विभाग ये हैं:—

भारतवर्ष में तौल का क़ानूनी एकांक **सेर** है जो ८० रुपयों के तौल के बराबर होता है। उसके विभाग ये हैं :—

१ सेर = १६ छटाँक
१ छटाँक = ५ तोला
१ तोला = १२ माशा
१ माशा = ८ रत्ती
तथा ४० सेर = १ मन

इसी प्रकार प्रत्येक देश ने अपने अपने एकांक नियत कर रखे हैं। इनके द्वारा प्रत्येक देश का नित्यप्रति का कार्य तो ख़ूब चलता है किन्तु जब एक देश का काम दूसरे देश से पड़ता है तब कठिनाई उपस्थित होती है। यह तो हुई साधारण व्यापार की बात। जब उसी के लिए माप-तौल के भिन्न भिन्न एकांक सर्वथा उपयुक्त नहीं हैं तब भला वैज्ञानिक कार्य के लिए वे कैसे उपयुक्त हो सकते हैं ? विज्ञान किसी एक देश की वस्तु नहीं है। प्रत्येक देश में अनेक विद्वान् निरन्तर परिश्रम करके इसकी उन्नति करने की चेष्टा करते हैं। उन्हें आपस में एक दूसरे के कार्य से सहायता लेना पड़ता है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि वैज्ञानिक खोज के जितने परिणाम हों वे इस प्रकार व्यक्त किये जावें कि सब लोग उन्हें समझ सकें। इसी कारण सब देशों के वैज्ञानिकों ने एकत्र होकर यह निश्चय किया है कि वैज्ञानिक माप-तौल के लिए कुछ विशेष एकांक नियत कर देना चाहिए और समस्त वैज्ञानिकों को सदा उन्हीं एकांकों का प्रयोग करना चाहिए।

६—लम्बाई के एकांक। लम्बाई के अन्तर्जातीय वैज्ञानिक एकांक का नाम **मीटर** है। प्रारम्भ में पृथ्वी की परिधि के चार करोड़वें भाग के बराबर इसकी लम्बाई नियत की गई थी। किन्तु पृथ्वी की परिधि का परिमाण सर्वत्र एक-सा नहीं है और उसे ठीक ठीक नापना भी प्रायः असम्भव है। अतः इरीडियम-युक्त प्लाटिनम धातु की एक छड़ बना कर उस पर दो रेखायें खींच

दी गईं और अब इन्हीं दो रेखाओं के बीच की लम्बाई को मीटर कहते हैं। यह **प्रमाण मीटर** पैरिस में रखा है और इसी के बराबर अन्य छड़ें बना बना कर सब देशों में भेज दी गई हैं। इस मीटर की लम्बाई ३९.३७०७९ इंच है। इसके विभाग भी गज़ के ३ और ३६ विभागों की तरह नहीं किये गये हैं क्योंकि उस प्रकार गज़ के फ़ुट, इंच इत्यादि बनाने में व्यर्थ ही ३ और १२ से गुणा करने का परिश्रम करना पड़ता है। मीटर के विभाग दशमलव की रीति से किये गये हैं। उनके नाम तथा संकेत निम्नलिखित हैं।

१ मीटर = १० डेसीमीटर (डम०)
१ डेसीमीटर = १० सेंटीमीटर (सम०)
१ सेंटीमीटर = १० मिलीमीटर (मम०)

इसी प्रकार १००० मीटर = १ किलोमीटर (कम०)। इस रीति से लाभ यह है कि यदि किसी वस्तु की लम्बाई हमें मीटरों में मालूम है और हम उसे सेंटीमीटरों में व्यक्त करना चाहते हैं तो हमें केवल दशमलव बिन्दु को दो स्थान हटा देना पड़ेगा।

यथा १५.२६५ म० = १५२६.५ सम०
= १५२६५ मम०
= .०१५२६५ कम०

कई देशों में तो अब प्रत्येक प्रकार का माप इसी दशमलव रीति से होता है। यहाँ तक कि रुपये-पैसे के विभाग भी इसी प्रकार के होते हैं। उन देशों में बालकों को मिश्रजोड़, बाक़ी आदि सीखने की आवश्यकता ही नहीं होती। आशा की जाती है कि धीरे धीरे सभी देश दशमलव रीति का उपयोग करने लगेंगे। दशमलव रीति के जन्मदाता भारतवर्ष को तो यह रीति सबसे पहले ही स्वीकार कर लेना चाहिए था। ऊपर की सारिणी से स्पष्ट है कि

$$१ \text{ इंच} = \frac{१००}{३९.३७} = २.५४ \text{ सम०}$$

चित्र १

७—क्षेत्रफल के एकांक । क्षेत्र को नापने के लिए केवल लम्बाई नापने से काम नहीं चल सकता। चौड़ाई भी नापनी पड़ेगी। और प्रत्येक क्षेत्र के माप के लिए दो संख्याओं का प्रयोग करना होगा। किन्तु तब भी हम यह न जान सकेंगे कि दो क्षेत्रों में कौन बड़ा है
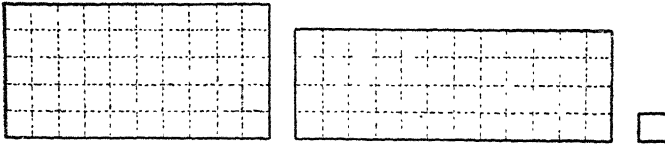
चित्र २

और कौन छोटा। यथा एक क्षेत्र १० सम० लम्बा और ५ सम० चौड़ा है और दूसरा १२ सम० लम्बा और ४ सम० चौड़ा है। एक की लम्बाई अधिक है तो दूसरे की चौड़ाई अधिक है। अतः हमें क्षेत्र का भी एकांक नियत करना होगा। चाहे जो क्षेत्र इस कार्य के लिए नियत किया जा सकता है यथा कोई काग़ज़ का तख़्ता। यदि हम मेज़ का क्षेत्र नापना चाहें तो बराबर लम्बाई चौड़ाईवाले कई काग़ज़ के तख़्ते मेज़ पर बराबर जमा कर हम यह जान सकते हैं कि मेज़ का क्षेत्र इतने काग़ज़ के बराबर है। सुविधा के लिए चाहे जिस काग़ज़ को अकारण ही क्षेत्र का एकांक न बना कर लम्बाई के एकांक के आधार पर ही यह एकांक भी नियत किया गया

है। एक सेंटीमीटर लम्बे और एक ही सेंटीमीटर चौड़े वर्ग का क्षेत्र ही क्षेत्र का एकांक है। इसे **वर्ग सेंटीमीटर** (व० सम०) कहते हैं। उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों का माप क्रमशः ५० व० सम० और ४८ व० सम० है। चित्र २ से स्पष्ट है कि ये क्षेत्रफल लम्बाई और चौड़ाई को गुणा करने से प्राप्त हो सकते हैं यथा १० × ५ = ५०; १२ × ४ = ४८। इसी भाँति क्षेत्र का अँगरेज़ी एकांक **वर्ग इंच** है।

१ वर्ग फुट = १४४ व० इं०

१ वर्ग गज़ = ९ वर्ग फु०

तथा १ वर्ग इंच = ६·४५ वर्ग सेंटीमीटर

यदि क्षेत्र किसी अन्य आकार का हो तो उसका क्षेत्रफल लम्बाई और चौड़ाई को गुणा करने से नहीं प्राप्त हो सकता। विशेष आकारों के लिए ज्यामिति के नियमों का प्रयोग करना पड़ेगा।* किन्तु बिना उन नियमों के जाने भी वर्गांकित पत्र की सहायता से किसी भी आकार का क्षेत्रफल नापा जा सकता है। क्षेत्र का आकार वर्गांकित पत्र पर खींच लो। और उसकी परिधि के बीच के वर्गों को गिन लो। इन वर्गों की संख्या को प्रत्येक वर्ग के क्षेत्रफल से गुणा करने से समस्त क्षेत्र क क्षेत्रफल ज्ञात हो जायगा। वर्गों के गिनने में जो वर्ग आधे से कम हो उसे छोड़ देना चाहिए और जो आधे से अधिक हो उसे पूरा गिन लेना चाहिए। चित्र ३ में प्रत्येक वर्ग $\frac{१}{५} \times \frac{१}{५} = \frac{१}{२५}$ व० सम० है अतः समस्त क्षेत्र का क्षेत्रफल = २९८ × $\frac{१}{२५}$ = ११·९ व० सम०
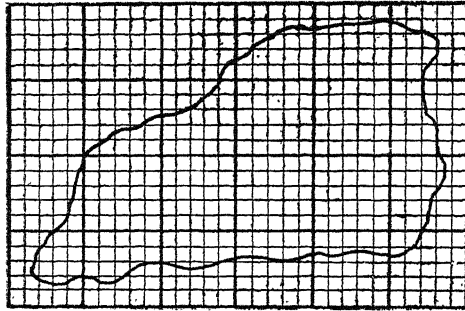
चित्र ३

---

* देखो परिशिष्ट १

८—आयतन के एकांक । मान लीजिए कि हमारे पास दो लकड़ी के टुकड़े हैं। एक १० सम० लम्बा, ५ सम० चौड़ा और ४ सम० मोटा है और दूसरा १५ सम० लम्बा ४ सम० चौड़ा और ३ सम० मोटा है। हम उनके प्रत्येक पार्श्व का क्षेत्र भी लम्बाई और चौड़ाई को गुणा करके वर्ग सेंटीमीटरों में नाप सकते हैं। किन्तु क्या हम कह सकते हैं कि इन दोनों में कौन सा बड़ा है ? यह निश्चय करने के लिए आवश्यक है कि हम यह जानें कि प्रत्येक कितना कितना स्थान रोके हुए है। जितना स्थान कोई वस्तु रोकती है वह उसका **आयतन** कहलाता है। अतः क्षेत्र की भांति ही हमें आयतन का एकांक भी नियत करना होगा। यह एकांक एक सेंटीमीटर लम्बे, एक ही सेंटीमीटर चौड़े और एक ही सेंटीमीटर मोटे घन के आयतन के बराबर नियत किया गया है और उसका नाम **घन सेंटीमीटर** (घ० स०) रखा गया
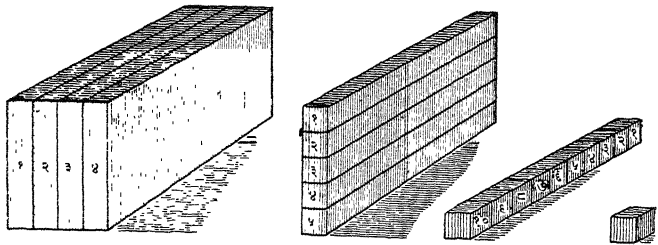
चित्र ४

है। उपर्युक्त दोनों लकड़ी के टुकड़ों का आयतन क्रमशः २०० घ० स० और १८० घ० स० है। चित्र ४ से स्पष्ट हो जाता है कि यदि हम प्रथम टुकड़े को काटें तो उसके एक एक सेंटीमीटर मोटे ४ भाग बन जावेंगे और प्रत्येक भाग १० सम० लम्बा और ५ सम० चौड़ा रहेगा। इनमें से प्रत्येक भाग के पुनः पाँच पाँच भाग १० सम० लम्बे १ सम० चौड़े और १ सम० मोटे बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार के भागों की कुल संख्या ४ × ५ = २० हुई। अब फिर

प्रत्येक भाग के १० भाग करने पर कुल भागों की संख्या २० × १० = २०० हो जायगी और प्रत्येक भाग १ सम० लम्बा, १ सम० चौड़ा और १ सम० मोटा अर्थात् १ घ० स० आयतनवाला होगा। इस प्रकार हमारे १० सम० लम्बे, ५ सम० चौड़े और ४ सम० मोटे टुकड़े का आयतन १० × ५ × ४ = २०० घ० स० हुआ। इससे सिद्ध है कि समचतुरस्र वस्तुओं का आयतन लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई को गुणा करने से प्राप्त हो जाता है। समचतुरस्र के अतिरिक्त अन्य आकार की वस्तुओं का आयतन जानने के लिए ज्यामिति के नियम परिशिष्ट १ में दिये गये हैं। विना इन नियमों की सहायता के इनका तथा अन्य किसी भी आकार की वस्तुओं का आयतन नापने के उपाय परिच्छेद ६ में बतलाये गये हैं।

१००० घ० स० आयतन का नाम **लिटर** भी है किन्तु इसका प्रयोग बहुधा तरल पदार्थों के आयतन के लिए ही होता है।

आयतन का अँगरेज़ी एकांक घन इंच है। यह २.५४ × २.५४ × २.५४ = १६.३८ घन सेंटीमीटरों के बराबर होता है।

९—तौल के एकांक। तौल के अन्तर्जातीय वैज्ञानिक एकांक का नाम **ग्राम** है। इसका तौल एक घन सेंटीमीटर शुद्ध जल के तौल के बराबर होता है। इस एकांक के छोटे होने के कारण प्रमाण-तौल १००० ग्राम के बराबर बनाया गया है। इसे **प्रमाण किलोग्राम** (क० ग्र०) कहते हैं और यह भी प्रमाण मीटर के समान इरीडियम-युक्त प्लाटिनम धातु का बना है और उसी के साथ पैरिस में स्थापित है। ग्राम के विभाग भी दशमलव रीति से मीटर के विभागों के समान ही किये गये हैं और उनके नाम भी डेसी, सेंटी और मिली शब्दों को जोड़ कर बनाये गये हैं। यथा—

१ ग्राम (ग्र) = १० डेसीग्राम (डग्र०)
१ डेसीग्राम = १० सेंटीग्राम (सग्र०)
१ सेंटीग्राम = १० मिली ग्राम (मग्र०)

भारतवर्ष के तौल में १ ग्राम का भार $\frac{१}{११.७}$ = '०८५७ तोले = १'०३ माशे होता है।

तौल के अँगरेज़ी एकांक का नाम **पाउंड** है। यह प्रायः आध सेर अथवा ४५३'५९ ग्राम के बराबर होता है। इसके विभाग निम्न प्रकार होते हैं:—

१ पाउंड	=	१६ आउंस = ७००० ग्रेन
१ आउंस	=	१६ ड्राम = ४३७½ ग्रेन
१ ड्राम	=	२७$\frac{११}{३२}$ ग्रेन

१०—समय के एकांक। लम्बाई और तौल के माप के अतिरिक्त समय का माप भी भौतिक विज्ञान के लिए परम आवश्यक है। किन्तु सौभाग्य से समय के वैज्ञानिक नाप में और नित्य के व्यवहार के नाप में कोई भेद नहीं है। वही दिन, घंटा, मिनट और सैकंड जो हम लोग अपनी घड़ियों के द्वारा नापते हैं वैज्ञानिक कार्यों के लिए भी उपयुक्त हैं।

१ दिन	=	२४ घंटा
१ घंटा	=	६० मिनट
१ मिनट	=	६० सैकंड

किन्तु समय का यह नाप दिन के परिमाण पर अवलम्बित है और दिन सूर्य की गति पर निर्भर है। हम देखते हैं कि पृथ्वी के अक्षीय भ्रमण के कारण सूर्य नित्य उदय होता है, धीरे धीरे आकाश में ऊँचा उठता जाता है और मध्याह्न के पश्चात् धीरे धीरे नीचा होकर अन्त में पश्चिम की ओर अस्त हो जाता है। उदय और अस्त होने का समय शरद् और ग्रीष्म ऋतुओं में बहुत बदल जाता है क्योंकि सर्दी में दिन छोटा और रात बड़ी होती है और गर्मी में दिन बड़ा और रात छोटी। इसलिए दिन को मध्याह्न से नापने की रीति है। आज मध्याह्न से कल मध्याह्न तक के समय को एक **सौर दिन**

कहते हैं। किन्तु यह सौर दिन समय के माप के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता क्योंकि इस सौर दिन का परिमाण भी घटता-बढ़ता रहता है। हां, यदि वर्ष भर के दिनों का समय-परिमाण जोड़ कर उसे दिनों की संख्या से विभाजित कर दें तो हमें सौर दिन का औसत परिमाण प्राप्त हो जाता है। इस परिमाण को **मध्यमान सौर दिन** कहते हैं और यही समय के माप में प्रयुक्त होता है। इसी के $\frac{१}{२४ \times ६० \times ६०}$ अर्थात् ८६,४०० वें भाग को एक सैकंड कहते हैं और वैज्ञानिक कार्य के लिए यही सैकंड समय का एकांक है।

११—घड़ी। किन्तु व्यवहार में इस परिभाषा से समय नापा नहीं जा सकता। जिस प्रकार लम्बाई नापने के लिए गज़ इत्यादि की आवश्यकता है और तौल नापने के लिए तराजू की सहायता लेना पड़ता है, उसी प्रकार समय को नापने के लिए घड़ी का व्यवहार होता है। घड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक वे जिनमें दोलक होता है और जो दीवार पर टांग दी जाती हैं। दूसरी वे जिनमें दोलक नहीं होता और जिन्हें जेब में रख कर या कलाई पर बांध कर जहां चाहें ले जा सकते हैं। इनमें दोलक का काम कमानीयुक्त एक पहिया करता है और वह भी दोलक ही के समान एक ओर से दूसरी ओर दोलन करता रहता है। घड़ियों में समय नापने का वास्तविक कार्य दोलक या पहिया ही करता है क्योंकि इनके दोलन का समय सर्वथा निश्चित है। जितना समय एक दोलन करने में लगेगा उतना ही दूसरे दोलन में, और उतना ही हज़ारवें में और उतना ही दस हज़ारवें में। दो दोलन में उसका दुगुना और तीन में तिगुना और हज़ार में हज़ार गुना। अतः यदि एक दोलन का समय एक बार ठीक-ठीक नाप लिया जाय तो फिर केवल इन दोलनों की संख्या गिन लेने ही से काम चल जायगा। घड़ी के अन्य पहिये केवल

चित्र ९
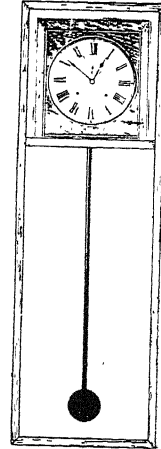
दोलनों की संख्या गिनने का कार्य करते हैं और सुइयां इस गणना का परिणाम प्रदर्शित कर देती हैं।
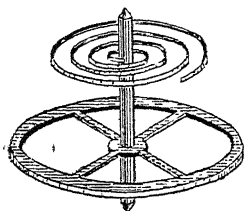
चित्र ६

दोलक का दोलन-समय उसकी लम्बाई के अतिरिक्त और किसी बात पर निर्भर नहीं है। सबसे सरल प्रकार का दोलक पतले धागे में एक गोला लटका देने से बन जाता है। इसके गोले को एक ओर खींचकर छोड़ देने से इसके दोलन प्रारम्भ हो जाते हैं और बड़ी देर तक होते रहते हैं। घड़ी के द्वारा ५० या १०० दोलनों का समय बिना कठिनाई के नापा जा सकता है। इस समय को कई बार नापने से यह प्रमाणित हो जायगा कि दोलन का समय सर्वथा स्थिर है। उसमें कभी घट बढ़ नहीं होती और यदि भिन्न भिन्न पदार्थों के बने हुए और छोटे या बड़े कई प्रकार के गोलों के दोलक बनाये जावें और उनकी लम्बाई (गोले के केन्द्र 'क' से धागे के अवस्बलन बिन्दु ख तक) बिलकुल बराबर हो तो नापने से ज्ञात होगा कि इन सब दोलकों के दोलन-काल बराबर हैं। उनमें तनिक भी अन्तर न निकलेगा। हां यदि लम्बाई कम की जावे तो दोलन-काल भी कम हो जायगा और दोलक जल्दी जल्दी हिलने लगेगा। यदि लम्बाई बढ़ा दी जावे तो उसकी चाल भी धीमी हो जायगी। इसी कारण यदि घड़ी तेज़ चलती हो तो दोलक की लम्बाई बढ़ा देने से उसकी चाल ठीक हो जाती है और यदि वह धीरे चलती हो तो दोलक की लम्बाई कम कर देना पड़ती है। कमानीवाले पहिये का दोलन-समय भी कमानी की लम्बाई पर निर्भर है। पहिये के ऊपर लगे हुए लीवर को इधर-उधर घुमाने से कमानी का काम में आनेवाला भाग घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इस उपाय से जेबी घड़ी की चाल भी तेज़ या धीरे की जा सकती है।

ख

क

चित्र ७

१२---नाप-तौल की पद्धतियाँ। वैज्ञानिक नाप-तौल के सेंटीमीटर, ग्राम और सैकंड ही मुख्य एकांक हैं। अन्य सब एकांक इन तीनों ही

की सहायता से निश्चित किये गये हैं। अतः यह पद्धति सेंटीमीटर ग्राम सैकंड पद्धति अथवा संक्षेप में **स० ग० स० पद्धति** कहलाती है। किन्तु अँगरेज़ी इंजीनियर अभी तक फुट, पाउंड और सैकंड ही का व्यवहार करते हैं। उनकी पद्धति **फ० प० स० पद्धति** कहलाती है।

प्रश्न

(१) लम्बाई का एकांक क्या है और उसकी क्या आवश्यकता है?

(२) इस पुस्तक के पृष्ठ की लम्बाई इंचों तथा सेंटीमीटरों में नापो और यह गणना करो कि एक इंच कितने सेंटीमीटरों के बराबर होता है।

(३) शिमला समुद्रतल से ७,००० फ़ुट ऊँचा है। बताओ कि उसकी उँचाई कितने मीटर है?

(४) एक किलोमीटर के गज़, फ़ुट और इंच बताओ।

(५) निम्नलिखित आयत क्षेत्रों का क्षेत्रफल वर्ग, मम० और वर्ग इंचों में बताओ:—

	लम्बाई	चौड़ाई
(१)	८″	३½″
(२)	१५ समम०	८ मम०
(३)	२० गज़	५ फ़ुट
(४)	१० मीटर	५० सम०

(६) निम्नलिखित आयत क्षेत्रों की भुजा की लम्बाई बताओ:—

	क्षेत्रफल	एक भुजा
(१)	४५० व० मम०	४० व० फ़ुट
(२)	१५ सम०	३०″

(७) ५ सम० भुजावाले घन के ६ पार्श्वों का क्षेत्रफल बताओ।

(८) वर्गांकित पत्र पर निम्नलिखित क्षेत्र खींचो और वर्गों की गणना करके उनका क्षेत्रफल निकालोः—

(१) त्रिभुज जिसकी भुजायें क्रमशः ४″, ५″ और ३″ हों।

(२) वृत्त जिसका व्यास ८ सम० हो।

(९) आठवें प्रश्न में यह प्रमाणित करो कि

(१) त्रिभुज का क्षेत्रफल= $\frac{1}{2}$ (आधार×शीर्ष लम्ब)

(२) वृत्त का क्षेत्रफल= π (त्रिज्या)^2 जहाँ

$\pi = \frac{22}{7} = 3 \cdot 14$

(१०) वर्गांकित पत्र पर आकृति खींचकर प्रमाणित करो कि समान आधार पर स्थित और समान शीर्षलम्बवाले समानान्तर चतुर्भुजों का क्षेत्रफल बराबर होता है।

(११) लकड़ी के निम्नलिखित गुटकों का आयतन निकालोः—

	लम्बाई	चौड़ाई	मोटाई
(१)	४″	२″	$\frac{1}{2}$″
(२)	१५ सम०	६ सम०	१५ मम०

(१२) इस पृष्ठ का क्षेत्रफल नाप कर प्रमाणित करो कि एक वर्ग इंच=६·४५ व० सम०।

(१३) एक घन फ़ुट कितने लिटर के बराबर होता है ?

(१४) एक कुंड २५ फ़ुट लम्बा, १५ फ़ुट चौड़ा और ८ फ़ुट गहरा है। बताओ कि उसमें के पानी का कितना भार है यदि एक घन फ़ुट पानी का भार ३१ सेर है।

(१५) परिवर्तन करोः—

(१) ४ पाउंड को ग्राम में। (२) ५६ ग्राम को ग्रेन में।

(३) ३ कग्र० को आउंस में।

(१६) यदि १५ घ० सम० नमक के विलयन में ४ ग्र० नमक हो तो बताओ कि एक लिटर में कितना है ?

(१७) ताँबे के एक आयताकार पट्ट (१० सम० लम्बे और २ सम० चौड़े) का भार ६४ ग्राम है। यदि १ घ० सम० का भार ८ ग्राम हो तो बताओ कि उस पट्ट की मोटाई कितनी है ?

(१८) एक बोतल में ५०० ग्राम ग्लीसरीन समाती है । यदि ग्लीसरीन का भार १$\frac{१}{४}$ ग्राम प्रति घ० सम० हो और पारे का १३$\frac{१}{२}$ ग्राम प्रति घ० सम० तो बताओ कि उस बोतल में पारा कितना समा जायगा ?

(१९) एक घड़ी प्रतिदिन ५ मिनट सुस्त चलती है। बताओ कि उसका दोलक जितना होना चाहिए उससे लम्बा है या छोटा ?

परिच्छेद २

द्रव्य के सामान्य गुण

१३—विस्तार । ताप, प्रकाश आदि कुछ थोड़े पदार्थों को छोड़कर संसार में जितनी अजीव वस्तुएँ हैं उन्हें जड़-पदार्थ कहते हैं । यद्यपि उनके बाह्यरूप में हम अनेक प्रकार का वैचित्र्य देखते हैं, तथापि कई ऐसे गुण हैं जो उन सबमें समानरूप से विद्यमान हैं । जैसे उन सबका कुछ न कुछ विस्तार होता है । अर्थात् वे सब आकाश के कुछ न कुछ भाग में व्याप्त होते हैं और जिस आकाश में एक वस्तु स्थित हो उसमें दूसरी प्रवेश नहीं कर सकती । जब हम जल में अपना हाथ डुबा देते हैं तो जहां हमारा हाथ घुसता है वहाँ से जल हट जाता है । लकड़ी में कील ठोकने पर भी यही होता है । लकड़ी और कील दोनों आकाश के एक ही भाग में स्थित नहीं होते । बालू के ढेर में पानी डालने से वह अवश्य ग़ायब हो जाता है किन्तु वह बालू के कणों के बीच ही में रहता है । जहाँ बालू का कण विद्यमान है वहां वह प्रवेश नहीं कर सकता ।

१४—भार । इस विस्तार तथा अवकाशहीनता के अतिरिक्त इन सब पदार्थों में कुछ न कुछ भार भी होता है । लोहा, ईंट, जल, तैल आदि के भार का तो सभी लोगों को अनुभव है किन्तु वायु में भी भार होता है यह सर्व-साधारण को ज्ञात नहीं है । इसका कारण केवल यह है कि प्रथम तो इसका भार बहुत कम होता है और दूसरे इसे पात्र में से निकालना ज़रा कठिन काम है । किन्तु निम्नलिखित रीति से वायु आसानी से तौली जा सकती है ।

एक बड़ी सी फ़्लास्क में रबड़ की डाट लगा दो और उस डाट में एक कांच की नली बैठा दो । इस नली पर रबड़ की नली और क्लिप लगा दो

(चित्र ८)। अब किसी वायु-पम्प के द्वारा इस फ़्लास्क की वायु निकाल क क्लिप बन्द कर दो। अच्छी सूक्ष्मग्राही तराज़ू पर रख कर फ़्लास्क को तौल लो। तब क्लिप खोल कर वायु को उसमें प्रवेश कर जाने दो। तुरन्त ही फ़्लास्क का भार बढ़ जायगा। कांटे पर कुछ और बाट रख कर इस भार-वृद्धि को नाप लो यही फ़्लास्क में की वायु का भार है।
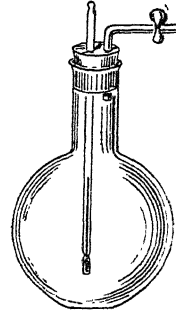
चित्र ८

यदि वायु-पम्प विद्यमान न हो तो यही प्रयोग निम्न प्रकार भी किया जा सकता है। उपर्युक्त फ़्लास्क में थोड़ा पानी भर के उसे उबाल डालो। पांच सात मिनट उबलने पर क्लिप बन्द कर दो और फ़्लास्क को ठंडा होने दो। जब बिलकुल ठंडा हो जावे तब उसे तौल लो। अब क्लिप के खोलते ही हवा के फ़्लास्क में प्रवेश करने का शब्द सुनाई पड़ेगा और उसका भार बढ़ जायगा। इस प्रयोग में पानी की भाप हवा को निकाल देती है और ठंडी होने पर स्वयं भी पुनः जलरूप होकर फ़्लास्क को प्रायः सर्वथा शून्य बना देती है।

१५—द्रव्य और शक्ति। ताप, प्रकाश आदि में ये गुण नहीं पाये जाते। न तो उनके द्वारा व्याप्त होकर आकाश अन्य वस्तुओं को स्थान देने के लिए असमर्थ हो जाता है और न उनमें भार ही होता है। इन्हें **शक्ति** कहते हैं। **जिन पदार्थों में विस्तार तथा भार होता है उन्हें द्रव्य अथवा जड़ पदार्थ कहते हैं।** यद्यपि इस समय यह कहना असम्भव है कि द्रव्य वास्तव में क्या है, शक्ति का असली स्वरूप कैसा है, तथा इन दोनों में क्या सम्बन्ध है, तथापि अजीव पदार्थों को इन दो वर्गों में विभाजित करने से बड़ी सुविधा होती है।

१६—द्रव्य की अवस्थायें। समस्त द्रव्य प्रायः तीन अवस्थाओं में पाया जाता है। इन्हें क्रम से **घन, द्रव** और **गैस** अवस्थायें कहते हैं।

द्रव और गैस अवस्थाओं का व्यापक नाम **तरल** अवस्था भी है। इन अवस्थाओं के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:—

१७—घन। घन या ठोस उन वस्तुओं को कहते हैं जिनका गोल, लम्बा, चपटा, अथवा अन्य किसी प्रकार का कुछ निश्चित आकार होता है। यथा—लोहा, लकड़ी, ईंट इत्यादि। इनका आकार और आयतन स्वयमेव नहीं बदल सकता। यदि लोहे के एक टुकड़े को हम रख छोड़ें तो महीनों के बाद भी उसके आकार और आयतन में कोई अन्तर न देख पड़ेगा। भिन्न-भिन्न आकार के पात्रों में रखने से भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। हथौड़े से पीट कर अवश्य ही हम उसका आकार बदल सकते हैं। किन्तु जब तक उस पर इस प्रकार बल न लगाया जाय तब तक वह ज्यों का त्यों ही रहेगा। यह सच है कि कुछ घन अधिक कड़े होते हैं और उनके आकार तथा आयतन बदलने में बड़ी कठिनाई होती है और कुछ घन इतने नरम होते हैं कि बड़ी सरलता से उनमें विकार हो जाता है। किन्तु बिना थोड़ा बहुत बल लगाये किसी भी घन का आकार बदल देना असम्भव है। घनों के इस गुण को आकार-स्थापकत्व कहते हैं और यही घनों की सबसे बड़ी विशेषता है।

१८—तरल। तरल पदार्थों में यह गुण नहीं होता। वास्तव में उनका कोई निज का आकार होता ही नहीं। जैसे जल। इसे गिलास, घड़े, कटोरी इत्यादि में भरने से उसका आकार बर्तन ही के अनुरूप हो जाता है। वायु की भी यही दशा है। इनमें बहने का गुण है और रास्ता मिलते ही यह बह कर फैल जाते हैं। घन पदार्थ नहीं बहते।

१९—द्रव। द्रव उन्हें कहते हैं कि जिनका आकार तो उस बर्तन ही के आकार का हो जाता है जिसमें वे स्थित हों किन्तु जिनका ऊपर का पृष्ठ सदा समतल रहता है। यथा जल, तैल, पारा आदि। जब तक पर्याप्त परिमाण में विद्यमान न हों तब तक वे बर्तन को पूरा नहीं भर सकते। नीचे ही के भाग में स्थित रहते हैं और बर्तन का ऊपर का भाग खाली रह जाता है।

इनका आयतन स्वयमेव नहीं बदलता। उसे बदलने के लिए बहुत अधिक बल की आवश्यकता होती है।

घन पदार्थों के चूर्ण यथा बालू आदि भी पात्र का आकार ग्रहण कर लेते हैं और बहने का गुण भी कुछ थोड़ा सा उनमें है। किन्तु इनके कण इतनी सरलता से नहीं बहते कि इनका पृष्ठ समतल हो जावे। इनका ढेर लगाया जा सकता है अतः इन्हें द्रव नहीं कह सकते।

२०—**गैस**। गैस उन पदार्थों का नाम है कि जिनका आयतन भी स्थिर नहीं रहता। वे न केवल पात्र के आकार को धारण कर लेते हैं किन्तु उसके आयतन के तुल्य ही अपना आयतन भी बना लेते हैं। उनमें व्याप्त होने का गुण है और चाहे कितने ही थोड़े परिमाण में हों वे समस्त पात्र में फैल जाते हैं।

एक बोतल में कोलगैस या हाइड्रोजन सलफाइड भर लीजिए। फिर कमरे में कहीं इस बोतल को रख कर उसकी डाट खोल दीजिए। सारे कमरे में उसकी गंध फैल जायगी। थोड़ी देर में कमरे का कोई भी भाग ऐसा न बचेगा जहाँ वह गैस न पहुँच गई हो।

किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि द्रव्यों के उपर्युक्त विभाग केवल स्थूल दृष्टि से किये गये हैं। वास्तव में उनके गुणों में बाह्य पार्थक्य होने पर भी अंतरंग एकता है। कड़े और नरम घनों में जो अन्तर है, गाढ़े और पतले द्रवों में (जैसे अलकतरे और जल में) जो अन्तर है वही बढ़ जाने पर घन को द्रव का रूप दे देता है और द्रव को गैस में परिणत कर देता है। बहुत से ऐसे पदार्थ भी हैं कि जिन्हें न हम ठीक घन ही कह सकते हैं और न द्रव ही। उनके गुण घनों और द्रवों के मध्यवर्ती हैं। जैसे जेली इतना नरम होता है कि सरसों का दाना भी उस पर डाल देने से उसमें धँस जाता है। इस दृष्टि से इस पदार्थ को द्रव कहना चाहिए किन्तु वह बहता बिलकुल भी नहीं। सरसों के दाने ने जो गढ़ा एक बार बना दिया है वह धीरे धीरे बढ़ता नहीं। चपड़ा या गाला देखने में घन अवश्य जान पड़ता है किन्तु वह द्रव ही की भाँति बहता है केवल उसके बहने का वेग बहुत ही

थोड़ा होता है। यदि इसकी एक छड़ को कोने में खड़ी कर दें तो कुछ समय के बाद आप देखेंगे कि वह बीच में से झुक कर टेढ़ी होगई है। पिच का एक टुकड़ा मेज़ पर रख छोड़िए। धीरे धीरे वह फैल जावेगा और यदि ढालू ज़मीन पर रखा हो तो नीचे की ओर बह भी जावेगा। इसके अतिरिक्त एक ही पदार्थ इन तीनों अवस्थाओं में रह सकता है। बर्फ़ के टुकड़े के आकार होता है और यदि सर्दी के दिन हों तो जल्दी उसके आकार में परिवर्त्तन भी नहीं होता। घन के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं। किन्तु ताप के द्वारा वह तुरन्त जलरूप हो जाता है और तब उसके द्रव होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। और यदि इस जल को आग पर रख कर गरम करें तो उबल कर वाष्परूप बन कर उड़ जाता है। गरम किये बिना भी वह वायु में उड़ जाता है। तभी तो गीले वस्त्र सूखते हैं। ठंडा करने पर पुनः वाष्प का जल बनाया जा सकता है और जल को जमा कर बर्फ़ भी बना लेते हैं। यह अवस्था-परिवर्त्तन का गुण केवल जल ही में नहीं है। प्रायः सभी वस्तुओं में यह विद्यमान है। लोहा, सोना, चाँदी, आदि कड़े से कड़े घन भी ताप पाकर पिघल जाते हैं। हाँ कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं कि जो घन अवस्था से सीधे गैस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। यथा—कपूर। किन्तु उपयुक्त परिस्थिति में कपूर को भी द्रव का रूप दिया जा सकता है।

२१—द्रव का अविनाशित्व। इसी स्थान पर यह भी बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि इस अवस्था-परिवर्त्तन के कारण वस्तु के भार में तनिक भी अन्तर नहीं होता।

(क) किसी पात्र में बर्फ़ या मोम रख कर तौल लीजिए। पात्र को थोड़ा गरम करके उसे पिघला लीजिए। अब फिर तौलिए। तौल ठीक पहले ही के बराबर निकलेगी।

(ख) एक फ्लास्क को चित्र ६ की भाँति शीतक से सम्बन्धित कर दीजिए। तौल कर कुछ पानी उसमें भर दीजिए, और उसे उबालिए। भाप शीतक की भीतरी नली में से जावेगी किन्तु उसके चारों ओर बाहर की नली में बहते हुए पानी की ठंडक के कारण वह भाप पुनः जलरूप में

परिणत हो जावेगी और यह जल बहकर उस नली से संलग्न दूसरी फ़्लास्क में एकत्रित हो जायगा। इस जल को तौलने पर ज्ञात होगा कि
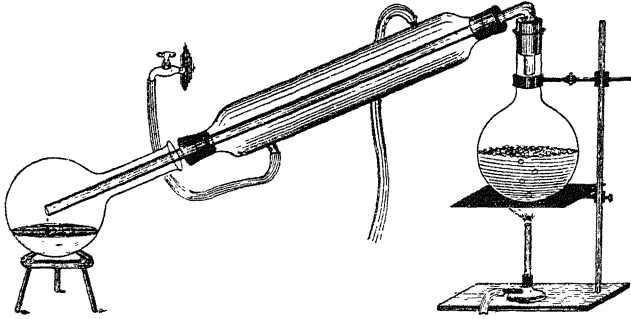
चित्र ६

जितना जल पहले फ़्लास्क में से कम हुआ है ठीक उतना ही इस फ़्लास्क में एकत्रित होगया है।

इन प्रयोगों से यह ज्ञात हो जाता है कि यद्यपि हम द्रव्य की अवस्था को इच्छानुसार बदल सकते हैं किन्तु हम उसका नाश नहीं कर सकते। हमें ऐसा कोई उपाय अब तक ज्ञात नहीं हुआ है कि जिसके द्वारा द्रव्य के छोटे से छोटे भाग का भी नाश किया जा सके। अर्थात् हमें कहना होगा कि द्रव्य **अविनाशी** है। जब लकड़ी जल जाती है और केवल थोड़ी सी राख बच रहती है, या जब मोमबत्ती के जलने पर कुछ भी नहीं बचता तो जान पड़ता है कि उसके द्रव्य का नाश होगया। किन्तु यह केवल भ्रम है। यदि जलते समय जो राख, धूम, वाष्प और अन्य गैस उत्पन्न होती है उन सबको एकत्रित करके तौलें तो अवश्य ही लकड़ी या मोमबत्ती से अधिक भार निकलेगा। इससे यह न समझना चाहिए कि कुछ नवीन द्रव्य की उत्पत्ति होगई है। जैसे द्रव्य का नाश नहीं किया जा सकता वैसे ही उसकी उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। वह अविनाशी भी है और अजन्मा भी है। लकड़ी के जलने में वायु का भी कुछ

भाग काम में आता है। अतः लकड़ी और वायु के उस भाग का सम्मिलित भार जलने से उत्पन्न पदार्थों के भार के बराबर होता है। न तिल भर अधिक न तिल भर कम।

२२—अन्य गुण। प्रायः सभी द्रव्यों में निम्न-लिखित गुण भी पाये जाते हैं :—

विभाज्यत्व, सुषिरता, संपीड्यता, स्थिति-स्थापकत्व, संसक्ति तथा आसक्ति।

२३—विभाज्यत्व। प्रत्येक घन पदार्थ को तोड़ कर हम उसके कई टुकड़े बना सकते हैं। प्रत्येक टुकड़े को पुनः छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त कर सकते हैं और अन्त में उसका ऐसा चूर्ण कर सकते हैं कि प्रत्येक कण बहुत ही छोटा हो। नमक या चीनी का चूर्ण बनाना अत्यन्त ही सरल है किन्तु बहुत से पदार्थों का चूर्ण बड़ी कठिनाई से बनता है। नमक या चीनी के बारीक़ से बारीक़ चूर्ण की अपेक्षा भी अधिक छोटे टुकड़े उन्हें पानी में घोलने से बन जाते हैं।

बहुत ही थोड़ा नमक घड़े भर पानी में डाल देने पर भी स्वाद खारा हो जाता है। लाल रंग की एक चुटकी से कई घड़े जल का रंग लाल हो जाता है। और गंधयुक्त वस्तुओं का विभाज्यत्व तो और भी अधिक है। कस्तूरी का तिल के बराबर छोटा टुकड़ा, जिसकी तौल शायद एक रत्ती के दशमांश से भी कम हो, वर्षों तक अच्छे बड़े कमरे को अपनी गंध से परिपूर्ण रखता है और आश्चर्य तो यह है कि इतने समय के पश्चात् भी उसके भार में कुछ कमी दिखलाई नहीं देती।

२४—सुषिरता। मिट्टी का घड़ा बाहर से सदा गीला रहता है क्योंकि उसके छिद्रों में से पानी निकल आता है। सोख़ते के काग़ज़ में से मैले पानी को छान कर साफ़ कर लेना साधारण व्यव-हार की बात है। इससे ज्ञात होता है कि उस काग़ज़ में भी छिद्र होते हैं। इनके छिद्र काफ़ी बड़े होते हैं और सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा प्रत्यक्ष देखे भी जा सकते हैं। प्रायः सभी वस्तुएँ सुषिर होती

हैं यहाँ तक कि लोहा और सीसा जैसी धातुओं में भी छिद्रों का अस्तित्व प्रमाणित किया जा सकता है। पतले सीसे के बर्तन में जल भर कर उसे बलपूर्वक दबाने से मिट्टी के घड़े की तरह उसमें से भी जल चूने लगता है। द्रवों में भी छिद्र होते हैं। प्याले में पानी भर कर उसमें चीनी डालने से चीनी घुल जाती है और पानी का आयतन नहीं बढ़ता। अवश्य ही चीनी के छोटे छोटे टुकड़े जल के छिद्रों में प्रवेश कर जाते होंगे। इसी प्रकार यदि जल और अलकाहाल को एक ही पात्र में डालकर ख़ूब हिला दें तो इस मिश्रण का आयतन जल और अलकाहाल के आयतनों के योग से कुछ कम होता है। अर्थात् प्रत्येक का कुछ भाग दूसरे के छिद्रों में प्रविष्ट हो जाता है।

२५—संपीड्यता। जब प्रत्येक पदार्थ छिद्रमय होता है तो अवश्य ही पर्याप्त बल लगाने पर उन छिद्रों का आयतन कम किया जा सकता है और इस प्रकार सिकुड़ कर वस्तु का विस्तार भी कुछ कम हो जाना स्वाभाविक ही है। गैसों का संपीड़न तो अत्यन्त ही सरल काम है। फुटबाल या बाईसिकल में पम्प के द्वारा कितनी अधिक वायु भरी जा सकती है! द्रव और घन पदार्थों में बहुत अधिक बल की आवश्यकता होती है और संपीडन भी इतना कम होता है कि द्रव बहुधा असंपीड्य कहलाते हैं। किन्तु उपयुक्त साधनों के द्वारा उनका संपीड़न भी प्रदर्शित किया जा सकता है और नापा भी जा सकता है। यह भी वस्तुओं के छिद्रमयत्व का एक अच्छा प्रमाण है।

२६—स्थिति-स्थापकत्व। मान लीजिए कि बल लगाकर किसी वस्तु का आयतन घटा दिया गया। अब यदि यह बल हटा लिया जाय तो क्या होगा? क्या वह वस्तु पुनः अपना पूर्व आयतन प्राप्त कर लेगी? या उसका आयतन जो एक बार घट गया वह फिर न बढ़ेगा? फुटबाल को दबाकर छोड़ देने पर वह तुरन्त ही पूर्ववत् हो जाता है। प्रत्येक गैस और द्रव का यही हाल है। इस गुण को स्थिति-स्थापकत्व कहते हैं। और गैस

तथा द्रव दोनों ही में यह गुण पूर्ण रूप से विद्यमान है क्योंकि उनका चाहे कितना ही संकोच क्यों न होगया हो, संपीड़क बल के दूर होते ही समस्त संपीड़न भी दूर हो जाता है। उन्हें हम पूर्ण स्थिति-स्थापक कह सकते हैं।

किन्तु घनों में यह गुण इतने पूर्ण रूप में नहीं होता। जब तक संपीड़न बल किसी सीमाविशेष से न्यून हो, तब तक तो इनका आयतन भी पूर्ववत हो जाता है, किन्तु इस सीमा को उल्लंघन करने पर उनके आयतन में स्थायी विकार हो जाता है। बल को बिलकुल हटाने पर भी उनका आयतन फिर पहले जितना नहीं हो सकता। इस सीमा को स्थिति-स्थापकत्व की सीमा कहते हैं और यह सीमा भी भिन्न भिन्न घनों के लिए भिन्न भिन्न होती है।

इसके अतिरिक्त इस सीमा के अन्तर्गत भी सब पदार्थों का स्थिति-स्थापकत्व एक सा नहीं होता। एक ही परिमाण का बल लगाने से सब पदार्थों का आयतन समान रूप से नहीं घटता। रबड़ थोड़े ही बल से दब जाता है किन्तु कांच, हाथीदाँत या फ़ौलाद को बहुत अधिक बल की आवश्यकता होती है। साधारणतया यह समझा जाता है कि रबड़ अच्छा स्थिति-स्थापक है। किन्तु वास्तव में काँच और फ़ौलाद में रबड़ की अपेक्षा यह गुण अधिक उत्कृष्ट परिमाण में होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से जिस पदार्थ में विकार उत्पन्न करने के लिए जितना ही अधिक बल आवश्यक हो उतना ही उत्कृष्ट स्थिति-स्थापक वह समझा जायगा। गूँदे हुए आटे या गीली मिट्टी में यह गुण बिलकुल भी नहीं होता।

पदार्थों के स्थिति-स्थापकत्व का यह भेद देखने का सबसे सरल उपाय यह है कि उनकी गोलियाँ बना ली जावें और उन्हें समान उँचाई से किसी समतल सुचिक्कण पत्थर या लोहे की पट्टिका पर गिरावें। ये गोलियाँ पट्टिका से टकरा कर पुनः ऊपर उछलेंगी और जिसमें जितना ही अधिक स्थिति-स्थापकत्व होगा उतनी ही अधिक ऊँची वह उठेगी। काँच या हाथी-दांत की गोलियां प्रायः उतनी ही ऊँची उठ जावेंगी जितनी उँचाई से वे गिराई गई थीं। किन्तु सीसे या तांबे की गोली उतनी ऊँची न उठ सकेगी। आटे की गोली तो बिलकुल भी न उठेगी।

यह स्थिति-स्थापकत्व केवल आयतन के घटाने-बढ़ाने ही में प्रदर्शित नहीं होता है। और भी कई बातों में इसका प्रभाव देखा जाता है। जैसे तार को खींचने से उसकी लम्बाई बढ़ जाती है और छोड़ देने पर पुनः कम हो जाती है। वस्तुओं को मोड़ या मरोड़ देने पर भी वे अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। इन सब कार्यों में भिन्न भिन्न प्रकार के बलों की भी आवश्यकता होती है और इस दृष्टि से स्थिति-स्थापकत्व के कई भेद भी हैं, यथा आयतन-स्थापकत्व, दैर्घ्य-स्थापकत्व और आकार-स्थापकत्व। अंतिम दोनों प्रकार का स्थिति-स्थापकत्व केवल घन पदार्थों ही में होता है।

२७—स्थिति-स्थापकत्व के उदाहरण। पदार्थों का यह गुण हमारे लिए बड़ा उपयोगी है और इसके द्वारा हमारे बहुत से कार्य संपादित होते हैं। बोतल का मुँह बन्द करने के लिए काग उसके स्थिति-स्थापकत्व ही के कारण काम में आता है। ज़ोर से घुसा देने से काग दब जाता है और तब अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करने के प्रयत्न ही में वह बोतल के मुँह को अच्छी तरह बन्द कर देता है। धनुष से तीर भी इसी गुण की सहायता से चलाया जाता है। रबड़ के गेंद का उछलना भी उसके भीतर की वायु के स्थिति-स्थापकत्व पर निर्भर है। गाड़ी और मोटर की कमानियां भी उनके इसी गुण के कारण लगाई जाती हैं। घड़ियां भी कमानियों के स्थिति-स्थापकत्व ही के कारण एक बार चाभी देने पर घंटों और दिनों तक चलती रहती हैं।

२८—द्रव्य का अणुमय संगठन। विभाज्यत्व, संपीड्यता, सुषिरता इत्यादि गुणों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक पदार्थ अवश्य ही अत्यन्त छोटे छोटे कणों का बना हुआ है। जितना आकाश किसी पदार्थ के द्वारा व्याप्त दिखलाई देता है उतना सभी भरा हुआ नहीं है। उसके बहुत थोड़े भाग में यह कण स्थित हैं और इन कणों के बीच में बहुत सा आकाश सर्वथा ख़ाली पड़ा हुआ है। इसी अन्तराकाश के कम होने पर वस्तु

संकुचित होती हुई जान पड़ती है और जब जल में नमक घुलता है तो वह जल के इसी अन्तराकाश में प्रवेश कर जाता है।

यह मत अत्यन्त प्राचीन है। भारतवर्ष, ग्रीस आदि देशों में जहाँ की सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है इस अणुमय संगठन का ज्ञान कम से कम दो ढाई हज़ार वर्ष पहले भी था इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु आधुनिक विज्ञान को अणुओं का स्पष्ट ज्ञान प्रसिद्ध रसायनवेत्ता डाल्टन (१७६६-१८४४) ने दिया था।

२९—अणु तथा परमाणु। अब प्रश्न यह होता है कि पदार्थ के ये कण कितने छोटे होते हैं। विभाज्यता के वर्णन में यह बताया जा चुका है कि बहुत सी वस्तुओं के अत्यन्त ही छोटे छोटे टुकड़े किये जा सकते हैं। यह अन्दाज़ा किया गया है कि यदि एक घन सेंटीमीटर अलकाहाल में १ ग्राम का ५ करोड़वाँ भाग फुशीन नामक रंग का घुला हो तो उसका रंग साफ़ देख पड़ता है और एक घन सेंटीमीटर कस्तूरी के कम से कम १२० नील अर्थात् (१,२०,००,००,००,००,००,००० अथवा १२×१०^{१४})* टुकड़े हो सकते हैं। क्या इतने छोटे टुकड़ों के और भी छोटे टुकड़े बनाना सम्भव है? यह हो सकता है कि हमारे पास उतने छोटे टुकड़े करने के साधन न हों किन्तु प्रश्न यह है कि इस विभाज्यत्व की कुछ

---

* दस नील की संख्या अंकों में यों लिखी जाती है:—

१०,००,००,००,००,००,०००

इसमें १ के आगे १४ शून्य हैं। इस प्रकार लिखने में स्थान भी अधिक लगता है और संख्या को समझने के लिए भी शून्यों को गिनना पड़ता है। इसलिए इसको एक दूसरे प्रकार भी लिखने का रिवाज प्रचलित है। इस रीति में सब शून्य पृथक् पृथक् न लिख कर उनकी संख्या १० के ऊपर लिख दी जाती है अर्थात् दस नील को $१०^{१४}$ के द्वारा व्यक्त करते हैं। एक लाख जिसमें १ के आगे ५ शून्य होते हैं=$१०^{५}$, ९ शून्य युक्त एक अरब=$१०^{९}$। $१०^{२३}$ का अर्थ है वह संख्या जिसमें १ के आगे २३ शून्य लिखे हों।

सीमा भी है या नहीं ? विज्ञान की गहरी खोज ने हमें बता दिया है कि ऐसी सीमा है। किसी भी पदार्थ का भेदन करते करते अन्त में हम ऐसे विभाग पर जा पहुँचेंगे कि यदि उसको किसी भी उपाय से और विभक्त करें तो उस पदार्थ का अस्तित्व न रह कर कुछ दूसरे ही पदार्थों की उत्पत्ति हो जावेगी। जैसे इस सीमा को उल्लंघन करने पर जल जल न रहेगा किन्तु हाइड्रोजन और आक्सिजन नामक दो गैसें उत्पन्न हो जावेंगी। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि जल अपने अवयवों में विभक्त हो जावेगा। पदार्थ के इस अंतिम विभाग को **अणु** कहते हैं। अणु ही किसी पदार्थ का सबसे छोटा टुकड़ा होता है। इसको पुनः विभाजित करने पर इससे भी छोटे टुकड़े बन सकते हैं जिन्हें **परमाणु** कहते हैं किन्तु ये टुकड़े दूसरे ही पदार्थों के टुकड़े होते हैं। जिन घटनाओं में अणु के टुकड़े नहीं होते वे भौतिक घटनायें कहलाती हैं। किन्तु जिनमें अणु भी टूट जाता है और उससे प्राप्त परमाणुओं के द्वारा अन्य प्रकार के अणुओं की सृष्टि होती है वे रासायनिक कहलाती हैं। अभी कुछ ही वर्ष पहले रसायनवेत्ताओं का मत था कि परमाणु नहीं टूट सकते। अतः केवल एक ही प्रकार के परमाणुओं से संगठित पदार्थ का नाम तत्त्व रखा गया था। किन्तु अब ज्ञात होगया है कि ये परमाणु भी विभाजित हो सकते हैं। इस विभाजन का अध्ययन भी भौतिक शास्त्र के अन्तर्गत है। हम इसका वर्णन इस पुस्तक के विद्युत्-विभाग में करेंगे।

३०—अणु का विस्तार। यह तो स्पष्ट ही है कि अच्छे से अच्छे सूक्ष्मदर्शक के द्वारा भी ये अणु और परमाणु देखे नहीं जा सकते। अतः इनका प्रत्यक्ष माप भी नहीं हो सकता। किन्तु परोक्ष रीति से हमें भली भाँति मालूम होगया है कि सब पदार्थों के अणु समान विस्तारयुक्त नहीं होते। उनका औसत व्यास प्रायः एक मिलीमीटर का ४० लाखवाँ भाग है अर्थात् यदि ४० लाख अणु बराबर एक पंक्ति में रखे जावें तब कहीं उस पंक्ति की लम्बाई एक मिलीमीटर होगी। इस हिसाब से अणु का आयतन प्रायः एक घन सेंटीमीटर का $१०^{२३}$ वाँ भाग हुआ। हाइड्रोजन

का अणु इससे भी छोटा होता है। उसका भार एक ग्राम का ६×१०^{२३} वाँ भाग है। अतः एक ग्राम हाइड्रोजन के अणुओं की संख्या हुई ६×१०^{२३}। इस संख्या के लिए भाषा में कुछ नाम ही नहीं है। भारतवर्ष की मनुष्य-संख्या तीस करोड़ है यदि ऐसे ऐसे एक करोड़ भारतवर्ष हों तब भी उन सबकी मनुष्य-संख्या उक्त अणुओं की संख्या का बीस करोड़वां भाग मात्र होगी। और अणुओं की इस महासंख्या का समुच्चय-भार होगा केवल एक ग्राम, लगभग एक माशा!

अणु की सूक्ष्मता का इन अङ्कों से ठीक ठीक अंदाज़ा करना कठिन है। हाँ निम्नलिखित उदाहरण से शायद कुछ सफलता हो। मान लीजिए कि जल की छोटी सी बूँद को किसी दिव्य शक्ति ने बढ़ा कर पृथ्वी के बराबर आकार का बना दिया और उसका प्रत्येक अणु भी उस ही हिसाब से बढ़ गया। अब भी हम देखेंगे कि प्रत्येक अणु प्रायः क्रिकेट की गेंद के आकार से कुछ छोटा ही रहेगा।

३१—अन्तराकाश। यह ऊपर बतला दिया गया है कि किसी भी पदार्थ के अणु एक दूसरे से सटे हुए नहीं हैं। कठिन से कठिन और भारी से भारी पदार्थों के अणुओं के बीच में भी बहुत जगह ख़ाली पड़ी है। घन, द्रव, और गैस अवस्थाओं में इस अन्तराकाश का ही भेद है। गैसों में द्रवों की अपेक्षा यह अन्तराकाश बहुत अधिक होता है। जब भाप ठंडी होने पर जल-रूप धारण करती है तो उसका आयतन घट कर १६०० वाँ भाग रह जाता है। इसी प्रकार किन्तु बहुत कम परिमाण में घनों का अन्तराकाश द्रवों की अपेक्षा कम होता है। जब वस्तु संकुचित हो जाती है, या ठंडी होने पर अवस्था परिवर्त्तन के कारण उसका आयतन घट जाता है तब इस अन्तराकाश ही में कमी होती है। अणुओं का आकार और आयतन ज्यों का त्यों ही रहता है।

३२—अणुओं की गति। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि ऐसी कई प्राकृतिक घटनाएँ हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ये अणु स्थिर

नहीं होते। अजीव होने पर भी, बाहर से सर्वथा गतिशून्य देख पड़ने पर भी प्रत्येक ठोस से ठोस पदार्थ के भी अणु निरन्तर इधर-उधर दौड़ते या दोलन करते रहते हैं। पात्र में रखा हुआ जल धीरे धीरे उड़ कर वाष्प-रूप हो जाता है। इसका कारण यही है कि जल के अणु कभी कभी दौड़ते हुए जल-पृष्ठ से बाहर निकल जाते हैं और ये ही अणु तब वायु में सम्मिलित होकर फैल जाते हैं। जल को गरम करने से वह अधिक शीघ्रता से उड़ जाता है और अधिक गरम करने पर तो वह उबल कर तुरन्त ही वाष्परूप धारण कर लेता है। इससे ज्ञात होता है कि ताप के कारण अणुओं की गति बढ़ जाती है। वे अधिक वेग से दौड़ने लगते हैं। दूध के प्याले के पेंदे में थोड़ी सी चीनी रख देने से थोड़ी देर में वह सारे दूध में फैल जाती है। कमरे के एक कोने में थोड़ी सी सुगंधित वस्तु रखने से उसकी गंध थोड़ी ही देर में पूरे कमरे में फैल जाती है। ये घटनाएँ भी अणुओं की गति ही के कारण होती हैं।

और यदि कमरे की वायु के अणु तेज़ी के साथ इधर-उधर दौड़ते हैं और उनकी संख्या भी बहुत अधिक है तब यह अनिवार्य है कि वे एक दूसरे से कई बार टकरावें। जिस किसी ने गोलियों का खेल खेला है वह अच्छी तरह जानता है कि यदि एक गोली वेग से दौड़ रही हो और उससे दूसरी गोली टकरावे तो दोनों ही गोलियों की गति बदल जाती है और वेग में भी परिवर्तन हो जाता है। कभी कभी तो एक गोली सर्वथा गति-शून्य होकर ठहर ही जाती है। इसी प्रकार अणुओं की भी दशा होती होगी और टक्करों के कारण उनके वेग और उनकी गति की दिशायें भी पल पल में बदलती रहती होंगी। और यह भी अनिवार्य है कि वे कमरे की दीवारों से भी टकरावें। दीवार पर इस टक्कर के कारण कुछ धक्का भी लगता ही होगा। यद्यपि एक अणु का धक्का अत्यन्त ही उपेक्षणीय है तथापि जब करोड़ों अणुओं की बौछार दीवार पर होती है तब तो अवश्य ही दीवार पर कुछ दाब होगा और यदि वह बहुत ही मज़बूत न हो तो अवश्य ही उसे पीछे हटना पड़ेगा। साइकल की नली और फुटबाल का रबड़ वायु के अणुओं की इन टक्करों ही के कारण इतना बढ़ जाता है। गैसों के दाब का यही कारण है।

३३—आकर्षण । किन्तु तब घन वस्तु का आकार अविकृत कैसे रहता है ? उसके अणु तुरन्त इधर-उधर दौड़ कर उसका आकार क्यों नहीं बदल देते ? लोहे के तार को खींच कर तोड़ने में इतने अधिक बल की आवश्यकता क्यों होती है ? जान पड़ता है कि अणुओं में कुछ आकर्षण भी होता है । एक अणु दूसरे को अपनी ओर खींचने का भी प्रयत्न करता है। जब अणुओं का अन्तर अधिक होता है (जैसे गैस-अवस्था में) तब तो यह आकर्षण प्रायः नहीं के बराबर ही होता है और अणु स्वच्छन्दतापूर्वक दौड़ते रहते हैं । किन्तु जब वे निकट होते हैं (जैसे घन-अवस्था में) तब यह आकर्षण अधिक प्रबल हो जाता है । और उन्हें आपस में बाँध देता है। तब वे अपना स्थान छोड़ कर कहीं जा नहीं सकते । इसका अर्थ यह नहीं है कि वे बिलकुल भी हिलडुल नहीं सकते । पिँजरे में बन्द शेर की तरह वे इधर-उधर निरन्तर टहलते रहते हैं किन्तु वहाँ से भाग नहीं सकते। अणुओं के इस आकर्षण का नाम संसक्ति है ।

द्रवों में भी संसक्ति होती है। तभी तो जल की बूँद के अणु तुरन्त ही वायु में उड़ नहीं जाते और द्रवों का आयतन भी जल्दी नहीं बदल जाता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि घनों की अपेक्षा द्रवों में संसक्ति बहुत कम होती है। इसका कारण भी स्पष्ट है। द्रवों में अणुओं का अन्तर इतना कम नहीं होता कि जितना घनों में होता है ।

यदि जल में काँच की छड़ या उँगली डुबा कर निकाल लें तो वह गीली हो जाती है। उस पर थोड़ा सा जल चिपक जाता है । इससे ज्ञात होता है कि जल के अणुओं और उँगली या काँच के अणुओं में भी कुछ आकर्षण होता है। इस प्रकार के भिन्न जाति के अणुओं के आकर्षण को आसक्ति कहते हैं। कांच और जल की आसक्ति जल की संसक्ति से अधिक है अतः जल काँच पर चिपक जाता है। किन्तु यदि काँच की छड़ को पारे में डुबावें तो पारा उस पर नहीं चिपकता क्योंकि पारे और काँच की आसक्ति पारे की संसक्ति से अधिक नहीं है ।

प्रश्न

(१) द्रव्य किसे कहते हैं और उसके मुख्य गुण क्या हैं ?

(२) घन, द्रव और गैस अवस्थाओं का भेद समझाओ ।

(३) उस प्रयोग का वर्णन करो जिससे यह प्रमाणित होता है कि वायु में भी भार होता है ।

(४) यह प्रमाणित करो कि एक ही पदार्थ साधारणतया तीनों अवस्थाओं में रह सकता है ।

(५) यह कैसे प्रमाणित करोगे कि अवस्था-परिवर्तन में भार नहीं बदलता ?

(६) सुषिरता किसे कहते हैं ? इस गुण के अस्तित्व को कैसे प्रमाणित करोगे ?

(७) स्थितिस्थापकत्व के कुछ उदाहरण दो । तुम्हें कितने प्रकार के स्थिति-स्थापकत्व ज्ञात हैं ?

(८) द्रवों और गैसों में आकार-स्थापकत्व क्यों नहीं होता ?

(९) अणु किसे कहते हैं और परमाणु क्या है ?

(१०) यह कैसे ज्ञात हुआ कि ठोस पदार्थ के अणुओं के बीच में भी शून्य आकाश विद्यमान है ?

(११) अणुओं को गतिमान समझने का क्या कारण है ?

परिच्छेद ३

गति, जड़त्व और गुरुत्व

३४—गति । जब कोई वस्तु अपने स्थान पर ही ठहरी रहे तो उसे 'स्थित' कहते हैं और जब वह उस स्थान को छोड़ कर दूसरे पर जारही हो तो उसे 'गतिमान्' कहते हैं। जब हम रेल में यात्रा करते हैं तब अवश्य ही हममें कुछ गति होती है। किन्तु जब हम घर ही में सो रहे हों तब क्या हम गतिमान् नहीं हैं ? साधारण दृष्टि से सभी लोग हमें स्थित कहेंगे किन्तु वास्तव में हम स्थित नहीं हैं। यह पृथ्वी प्रथम तो २४ घंटे में अपनी अक्ष पर एक बार घूम जाती है। अतः हम भी उसके साथ प्रायः १,००० मील प्रति घंटे के हिसाब से घूम रहे हैं ! दूसरे पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा भी निरन्तर करती रहती है और उसके साथ ही साथ हमें भी प्रायः १८ मील प्रति सैकंड के हिसाब से अर्थात् प्रायः ६९,००० मील प्रति घंटे के वेग से गमन करना पड़ता है। और इस गति का यहीं अन्त नहीं हो जाता क्योंकि शायद सूर्य भी समस्त सौर-जगत् को साथ लेकर आकाश में बड़े वेग से गमन कर रहा है। पृथ्वी को और हमें भी इस गति में भाग लेना पड़ता है। अतः यह कहना कठिन ही नहीं कदाचित् सर्वथा असम्भव है कि अमुक वस्तु वास्तव में स्थित है या गतिमान्।

किन्तु घर में सोने की दशा में और रेल में यात्रा करने की दशा में कुछ अन्तर अवश्य है और उस अन्तर को भाषा के द्वारा व्यक्त करना भी आवश्यक है। अतः जब हम कहते हैं कि हम स्थित हैं तब उसका अर्थ साधारणतया यही होता है कि हम पृथ्वी की अपेक्षा स्थित हैं। रेल की गति भी पृथ्वी की अपेक्षा ही समझनी चाहिए। इस दृष्टि से स्थिति और गति आपेक्षिक कही जाती हैं।

साधारण व्यवहार में गति और स्थिति पृथ्वी की अपेक्षा ही समझी जाती हैं किन्तु बहुधा हमें दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा भी गति नापना पड़ता है।

३५—चाल और वेग। गति का पूर्ण वर्णन करने के लिए दो बातों की और आवश्यकता है। पहले तो यह कहना होगा कि गति किस दिशा में है और दूसरे यह भी बतलाना पड़ेगा कि वस्तु किस चाल से गमन कर रही है। जब हम कहते हैं कि रेलगाड़ी की चाल ६० मील प्रति घंटा है तो उसका यही अर्थ होता है कि वह प्रति एक सैकंड में ८८ फ़ुट चलती है, और यदि उसी वेग से चलती रहे तो १ मिनट में ५,२८० फ़ुट या १ मील और एक घंटे में ६० मील चल सकती है। जब प्रत्येक सैकंड में वह ठीक ८८ फ़ुट ही चलती हो तो उसकी चाल को **सम** कहते हैं किन्तु यदि कहीं किसी कारण वह एक सैकंड में १० फ़ुट चले और कहीं किसी दूसरे कारण ४० फ़ुट ही चले तो उसकी चाल को **विषम** कहते हैं। स्टेशन से रवाना होते समय रेल की चाल धीरे धीरे बढ़ कर ही उत्कृष्ट मूल्य को प्राप्त होती है और दूसरे स्टेशन के निकट पुनः धीरे धीरे घटती है। चाल में यह वैषम्य होने पर भी यदि वह एक घंटे में ६० मील चल ले तो हम कहेंगे कि उसकी **औसत चाल** ६० मील प्रति घंटा है।

कहीं कहीं रेल को वक्र रेखा पर भी गमन करना पड़ता है। ऐसी दशा में उसकी दिशा क्षण क्षण में बदलती रहती है। किन्तु तब भी उसकी चाल सम हो सकती है। यदि हम दिशा और चाल दोनों को एक ही शब्द के द्वारा व्यक्त करना चाहें तो हमें **वेग** शब्द का प्रयोग करना होगा। जब तक रेल समान चाल से एक ही निर्दिष्ट दिशा में गमन कर रही हो तभी तक उसका वेग सम कहलावेगा। मुड़ते समय रेल की चाल सम हो सकती है किन्तु वेग नहीं। चाल के परिवर्त्तन से तो वेग बदले होगा किन्तु केवल दिशा के परिवर्त्तन से भी वेग बदल जावेगा।

औसत वेग को नापना तो बहुत सरल है। घड़ी के द्वारा केवल यही जानने की आवश्यकता है कि कितने समय में कितनी दूर वह वस्तु

चली। यदि दो स्टेशनों का अन्तर ४० मील हो और रेल को एक स्टेशन से चल कर दूसरे स्टेशन पर पहुँचने में ५० मिनट लगें तो रेल का औसत वेग हुआ $\frac{४०}{५०}$ मील प्रति मिनट या $\frac{४०}{५०} \times ६० = ४८$ मील प्रति घंटा। दूरी 'द' को समय 'स' से विभाजित करने ही से वेग 'व' ज्ञात हो जाता है।

$$व = \frac{द}{स} \qquad (१)$$

उसको नापने का एकांक लम्बाई और समय के एकांकों ही पर निर्भर है। अतः वेग का वैज्ञानिक एकांक एक सेंटीमीटर प्रति सैकंड है और ६० मील प्रतिघंटे का वेग वैज्ञानिक भाषा में २,६८२ सम० प्रति सैकंड कहा जाता है और संक्षेप में इसे २,६८२ सम०/सैक भी लिखते हैं।

समीकरण (१) से स्पष्ट है कि

$$द = व \times स \qquad (२)$$

यदि वेग व सम हुआ तब तो वेग को गति के समय से गुणा करने पर यह ज्ञात हो जायगा कि वस्तु कितनी दूर चली और यदि वेग विषम हुआ तो उसके औसत मूल्य को समय से गुणा करने पर दूरी उपलब्ध होगी।

३६—वेग-वृद्धि। जब किसी वस्तु का वेग धीरे धीरे बढ़ रहा हो तो उसकी गति को वर्द्धमान गति कहते हैं और एक सैकंड में उसके वेग की जो वृद्धि होती है उसे **वेग-वृद्धि** कहते हैं। जैसे मान लीजिए कि किसी समय रेल का वेग २,००० सम० प्रति सैकंड है और यह वेग बढ़कर ५ सैकंड बाद २,०५० सम० प्रति सैकंड, १० सैकंड बाद २,१०० सम० प्रति सैकंड और १५ सैकंड बाद २,१५० सम० प्रतिसैकंड हो जाता है तो प्रत्येक ५ सैकंड में वेग की वृद्धि ५० सम० प्रति सैकंड हुई या प्रत्येक सैकंड में १० सम० प्रतिसैकंड वेग बढ़ गया है। अतः संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि उसकी वेग-वृद्धि "१० सम० प्रतिसैकंड प्रतिसैकंड है"। यदि प्रत्येक सैकंड में एक ही परिमाण की वृद्धि हो तो वह सम-वृद्धि कहलाती है अन्यथा विषम। यदि वेग

धीरे धीरे घट रहा हो तो इस घटी को ह्रास कहते हैं। किन्तु उसे ऋणात्मक वृद्धि भी कह सकते हैं। यदि रेल का वेग प्रत्येक सैकंड में १० सम० प्रति-सैकंड कम हो रहा हो तो हम कहेंगे कि उसकी वेग-वृद्धि "– १० सम० प्रति-सैकंड प्रतिसैकंड" है। "प्रतिसैकंड" को दो बार लिखने के स्थान में बहुधा "प्रतिसैकंड^{२}" भी लिख देते हैं। यही वृद्धि "– १० सम०/सैक^{२}" भी लिखी जाती है।

मान लीजिए कि कोई वस्तु गति प्रारम्भ करती है। यदि उसकी वेग-वृद्धि फ हो तो एक सैकंड के अन्त में उसका वेग फ सम०/सैक होगा, २ सैकंड के अंत में २ फ और स सैकंड के अंत में स × फ सम०/सैक होगा। अर्थात् स सैकंड के बाद का वेग

$$व = फ \times स \qquad \text{(३)}$$

यदि औसत वेग निकालें तो प्रथम सैकंड का $\left(\frac{० + फ}{२}\right) = \frac{फ}{२}$, दो सैकंड का $\frac{० + २\,फ}{२} = \frac{२फ}{२}$, ३ सैकंड का $\frac{३\,फ}{२}$ और स सैकंड का $\frac{स \times फ}{२}$ निकलेगा। अतः देशान्तर

$$द = \text{औसत वेग} \times \text{समय} = \frac{स \times फ \times स}{२} = \tfrac{१}{२} फस^{२} \qquad \text{(४)}$$

३७—जड़त्व। यह सब ही लोगों का अनुभव है कि जड़ पदार्थ स्वयमेव अपनी जगह से नहीं हट सकते। जो वस्तु जिस स्थान पर पड़ी हो वहीं पड़ी रहेगी। जब तक वह बल लगा कर वहाँ से न हटाई जावे तब तक किसी प्रकार भी वह अपना स्थान नहीं बदल सकती। ज़मीन पर पड़ी हुई वस्तु को धक्का लगाने से वह थोड़ी ही दूर जाकर ठहर जाती है, और ऐसा जान पड़ता है कि उसकी गति का नाश स्वयमेव ही हो जाता है किन्तु बात ऐसी नहीं है। यदि ज़मीन चिकनी हो तो वह और भी अधिक दूर चल सकेगी। इससे स्पष्ट है कि गतिमान् वस्तु के ठहरने का कारण रगड़ है। पृथ्वी या अन्य वस्तु की रगड़ यदि उस पर न लगे तो वह कदापि न

ठहर सकेगी। बाइसिकल में यह रगड़ बहुत ही कम है इसी लिए वह बहुत दूर तक बिना पैर चलाये ही दौड़ती रहती है और रेलगाड़ी में भी चिकनी और छोटी सी पटड़ी पर चलने के कारण बहुत ही कम रगड़ होती है। इसलिए एक बार चल जाने पर उसको रोकना कठिन होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यदि कुछ बाह्य कारण विद्यमान न हों तो जड़ पदार्थ की गति का नाश संभव नहीं यहाँ तक कि उसमें कुछ परिवर्त्तन भी नहीं हो सकता। वस्तुओं के इस गुण को जड़त्व कहते हैं और इसके कारण **यदि कोई वस्तु स्थित है तो वह स्थित ही रहेगी और यदि वह चल रही हो तो बराबर एक ही दिशा में एक ही वेग से चलती रहेगी।** यह गति का प्रथम नियम है।

३८—बल । जिस बाह्य कारण से वस्तु की स्थिति में परिवर्त्तन होता है उसे हम **बल** कहते हैं। बल लगा कर ही हम वस्तु को एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर ले जा सकते हैं। गाड़ी इत्यादि को खींचने के लिए बैल या घोड़े के बल की आवश्यकता होती है। रगड़ जो चलती वस्तुओं को ठहरा देती है वह भी एक प्रकार का बल है। चुम्बक लोहे को खींच लेता है इसका कारण भी एक प्रकार का बल है।

अतः ज्ञात हुआ कि बल वस्तुओं में गति उत्पन्न करता है। यदि वह अनुकूल हो अर्थात् गति की दिशा में लग रहा हो तो वह गति को बढ़ा देता है। यदि विपरीत दिशा में लगा हो तो वह वस्तु के वेग को घटा कर अन्त में उसे ठहरा देता है। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि बल वेग की वृद्धि अथवा ह्रास का कारण है। और यह भी समझने में कोई कठिनाई नहीं कि अधिक बल से अधिक वेग-वृद्धि उत्पन्न होती है और थोड़े बल से थोड़ी।

३९—गति का द्वितीय नियम । अतः इस वेग-वृद्धि ही के द्वारा बल नापा भी जा सकता है। इँगलैंड के सर आइज़क न्यूटन ने (१६४२-१७२७) इस विषय के अपने तथा इटली के गलीलियो (१५६४-

१६४२) के समस्त अध्ययन का निष्कर्ष गति के तीन नियमों में समाविष्ट कर दिया था। गति का प्रथम नियम ऊपर दिया जा चुका है। द्वितीय नियम बल और वेग-वृद्धि का सम्बन्ध बतलाता है :—

प्रत्येक वस्तु की गति में उस पर लगे हुए बल के अनुपात ही मे वेग-वृद्धि उत्पन्न होती है।

इसका अर्थ यह है कि यदि बल द्विगुण हो तो वेग-वृद्धि भी द्विगुण होगी, बल चौथाई हो तो वेग-वृद्धि भी चौथाई होगी। संकेत में यों लिख सकते हैं कि यदि किसी वस्तु पर $ब_1$ बल लगाने से उसमें वृद्धि $फ_1$ उत्पन्न हो और $ब_2$ बल लगाने से वृद्धि $फ_2$ हो तो।

$$\frac{ब_1}{फ_1} = \frac{ब_2}{फ_2} = ज$$

अथवा व्यापक रूप से $ब = ज \times फ$ (५)

४०—जाड्य। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि बल ब सभी वस्तुओं में समान वेग-वृद्धि फ उत्पन्न नहीं कर सकता। अधिक बड़ी वस्तु में उतनी ही वृद्धि के लिए अधिक बल की आवश्यकता होती है। अतः स्पष्ट है कि बल और वेग-वृद्धि की निष्पत्ति ज भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिए भिन्न होती है। इस ज के द्वारा इस बात का ज्ञान होता है कि उस वस्तु में जड़त्व कितना है। अतः इसे **जाड्य** कहते हैं। यह जाड्य कैसे नापा जाता है यह आगे चल कर मालूम होगा। किन्तु यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जाड्य वस्तु का निज का गुण है। वह किसी भी बाह्य कारण पर निर्भर नहीं है। अतः वह बदल भी नहीं सकता। इस जाड्य ही के द्वारा वस्तु के अन्तर्गत द्रव्य की मात्रा का भी ज्ञान होता है।

४१—बल का एकांक। अब हम बल का एकांक नियत कर सकते हैं। जो बल एक ग्राम वस्तु में एक सम० / सैकंड^2 की वेग-वृद्धि

उत्पन्न कर सके उसे एक **डाइन** का बल कहते हैं। यही बल का एकांक है। बल के अँगरेज़ी एकांक का नाम **पाउंडल** है और वह एक पाउंड वस्तु में एक फ़ुट / सैकंड[२] की वेग-वृद्धि उत्पन्न करता है। इस दृष्टि से एक ग्राम वस्तु का जाड्य

$$ज = \frac{ब}{फ} = \frac{१}{१} = १$$

अतः जाड्य नापने का एकांक भी ग्राम ही है।

४२—साम्य। कभी कभी हम यह भी देखते हैं कि कितना ही बल लगावें किन्तु वस्तु अपनी जगह से नहीं हिलती। पृथ्वी पर रखी हुई वस्तु पर नीचे की ओर हम कितना ही अधिक बल क्यों न लगावें उसमें हम गति उत्पन्न नहीं कर सकते। बहुत लदी हुई गाड़ी को हम कितना ही खींचने का प्रयत्न करें, वह तनिक भी नहीं सरकती। इसका क्या कारण है? जिसने रस्से का खेल देखा है वह इसका कारण तुरन्त समझ सकता है। इस खेल में रस्से को दस-बारह लड़के एक तरफ़ खींचने का प्रयत्न करते हैं और दस-बारह लड़के दूसरी ओर। यदि दोनों का बल बराबर हुआ तो रस्सा न इधर खिँचता है और न उधर। यदि बल बराबर न हुआ तो जिस तरफ़ अधिक बल हो उसी तरफ़ वह खिँच जाता है। लदी गाड़ी पर पृथ्वी की रगड़ का बल है। जब तक हमारा बल उससे अधिक न हो जायगा तब तक वह कैसे हट सकती है? हम नीचे की ओर कितना ही बल क्यों न लगावें पृथ्वी पर रखी हुई वस्तु को पृथ्वी अपने में प्रवेश नहीं करने देती। वह उस पर हमसे विपरीत दिशा में बल लगाती है। दो बराबर किन्तु विपरीत बलों का परिणाम यह होता है कि दोनों में से एक भी गति उत्पन्न नहीं कर सकता। इसे **साम्य** कहते हैं।

४३—सर्पिल कमानी। किन्तु यद्यपि वह वस्तु या गाड़ी या रस्सा विपरीत बलों के कारण हिलता नहीं तथापि यह नहीं समझना चाहिए कि उस

पर हमारे बल का कुछ भी प्रभाव नहीं होता। वह वस्तु दब जाती है, उसका आयतन कुछ कम हो जाता है, उसके अणु कुछ अधिक निकट चले जाते हैं। इसी प्रकार रस्सा भी लम्बाई में कुछ बढ़ जाता है। यदि दोनों तरफ़ के बल बहुत ही अधिक हुए तो वस्तु का चूर्ण हो जाता है और रस्सी के टूट कर दो टुकड़े हो जाते हैं। इस्पात के तार की सर्पिल कमानी में यह संकोच और विस्तार स्पष्ट दिखलाई देता है (चित्र १०)। अतः उसके संकोच या विस्तार को नापने से हम बल का माप भी कर सकते हैं, क्योंकि जितने ही अधिक बल से हम उसे खींचें उतना ही अधिक विस्तार उस कमानी में होता है। चित्र ११ में जो यंत्र है उसमें कमानी भी है और उसके विस्तार को नापने का साधन भी उसी के साथ है। इसे कमानीदार काँटा कहते हैं।
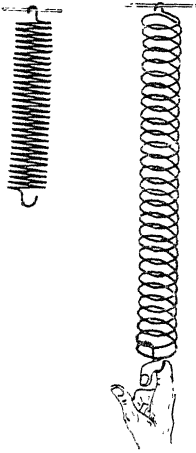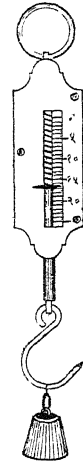
चित्र १०

चित्र ११

४४—गुरुत्वाकर्षण। यदि पुस्तक को हाथ में से छोड़ दें तो वह तुरन्त पृथ्वी पर गिर पड़ती है। यदि गेंद को ऊपर की तरफ़ फेंकें तो हम देखते हैं कि ज्यों ज्यों वह ऊपर जाती है त्यों त्यों उसका वेग कम होता जाता है और अन्त में वह क्षण भर के लिए ठहर जाती है। तब वह फिर नीचे गिरने लगती है और ज्यों ज्यों नीचे आती है त्यों त्यों उसका वेग भी बढ़ता जाता है और अन्त में वह क्षण भर के लिए ठहर जाती है। इन अत्यन्त साधारण बातों ही से ज्ञात होता है कि पुस्तक

में गति उत्पन्न करनेवाला, अथवा गेंद के ऊपर की दिशा के वेग को कम करनेवाला तथा उसे वर्द्धमान वेग से पृथ्वी की ओर प्रेरित करनेवाला कोई न कोई बल अवश्य है। चित्र ११ के कांटे के द्वारा भी हमें इस बल का पता लगता है, क्योंकि उसकी कमानी से यदि किसी भी वस्तु को लटका दें तो कमानी की लम्बाई बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त जब हम किसी वस्तु को हाथ पर रखते हैं तो हमें प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि हमारा हाथ नीचे की ओर खिँच रहा है। इसी प्रकार के अनेक अनुभवों के द्वारा यह निश्चित है कि प्रत्येक वस्तु पृथ्वी की ओर आकर्षित होती है। जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचता है उसी प्रकार पृथ्वी भी प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचती है। पृथ्वी के इस आकर्षण को **गुरुत्वाकर्षण** कहते हैं और इस आकर्षण का बल वस्तुओं को ठीक पृथ्वी के केन्द्र की ओर अर्थात् सीधा नीचे की ओर प्रेरित करता है। यही कारण है कि यदि किसी भी वस्तु को एक तागे से लटकावें तो तागा तन जाता है और उसकी दिशा ठीक ऊर्ध्वाधर हो जाती है। मकान बनाते समय राज जिस साहुल के द्वारा यह परीक्षा करता है कि दीवार सीधी है या नहीं, उसकी डोरी इसी गुरुत्वाकर्षण के कारण ऊर्ध्वाधर रहती है।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि यह आकर्षण केवल पृथ्वी ही की ओर से होता है और आकृष्ट वस्तुओं का इसमें कुछ भी भाग नहीं है। वास्तव में बात यह है कि आकर्षण सदा पारस्परिक होता है। पृथ्वी वस्तु को अपनी ओर खींचती है तो वह वस्तु भी पृथ्वी को उतने ही बल से अपनी ओर खींचती है। किन्तु पृथ्वी का विस्तार इतना अधिक है कि उस थोड़े से बल से वह अधिक हट नहीं सकती और इसी कारण हमें केवल दूसरी वस्तुएँ ही आकर्षित होती हुई जान पड़ती हैं। इस दृष्टि से पृथ्वी में कोई विशेषता नहीं है। इस पारस्परिक आकर्षण को द्रव्य-मात्र का गुण समझना चाहिए। **द्रव्य का प्रत्येक परमाणु प्रत्येक दूसरे परमाणु को अपनी ओर आकर्षित करता है।**

द्रव्य के इस गुण को **गुरुत्व** कहते हैं। यही कारण है कि इस आकर्षण का नाम गुरुत्वाकर्षण हुआ।

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र आदि में भी यह गुरुत्व विद्यमान है और इसी कारण चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, और इसी के प्रभाव से समस्त ग्रह और नक्षत्र आकाश में निराधार स्थित हैं।

४५—भार। काँटे से भिन्न भिन्न वस्तुओं को लटकाने पर हम देखते हैं कि उसकी कमानी का विस्तार समान रूप से नहीं बढ़ता। इससे ज्ञात होता है कि पृथ्वी सब वस्तुओं को समान बल से नहीं खींचती। यदि ताँबे के दो ऐसे टुकड़े लें कि एक का आयतन दूसरे से द्विगुण हो तो उन्हें काँटे पर लटकाने से मालूम होगा कि उसकी कमानी का विस्तार भी बड़े टुकड़े के कारण छोटे की अपेक्षा द्विगुण होता है। अर्थात् पृथ्वी बड़े टुकड़े पर छोटे की अपेक्षा द्विगुण बल से आकर्षण करती है।

यदि बराबर आयतन के दो भिन्न पदार्थों के टुकड़े हों यथा एक लोहे का और एक ताँबे का तो उन पर भी यह बल समान नहीं होता। इससे विदित हो जाता है कि इस गुरुत्वबल का वास्तव में आयतन से सम्बन्ध नहीं है। किन्तु यह सम्बन्ध वस्तु के जाड्य से है। द्विगुण आयतन-युक्त ताँबे के टुकड़े में जाड्य भी द्विगुण होता है। किन्तु बराबर आयतन के ताँबे और लोहे के टुकड़ों में जाड्य बराबर नहीं होता। पृथ्वी का गुरुत्वबल इस जाड्य का अनुपाती होता है और इसी बल को व्यावहारिक भाषा में हम वस्तु का भार कहते हैं।

किन्तु वस्तु का भार बताते समय हम इस बल के परिमाण को नहीं बताते। साधारण बोलचाल में जब हम कहते हैं कि "अमुक वस्तु का भार ५ सेर या ५ ग्राम है" तो इसका अर्थ केवल यही है कि जितने बल से पृथ्वी पंसेरी या ५ ग्राम के बाट को खींचती है उतने ही बल से वह उक्त वस्तु को भी खींचती है। यही कारण है कि हम वस्तु का भार कमानी के काँटे या तराज़ू से नाप लेते

हैं। यदि काँटे की कमानी का जितना विस्तार उस वस्तु से होता है उतना ही इस पंसेरी से हो तो प्रत्यक्ष है कि दोनों को पृथ्वी समान बल से खींचती है। इसी प्रकार तराज़ू के दोनों पलड़ों पर भी जब पृथ्वी का आकर्षण बराबर होगा तभी उसकी डंडी सीधी रहेगी। इस दृष्टि से भार और जाड्य एक ही एकांकों में नापे जाते हैं। किन्तु वास्तव में भार का नाप बल के एकांक डाइन के द्वारा होना चाहिए।

यह सभी लोग जानते हैं कि चुम्बक का लोहे पर जो आकर्षण होता है वह इस बात पर निर्भर है कि लोहा चुम्बक से कितनी दूर स्थित है। जितना ही निकट वह होता है उतने ही अधिक बल से वह आकर्षण भी कर सकता है। क्या पृथ्वी का आकर्षण भी वस्तु की दूरी पर निर्भर है? अर्थात् यदि किसी वस्तु को पृथ्वी से कुछ दूर ऊपर की ओर ले जावें तो क्या उसका भार कम हो जाता है? अवश्य। कमानीदार काँटे से एक वस्तु को तौल लीजिए। तब उसी काँटे से उस वस्तु को ऊँचे पहाड़ पर ले जाकर तौलिए। यदि काँटा सूक्ष्मग्राही हो तो प्रत्यक्ष हो जायगा कि पहाड़ पर उस वस्तु के द्वारा कमानी का विस्तार उतना नहीं होता अर्थात् उसका भार कुछ कम हो जाता है। और जितना ही ऊँचा पहाड़ होगा उतनी ही अधिक भार में कमी भी होगी। तराज़ू के द्वारा भार की वह कमी नहीं नापी जा सकती। क्योंकि पहाड़ पर ले जाने से यदि वस्तु पर आकर्षक बल कम हो जाता है तो दूसरे पलड़े में रखे हुए बाटों पर भी बल उतने ही प्रमाण में घट जाता है। वास्तव में तराज़ू गुरुत्वबल या भार को नहीं नापती वह तो केवल यह बतला सकती है कि वस्तु का जाड्य बाटों की अपेक्षा कितना है। जाड्य और भार का यह अन्तर ध्यान देने योग्य है। जाड्य वस्तु का निज का गुण है और उसे इधर-उधर ले जाने से बदलता नहीं। परन्तु भार उस वस्तु पर पृथ्वी का आकर्षण बल है अतः यह दूरी के कारण घट-बढ़ सकता है।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि पहाड़ ही पर ले जाने से वस्तु का भार घटता है। पृथ्वी तल पर भी सब स्थानों में भार बराबर नहीं रहता। भूमध्य-रेखा पर भार कुछ कम होता है। और ध्रुवों पर कुछ अधिक। इसका कारण

यह है कि पृथ्वी नारङ्गी के समान ध्रुवों के निकट कुछ चपटी है। पृथ्वी के केन्द्र से वस्तु की दूरी भूमध्यरेखा पर कुछ अधिक होती है।

इसके अतिरिक्त पृथ्वी के अक्षीय भ्रमण के कारण प्रत्येक वस्तु पर केन्द्रापसारी बल की क्रिया होती है। यह बल वही है जिसके द्वारा गाड़ी के पहिये पर चिपका हुआ कीचड़ उछल कर पहिये से दूर हो जाता है अथवा जिसके कारण डोरी में बँधा हुआ पत्थर गोल घुमाने से हमारे हाथ से छूट कर दूर भागना चाहता है। यह बल गुरुत्वबल से विपरीत दिशा में होने के कारण कांटे के विस्तार को कम कर देता है। अतः हमें वस्तु का भार भी कम मालूम होता है। यह कमी भी भूमध्यरेखा पर अधिक होती है।

४६—गुरुत्वाकर्षण का नियम। इन बातों से स्पष्ट होगया होगा कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण वस्तु के जाड्य और पृथ्वी के केन्द्र से उसकी दूरी पर निर्भर है। किन्तु हम ऊपर कह चुके हैं कि गुरुत्व का गुण द्रव्य के प्रत्येक कण में विद्यमान है। अतः प्रत्येक कण का दूसरे कण पर जो आकर्षण होता है वह भी दोनों के जाड्य और उनके बीच की दूरी पर निर्भर होना चाहिए। इस विषय का जो कुछ ज्ञान हमें प्राप्त है वह प्रायः सब न्यूटन की खोज का परिणाम है। उन्होंने ही सबसे पहले ज्योतिष-सम्बन्धी अनुसन्धान के द्वारा निम्नलिखित नियम का पता लगाया और प्रमाणित किया कि पृथ्वी ही पर नहीं किन्तु समस्त ब्रह्माण्ड में इस नियम का साम्राज्य है :—

यदि दो वस्तुओं का जाड्य क्रम से ज और ज' ग्राम हो और उनके बीच की दूरी द सम० हो तो उनके पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण का बल जाड्यों के गुणनफल को दूरी के वर्ग से विभाजित करने पर जो अंक प्राप्त होगा उसका अनुपाती होगा। अर्थात्

$$\text{गुरुत्वबल } ब \propto = \frac{ज \times ज'}{द^2}$$

$$\text{या} \quad ब = घ \times \frac{ज \times ज'}{द^2} \quad \ldots\ldots (६)$$

घ को गुरुत्व का स्थिरांक कहते हैं। इसका अर्थ यों भी समझ सकते हैं कि यदि एक एक ग्राम की दो वस्तुएँ हों और वे एक दूसरे से एक सेंटीमीटर दूरी पर रखी हों तो उनके बीच का आकर्षणबल घ डाइन का होगा। इस नियम के अनुसार यदि उनकी दूरी को द्विगुणित कर दें तो आकर्षणबल चौथाई ही रह जावेगा। यदि दूरी तिगुनी हो जावे तो बल घट कर नवमांश ही रह जावेगा। केन्द्र से पृथ्वीतल की दूरी प्रायः ४,००० मील है। अतः यदि किसी वस्तु को पृथ्वोतल से ४,००० मील ऊँचे पर ले जावें तो उसका भार चौथाई हो जावेगा।

४७—गुरुत्वजन्य वेग-वृद्धि। ऊपर लिखा जा चुका है कि पृथ्वी का गुरुत्वबल सब वस्तुओं को वर्द्धमान वेग से पृथ्वी की ओर गिराता है। किन्तु यह नहीं बतलाया गया कि उसके द्वारा वेग-वृद्धि कितनी होती है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले जानने योग्य बात तो यह है कि सभी वस्तुओं में यह वृद्धि बराबर होती है। वस्तु चाहे छोटी हो या बड़ी, हलकी हो या भारी, उसके नीचे गिरने के वेग और उसकी वृद्धि में कोई अन्तर नहीं होता। अर्थात् यदि कोई भी दो वस्तुएँ किसी ऊँचे स्थान से गिरा दी जावें तो वे एकही साथ नीचे गिरेंगी। यह बात भी सबसे पहले इटली देश के गलीलियो ने प्रमाणित की थी। मनुष्य का साधारण अनुभव इसके विपरीत है क्योंकि यदि हम काग़ज़ के टुकड़े या रुई को पैसे या कंकड़ के साथ ऊँचे से गिरा दें तो सभी जानते हैं कि पैसा या कंकड़ तो तुरन्त गिर पड़ेगा किन्तु काग़ज़ या रुई बहुत धीरे धीरे गिरेंगे। किन्तु इसका कारण दूसरा है। काग़ज़ या रुई को गिरने से वायु रोकती है क्योंकि इनका भार तो कम होता है किन्तु वायु को उन्हें स्पर्श करने का क्षेत्र अधिक मिलता है। पैसे या कंकड़ पर इतना क्षेत्र नहीं
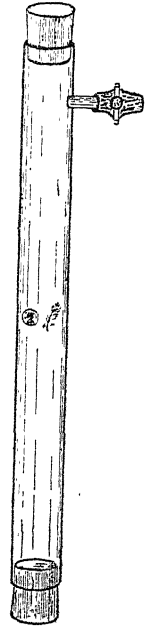
चित्र १२

मिलता। यदि वायु की रुकावट न होती तो अवश्य ही ये वस्तुएँ एक ही साथ पृथ्वी पर गिरतीं। यह बात प्रमाणित करने के लिए एक काँच की नली में कागज़ और पैसा रख कर उसकी वायु पम्प के द्वारा निकाल लीजिए। यदि अब नली को आप सहसा उलट दें तो आप देखेंगे कि दोनों वस्तुएँ एक ही साथ गिरती हैं। पुनः वायु प्रविष्ट करा देने पर देखेंगे कि कागज़ को गिरने में बहुत अधिक देर लगती है। इसके अतिरिक्त इस परीक्षा का एक और सुगम उपाय है। यदि पैसे के ऊपर कागज़ का टुकड़ा रख दें और यह टुकड़ा पैसे से विस्तार में कुछ छोटा हो तो उन्हें गिराने पर आप देखेंगे कि कागज़ पीछे नहीं रह जाता। यद्यपि इस बार वायु इनके मार्ग से हटाई नहीं गई है किन्तु पैसा कागज़ को वायु से बचाता है। वायु पैसे पर अपना प्रभाव जमाती है किन्तु पैसा उसे कागज़ को रोकने नहीं देता। इससे स्पष्ट है कि यदि गुरुत्वबल के अतिरिक्त कोई अन्य बल न हो तो सभी वस्तुओं में समान वेग-वृद्धि उत्पन्न होती है। और होना भी चाहिए क्योंकि यदि वस्तु का जाड्य ज हो और गुरुत्व के कारण उसकी वेग-वृद्धि ग हो तो समीकरण (४) से

$$ब = ज\,ग$$

और समीकरण (६) से

$$ब = घ \times \frac{ज_{१} \times ज}{द^{२}}$$

जहाँ $ज_{१}$ = पृथ्वी का जाड्य और द = पृथ्वी की त्रिज्या।

$$\therefore ज \times ग = घ \times \frac{ज_{१} \times ज}{द^{२}}$$

अतः

$$ग = घ \times \frac{ज_{१}}{द^{२}} \qquad \text{———— (७)}$$

अतः ग का मूल्य सब वस्तुओं के लिए समान है और वह वस्तु के जाड्य से सर्वथा स्वतंत्र है। इसे गुरुत्व-वृद्धि कहते हैं और इसका मूल्य

भूमध्यरेखा के समुद्र पृष्ठ पर ३२ .फुट प्रतिसैकंड प्रतिसैकंड या ९८१ सम० प्रतिसैकंड^{२} है। अन्य स्थानों पर द के बदलने के कारण ग का मूल्य भी बदल जाता है। बनारस में ग का मूल्य ९७८·९ सम० / सैकंड^{२} है।

इस हिसाब से समीकरण (५) के अनुसार एक ग्राम का भार या उस पर लगनेवाला गुरुत्वबल

$$भ = १ \times ९८१ = ९८१ \text{ डाइन}$$

और ज ग्राम का भार = ज × ग डाइन = ज × ९८१ डाइन हुआ और एक पाउंडल का बल एक पाउंड के भार का ३२ वां भाग हुआ।

यदि किसी वस्तु को द सम० की उँचाई से गिर कर पृथ्वी पर पहुँचने में समय स सैकंड लगे तो समीकरण (४) के अनुसार

$$द = \frac{१}{२} ग स^{२}$$

$$\text{अर्थात्} \quad स = \sqrt{\frac{२द}{ग}}$$

तथा समीकरण (३) के अनुसार पृथ्वी पर पहुँचने पर उसका वेग होगा

$$व = ग \times स = ग\sqrt{\frac{२द}{ग}} = \sqrt{२ग द} \text{ सम० / सैकंड}$$

४८—प्रतिक्रिया। जब हम दीवार पर हाथ रखकर धक्का लगाते हैं तो दीवार भी हमारे हाथ पर विपरीत दिशा में बल लगाती है। इसे **प्रतिक्रिया** कहते हैं। यदि यह प्रतिक्रिया-बल न होता तो अवश्य ही हमारे हाथ में बल की दिशा में गति उत्पन्न हो जाती। पृथ्वी पर रखी हुई वस्तु को भी पृथ्वी ऐसे ही प्रतिक्रियाबल के द्वारा स्थिर रखती है। इस प्रतिक्रिया का नियम यह है कि **जब कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु पर बल लगाती है तब दूसरी वस्तु भी पहली वस्तु पर ठीक उतना ही बल विपरीत दिशा में लगाती है।** यही न्यूटन का तृतीय नियम है।

यदि किसी वस्तु में गति हो और वह जाकर दूसरी वस्तु से टकरावे तो यह तो सबही जानते हैं कि इस दूसरी वस्तु पर कुछ धक्का या बल लगेगा। तब ही तो चपत मारने से बालक रोता है, पत्थर फेंकने से आम पेड़ से गिर जाता है और बन्दूक की गोली से मनुष्य या जानवर मर जाता है। किन्तु इस बात पर बहुत थोड़े लोग ध्यान देते हैं कि चपत मारनेवाले के हाथ को भी चोट लगती है, पत्थर और बन्दूक की गोली भी रुक जाती है और रबड़ की गेंद दीवार से टकराकर विपरीत दिशा में चलने लगती है। गति का प्रथम नियम बतलाता है कि बिना विपरीत बल लगाये किसी वस्तु की गति रुक नहीं सकती और न अपनी दिशा को बदल सकती है। अतः सिद्ध है कि उपर्युक्त सब ही अवस्थाओं में धक्का मारनेवाली गतिमान वस्तु पर भी दूसरी वस्तु प्रतिक्रिया का बल लगाती है।

ऐसे प्रतिक्रिया-बल का कई बातों में उपयोग होता है। तैरते समय मनुष्य हाथ-पाँव से पानी को नीचे दबाता है और परिणाम यह होता है कि पानी उसे ऊपर उठाये रखता है। नाव में डांड़ के द्वारा पानी को चलाने से नौका ही विपरीत दिशा में चलने लगती है। पक्षी अपने परों से वायु को दबा दबा कर ही उड़ सकते हैं। वायुयान हवा से भारी होने पर भी प्रतिक्रिया-बल की सहायता से अच्छी तरह उड़ लेता है। उसमें सामने की ओर एक पंखा लगा रहता है जो ज़ोर से घूम कर वायु को पीछे की ओर बड़े वेग से चलाता है। इससे स्वयं उस पर वायु का प्रतिक्रिया-बल विपरीत दिशा में लगता है और वह आगे की ओर दौड़ने लगता है। यह पंखा वायु को कुछ नीचे की ओर चलाता है अतः वायुयान ऊपर उठ जाता है। नौका के मोड़ने के लिए उसके पिछले भाग में पतवार लगी रहती है। इसके द्वारा जल के वेग को रोकने से इस पर लम्बरूप बल लगता है। अतः इसे घुमा घुमा कर जिधर चाहें नौका पर बल लगाया जा सकता है। पक्षी भी अपनी दुम से इसी प्रकार पतवार का काम लेते हैं। और वायुयान में भी ऐसी ही दो दुमें लगी रहती हैं। एक से दाहिने-बायें मोड़ने का काम लिया जाता है और दूसरी से ऊपर-नीचे मोड़ने का।

प्रश्न

(१) पृथ्वी सूर्य से ९ करोड़ मील दूर है और ३६५$\frac{1}{4}$ दिन में वह उसके चारों ओर पूरा चक्कर कर लेती है। बताओ कि पृथ्वी की औसत चाल कितनी है? (परिधि=२×$\frac{२२}{७}$×त्रिज्या)

(२) रेलगाड़ी का वेग ५० मील प्रति घंटा है। इसे सम० प्रति सैकंड में प्रदर्शित करो।

(३) बाइसिकल का पहिया २८″ व्यास वाला है और एक मिनट में १४० चक्कर करता है। बताओ कि प्रति घंटा इस बाइसिकल का वेग कितना है? (परिधि=$\frac{२२}{७}$× व्यास)

(४) चाल तथा वेग का भेद समझाओ।

(५) एक वस्तु २५ फ़ुट प्रति सैकंड की सम वेग-वृद्धि से चलना प्रारम्भ करती है। बताओ कि उसका वेग ६२५ फ़ुट प्रति सैकंड कितनी देर में हो जावेगा।

(६) यदि एक वस्तु विराम से रवाना होकर १० सैकंड में ८० फ़ुट चल लेती है तो उसकी वेग-वृद्धि बताओ।

(७) यदि किसी वस्तु का प्रारम्भिक वेग ८० फ़ुट प्रति सैकंड हो और उसकी वेग-वृद्धि ८ फ़ुट / सैकंड^२ हो तो बताओ कि १ मिनट के बाद उसका वेग कितना हो जायगा?

(८) ७ वें प्रश्न में वेग-वृद्धि के स्थान में यदि उतना ही ह्रास हो तो वह वस्तु कितनी देर में ठहर जायगी?

(९) जड़त्व का क्या अर्थ है? उसके कुछ उदाहरण दो।

(१०) जब रेलगाड़ी चलना प्रारम्भ करती है या ठहरती है तब बहुधा यात्रियों को धक्का क्यों लगता है?

(११) दौड़ता हुआ लड़का ठोकर खाने से क्यों गिर पड़ता है?

(१२) खिड़की का काँच पत्थर मारने से चूर चूर हो जाता है किन्तु बन्दूक की गोली से नहीं टूटता। इसका क्या कारण है?

(१३) पलंग में से गर्दा निकालने के लिए उसे लकड़ी से क्यों पीटा जाता है?

(१४) रेलगाड़ी के लिए पटरी की क्या आवश्यकता है ?

(१५) बल क्या है और वह कैसे नापा जाता है ?

(१६) जाड्य की परिभाषा बतलाओ और जाड्य तथा भार का भेद समझाओ ।

(१७) यदि १० ग्राम जाड्य की वस्तु पर ६ डाइन का बल लगाया जाय तो वेग-वृद्धि कितनी होगी ?

(१८) यदि १५ डाइन के बल से किसी वस्तु में ५० सम०/सैकंड^{२} की वेग-वृद्धि उत्पन्न हो तो उसका जाड्य कितना है ?

(१९) गुरुत्व क्या होता है ? भूमध्य-रेखा के समुद्र तल पर गुरुत्व-वृद्धि का क्या मूल्य है ?

(२०) पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों पर गुरुत्व वृद्धि का मूल्य भिन्न भिन्न क्यों होता है ?

(२१) यह कैसे प्रमाणित करोगे कि पहाड़ पर ले जाने से वस्तुओं का भार घट जाता है ? साधारण तराज़ू इस कार्य के लिए उपयुक्त क्यों नहीं है ?

(२२) बड़ी और छोटी वस्तुएँ एक ही वेग से पृथ्वी पर क्यों गिरती है ?

(२३) एक वस्तु का भार १० ग्राम है । बताओ कि पृथ्वी उसे कितने बल से आकर्षित करती है ?

(२४) एक पत्थर आकाश की ओर फेंका गया वह ४० फुट ऊपर जाकर पुनः नीचे गिर पड़ा । बताओ कि फेंकते समय उसका वेग कितना था और वह कितनी देर में उच्चतम स्थान पर पहुँच गया था ।

(२५) एक बैलून पर से एक पत्थर गिराया गया और वह १५ सैकंड में पृथ्वी पर गिर गया । बैलून की ऊँचाई कितनी थी ?

परिच्छेद ४

वेग-संयोजन, तुला और गुरुत्व-केन्द्र

४९—वेग-संयोजन। पिछले परिच्छेद में हम बतला चुके हैं कि एक ही वस्तु की एक ही समय में दो या अधिक भिन्न भिन्न गति हो सकती है। रेल का यात्री जब गाड़ी में एक जगह से उठकर दूसरी जगह जाता है तब उसमें दो गति अवश्य हैं। एक तो रेल की गति और दूसरी रेल की अपेक्षा उसकी अपनी गति। इसी प्रकार जब हम पृथ्वी पर दौड़ते हैं तो दौड़ने की गति के अतिरिक्त पृथ्वी की गति भी हमें आकाश में स्थान परिवर्तन कराती है। मान लीजिए कि नदी का जल ६ मील प्रति घंटे के वेग से पश्चिम से पूर्व की ओर बह रहा है और उसमें एक नौका भी जल की अपेक्षा ३ मील प्रति घंटे के वेग से पूर्व ही की ओर जा रही है। तब यह समझने में कुछ भी कठिनाई नहीं हो सकती कि वास्तव में पृथ्वी की अपेक्षा वह नौका ६ + ३ = ९ मील प्रति घंटे के वेग से स्थान-परिवर्त्तन कर रही है। यदि वह पश्चिम की ओर उसी वेग से चलती तो पृथ्वी की अपेक्षा उसका वेग ६ − ३ = ३ मील प्रति घंटा मात्र ही रह जाता और वह भी होता पूर्व की ओर। किन्तु यदि वह ठीक दक्षिण की ओर चले तो चित्र १३ से स्पष्ट है कि एक घंटे में जल तो उसे क से ख पर ६ मील पूर्व की ओर पहुँचा देगा किन्तु वह नौका जल में दक्षिण की ओर ३ मील क से ग तक चल लेगी। अर्थात् एक घंटे के अन्त में उसका स्थान घ हो जावेगा। अथवा यों कहिए कि पृथ्वी की अपेक्षा वह कघ दिशा में चलती हुई दिखलाई देगी और
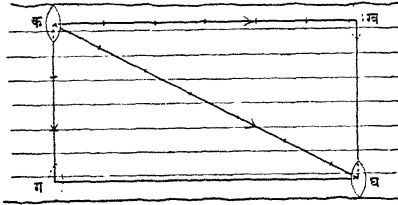
चित्र १३

उसका वेग कघ = ६.७ मील प्रति घंटा होगा। यदि वह नौका ठीक दक्षिण की ओर न चलती और चित्र १४ के कग दिशा में चलती तो वह घ पर पहुँच जाती और उसका वेग कघ होता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो कार्य भिन्न वेग कख और कग मिलकर करते हैं वही कार्य केवल एक वेग कघ के द्वारा भी हो सकता है। इसे
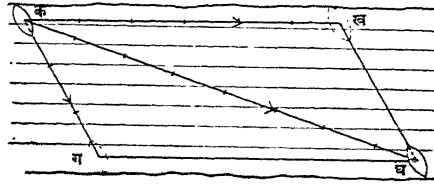
चित्र १४

उक्त दोनों वेगों का संयुक्त-वेग कहते हैं। इसे जानने के लिए प्रत्येक वेग को एक ऐसी सरल रेखा के द्वारा व्यक्त करना चाहिए जिसकी लम्बाई वेग के बराबर हो और जो वेग ही की दिशा में खींची गई हो। तब इन रेखाओं का समानान्तर-चतुर्भुज खींचना चाहिए। इस चतुर्भुज का **कर्ण** संयुक्त-वेग के दिशा और परिमाण दोनों का द्योतक होगा।

५०—बल-संयोजन। यह समानान्तर-चतुर्भुज का नियम बड़ा व्यापक नियम है। वेग की भांति ही जितने दिशायुक्त परिमाण हैं उन सबका संयोजन इसी रीति से किया जाता है। यथा वेग-वृद्धि और बल। बल का संयोजन बहुत ही उपयोगी है और उसकी हमें इस पुस्तक में कई बार आवश्यकता भी होगी अतः उसे हम एक और उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर देना चाहते हैं। मान लीजिए कि एक नहर में छोटी सी नौका पड़ी है और उसके दो रस्से कग और कख बांध कर दो मनुष्य दोनों तटों से उसे खींच रहे हैं (चित्र १५)। उनका बल अवश्य ही कख और कग दिशाओं में लग रहा है। यदि नौका पर एक ही बल कख या कग लगता तो अवश्य ही वह कख या कग दिशा में खिंच जाती। किन्तु दोनों बलों के एक ही साथ लगने के कारण उसे दोनों के बीच कघ दिशा में ही चलना होगा। अर्थात् हम यों समझ सकते हैं कि

उस पर वास्तव में एक ही बल कघ दिशा में लग रहा है। अथवा संक्षेप में संयुक्त-बल की दिशा कघ है। यह भी समझने में कुछ कठिनाई नहीं कि
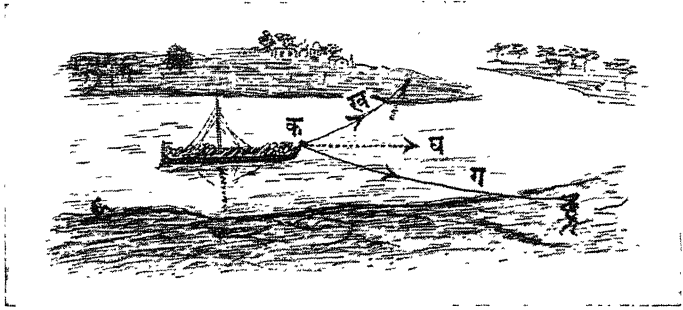
चित्र १५

यदि दोनों बल बराबर हों तो कख और कग के मध्यवर्त्ती कोण को कघ दो समान भागों में विभाजित करेगी। यदि कख दिशा में बल अधिक हुआ तो कोण खकघ छोटा हो जायगा और यदि बल कग दिशा में अधिक हुआ तो कोण गकघ छोटा हो जायगा। यदि कघ से ठीक विपरीत दिशा में उसी के बराबर एक और बल लगाया जाय, तो स्पष्ट है कि नौका स्थिर रहेगी।

कख, कग और कघ तीन तागे हैं (चित्र १६)। यह सब क पर आपस में बँधे हैं। दो तागों से दो कांटे भी बँधे हैं। एक आलेख्य-पट्ट में दो कीलें ठोंक दी गई हैं और उन्हीं में दोनों कांटे फँसा दिये गये हैं। पट्ट को सीधा दीवार पर लटका कर तीसरे तागे से कुछ बोझ लटका दिया गया है। स्पष्ट है कि क बिन्दु पर कख और कग दिशा में दो बल लग रहे हैं जिनका परिमाण कांटों से ज्ञात हो जावेगा। जो बोझ घ नीचे लटक रहा है उस पर भी पृथ्वी का गुरुत्वबल लग रहा है जो उसके भार के बराबर है। यह बल क को कघ दिशा में खींच रहा है। तीनों बलों के साम्य से प्रकट है कि कख और कग का संयुक्त-बल ठीक कघ से विपरीत दिशा में है। यदि पट्ट पर काग़ज़ रखकर

तीनों तागों की दिशा अंकित कर लें और उन रेखाओं पर प, फ ऐसे बिन्दु लें कि कप और कफ की लम्बाई उन दिशाओं के बल के अनुपाती हो और
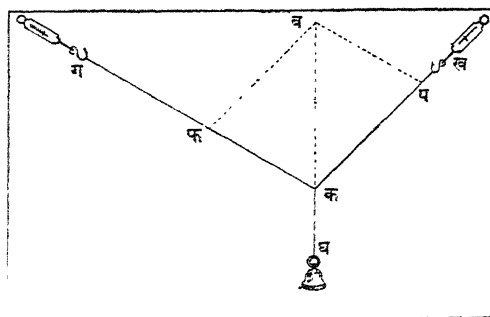
चित्र १६

कपवफ एक समानान्तर-चतुर्भुज बनावें तो आप देखेंगे कि इस चतुर्भुज का कर्ण कव ठीक कघ से विपरीत दिशा में है और उसकी लम्बाई भी घ के बोझ के बराबर है। इससे ज्ञात हो जाता है कि दो बलों का संयोजन भी समानान्तर-चतुर्भुज नियम के द्वारा किया जा सकता है।

५१—अवयव-बल। ऊपर यह बतलाया गया है कि जो कार्य किसी वस्तु पर दो बल लगाने से होता है वही कार्य एक बल के द्वारा भी हो सकता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि किसी एक बल के स्थान में हम दो भिन्न-दैशिक बल लगाकर भी वही कार्य कर सकते हैं। इन बलों को उस एक बल के अवयव-बल कहते हैं। इस प्रकार बल का विश्लेषण करने से कई प्रश्नों में बड़ी सहायता मिलती है। यथा जब नौका को एक रस्सी बाँध कर मल्लाह किनारे से खींच कर ले जाता है तो वास्तव में वह नौका को किनारे लाना नहीं चाहता। वह तो उसे नदी में चलाना चाहता है और डाँड़ से खेने का श्रम कम करना चाहता है। अतः यदि हम उसके बल

कघ को कख और कग दिशाओं में अवयव-बलों में विभक्त कर दें तो स्पष्ट हो जाता है कि नौका चलाने के लिए केवल कख भाग का उपयोग होता है। बल कग उसे किनारे की ओर खींचता है और यदि नौका की पतवार के
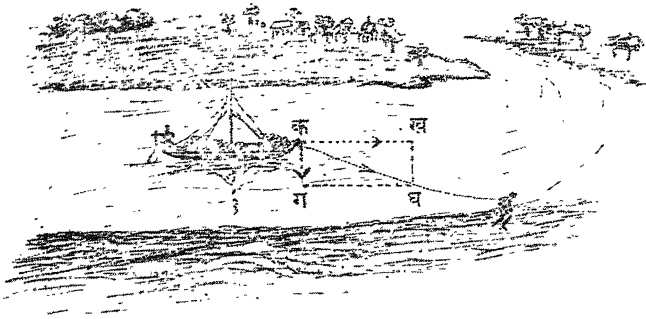
चित्र १७

द्वारा इसके विपरीत बल न लगाया जावे तो नौका तुरन्त किनारे से टकरा जावेगी। खींचनेवाले के बल का इतना भाग व्यर्थ ही जाता है।

५२—घूर्ण। किन्तु जब किसी वस्तु पर दो समानान्तर बल लग रहे हों तब उनका संयोजन उपर्युक्त नियम के द्वारा नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी दशा में समानान्तर-चतुर्भुज बनाना सम्भव ही नहीं। अतः हमें एक और नियम की आवश्यकता होती है। मान लीजिए कि लकड़ी के मोटे लट्ठे पर एक लम्बा तख़्ता रक्खा है और दो बच्चे उस तख़्ते पर बैठ कर झूल रहे हैं। जिन लोगों ने यह "सी-सा" का खेल खेला है वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि यदि दोनों बच्चों का भार बराबर हो तो तख़्ते को झुलाने के लिए उन्हें आलम्ब बिन्दु क से बराबर दूरी पर बैठना होगा। यदि एक बच्चा कुछ अधिक दूरी पर हो तो तख़्ते का उस ओर का सिरा नीचे झुककर ज़मीन से लग जावेगा और दूसरा बच्चा ऊँचा उठ जावेगा। यदि एक तरफ़ दो बच्चे बैठ जावें और दूसरी ओर एक

ही बच्चा हो किन्तु यह बच्चा उन दोनों बच्चों से द्विगुण दूरी पर बैठ जाय तब भी तख़्ता झूल सकता है। अतः स्पष्ट है कि तख़्ते पर दो बच्चों के
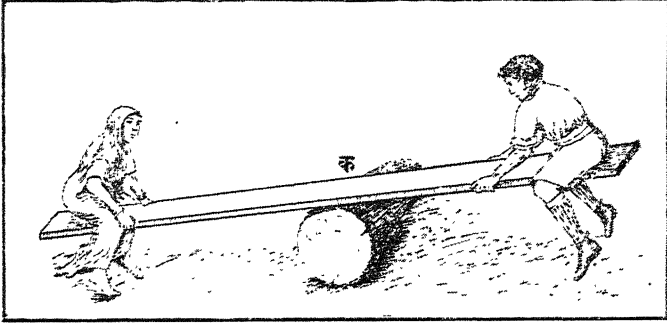
चित्र १८

भार का जो बल लग रहा है उसका प्रभाव दूरी की भिन्नता के कारण एक ही बच्चे के भार के प्रभाव के बराबर हो सकता है।

चित्र १९ के मीटर-दंड के बीच में एक छिद्र क है और उसमें एक मोटा सा तार डाल कर उसे लटका दिया है जिससे यह दंड उस तार की अक्ष पर घूम सकता है। अब यदि दो समान भारवाली वस्तुओं को डोरे से इस दंड पर लटकावें तो दंड को सीधा रखने के लिए उन्हें दंड के आलम्ब बिन्दु क से ठीक बराबर दूरी पर लटकाना पड़ेगा।
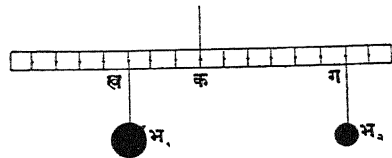
चित्र १९

किन्तु यदि एक का भार १ सेर हो और दूसरी का २ सेर तो प्रथम वस्तु को द्वितीय से दुगुनी दूरी पर लटका कर ही हम दंड को सीधा रख सकते हैं। इसी प्रकार इन वस्तुओं के भार तथा उनके लटकाने के स्थान को

बदल बदल कर देखने से ज्ञात हो जायगा कि जब कभी भी मीटर-दंड सीधा रहेगा तब ही

$$भ_1 \times कख = भ_2 \times कग$$

इस समीकरण में $भ_1$ और $भ_2$ दोनों वस्तुओं के भार हैं। इस प्रयोग के द्वारा ज्ञात हो जाता है कि दंड को घुमाने के लिए बल की क्षमता केवल उसके परिमाण पर अवलम्बित नहीं है। क्योंकि केवल स्थान-परिवर्त्तन-मात्र से यह क्षमता बढ़ या घट सकती है। तथा यह भी ज्ञात हो जाता है कि भार या बल तथा आलम्ब से उस बल की दूरी का गुणनफल ही इस क्षमता का वास्तविक नाप हो सकता है। इस गुणनफल का नाम **घूर्ण** रख दिया गया है।

५३—तुला। अब यह भी समझ में आगया होगा कि साधारण तराज़ू में वस्तु की मात्रा को ठीक ठीक नापने के लिए किन बातों की आवश्यकता है। प्रत्येक तराज़ू में एक डंडी होती है जिसके दोनों सिरों पर दो पलड़े होते हैं। और जो स्वयं बीच में से लटकी रहती है। साधारण वस्तुओं को तौलने के लिए तो लकड़ी की डंडी में तीन छेद करने ही से काम चल जाता है। बीच के छेद में रस्सी पिरो कर डंडी लटकाई जाती है और दोनों सिरों के छेदों से पलड़े लटका दिये जाते हैं। किन्तु जब वैज्ञानिक कार्यों के लिए मात्रा का ठीक ठीक नाप करना होता है तब इससे काम नहीं चल सकता। तब तराज़ू को इतना सूक्ष्मग्राही बनाना पड़ता है कि एक रत्ती का सहस्रांश भी उसके द्वारा भले प्रकार नापा जा सके। रासायनिक तुला आज-कल इतनी सूक्ष्मग्राही बनती हैं कि यदि किसी कागज़ को उसके
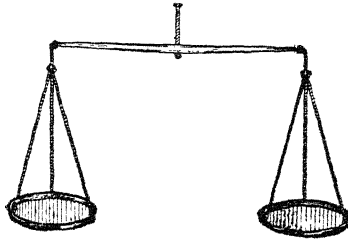
चित्र २०

द्वारा तौल कर उस पर पैंसिल से एक रेखा भी खींच दें तो इस रेखा के भार से पलड़ा झुक जाता है। तुला को इतनी सच्ची बनाने के लिए निम्न बातों की आवश्यकता है:—

(१) डंडी को लटकाने का स्थान ठीक बीच में होना चाहिए। बाल भर भी इधर-उधर न हो।

(२) पलड़े भी इस अक्ष से समान दूरी पर लटकाये जावें और उनकी दूरी में तनिक भी अन्तर न होने पावे।
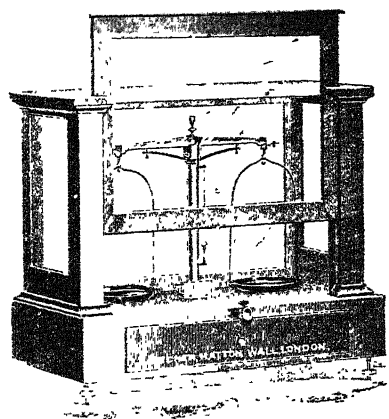
चित्र २१

(३) डंडी सीधी है या नहीं यह देखने का भी कोई विशेष साधन होना चाहिए जिससे थोड़ा भी फ़र्क मालूम हो सके।

(४) समस्त तुला एक कांच के बकस में बन्द होनी चाहिए ताकि हवा उसे हिला न सके।

चित्र २१ में रासायनिक तुला दिखलाई गई है। और चित्र २२ में इसकी डंडी और उससे पलड़े लटकाने की विधि दिखलाई गई है। डंडी पीतल की बनी है और उसके मध्य में और दोनों सिरों पर गोमेद (agate) के तीन तीक्ष्ण असिकोर लगे हैं। बीच का असिकोर एक गोमेद के समतल पर

रखा है। डंडी इसी असिकोर पर घूमती है। यही उसकी अक्ष है। इसी प्रकार पलड़ों के भी गोमेद के समतल लगे हैं जो डंडी के असिकोरों पर रख दिये जाते हैं। इससे पलड़ों का सारा बोझ असिकोरों की धार पर ही लगता
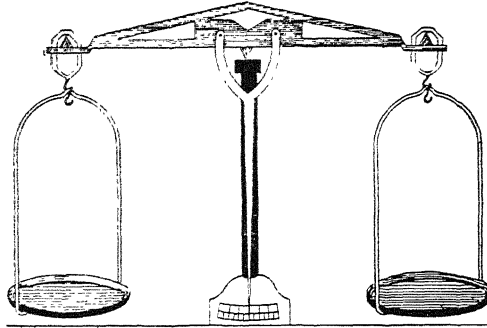
चित्र २२

है। डंडी के बीच से एक लम्बा तार भी लगा है जो उसके साथ ही साथ घूमता है। इस तार के सिरे के पास एक स्केल भी लगा है जिसके द्वारा तार का स्थान ठीक ठीक ज्ञात हो सकता है। जब डंडी सीधी रहेगी तब तार का सिरा शून्यांकित रेखा पर रहेगा।

५४—घूर्ण-सिद्धान्त के उपयोग। उपर्युक्त उदाहरणों में आलम्ब दो बलों के बीच में है। किन्तु बहुधा दोनों बल अक्ष के एक ही ओर भी होते हैं। इस दशा में साम्य करने के लिए इन बलों की दिशायें विपरीत होती हैं। यह स्पष्ट है कि ख पर लगनेवाला बल परिमाण में ग पर लगनेवाले बल से बड़ा होगा। अतः यह समझना कठिन नहीं कि हम
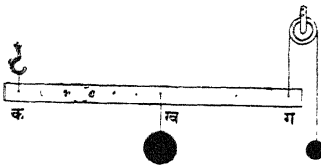
चित्र २३

एक दंड की सहायता से ग पर थोड़ा ही बल लगा कर ख पर बहुत अधिक बल का कार्य कर सकते हैं। ऐसे दंड का नाम **लीवर** है। चित्र २४ में कई यंत्र

दिखलाये गये हैं जिनमें इस प्रकार के लीवरों की सहायता से थोड़ा बल लगाकर
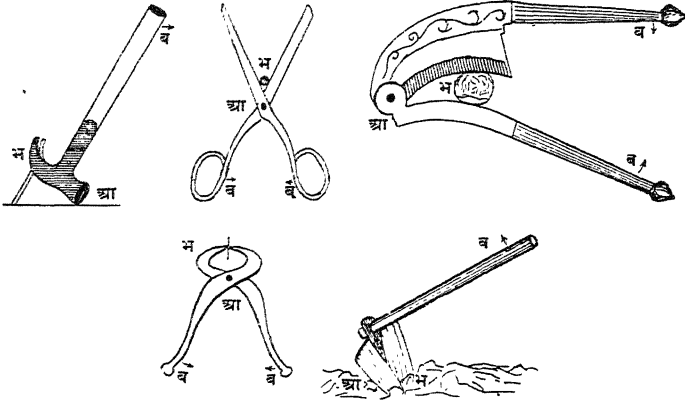
चित्र २४

मनुष्य अधिक बल का काम कर सकता है। प्रत्येक यंत्र में आलम्ब आ, थोड़ा बल लगाने का स्थान ब तथा अधिक बल के कार्य का स्थान भ स्पष्टतया अंकित है।

५५—रेल का काँटा । घूर्ण के सिद्धान्त का सबसे अच्छा उदाहरण रेल के स्टेशन का काँटा है। इस पर बड़े भारी भारी संदूक, बोरे आदि तौले जाते हैं। और उन्हें तौलने के लिए भारी बाँटों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। किसी किसी स्टेशन पर तो रेल का माल से
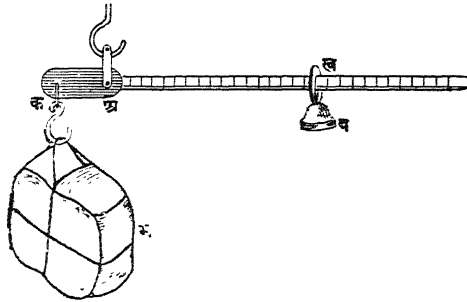
चित्र २५

लदा हुआ पूरा का पूरा डिब्बा ऐसे काँटे के द्वारा तौल लेते हैं। इसका वास्तविक भेद यही है कि साधारण तराजू की भाँति इसमें दोनों भार डंडी की अक्ष से

समान दूरी पर नहीं लटकाये जाते। जिस भारी वस्तु को तौलना हो वह अक्ष से निकट ही लटकाई जाती है और हलके बांट अक्ष से बहुत दूर। चित्र २५ में ऐसा ही एक सादा कांटा है। अ उसकी डंडी का आलम्ब है। ब हलका सा बांट है। यह ख से लटका है। उपर्युक्त घूर्णसिद्धान्त से स्पष्ट है कि यदि वस्तु का भार भ हो और बांट का ब तो

$$भ \times अक = ब \times अख$$

अतः यदि $\frac{अक}{अख} = \frac{१}{१००}$ तो स्पष्ट है कि २½ मन बोझ तौलने के लिए सिर्फ़ एक सेर का बांट चाहिए। इसी बाँट ब को सरका कर डंडी पर दूसरी जगह भी लटका सकते हैं। इससे उसका घूर्ण घट बढ़ सकता है। इस प्रकार उस एक ही बांट से सब तरह के हलके और भारी बोझ तौले जा सकते हैं।

चित्र २६

जो कांटा स्टेशनों पर लगा रहता है वह चित्र २६ में दिखाया गया है। यह इतना सादा नहीं है। इसमें कई लीवर लगे हैं जिनका कार्य चित्र से स्पष्ट है। किन्तु इसमें भी असली बात वही है कि भारी बोझ डंडी की अक्ष के बहुत निकट लटकाया जाता है और बांट अधिक दूरी पर।
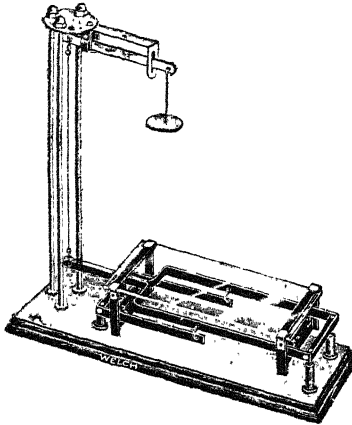
५६—समानान्तर बल-संयोजन। इस घूर्ण-सिद्धान्त ही के द्वारा दो समानान्तर बलों का संयोजन भी हो सकता है। मान लीजिए कि किसी दंड के ख
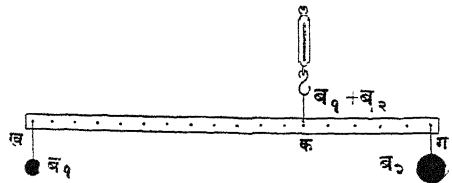
चित्र २७

और ग विन्दुओं पर $ब_1$ और $ब_2$ बल लग रहे हैं (चित्र २७)। यदि क ऐसा बिन्दु है कि $ब_1 \times कख = ब_2 \times कग$ तो यदि क पर एक और बल $(ब_1 + ब_2)$ विपरीत दिशा में लगा दिया जाय तो स्पष्ट है कि दंड सीधा भी रहेगा और उसमें गति भी उत्पन्न न होगी। अतः $ब_1$ और $ब_2$ का संयुक्त-बल परिमाण में $ब_1 + ब_2$ के बराबर है, उसकी दिशा भी $ब_1$ और $ब_2$ की है और जिस बिन्दु पर वह कार्य कर रहा है वह क है। यदि $ब_1$ और $ब_2$ विपरीत दैशिक होते (चित्र २८) तो संयुक्त-बल का परिमाण $ब_2 - ब_1$ होता और उसका स्थान क दोनों बलों के बीच में न होकर बड़े बल $ब_2$ की ओर खग से बाहिर होता। इस दशा में भी $ब_1 \times कख = ब_2 \times कग$
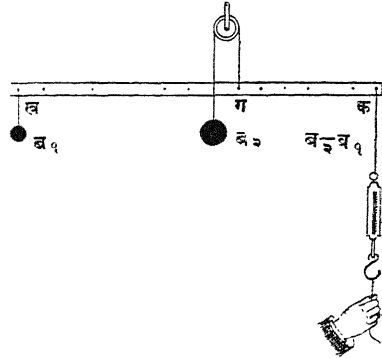
चित्र २८

५७—गुरुत्व-केन्द्र। इसी प्रकार दो से अधिक बलों का भी संयोजन किया जा सकता है। इस संयोजन का सबसे अच्छा उदाहरण गुरुत्व के सम्बन्ध में है। प्रत्येक वस्तु अणुओं की बनी हुई होती है और पृथ्वी प्रत्येक अणु को आकर्षित करती है। अतः प्रत्येक वस्तु पर हमें करोड़ों समानान्तर बलों की कल्पना करना होगा। किन्तु ये बल हमारे अनुभव में पृथक् पृथक् नहीं आते। हमें इनके संयुक्त-बल का ही ज्ञान होता है। और उसे हम भार कहते हैं। इस भार का परिमाण अवश्य ही पृथक् पृथक् अणुओं के भारों का योग होता है। यह संयुक्त-बल वस्तु के जिस बिन्दु पर लगता है उसे हम गुरुत्व-केन्द्र कहते हैं। और यदि हम वस्तु को गिरने न देना चाहें तो भार के विपरीत हमें इसी बिन्दु पर बल
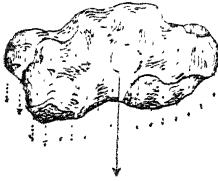
चित्र २९

लगाना होगा। अन्य किसी स्थान पर बल लगाकर हम वस्तु को स्थित नहीं रख सकते। इसके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। मान लीजिए कि मेज़ पर पुस्तक रखी है। यदि उसे हम धीरे धीरे किनारे की तरफ़ खिसकावें तो जब तक आधी पुस्तक मेज़ पर रहेगी तब तक तो वह न गिरेगी। किन्तु जहां आधे से कुछ भी अधिक भाग मेज़ के किनारे से बाहिर निकला कि वह तुरन्त पलट कर गिर पड़ेगी। इसका कारण यही है कि मेज़ पुस्तक पर ऊपर की दिशा में बल लगाती है। तभी तो गुरुत्व पुस्तक को नीचे गिराने में असमर्थ है। जब पुस्तक का आधे से अधिक भाग मेज़ से बाहिर हो जाता है तब मेज़ का बल गुरुत्व-केन्द्र पर नहीं लग सकता। क्योंकि गुरुत्व-केन्द्र पुस्तक के ठीक बीच में होता है। अतः पुस्तक गिर पड़ती है। मान लीजिए कि आपके पास एक त्रिकोणाकार पट्ट है। और
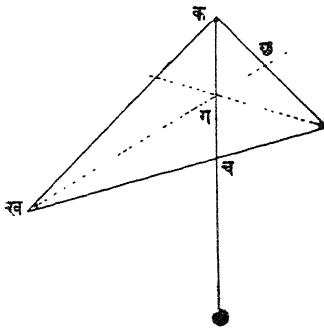
चित्र २०

उसके तीनों कोनों के पास एक एक छिद्र है। यदि इस पट्ट को एक छिद्र क के द्वारा कील पर टांग दें तो वह एक विशेष प्रकार से स्थित रहेगा। आप उसे कितना ही इधर-उधर घुमाइए वह ठहरेगा उसी निर्दिष्ट अवस्था में। वह अवस्था कौन सी है? स्पष्ट है कि पट्ट पर दो बल लग रहे हैं। एक पृथ्वी का आकर्षण और दूसरा कील का प्रति-क्रिया-बल। ये दोनों ठीक विपरीत दिशा में होने चाहिए। यह तभी हो सकता है जब गुरुत्व-केन्द्र ठीक कील के नीचे आकर ठहरे क्योंकि तब कील को गुरुत्व-केन्द्र से मिलानेवाली रेखा ऊर्ध्वाधर होगी। तब ही दोनों बलों का साम्य हो सकता है। उसी कील से सम्बल लटका कर ऊर्ध्वाधर रेखा कच पट्ट पर खींच लीजिए। स्पष्ट है कि इसी रेखा पर गुरुत्व-केन्द्र होना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे कोण के छिद्र ख से लटका कर पट्ट पर एक और रेखा खछ भी खींची जा सकती है। उस पर

भी गुरुत्व-केन्द्र का होना आवश्यक है। अतः इन दोनों रेखाओं का छेदन विन्दु ग ही गुरुत्व केन्द्र है। यदि पट्ट के इस विन्दु को पेंसिल की नोक पर रख दें तो पट्ट ठहर जावेगा, न इधर गिर सकेगा और न उधर।

इस पट्ट ही की भांति प्रत्येक वस्तु के एक गुरुत्व-केन्द्र होता है और उसका स्थान उपर्युक्त विधि से ज्ञात भी हो सकता है। जब वस्तु का आकार ज्यामिति की किसी साधारण आकृति के जैसा होता है तब उसके गुरुत्व-केन्द्र को जान लेना अत्यन्त सरल कार्य है। ज्यामिति के नियमानुसार हम तुरन्त कह सकेंगे कि गोल वस्तु का केन्द्र ही उसका गुरुत्व-केन्द्र है। घन या सम-चतुरस्र वस्तु में कर्णों का छेदन-विन्दु ही गुरुत्व-केन्द्र है इत्यादि।

५८—स्थायी तथा अस्थायी साम्य। ऊपर कहा जा चुका है कि जब कोई वस्तु किसी कील से लटकी हो तो उसका गुरुत्व-केन्द्र कील के ठीक नीचे आकर ठहरता है क्योंकि तभी कील की प्रतिक्रिया के बल
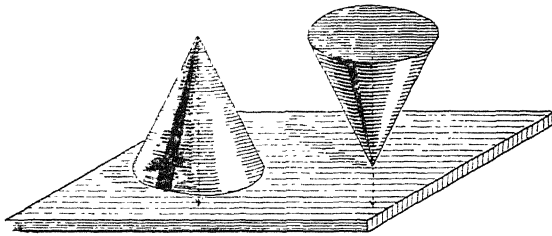
चित्र २१

और गुरुत्व-बल की कार्य रेखा एक हो सकती है। यद्यपि जब गुरुत्व-केन्द्र कील के ठीक ऊपर स्थित हो तब भी दोनों बलों की कार्यरेखा एक हो सकती है किन्तु इस अवस्था में साम्य स्थायी नहीं होता। तनिक से हवा के झोंके

से यह साम्य बिगड़ जाता है और वस्तु टेढ़ी होते ही गुरुत्व-केन्द्र को पृथ्वी का आकर्षण नीचे खींच लेता है। यही कारण है कि शंकु को उसकी नोक पर नहीं ठहरा सकते। छड़ी को भी उँगली पर सीधी खड़ी करना इसी लिए कठिन है। हां यदि आधार इतना चौड़ा हो कि वस्तु के टेढ़ी होने से गुरुत्व-केन्द्र को ऊँचा उठना पड़े तब अवश्य ही गुरुत्व-बल उसे खींचकर पुनः अपनी पूर्व अवस्था में ले आवेगा। ऐसे स्थायी साम्य का उदाहरण चित्र ३१ का दूसरा शंकु है। इसके लिए आवश्यक बात यह है कि वस्तु के गुरुत्व-केन्द्र

चित्र ३२ चित्र ३३

से पृथ्वी पर पड़नेवाला लम्ब आधारक्षेत्र के भीतर ही पड़े। इसी से जब कोई मनुष्य पानी से भरी बालटी एक हाथ से उठाता है तो उसे दूसरा हाथ फैलाना पड़ता है, और जब कुलीपीठ पर बोझा लादता है

तो उसे सामने की ओर झुकना पड़ता है। जब तक बोझ के सहित उसका गुरुत्व-केन्द्र उसकी टाँगों के ठीक ऊपर न हो तब तक उसके लिए खड़ा रहना सम्भव नहीं। यदि अधिक ज़ोर के धक्के से कोई वस्तु इतनी टेढ़ी हो जाय कि गुरुत्व-केन्द्र आधारक्षेत्र के ऊपर न रहे तो वह वस्तु अवश्य ही उलट जायगी। किन्तु यदि गुरुत्व-केन्द्र आधार से नीचे हो तब तो उसके उलट जाने का कुछ भी डर नहीं है क्योंकि उस अवस्था में गुरुत्व-केन्द्र पहले ही से इतना नीचा है कि वह और नीचे जा ही नहीं सकता। चित्र ३४ के खिलौने में जो भारी बोझ दोनों ओर लटक रहे हैं उनके कारण नट का गुरुत्व-केन्द्र आधार से नीचे है। अतः उसे जितना ही टेढ़ा करिए उतना ही गुरुत्वकेन्द्र ऊँचा उठेगा। फलतः टेढ़ा करके छोड़ देने पर वह गिरेगा नहीं किन्तु थोड़ी देर नाच कर पुनः सीधा खड़ा हो जायगा।
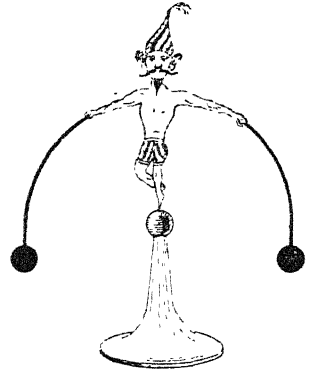
चित्र ३४

प्रश्न

(१) एक हवाई जहाज़ का वेग ४० मील प्रति घंटा ठीक पूर्व की ओर है किन्तु हवा दक्षिण से उत्तर की ओर १५ मील प्रति घंटे के वेग से चल रही है। चित्र खींच कर यह बताओ कि जहाज़ वास्तव में कितने वेग से और किस दिशा में चल रहा है? और यदि उसे ४० मील प्रति घंटा ठीक पूर्व ही में जाना है तो किस दिशा में और कितने वेग से उसे चलना चाहिए?

(२) पटरी पर खड़ी हुई रेल गाड़ी को रस्सी बाँध कर ५ मनुष्य खींच कर ले जा रहे हैं। रस्सी और पटरी के बीच का कोण २०° है और प्रत्येक मनुष्य २० पाउंड के भार के बराबर बल लगाता है। तो चित्र के द्वारा बताओ कि रेलगाड़ी पर कितना बल लग रहा है?

(३) घूर्ण की परिभाषा क्या है ? उसकी सहायता से समानान्तर बलों का संयोजन कैसे हो सकता है ?

(४) बराबर मोटाई वाली ४ फुट लम्बी पटरी मेज़ पर रखी है और उसका भार ५०० ग्राम है । उसके आगे निकले हुए सिरे से ५० ग्राम का भार लटकाने से पटरी उलटने लगती है । तो बताओ कि पटरी का कितना भाग मेज़ पर था ?

(५) हमारे पास एक लोहे की छड़ है जिसका भार हमें मालूम है । यदि एक गज़, एक छुरी और कुछ डोरा हमारे पास है तो बताओ कि कैसे हम किसी पारसल का भार मालूम कर सकते हैं ।

(६) ८ फ़ुट लम्बे डंडे से लटका कर एक मन बोझा दो आदमी ले जाना चाहते हैं । किन्तु कमज़ोरी के कारण उनमें से एक आदमी १० सेर से अधिक बोझा नहीं उठा सकता । उन्हें वह बोझ डंडे पर किस जगह लटकाना चाहिए ?

(७) लीवर किसे कहते हैं और आलम्ब क्या है ? साधारण काम के कुछ लीवरों के नाम बताओ ।

(८) क़ैंची से काटते समय कपड़े को पेंच के निकट रखने से सुविधा क्यों होती है ?

(९) एक तराज़ू की एक भुजा १८″ लम्बी है और दूसरी १९″ । इसके एक पलड़े में रख कर १ मन के बाँट से गेहूँ तौले गये और तब दूसरे पलड़े में रख कर एक मन और तौले गये । बताओ कि कुल कितने गेहूँ ग्राहक को मिले ।

(१०) उपर्युक्त तराज़ू से ठीक तौलने का क्या उपाय है ?

(११) माल गाड़ी के डिब्बे को स्टेशन पर किस उपाय से तौलते हैं ?

(१२) रासायनिक तुला के मुख्य भागों का वर्णन करो ।

(१३) गुरुत्व-केन्द्र किसे कहते हैं और वह कैसे मालूम किया जाता है ?

(१४) एक हाथ में भारी बोझा होने से हमें दूसरी ओर झुक कर क्यों चलना पड़ता है ?

(१५) चौड़े आधार पर वस्तु क्यों अधिक आसानी से ठहर जाती है ?

परिच्छेद ५

काम, सामर्थ्य और शक्ति

५९—काम । सभी जानते हैं कि साधारण भाषा में काम किसे कहते हैं । जब कोई मनुष्य बोझा उठाकर नीचे से ऊपर ले जाता है, पृथ्वी को खोदता है, लकड़ी को चीरता है, नाव को खेता है, चक्की पीसता है अथवा कुएँ से पानी खींचता है तब हम कहते हैं कि वह काम करता है । लिखना पढ़ना भी काम ही कहलाता है किन्तु इस समय हम मानसिक काम की चर्चा नहीं करना चाहते । यदि हम इन भिन्न भिन्न प्रकार के शारीरिक कामों को ज़रा ग़ौर से देखें तो मालूम हो जायगा कि इनके बाह्यरूप में इतना अन्तर होने पर भी वास्तव में इनमें बड़ा सादृश्य है । यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक काम को करने के लिए बल लगाना पड़ता है और यह बल वस्तु को अपने स्थान से हटाने का प्रयत्न करता है । किन्तु यह भी समझना कठिन नहीं कि काम करनेवाले के बल के विपरीत कोई अवरोधक बल भी वस्तु पर अवश्य लगता रहता है, अन्यथा उसे स्थान से हटाने में कठिनाई होती ही क्यों । वस्तु को ऊपर उठाने में गुरुत्वबल अवरोधक है, पृथ्वी खोदने में या लकड़ी चीरने में संसक्ति का बल अवरोधक है, नाव को खेने में जल की रगड़ और चक्की पीसने में पत्थर की रगड़ अवरोधक है । अवरोधक बल को अतिक्रान्त करके वस्तु को स्थानान्तरित करने ही का नाम काम है । अतः जब किसी बिन्दु पर कोई बल लग रहा हो और वह बिन्दु उस बल की दिशा में कुछ हट जाय तो हम कहेंगे कि उस बल ने कुछ काम किया । यदि बल लगने पर भी वस्तु न हटी तो कहना होगा कि काम कुछ न हुआ । जैसे यदि कोई भारी बोझा है और हमने उसे उठाने का बहुत प्रयत्न

भी किया किन्तु उसे तनिक भी हिला न सके तो हमारा प्रयत्न व्यर्थ ही गया। काम कुछ भी न हो सका।

मान लीजिए कि हम कुएँ में से पानी की बालटी खींच रहे हैं। स्पष्ट है कि यदि कुआं दुगुना गहरा हो तो काम भी दुगुना करना पड़ेगा या यदि बालटी में दुगुना पानी समाता हो तो भी हमें दुगुना काम करना पड़ेगा। अतः काम का परिमाण बल के परिमाण और स्थानान्तर के परिमाण दोनों ही पर निर्भर है। इसलिए काम को नापने का सबसे सुगम उपाय यही जान पड़ता है कि बल को और वस्तु के स्थानान्तर को गुणा कर लें अर्थात्—

काम = बल × स्थानान्तर

अँगरेज़ी माप में काम के एकांक का नाम **फ़ुट-पाउंड** है। एक पाउंड भार को एक फ़ुट ऊँचा उठाने में जितना काम होता है वह एक फ़ुट-पाउंड कहलाता है। यह स्पष्ट ही है कि एक फ़ुट-पाउंड का परिमाण पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों पर बराबर नहीं होता। एक पाउंड का भार ऊँचाई और अक्षांश के कारण बदल जाता है। इसी लिए काम के इस एकांक का परिमाण भी बदलता है। एक **फ़ुट-पाउंडल** उस काम को कहते हैं जो किसी वस्तु को एक पाउंडल बल के द्वारा एक फ़ुट खिसकाने में होता है। इसका परिमाण सर्वत्र एक ही रहता है।

काम के वैज्ञानिक एकांक का नाम **अर्ग** है। जब एक डाइन का बल वस्तु को एक सेंटीमीटर स्थानान्तरित करे तब यह काम होता है। इसका परिमाण भी सर्वत्र समान होता है। क्योंकि डाइन का परिमाण गुरुत्ववृद्धि पर निर्भर नहीं है।

किन्तु व्यवहार के लिए यह एकांक बहुत छोटा है। अतः एक करोड़ ($१०^७$) अर्ग काम का एक और एकांक नियत कर दिया गया है और उसका नाम **जूल** रख दिया गया है।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि स्थानान्तर बल की दिशा ही में नापना उचित है। यदि म ग्राम जाड्यवाली कोई वस्तु ढालू भूमि पर

रक्खी हो और गुरुत्व के कारण नीचे खिसके तो गुरुत्वबल म × ग तो ठीक नीचे की ओर लग रहा है किन्तु वस्तु स्थानान्तरित होती है कख दिशा में (चित्र ३५)। अतः क से ख तक पहुँचने में जो काम हुआ वह म × ग × कख नहीं है। उसका परिमाण म × ग × कच है क्योंकि भार के बल की दिशा में वस्तु का स्थानान्तर केवल कच ही है। इसे एक दूसरी प्रकार भी समझ सकते हैं। यदि हम इस गुरुत्वबल को दो अवयव बलों में इस प्रकार विभक्त करें कि एक प तो ढाल की दिशा कख में हो और दूसरा कख पर लम्ब रूप फ हो, तो फ के द्वारा कुछ भी काम नहीं होता क्योंकि इस दिशा में वस्तु का स्थानान्तर होता ही नहीं और प के द्वारा जितना काम होता है उसका परिमाण प × कख होगा। अवयव जिस विधि से निकाले जाते हैं उस पर ध्यान देने से यह प्रमाणित हो सकता है कि—

$$\text{प} \times \text{कख} = \text{म} \times \text{ग} \times \text{कच}$$

अतः चाहे वस्तु सीधी च से क तक उठा ली जाय अथवा ख से ढालू भूमि के द्वारा क तक पहुँचाई जाय काम तो बराबर ही करना पड़ेगा। किन्तु ढालू भूमि से लाभ यह है कि जो बल प' वस्तु पर लगाना पड़ेगा वह वस्तु के भार म × ग से कम होगा।
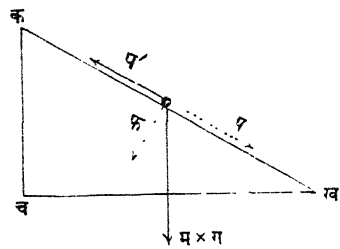
चित्र ३५

६०—**सामर्थ्य**। काम के उपर्युक्त माप में समय का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किसी काम में दिन भर भी खर्च हो सकता है और यदि काम करनेवाला फुर्तीला हो तो वही काम दो घंटे में भी पूरा हो सकता है। यदि उसी काम पर एक मनुष्य की जगह १० मनुष्य लगा दें तो उसे पूरा होने में केवल १२ मिनट ही लगेंगे। काम करनेवाला एक सैकंड में जितना काम कर सके उसे उसकी **सामर्थ्य** कहते हैं। इस दृष्टि से १०

मनुष्यों की सामर्थ्य एक मनुष्य से दसगुनी है। घोड़े में मनुष्य की अपेक्षा प्रायः ८ गुणी सामर्थ्य है। बहुधा इंजन, मोटर आदि से वही काम लिया जाता है जो पहले घोड़ों या बैलों से लिया जाता था। इसलिए इंजनों की सामर्थ्य का माप भी घोड़े की सामर्थ्य की अपेक्षा किया जाता है। इस मोटर का इंजन २० अश्व-सामर्थ्यवाला है, रेल का इंजन २०० अश्व-सामर्थ्यवाला है इत्यादि वाक्यों का अर्थ यही है कि जितना काम २० या २०० अश्व कर सकते हैं उतना ही काम उतने ही समय में वह इंजन भी कर सकता है।

यों तो घोड़ों घोड़ों में बड़ा अन्तर होता है। किसी की सामर्थ्य कम और किसी की अधिक होती है। किन्तु वाष्प-इंजन के आविष्कर्त्ता जेम्स वाट ने जब अपना इंजन बनाया तब उसने अनेक घोड़ों की सामर्थ्य को भी नापा और उनकी औसत सामर्थ्य का परिमाण उसने यह पाया कि एक मिनट में ३३००० फ़ुट-पाउंड का काम एक घोड़ा कर सकता है। तभी से इतने सामर्थ्य का नाम अश्व-सामर्थ्य होगया और यही सामर्थ्य का एकांक बन गया।

सामर्थ्य के वैज्ञानिक एकांक का नाम **वाट** है। जब कोई एक जूल काम एक सैकंड में कर ले तो उसकी सामर्थ्य एक वाट कही जाती है। एक सहस्र वाट की सामर्थ्य का नाम किलो-वाट है। अश्व-सामर्थ्य और वाट का सम्बन्ध इस प्रकार हैः—

३३००० फ़ुटपाउंड प्रति मिनट = १ अश्व-सामर्थ्य

= ७४६ × १०⁷ अर्ग प्रति सैकंड

= ७४६ जूल प्रति सैकंड

= ७४६ वाट

= '७४६ किलो-वाट

६१—स्थितिज शक्ति। काम करने की क्षमता को **शक्ति** कहते हैं। और इसका नाप भी काम के एकांक ही के द्वारा होता है। जब हम किसी

ज ग्राम भार को पृथ्वी से द समम० ऊँचा उठा देते हैं तो उस पर हमें ज × ग डाइन बल लगाना पड़ता है और ज × ग × द अर्ग काम करना पड़ता है। अब यदि हम इसे किसी दूसरे भार से सम्बन्धित कर दें और रस्सी को एक घिरनी पर से चला दें तो यह भार नीचे उतर आवेगा किन्तु वह दूसरा भार ऊपर उठ जावेगा (चित्र ३६)। अर्थात् इस भार को ऊपर उठा देने से इसमें अन्य वस्तुओं को ऊपर उठा देने की क्षमता होगई। यह क्षमता कितनी है? अनुभव के द्वारा यह ज्ञान होता है कि अन्य वस्तुओं पर यह भार अधिक से अधिक उतना ही काम कर सकता है जितना कि पहले हमने उस पर किया था। अतः हम संक्षेप में यों कह सकते हैं कि उसकी शक्ति ज × ग × द अर्ग है। यह शक्ति केवल उसकी स्थिति के कारण है। अतः उसे **स्थितिज शक्ति** कहते हैं। इस प्रकार की शक्ति के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। जब हम घड़ी में चाभी लगाते हैं तो हम उसकी कमानी को एक विशेष स्थिति में पहुँचा देते हैं। इसमें हमें बल लगाना पड़ता है। और काम भी करना पड़ता है। यही शक्ति स्थितिज शक्ति के रूप में कमानी में भर जाती है और इसी शक्ति को व्यय करने से वह घड़ी दिन भर चलती रहती है।

चित्र ३६

६२—गतिज शक्ति। किन्तु स्थिति ही शक्ति का एक-मात्र कारण नहीं है। गतिमान् वस्तुओं में भी शक्ति होती है। बन्दूक की गोली लोहे की मोटी चद्दर को भेद कर निकल जाती है। उसमें लोह-अणुओं की संसक्ति पर विजय प्राप्त करने की शक्ति है। हथौड़ा कील को दीवार में घुसा देता है। उसमें भी उसकी गति ही के कारण यह काम करने की शक्ति उत्पन्न हुई है। नदी का बहता हुआ पानी पनचक्की के पहिये को घुमा कर आटा पीस सकता है। तेज़ चलनेवाली हवा पाल के द्वारा बड़े बड़े जहाज़ों को चला सकती है। इन सब उदाहरणों में काम करने की शक्ति गति के कारण उत्पन्न

हुई है। यदि बन्दूक की गोली में गति न हो तो वह साधारण कागज़ में भी छेद नहीं कर सकती। जब हवा ठहर जाय तो पाल जहाज़ को कदापि नहीं चला सकता। ऐसी शक्ति को **गतिज शक्ति** कहते हैं। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि गतिज शक्ति वस्तु के जाड्य और उसके वेग दोनों ही पर निर्भर है। किन्तु उसका परिमाण कितना है यह निम्न प्रकार ज्ञात हो सकता है।

ऊपर बताया जा चुका है कि जब किसी भार को पृथ्वी से ऊपर उठा देते हैं तो उसमें स्थितिज शक्ति आ जाती है। यह भी हम देख चुके हैं कि यदि ऊँचे से उसे छोड़ दें तो वह वर्द्धमान वेग से नीचे गिरता है और ज़मीन पर पहुँचने के समय उसका वेग $व = \sqrt{२ग \times द}$ हो जाता है (प्रकरण ४७)

$$\text{अर्थात्}\ \frac{१}{२} व^{२} = ग \times द$$

$$\text{अतः}\ \frac{१}{२} ज\, व^{२} = ज \times ग \times द.$$

किन्तु $ज \times ग \times द$ उसकी स्थितिज शक्ति थी। यही शक्ति अब गतिज शक्ति के रूप में परिणत होगई है। उस भार में काम करने की जो क्षमता हमने उत्पन्न की थी वह ज्यों की त्यों है। अब भी वह भार यदि किसी वस्तु से टकरावे तो उसे खंडित करने की क्षमता रखता है। अतः गतिज शक्ति का परिमाण $\frac{१}{२} ज \times व^{२}$ अर्ग के बराबर है।

६३—शक्ति के अन्य रूप। जड़ पदार्थ में शक्ति या काम करने की क्षमता उत्पन्न होने के दो कारण ऊपर बतलाये गये हैं। एक स्थिति और दूसरा गति। किन्तु और भी कई कारणों से शक्ति उत्पन्न हो सकती है। यह सभी जानते हैं कि गरम वाष्प में रेल को खींचने और मिलों को चलाने की क्षमता होती है। ठंडे जल में यह क्षमता नहीं होती। ताप ही ने यह शक्ति उत्पन्न की है। अतः हम कह सकते हैं कि ताप भी एक प्रकार की शक्ति है। विद्युत्-धारा के द्वारा पंखे चलते हैं, ट्राम दौड़ती है और कारखानों की मशीनें भी चलाई जाती हैं। इसलिए विद्युत्-धारा भी एक प्रकार की शक्ति है। कोयले के जलने से अर्थात् उसके आक्सिजन के साथ रासायनिक संयोजन के कारण ताप उत्पन्न होता है और यही इंजन में शक्ति उत्पन्न करता है।

अतः रासायनिक संयोजन में भी एक प्रकार की शक्ति है। इसे रासायनिक शक्ति कह सकते हैं। इसी प्रकार प्रकाश भी एक शक्ति है क्योंकि उसके शोषण से वस्तुएँ गरम हो जाती हैं और उसके द्वारा रासायनिक क्रिया भी होती है। फ़ोटोग्राफ़ी में जिस प्रकार चित्र बनाया जाता है वह प्रकाश की रासायनिक क्रिया का सबसे साधारण उदाहरण है।

यद्यपि ताप, प्रकाश, विद्युत्-धारा, रासायनिक क्रिया आदि भिन्न भिन्न प्रकार की शक्तियां मालूम होती हैं किन्तु यह भिन्नता केवल बाह्य है। वास्तव में सब शक्ति एक ही है। यह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि हम एक प्रकार की शक्ति को दूसरे रूप में परिणत कर सकते हैं। ताप से रासायनिक क्रिया का होना सभी को ज्ञात है। यह भी सभी जानते हैं कि बिजली के कारख़ानों में भाप के इंजन से विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है। ऊपर विद्युत्-धारा आदि से गतिज शक्ति उत्पन्न करने के उदाहरण दिये जा चुके हैं। उसी प्रकार गतिज शक्ति से ताप भी उत्पन्न हो सकता है। सर्दी में हाथों को रगड़ कर सभी गर्म करते हैं। चकमक से अग्नि उत्पन्न करना भी इसका अच्छा उदाहरण है। दियासलाई को जलाने में भी गतिज शक्ति ही ताप का संचार करती है और यह ताप रासायनिक क्रिया को प्रारम्भ करता है जिससे और अधिक ताप उत्पन्न होता है।

६४—शक्ति की अविनाशिता। शक्ति के इस परिणमन में एक और भी विशेषता है। किसी निर्दिष्ट परिमाण की गतिज शक्ति से ताप का भी एक निर्दिष्ट परिमाण प्राप्त होता है। उसी गतिज शक्ति से और भी अधिक ताप प्राप्त करना असम्भव है। इसी प्रकार जब कभी ताप विद्युत्-धारा उत्पन्न करता है तो उसकी मात्रा भी सर्वथा निर्दिष्ट होती है। जिस प्रकार रुपया, अठन्नी, चवन्नी धन के भिन्न रूप हैं किन्तु उनका विनिमय नियमबद्ध होता है और एक रुपये की सदा दो ही अठन्नी प्राप्त होती हैं ठीक वैसे ही शक्ति के इन रूपों को समझना चाहिए। इस दृष्टि से शक्ति की न उत्पत्ति सम्भव है और न नाश। शक्ति का एक रूप बदल कर दूसरा रूप अवश्य हो सकता है। किन्तु उसका परिमाण उतना ही रहता है घटता बढ़ता नहीं।

जिस प्रकार जड़ द्रव्य का नाश नहीं हो सकता उसी प्रकार शक्ति भी नाशहीन है। इस सिद्धान्त को शक्ति की अविनाशिता का सिद्धान्त कहते हैं।

प्रश्न

(१) फ़ुट-पाउंड, अश्व-सामर्थ्य, अर्ग और वाट शब्दों की व्याख्या करो।

(२) १० कग्रा० को २० मीटर ऊपर उठाने में कितना काम करना पड़ेगा ?

(३) हमें ४० फ़ुट गहरे कुएँ में से ३००० पाउंड पानी प्रति मिनट निकालना है। बताओ कि इस कार्य के लिए कितनी अश्व-सामर्थ्य का इंजन चाहिए ?

(४) ३ पाउंड भारवाली वस्तु को मेज़ पर १ पाउंड के बल से क्षितिज दिशा में २ फ़ुट खिसकाने में कितनी शक्ति व्यय करना होगा ?

(५) यदि इंजन और रेलगाड़ी का बोझ ३०० टन हो और पटरी की रगड़ के कारण प्रतिरोध ९ पाउंड फ़ी टन हो तो बताओ कि ६० मील प्रति घंटे के वेग से चलाने के लिए इंजन कितनी सामर्थ्य का होना चाहिए ?

(६) यदि इसी रेल को इतने ही वेग से ऐसी चढ़ाई पर चलना हो कि प्रत्येक मील में वह ९६ फ़ुट ऊँची चढ़ जाय तो इंजन की सामर्थ्य कितनी होनी चाहिए ?

(७) स्थितिज शक्ति किसे कहते हैं ? यदि ५०० ग्राम का पत्थर ६ मीटर नीचे गिर पड़े तो बताओ कि उसकी स्थितिज शक्ति में कितनी कमी हुई ?

(८) एक बन्दूक की गोली का भार २०० ग्राम है और वह ६ मीटर प्रति सैकंड के वेग से चलती है। बताओ कि उसमें कितनी शक्ति है ?

(९) १० पाउंड भार की वस्तु १०० फ़ुट नीचे गिर पड़ी। पृथ्वी से टकराते समय उसमें जो गतिज शक्ति थी उसका परिमाण फ़ुट-पाउंडों तथा फ़ुट-पाउंडलों में बतलाओ।

(१०) शक्ति के जितने रूप तुम्हें ज्ञात हों उनके नाम बतलाओ और ऐसे उदाहरण दो जिनमें शक्ति का एक रूप से दूसरे में परिवर्त्तन होता हो।

परिच्छेद ६

घनत्व, दबाव तथा उत्प्लावन

६५—**घनत्व** । यह हम सब लोगों का अनुभव है कि एक सेर रुई का बड़ा भारी गट्ठर बन जाता है । किन्तु एक सेर लकड़ी का आयतन इतना नहीं होता । एक सेर लोहे का आयतन तो अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़ा होता है । इससे मालूम होता है कि लोहे में द्रव्य बहुत ठूँस ठूँस कर भरा है किन्तु रुई में नहीं । साधारण बोल-चाल में हम कहते हैं कि लोहा भारी है और रुई हलकी किन्तु वैज्ञानिक भाषा में पदार्थों के इस वैषम्य के लिए हम **घनत्व** शब्द का प्रयोग करते हैं । लोहे का घनत्व
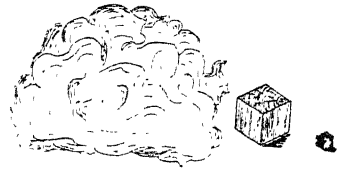
चित्र ३७

लकड़ी से अधिक है और लकड़ी का घनत्व रुई से अधिक है । किन्तु केवल अधिक और कम कहने से काम नहीं चलता । हमें यह भी जानना चाहिए कि लोहे का घनत्व लकड़ी के घनत्व से कितना अधिक है । इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं क्योंकि आवश्यकता इतनी ही है कि प्रत्येक वस्तु का एक नियत आयतन लेकर हम उसका भार नाप लें । यथा रुई, लकड़ी और लोहा प्रत्येक के एक एक घन सेंटीमीटर का तौल यदि क्रम से $\frac{१}{१००}$, ०·८ और ७·५ ग्राम हो तो हम कहेंगे कि इनका घनत्व क्रम से $\frac{१}{१००}$, ·८ या ७·५ ग्राम प्रति घ० स० है ।

यह न समझना चाहिए कि घनत्व का भेद केवल ठोस पदार्थों में ही होता है । द्रवों के घनत्व भेद का भी सबको अनुभव है । सभी जानते हैं

कि पारा बहुत भारी होता है। एक बोतल तेल की तौल एक बोतल पानी की तौल से कम होती है। इसी प्रकार गैसों में भी घनत्व का भेद होता है। यद्यपि सभी गैसों का घनत्व ठोसों और द्रवों की अपेक्षा बहुत कम होता है किन्तु उनमें हाइड्रोजन और हीलियम वायु की अपेक्षा बहुत हलकी होती हैं। हवाई जहाज़ों और बैलूनों में इसी लिए इन गैसों का प्रयोग होता है क्योंकि हलकी होने के कारण ये जहाज़ को ऊपर उड़ा ले जाती हैं।

किन्तु घनत्व नापने के लिए एक घन सेंटीमीटर पदार्थ का तौलना सर्वदा सुविधाजनक नहीं होता। क्योंकि ठीक एक घ० स० पदार्थ को पृथक करना आसान नहीं है और यदि पृथक् भी होगया तो सदैव उसे तौलना भी सम्भव नहीं है विशेषकर गैसों के एक घ० स० की तौल तो इतनी कम होती है कि कोई तराज़ू उसे सरलता से नहीं तौल सकती। इसलिए बहुधा बहुत बड़े आयतन की तौल नापी जाती है और उसे आयतन से विभाजित करके एक घ० स० की तौल निकाल ली जाती है। इस रीति से—

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{तौल}}{\text{आयतन}}$$

६६—आयतन का नाप। अतः किसी वस्तु का घनत्व मालूम करने के लिए उसका आयतन नापना आवश्यक है। यदि पदार्थ ठोस हुआ और उसका आकार ज्यामिति की किसी प्रसिद्ध आकृति के समान हुआ तब तो उसकी लम्बाई-मोटाई आदि नाप कर ही आयतन जाना जा सकता है। किन्तु यदि उसका आकार नियमबद्ध न होकर यों ही टेढ़ा मेढ़ा हुआ तो इस रीति से उसका आयतन नहीं नापा जा सकता। तब एक मापक जार (चित्र ३८) में पानी भर के उस वस्तु को उसमें डुबाना होगा। ऐसा करने से जितना उस वस्तु का आयतन होगा उतना ही पानी का पृष्ठ ऊँचा उठ जावेगा।

चित्र ३८

द्रवों का आयतन नापने में इतनी कठिनाई नहीं होती। क्योंकि उपर्युक्त मापक जार के अतिरिक्त बुरेट (चित्र ३९–क), पिपेट (चित्र ३९–ख) इत्यादि कई साधन उपलब्ध हैं। अतः इनका घनत्व नापने के लिए पहले एक सूखे बीकर को तौल कर उसमें बुरेट या पिपेट के द्वारा निर्दिष्ट आयतन का द्रव छोड़ देना होगा। तब तौल में जो वृद्धि हुई हो वही उस द्रव की तौल हुई। इसे आयतन से विभाजित करने ही से घनत्व मालूम हो जायगा।

गैसों का घनत्व नापने के लिए पहले एक टोंटी लगे हुए फ़्लास्क में गैस भरके उसे तौल लेना होगा और तब वायुपम्प के द्वारा उसमें से गैस को निकाल कर उसमें शून्य कर देना होगा। इस बार फ़्लास्क की तौल में जितनी कमी होगी वही गैस की तौल होगी और उस फ़्लास्क में जल भरके मापक जार से उसका आयतन भी नाप लेना होगा।

क ख

चित्र ३९

६७—आपेक्षिक घनत्व। उपर्युक्त विधि से घनत्व नापकर हम यह सरलता से जान सकते हैं कि अमुक पदार्थ जल की अपेक्षा कितने गुणा भारी है। इसमें केवल उस पदार्थ के घनत्व को जल के घनत्व से विभाजित करना होगा। जो भजनफल प्राप्त होगा उसे पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व कहते हैं।

$$\text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{पदार्थ की तौल}}{\text{उतने ही आयतन के जल की तौल}} = \frac{\text{पदार्थ का घनत्व}}{\text{जल का घनत्व}}$$

आगे चलकर आपेक्षिक घनत्व नापने की अन्य सरल विधियाँ बतलाई जावेंगी जिनमें पहले पदार्थ का घनत्व नापने की आवश्यकता न होगी और आपेक्षिक घनत्व सीधा निकल आवेगा। यहाँ यह स्मरण रखना

चाहिए कि आपेक्षिक घनत्व केवल संख्या-मात्र है और उसका परिमाण तौल और आयतन के एकांकों पर निर्भर नहीं है जैसे लोहे का आपेक्षिक घनत्व ७.७ है अर्थात् लोहा जल से ७.७ गुणा भारी होता है। किन्तु यदि लोहे का घनत्व बतलाना होगा तो कहना पड़ेगा कि वह ७.७ ग्राम प्रति घन-सेंटीमीटर या ४८०.५ पाउंड प्रति घन-फ़ुट है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि एक घ० स० जल की तौल प्रायः एक ग्राम होती है। अतः मीटरीय पद्धति के नाप में जल का घनत्व १ ग्राम प्रति घ० स० हुआ और इसलिए किसी पदार्थ का घनत्व तथा आपेक्षिक घनत्व एक ही संख्या के द्वारा व्यक्त हो जाते हैं। यथा

$$\text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{पदार्थ का घनत्व}}{\text{जल का घनत्व}} = \frac{\text{पदार्थ का घनत्व}}{१}$$

$$= \text{पदार्थ का घनत्व}$$

किन्तु अँगरेज़ी फ़ुट-पाउंड नाप में घनत्व और आपेक्षिक घनत्व एक ही संख्या के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकते। मीटरीय नाप में भी तापक्रम की भिन्नता के कारण सदैव घनत्व और आपेक्षिक घनत्व बिलकुल एक ही संख्या के द्वारा व्यक्त नहीं होते।

निम्न सारिणी में कुछ साधारण पदार्थों के आपेक्षिक घनत्व दिये हुए हैं:—

आपेक्षिक घनत्व

घन

जस्ता	७.१	प्लाटिनम	२१.५
लोहा	७.८	स्फटिक	२.६६
ताँबा	८.९	संगमरमर	२.५—२.८
चाँदी	१०.५	काँच	२.५
सुवर्ण	१९.३	पाराफीन (मोम)	.८८
अल्यूमिनम	२.७		
सीसा	११.४		

द्रव

जल	१·००	तैल—अरंडी का	·९७
पारा	१३·६	—अलसी का	·९२
अल्कोहाल	·८	—तारपीन	·८७
ईथर	·७१	—खनिज (मिट्टी का)	·८०
ग्लीसरीन	१·२६		

गैस (०°श और ७६० मम० पर)

वायु	·००१२९३	आक्सिजन	·००१४२९
हाइड्रोजन	·००००८९९	नाइट्रोजन	·००१२५१
हीलियम	·०००१७८४	कार्बन डायोक्साइड	·००१९७७

६८—दबाव । मान लीजिए कि मेज़ पर एक पुस्तक रखी है। इसके भार के कारण मेज़ पर दबाव पड़ रहा है किन्तु उसके सारे पृष्ठ पर नहीं। जितना पृष्ठ पुस्तक से लगा हुआ है केवल उस पर ही यह दबाव है। यदि इतने ही भार की किन्तु कम लम्बाई चौड़ाई वाली पुस्तक उक्त पुस्तक के स्थान पर रख दी जाय तो स्पष्ट है कि अब यह भार पहले की अपेक्षा मेज़ के छोटे भाग को दबावेगा। अतः यह भी स्पष्ट है कि मेज़ के प्रत्येक दबे हुए भाग को अब पहले की अपेक्षा अधिक दबाव सहना पड़ेगा। इसी को संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि अब दबाव अधिक है। इस दृष्टि से दबाव केवल दबानेवाले बल ही पर निर्भर नहीं है। कितने क्षेत्रफल पर वह बल लग रहा है यह भी जानना आवश्यक है। अतः दबाव की परिभाषा यह नियत कर दी गई है कि क्षेत्रफल के एकांक पर जितना बल लगे उसे दबाव कहते हैं।

अर्थात् $$\text{दबाव} = \frac{\text{बल}}{\text{क्षेत्रफल}}$$

यदि पुस्तक का क्षेत्रफल २०० वर्ग सम० हो और उसका भार ८०० ग्राम हो तो हम कहेंगे कि मेज़ पर दबाव ४ ग्राम प्रति वर्ग सम० है। यद्यपि सुविधा के लिए ऐसा कहने का रिवाज होगया है किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि वास्तव में उपर्युक्त दबाव ४ × ग डाइन प्रति वर्ग सम० के बराबर है (ग = गुरुत्ववृद्धि)। क्योंकि ग्राम बल की इकाई नहीं है और एक ग्राम-भार का बल वास्तव में ग डाइन के बराबर होता है।

यद्यपि ऊपर के उदाहरण में दबाव वस्तु के भार के कारण अर्थात् पृथ्वी के गुरुत्वबल के कारण बतलाया गया है किन्तु यह न समझना चाहिए कि दबाव सदा इसी कारण से होता है और उसकी दिशा सदैव नीचे की ओर ही होती है। यदि हम दीवार पर धक्का लगावें तो हमारे बल के कारण भी उस पर दबाव पड़ेगा और उसकी दिशा क्षैतिज होगी। इसी प्रकार जब फुटबाल में या पैरगाड़ी की नली में हवा भर देते हैं तो यह हवा उसके रबड़ पर दबाव डालती है। इस दबाव का कारण भी हवा का भार नहीं होता और उसकी दिशा भी रबड़ के भिन्न भिन्न भागों पर भिन्न भिन्न होती है। इस गैसीय दबाव का कारण उसके अणुओं की गति है। ये अणु बड़े वेग से दौड़ते रहते हैं यह पहले बतलाया जा चुका है। इस दौड़ में ये रबड़ से या जिस किसी पात्र में भी गैस बंद हो उसकी दीवार से अवश्य ही टकराते हैं और प्रत्येक टक्कर के कारण उस पर कुछ बल भी लगता है। यद्यपि एक अणु की टक्कर से बहुत ही थोड़ा बल लग सकता है किन्तु करोड़ों टक्करों का सम्मिलित परिणाम अवश्य ही इतना हो जाता है कि हम उसका प्रभाव प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इन टक्करों के कारण प्रत्येक वर्ग सम० पर जितना बल लगता है उसे गैस का दबाव कहते हैं।

अब मान लीजिए कि हमारे पास लोहे के ९ घनाकार टुकड़े एक एक घन सम० आयतनवाले हैं, और हमने उन्हें मेज़ पर एक के ऊपर एक चित्र ४० की भांति रख दिया है। प्रत्येक टुकड़े का भार ७·७ ग्राम है क्योंकि लोहे का घनत्व ७·७ ग्रा० प्रति घ० सम० होता है। अतः मेज़ पर इस लोहस्तम्भ का दबाव ९ × ७·७ ग्राम प्रतिवर्ग सम० अर्थात् ९ × ७·७ × ग

डाइन प्रति वर्ग सम० हुआ। यदि इन टुकड़ों के स्थान में एक लोह का दंड इतना ही मोटा और ५ सम० ऊँचा होता तो उसका दबाव भी इतना ही होता और यदि उस दंड की मोटाई दुगुनी या और अधिक भी होती तो भी दबाव के परिमाण में कुछ अंतर न होता क्योंकि यदि उसका भार बढ़ जाता तो जितने क्षेत्रफल को वह दबा रहा है वह भी उतना ही बढ़ जाता। अतः हम कह सकते हैं कि लोह-स्तम्भ का दबाव = उँचाई × घनत्व × गुरुत्व-वृद्धि। यदि इतनी ही उँचाईयुक्त सीसे का स्तम्भ हो तो उसके कारण दबाव का परिमाण लोह-स्तम्भ से $\frac{११.२}{७.७}$ = १.४५ गुणा अधिक होगा।
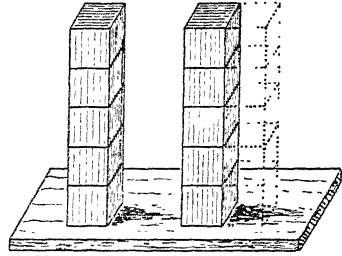
चित्र ४०

६९—**द्रवों का दबाव**। लोह और सीसा ठोस पदार्थ हैं अतः उनके स्तम्भ बनाने में पार्श्व से सहारा लगाने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु यदि स्तम्भ बहुत ऊँचा हो जावे तो अवश्य ही नीचे के घन दबाव के कारण दब कर फैल जावेंगे। द्रव पदार्थ थोड़े भी दबाव को सहन नहीं कर सकते। अतः उन्हें किसी पात्र में रखना आवश्यक है जिससे पात्र की दीवार पार्श्व से सहारा लगा सके। इसका अर्थ वास्तव में यह है कि द्रव में दबाव केवल नीचे ही की ओर नहीं होता। प्रत्येक दिशा में उसका वही परिमाण होता है। द्रव के बीच में यदि हम किसी घनाकार भाग की कल्पना करें (चित्र ४१) तो उसके ऊपर नीचे और चारों पार्श्वों पर बराबर बलों की भी कल्पना करनी होगी। मान लीजिए कि एक नली ऊर्ध्वाधर मेज़ पर खड़ी कर दी जाय और इसमें कोई द्रव भर दें तो स्पष्ट है कि उसके पेंदे पर द्रव का
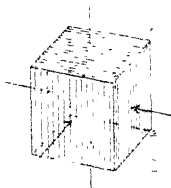
चित्र ४१

दबाव भी ठीक उपर्युक्त रीति से उँचाई, घनत्व और गुरुत्व-वृद्धि को गुणा करने से प्राप्त हो जायगा। और लोह-स्तम्भ ही की भांति यह दबाव नली के अनुप्रस्थ परिच्छेद के क्षेत्रफल पर तनिक भी निर्भर नहीं होगा।

यद्यपि दबाव का नाप समझने के लिए ऊपर नली का ज़िक्र किया गया है किन्तु वास्तव में उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस किसी भी में पात्र द्रव भरा हो उसके पेंदे के प्रत्येक वर्ग सम० पर हम एक द्रव-स्तम्भ की कल्पना कर सकते हैं (चित्र ४२)। और इसी द्रव-स्तम्भ के द्वारा पेंदे पर दबाव की गणना भी कर सकते हैं।

चित्र ४२

अब यह समझना कठिन नहीं है कि द्रवों का पृष्ठ-देश सदैव समतल और क्षैतिज क्यों होता है अथवा भिन्न भिन्न आकृति की नली द्वारा सम्बन्धित पात्रों में भरने पर सर्वत्र ही द्रव का पृष्ठ-देश समान उँचाई पर क्यों रहता है (चित्र ४३)।
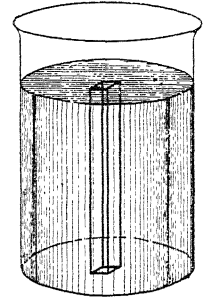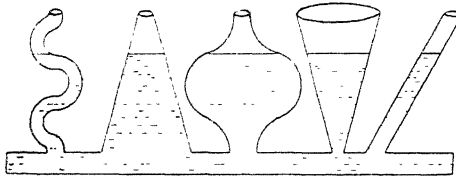
चित्र ४३

मान लीजिए कि किसी स्थान पर द्रव-स्तम्भ की उँचाई अधिक है। तब इस स्तम्भ के पेंदे पर दबाव अन्य स्थानों से अधिक होगा। (चित्र ४४)। यथा क पर ख की अपेक्षा अधिक दबाव है। इसका आवश्यक परिणाम यह होगा कि क से द्रव ख की ओर बहेगा और क पर द्रव की उँचाई घटेगी और ख पर बढ़ेगी। सामञ्जस्य तब होगा
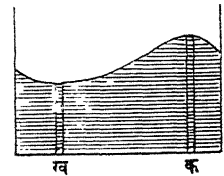
चित्र ४४

जब क और ख के दबाव बराबर होंगे और यह तभी हो सकता है जब द्रव का पृष्ठ-देश क्षैतिज हो।

इस सम्बन्ध में एक बात स्मरण रखने की यह है कि द्रव के बहने के गुण के कारण एक ही तल के प्रत्येक स्थान पर दबाव का परिमाण बराबर रहेगा। चाहे उस स्थान के ऊपर के द्रवस्तम्भ की प्रत्यक्ष ऊँचाई कितनी ही क्यों न हो। जैसे चित्र ४५ के पात्रों में यद्यपि क पर द्रव की ऊँचाई ख की अपेक्षा अधिक है किन्तु दबाव ख पर भी क के बराबर ही है। इसका कारण यह है कि ख पर
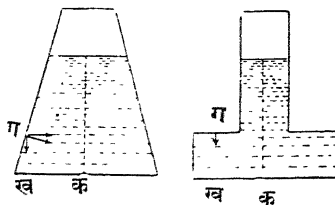
चित्र ४५

केवल स्तम्भ गख का ही दबाव नहीं है किन्तु इस स्तम्भ को पात्र भी ग पर नीचे की ओर दबा रहा है। अतः ख पर पूर्ण दबाव इन दोनों का योग है और जब तक यह योग क के दबाव के बराबर न हो जाय तब तक द्रव क से ख की ओर बहता ही रहेगा। सामञ्जस्य न हो पावेगा। इस दृष्टि से किसी भी स्थान पर दबाव की गणना करने का जो सूत्र ऊपर दिया गया है उसमें उस स्थान पर के द्रव-स्तम्भ की ऊँचाई के स्थान में यदि उस स्थान की पृष्ठ-देश से निचाई कहें तो अधिक अच्छा हो, अर्थात्—

दबाव = द्रव-घनत्व × गुरुत्व-वृद्धि × पृष्ठ-देश से स्थान की निचाई।

७०—पानी के नल। नल के द्वारा नगर के प्रत्येक भाग में और मकानों के दूसरे और तीसरे मंज़िल पर पानी पहुँचाने के लिए भी जल के इस गुण का उपयोग किया जाता है। या तो किसी ऊँचे टीले, पहाड़ी आदि पर एक बड़ा कुंड बना लिया जाता है या यदि ऐसा कोई स्थान उपलब्ध न हो तो ऊँची मीनार बना कर उस पर लोहे की बड़ी बड़ी टंकियां रख दी जाती हैं। पम्प के द्वारा इन्हीं में पानी भर दिया जाता है। नल के द्वारा इसी ऊँचे पानी का दबाव टोंटी पर पड़ता है। जितनी ही ऊँची ये टंकियां होंगी उतने ही वेग से पानी टोंटी में से

निकलेगा। यह स्पष्ट है कि यदि कोई मकान टंकियों के बराबर ही उँचाई पर हो या उनसे भी ऊँचे पर हो तो उसमें पानी नहीं पहुँच सकता।

७१—उत्प्लावन। जिस किसी को नदी या तालाब में नहाने का अनुभव है और विशेषकर जो तैरना जानता है, उसने कई बार देखा होगा कि पानी में डुबाने से वस्तुएँ हलकी जान पड़ती हैं। अपने शरीर ही को पानी में डुबाने पर ऐसा जान पड़ता है कि वह स्वयं ही ऊपर उठ रहा है। बड़े भारी भारी मनुष्यों को भी तैरना सिखलाते समय लोग केवल एक हाथ पर उठाये रहते हैं। इन बातों से ज्ञात होता है कि पानी प्रत्येक वस्तु पर कुछ बल ऊपर की ओर गुरुत्व के विरुद्ध लगाता है। वस्तु के वास्तविक भार में से इस उत्प्लावक बल को घटाने पर जो शेष रहता है उसी भार को हमें उठाना पड़ता है।

७२—अर्कमीदिस का सिद्धान्त। एक भारी से पत्थर को रस्सी के द्वारा कांटे से लटका कर तौल लो। तब कांटे से लटके ही लटके उसे पानी में डुबा दो। तुरन्त ही ज्ञात हो जायगा कि उसका भार घट गया है। भार में जो कमी हुई है वही उस वस्तु पर जल का उत्प्लावक बल है। यदि हम कई वस्तुएँ ऐसी लें कि जिनका आयतन सरलता से नापा जा सके और उपर्युक्त विधि से प्रत्येक पर जल का उत्प्लावक बल नाप लें तो हमें ज्ञात हो जायगा कि इस बल का परिमाण सदैव वस्तु के बराबर आयतनवाले जल के भार के बराबर होता है। यथा यदि किसी वस्तु का आयतन १०० घ० सम० हो तो उस पर जो उत्प्लावक बल लगेगा वह १०० घ० सम० जल के भार अर्थात् १०० ग्राम के भार के बराबर होगा। जल में डुबाने पर उस वस्तु का भार १०० ग्राम घट जायगा।

यदि जल के स्थान में कोई अन्य द्रव लिया जाय तो भार की कमी उसी आयतनवाले द्रव के भार के बराबर होगी। उपर्युक्त उदाहरण में यदि १०० घ० सम० आयतनवाली वस्तु ·८ ग्राम प्रति घ० सम० घनत्ववाले तैल में डुबाई जाती तो उसके भार में १०० घ० सम० तैल के भार अर्थात्

८० ग्राम की कमी होती। इस नियम को ग्रीस देश के अर्कमीदिस नामक विद्वान् ने ईसा के प्रायः २५० वर्ष पहले मालूम किया था इसी से यह अर्कमीदिस का सिद्धान्त कहलाता है।

इस नियम का कारण समझना कुछ कठिन नहीं है। मान लीजिए कि कख पीतल का एक चौकोर पिंड है जिसकी लम्बाई ल सम०, चौड़ाई च सम० और मोटाई म सम० है। इसे घ घनत्ववाले द्रव में ऊर्ध्वाधर चित्र ४६ की नाईं इस प्रकार डुबा दिया है कि ग सम० की गहराई पर क स्थित है। अतः ख की गहराई ग + ल सम० हुई। अब क पर द्रव का दबाव नीचे की ओर है और उसका परिमाण ग × घ ग्राम प्रति वर्ग सम० है अर्थात् इस पिंड पर द्रव नीचे की ओर ग × घ × च × म ग्राम का बल लगा रहा है। इसी प्रकार ख पर द्रव का दबाव ऊपर की ओर है और उसके बल का परिमाण (ग + ल) × घ × च × म ग्राम है। अतः पिंड पर जो
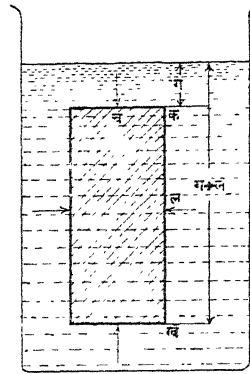
चित्र ४६

संयुक्त बल ऊपर की ओर द्रव लगा रहा है उसका परिमाण इन दोनों बलों के अन्तर अर्थात् ल × च × म × घ ग्राम हुआ। किन्तु ल × च × म उक्त पिंड का आयतन है। अतः यह संयुक्त बल ल × च × म × घ उस पिंड ही के बराबर आयतनवाले द्रव का भार हुआ और यही पिंड के भार में से घट जावेगा।

७३—तैरना। अर्कमीदिस के सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि उत्प्लावक बल केवल वस्तु के आयतन और द्रव के घनत्व पर निर्भर है। चाहे वस्तु सीसे की अत्यन्त भारी हो अथवा लकड़ी की बहुत ही हलकी। निमज्जित वस्तु के घनत्व से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। अब मान लीजिए कि किसी वस्तु का आयतन तो १०० घ० सम० है और भार केवल

८० ग्राम। यदि इसे जल में डुबा दें तो जल इस पर १०० ग्राम का बल ऊपर की ओर लगावेगा। अर्थात् उसके भार में १०० ग्राम की कमी हो जायगी। ८० ग्राम तो कुल भार और उसमें १०० ग्राम की कमी का क्या अर्थ ? क्या अब उसका भार–२० ग्राम हो जायगा ? अवश्य। अब उसे निमज्जित करने के लिए उस पर नीचे की ओर २० ग्राम का बल लगाना पड़ेगा। और यदि यह बल न लगावें तो पानी उसे ऊपर उठा देगा। किन्तु ज्यों ज्यों उसका कुछ भाग जल के बाहिर निकलता जायगा त्यों त्यों जल का उत्प्लावक बल भी कम होता जायगा क्योंकि वह तो सदा निमज्जित भाग के आयतन के जल के भार के बराबर रहेगा। अतः जब उसका २० घ० सम० भाग जल के बाहिर हो जायगा तब उत्प्लावक बल का परिमाण भी घट कर ८० ग्राम रह जायगा। इस दशा में गुरुत्व-बल और उत्प्लावक बल में साम्य होकर वस्तु न ऊपर उठ सकेगी और न नीचे हट सकेगी। अर्थात् वह जल पर तैरती रहेगी।

तैरने के सम्बन्ध में दो बातें स्मरण रखने योग्य हैं। एक तो यह कि प्रत्येक तैरनेवाली वस्तु का कुछ न कुछ भाग जल में निमज्जित अवश्य रहता है। बहुधा यह निमज्जित भाग ऊपर दिखलाई देनेवाले भाग से अधिक होता है। दूसरे यह कि तैरनेवाली वस्तु का भार उस वस्तु के बराबर आयतनवाले द्रव के भार से कम होना चाहिए। अर्थात् उसका घनत्व जल से कम होना चाहिए। यही कारण है कि लोहा, सीसा आदि पदार्थ नहीं तैर सकते और लकड़ी, मोम आदि तैर सकते हैं। किन्तु यह नियम ठोस वस्तुओं के लिए ही है। जो वस्तुएँ पोली होती हैं वे लोहे आदि की बनी होने पर भी तैर सकती हैं। क्योंकि लोह का घनत्व जल से अधिक होता है किन्तु पोली वस्तु सब लोहमय नहीं होती। अवश्य ही वह बराबर आयतनवाले जल से हलकी होती है क्योंकि उसका पोला भाग या तो शून्य होता है या वायु जैसे हलके पदार्थ से पूर्ण होता है। यही कारण है कि बड़े बड़े लोहे के बने जहाज़ हज़ारों मन सामान लाद कर भी समुद्र पर तैर सकते हैं। इनका इतना भाग जल-निमग्न रहता है कि उसके बराबर आयतनवाले जल का भार पूरे जहाज़ के भार

के बराबर हो। जब उसमें सामान लाद दिया जाता है तो उसका भार बढ़ जाता है और तब वह थोड़ा और नीचे बैठ जाता है ताकि उसके द्वारा अधिक जल स्थानान्तरित हो जाय। बड़े बड़े हवाई जहाज़ (चित्र ४८) और गुब्बारे (चित्र ४७) भी इसी सिद्धान्त पर बनाये जाते हैं। उनकी विशाल पोल में हाइड्रोजन या हीलियम भर दिया जाता है जिससे मनुष्यों और सामान का भार मिला कर भी वे वायु से हलके होते हैं।* पनडुब्बी नौका साधारण जहाज़ के समान समुद्र पर तैरने के लायक़ बनाई जाती है। किन्तु उसमें बड़ी

चित्र ४७

बड़ी टंकियां होती हैं। जब इसे डुबकी लगानी होती है तो इन टंकियों में
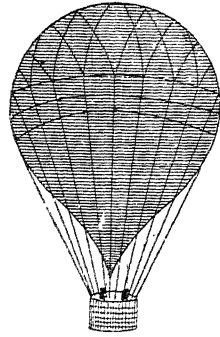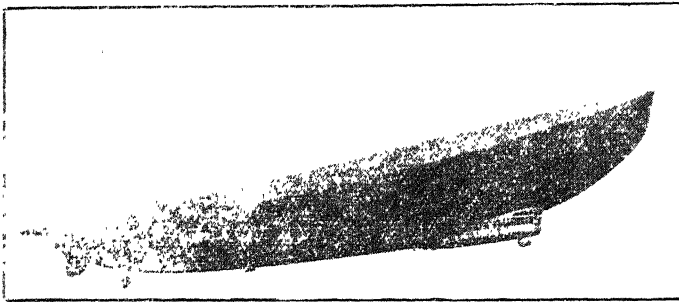
चित्र ४८

जल भरने के द्वार खोल दिये जाते हैं और जब ये जल से परिपूर्ण हो जाती

* वायुयान में हाइड्रोजन या हीलियम नहीं भरी रहती और वह वायु से भारी होता है। उसके उड़ने का कारण अन्यत्र बताया गया है।

हैं तब इस नौका का भार जल से कुछ अधिक हो जाता है। अतः वह धीरे धीरे डूब जाती है। जब जल के ऊपर आना होता है तब पम्पों के द्वारा इन टंकियों का पानी खाली कर दिया जाता है।

७४—आपेक्षिक घनत्व नापने की विधि। आपेक्षिक घनत्व की परिभाषा पहले दी जा चुकी है:—

$$\text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{वस्तु की तौल}}{\text{समान आयतनवाले जल की तौल}}$$

इसे नापने के लिए पहले वस्तु का भार नापना होगा और तब उसी आयतनवाले जल का भार नापना होगा। जब द्रव का आपेक्षिक घनत्व नापना हो तब तो यह काम सरल है। क्योंकि यदि हम किसी पात्र को पहले खाली तौल लें और तब उसमें एक बार जल भरके तौल लें और एक बार वह दूसरा द्रव भर के तौल लें तो द्रव का भी भार ज्ञात हो जायगा और समान आयतनवाले जल का भार भी ज्ञात हो जायगा। इस कार्य को यथार्थतापूर्वक करने के लिए जिस पात्र का उपयोग किया जाता है उसे **घनत्व-बोतल** (चित्र ४९) कहते हैं। इसके डाट में पतला सा छिद्र रहता है ताकि वह द्रवसे या जल से पूरी भरी जा सके और हवा का एक भी बुलबुला उसमें न रहे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि द्रव को तौलने के पहले इसे अच्छी तरह सुखा लेना होगा।

चित्र ४९

किन्तु ठोस पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व निकालते समय समान आयतनवाले जल का भार मालूम करना कुछ कठिन है। पहले वस्तु का आयतन नापना होगा और तब उसी आयतनवाले जल का भार नापना होगा। यह नाप इतनी अच्छी नहीं हो सकती क्योंकि आयतन इतनी यथार्थता से

नहीं नापा जा सकता जितना कि भार। किन्तु अर्कमीदिस के सिद्धान्त के अनुसार यह कार्य उतना ही सरल और उतना ही यथार्थतापूर्ण है जितना कि भार की नाप। वस्तु को पतले रेशम के धागे के द्वारा तराजू के पलड़े से लटका दीजिए। (चित्र ५० क) और उसको तौल लीजिए। तब एक बीकर में शुद्ध जल भर के उस वस्तु को उसमें डुबा दीजिए। (चित्र ५० ख) अब उसका भार घट जायगा। भार की जो कमी होगी वही समान आयतनवाले जल का भार है।
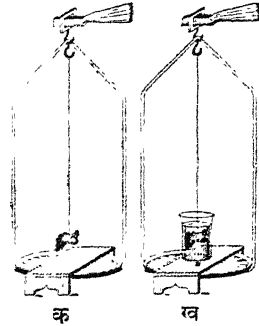
चित्र ५०

$$\text{अतः} \quad \text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{वायु में वस्तु का भार}}{\text{वस्तु के भार में जल निमज्जन के कारण कमी}}$$

$$= \frac{\text{वायु में वस्तु का भार}}{\text{वायु में वस्तु का भार} - \text{जल में वस्तु का भार}}$$

यह स्पष्ट है कि यह विधि केवल उन वस्तुओं के लिए ही ठीक है जो जल में डूब जाती हों। यदि मोम इत्यादि किसी ऐसी वस्तु का आपेक्षिक घनत्व निकालना हो जो जल से हलकी हो तो उसे किसी भारी वस्तु के साथ बांध देते हैं और तब दोनों के सम्मिलित भार की कमी नाप लेते हैं। इस कमी में से केवल उस भारी वस्तु के भार की कमी को घटाने पर हलकी वस्तु के भार की कमी ज्ञात हो जाती है। स्मरण रहे कि यह कमी उस वस्तु के वायु में के भार से अधिक निकलेगी क्योंकि पहले बतलाया जा चुका है कि जल में ऐसी वस्तुओं का भार ऋणात्मक हो जाता है।

इसी विधि से द्रवों का आपेक्षिक घनत्व भी नापा जा सकता है। एक भारी ठोस वस्तु लेकर पहले उसे जल में निमज्जित करने से जो भार में

कमी होती है वह नाप ली जाती है और तब उस द्रव में निमज्जित करने से जो कमी होती है वह भी नाप ली जाती है। स्पष्ट है कि—

$$\frac{\text{द्रव में निमज्जन से भार की कमी}}{\text{जल में निमज्जन से भार की कमी}} = \frac{\text{वस्तु के आयतनवाले द्रव का भार}}{\text{उतने ही आयतनवाले जल का भार}}$$

= द्रव का आपेक्षिक घनत्व।

७५—द्रव-घनत्वमापक। तैरने का जो सिद्धान्त ऊपर बतलाया गया है उससे स्पष्ट है कि तैरनेवाली वस्तु का भार उसके द्वारा स्थानान्तरित द्रव के भार के बराबर होता है। आपेक्षिक घनत्व नापने के लिए इस सिद्धान्त का भी उपयोग किया जाता है। चित्र ५१ के आकार की एक वस्तु इस काम में आती है। इसे निकलसन का द्रव-घनत्वमापक कहते हैं। यह बहुधा धातु का बना होता है और अन्दर से पोला होता है। इसके नीचे का भाग क सीसे इत्यादि भारी पदार्थ से भरा रहता है जिससे यह द्रव में सीधा खड़ा हुआ तैर सके। ऊपर एक कटोरी ख होती है और उसकी पतली गर्दन में एक तार घ बँधा होता है। इसे द्रव में तैरा कर ख में इतने बाट $ब_1$ रख देते हैं कि घ की नोक तक यह निमग्न हो जाय। यदि इस द्रव-घनत्व-मापक का भार भ हो तो स्थानान्तरित द्रव का भार ($भ + ब_1$) हुआ। अब यदि इसे जल में तैरावें और घ की नोक तक निमग्न करने के लिए ख में बाट $ब_2$ रखना पड़े तो उतने ही आयतनवाले जल का भार ($भ + ब_2$) हुआ।
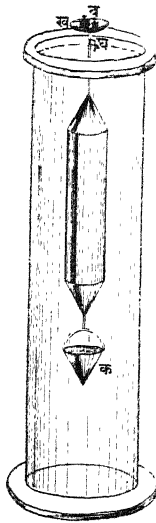
चित्र ५१

$$\text{अतः आपेक्षिक घनत्व} = \frac{भ + ब_1}{भ + ब_2}$$

द्रव-घनत्वमापक एक दूसरे प्रकार का भी होता है। यह बहुधा काँच का बना होता है और उसका आकार चित्र ५२ के जैसा होता है।

इसमें प पोला भाग है, क में सीसे की गोलियाँ या पारा भरा है और ख पतली नली है जिसमें माप-रेखांकित काग़ज़ अन्दर की ओर चिपका हुआ है। शुद्ध जल में तैराने पर यह एक रेखाविशेष तक निमग्न होगा। इस रेखा पर १·००० लिख दिया जाता है। जल से अधिक घनत्ववाले द्रव में यह इससे कम डूबेगा और जल से हलके द्रव में अधिक डूब जायगा। ज्ञात घनत्व के द्रवों में डुबा डुबा कर प्रत्येक रेखा पर तत्संबंधी घनत्व अंकित कर देते हैं। फिर किसी भी द्रव में इसे डाल कर जिस रेखा तक यह डूबे उससे तुरन्त उस द्रव का घनत्व ज्ञात हो जाता है।

७६—दुग्ध-मापक। दूध में बेचनेवाले बहुधा जल मिला देते हैं। शुद्ध दूध का घनत्व प्रायः १·०२९ से १·०३३ तक होता है। जल मिल जाने पर यह घनत्व घट जाता है। अतः द्रव-घनत्वमापक से तुरन्त दूध की शुद्धता की परीक्षा हो सकती है। इस कार्य के लिए जिस द्रव-घनत्वमापक का प्रयोग किया जाता है उसे दुग्ध-मापक कहते हैं। किन्तु यह न समझना चाहिए कि जिस दूध का घनत्व ठीक हो वह वास्तव में शुद्ध ही होता है। दूध में से मलाई या मक्खन निकाल लेने पर उसका घनत्व बढ़ जाता है क्योंकि मलाई या मक्खन का घनत्व बहुत कम होता है। मक्खन निकाले हुए दूध में पानी मिला कर उसका घनत्व पुनः ठीक कर दिया जा सकता है और तब दुग्ध-मापक के द्वारा इस धोखेबाज़ी का पता नहीं लगाया जा सकता।

चित्र ५२

प्रश्न

(१) घनत्व बताओ यदि (क) २५ घ० सम० काँच का भार ६२·५ ग्राम है (ख) ६ घ० सम० चाँदी का भार ६३ ग्राम है (ग) १५० घ० सम० दूध का भार १५४·५ ग्राम है (घ) १० लिटर वायु का भार ·९ ग्राम है।

(२) निम्नलिखित वस्तुओं का भार बताओ :—

(क) २० घ० सम० पीतल, घनत्व=८·४ ग्रा० प्रति घ० सम०
(ख) ४० घ० सम० पारा, घनत्व=१३·६ ग्रा० प्रति घ० सम०
(ग) ८ घ० सम० गंधक, घनत्व= २ ग्रा० प्रति घ० सम०
(घ) २०० घ० सम० काग, घनत्व= $\frac{१}{४}$ ग्रा० प्रति घ० सम०

(३) निम्नलिखित वस्तुओं का आयतन बताओ:—

(क) ५२० ग्राम अलूमिनियम, घनत्व=२·६ ग्रा०/घ० सम०

(ख) ३८·६ ग्राम सुवर्ण, घनत्व=१९·३ ग्रा०/घ० सम०

(ग) ५१ ग्रा० तैल, घनत्व=·८५ ग्रा०/घ० सम०

(घ) ४६० ग्रा० वर्फ़, घनत्व=·९२ ग्रा०/घ० सम०

(४) निम्नलिखित घनत्वों को पाउंड प्रति घ० फ़ुट की संख्या में व्यक्त करो:—

(क) ११·४ ग्रा०/घ० सम० (ख) ८·९ ग्रा०/घ० सम०

(ग) १·२ ग्रा०/लिटर

(५) ५० सम० लम्बे लोहे के तार का भार २·४२ ग्राम है। यदि लोह का घनत्व ७·७ ग्रा०/घ० सम० हो तो उस तार का व्यास बताओ।

(६) शुद्ध गंधकाम्ल का घनत्व १·८४ ग्रा०/घ० सम० है। इसमें कितने प्रतिशत जल मिलाया जाय कि घनत्व १·१ ग्रा०/घ० सम० हो जाय।

(७) ६० फ़ुट ऊँचे मकान पर जल की टंकी है और पृथ्वी से ४ फ़ुट ऊँचे पर नल लगा है। बताओ कि इस नल पर जल का कितना दबाव है।

(८) एक U—नली में कुछ पारा भरा है। एक भुजा में १२ सम० तेल भर दिया गया है और दूसरी भुजा में १० सम० जल भरने से दोनों भुजाओं में पारा बराबर होगया। तेल का घनत्व कितना है?

(९) पानी में एक लकड़ी का टुकड़ा तैर रहा है। जिसका आयतन ५० घ० सम० है और घनत्व ·५ ग्रा०/घ० सम०। बताओ कि उसका कितना भाग पानी में डूबा है और कितना भार उस पर रखने से वह पूरा डूब जायगा?

(१०) एक रबड़ की थैली हवा से फुला ली गई है। उसका भार २०० ग्राम है और वह जल में ५ क० ग्र० भार को लेकर भी तैर सकती है। तो फूलने पर उसका आयतन कितना है?

(११) लोह जल से ७·७ गुना भारी है। फिर लोहे के बने जहाज पानी पर क्यों तैरते हैं?

(१२) समुद्र के जल में तैरना नदी के जल में तैरने की अपेक्षा क्यों अधिक सरल है?

(१३) एक मनुष्य का भार १४० पाउंड है और उसका आपेक्षिक घनत्व १·०५। बताओ कि उसके जल में डूबे हुए शरीर को सम्हालने के लिए कितने बल की आवश्यकता है? इस कार्य के लिए १० वें प्रश्न के समान रबड़ की थैली का कितना आयतन होना चाहिए?

(१४) सीसे के एक टुकड़े का भार १७१ ग्राम है। जल में लटका कर तौलने से उसका भार १५६ ग्राम निकला तो उसका घनत्व कितना था?

(१५) उपर्युक्त सीसे का टुकड़ा तेल में तौलने पर १५९ ग्राम निकला। उस तेल का घनत्व कितना था?

(१६) एक पत्थर पानी में डूबा हुआ डोरे से लटक रहा है। डोरे को खींच कर पत्थर को पानी में से बाहिर निकालने का प्रयत्न करने से डोरा क्यों टूट जाता है? यदि डोरा डूबे हुए पत्थर के अतिरिक्त २०० ग्राम का भार और सम्हाल सकता है तो बताओ कि उस पत्थर का कितना भाग बाहिर निकालने पर डोरा टूट जायगा?

(१७) कैसे परीक्षा करोगे कि कोई अँगूठी शुद्ध सोने की है या नहीं?

(१८) १०० घ० सम० आयतनवाली बंद मुँह की बोतल का भार ३० ग्राम है। उसमें कितने घ० सम० पारा (घनत्व १३·६) भरा जाय कि बोतल पानी में डूब जाय?

(१९) २ घ० सम० पीतल (घनत्व=८·४) और ३१ घ० सम० लकड़ी (घनत्व=·५) जोड़ दिये गये। बताओ यह पानी में तैरेगा या डूब जायगा।

(२०) पनडुब्बी नौका समुद्र में नीचे कैसे डूबती है? और ऊपर कैसे उठ आती है?

(२१) यदि बैलून का भार ६०० पाउंड हो और उसमें २५,००० घ० फ़ुट हाइड्रोजन भरा हो जिसका घनत्व ·०५६ पाउंड/घ० फ़ुट हो तो बताओ कि वह कितना भार लेकर उड़ सकता है। यदि हाइड्रोजन से भी १०० गुणी हलकी कोई गैस प्राप्त हो सके तो इसकी उत्थान-शक्ति में कितनी वृद्धि होगी?

(२२) दुग्ध-मापक बनाने और उसका व्यवहार करने की विधि लिखो।

परिच्छेद ७

वायु का दबाव तथा पम्प

७७—वायु का दबाव। पिछले परिच्छेद में द्रवों के दबाव का वर्णन किया गया है और यह बतला दिया गया है कि यदि चित्र ५३ के सदृश आकार की U-नली में कोई द्रव यथा पारा भर दिया जाय तो इस नली की दोनों भुजाओं में पारे के पृष्ठ समान तल पर स्थित रहेंगे। अब यदि इसकी एक भुजा से रबड़ की नली जोड़कर उसमें फूँक मारें तो आप देखेंगे कि पारद-पृष्ठ क दब कर क' पर पहुँच गया है और ख चढ़कर ख' पर जा पहुँचा है। इससे मालूम होता है कि क को हमारी फूँक

चित्र ५३

ने दबा दिया है अथवा यों कहिए कि U-नली की जिस भुजा में हमने फूँक मारी उसकी वायु पारद-पृष्ठ पर कुछ दबाव डालती है। यदि रबड़ की नली में फूँक न मारकर हम उसकी वायु को श्वास के साथ खींच लेते तो क ऊपर चढ़ जाता और ख नीचे उतर जाता। इस बार जान पड़ता है कि ख पर कुछ दबाव पड़ रहा है। वास्तव में बात यह है कि जब दोनों भुजाओं में पारद का पृष्ठ बराबर ऊँचा था उस समय भी दोनों भुजाओं की वायु पारद को दबा रही थी। किन्तु इस दाब का परिमाण दोनों ओर बराबर होने के कारण वह हमें मालूम नहीं होता था। जिस समय फूँक मारकर हमने एक भुजा में वायु की मात्रा बढ़ा दी तो उस ओर का दाब भी बढ़ गया और पारा क से क' पर उतर आया और जब हमने इस भुजा की वायु को श्वास से खींच
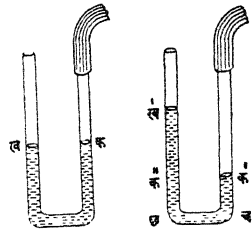
लिया तो क पर का दाब ख पर के दाब से कम होगया और ख नीचे दब गया।

७८—दाब-मापक। इस अत्यन्त सरल प्रयोग के द्वारा न केवल यह सिद्ध होता है कि वायु का भी कुछ दबाव होता है किन्तु इसके द्वारा हम दोनों भुजाओं की वायु के दाबों का अन्तर भी नाप सकते हैं। क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष ही है कि च और छ पर दाब बराबर होना चाहिए अन्यथा पारा अधिक दाब के स्थान से न्यून दाब की ओर अवश्य ही बह जायगा। च पर कुछ तो दाब पारे का है और उसका परिमाण है चक' × घ × ग और कुछ दाब वायु का है जिसका परिमाण द समझ लीजिए। इसी प्रकार छ पर पारे के दाब का परिमाण छख' × घ × ग है और वायु का दाब द' है।

$$\text{अतः} \quad \text{चक}' \times \text{घ} \times \text{ग} + \text{द} = \text{छख}' \times \text{घ} \times \text{ग} + \text{द}'$$

$$\text{अर्थात्} \quad \text{द} - \text{द}' = (\text{छख}' - \text{चक}') \times \text{घ} \times \text{ग}$$

$$= \text{क}'\text{ख}' \times \text{घ} \times \text{ग}$$

इसको दूसरे प्रकार यों भी समझ सकते हैं कि यदि क' के बराबर ऊँचाई पर दूसरी भुजा में कोई बिन्दु क'' समझा जावे तो क' और क'' पर भी दबाव बराबर होना चाहिए। अतः क' पर की वायु का दबाव ख' पर की वायु के दबाव से इतना अधिक है जितना कि पारद-स्तम्भ क''ख' का दबाव है।

गैसों का दाब नापने के लिए ऐसी ही द्रवयुक्त U-नली का प्रयोग किया जाता है और इसे दाब-मापक कहते हैं।

७९—वायु-दबाव के अन्य उदाहरण। यह सभी जानते हैं कि फ़ुटबाल और बाइसिकल में पम्प के द्वारा हवा भर देने पर इनका रबड़ ख़ूब फूल जाता है और बलपूर्वक दबाने पर भी नहीं दबता। इसका कारण अवश्य ही अन्दर की वायु है। वही रबड़ को भीतर की ओर से दबा दबा कर फुला देती है।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि बिना पम्प की सहायता के वायु में यह दबाव नहीं होता। हमारे चारों ओर जो वायु विद्यमान है वह भी

चित्र ५४

चित्र ५५
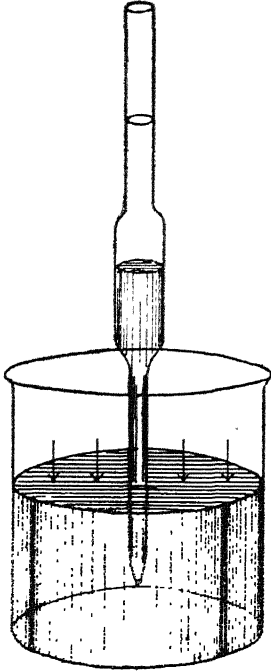
सदैव समस्त वस्तुओं को दबाती रहती है। हमें इस दबाव का परिणाम देखने का अवसर यों नहीं मिलता कि प्रत्येक वस्तु पर यह दबाव चारों ओर से पड़ता है। यदि किसी प्रकार एक ही ओर से दबाव पड़े तो अवश्य ही उसका प्रभाव हम देख सकें। पिचकारी का मुँह पानी में डुबाकर जब हम उसकी डंडी को खींचते हैं तब भीतर हवा न रहने से बाहर की हवा पानी को दबाकर पिचकारी में ऊपर चढ़ा देती है (चित्र ५४)। पिपेट के द्वारा जब हम किसी द्रव को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालते हैं तब भी यही होता है। हम मुँह से पिपेट के भीतर की वायु को खींच लेते हैं और बाहिर की वायु अपने दबाव से पिपेट में द्रव को घुसा देती है (चित्र ५५)।

वायु के दाब को दिखलाने के लिए प्रायः तीन सौ वर्ष पहले एक प्रयोग किया गया था। वह बड़ा रोचक है। धातु के दो पोले गोलार्ध बनाये गये जिनका व्यास प्रायः १८ इंच था (चित्र ५६)। ये इस प्रकार के बने थे कि दोनों को मिला देने पर एक दूसरे पर ऐसी अच्छी तरह बैठ जाते थे कि फिर संधि में से हवा भीतर से बाहर या बाहर से भीतर नहीं जा सकती थी। वायु-पम्प के द्वारा इनके अंदर की वायु निकाल देने पर इन्हें खींच कर अलग करने के लिए इतने बल की आवश्यकता हुई कि जब प्रत्येक गोलार्ध को आठ-आठ घोड़ों से खिंचवाया गया तब कहीं वे अलग हुए। वायु अन्दर से न निकालने पर उन्हें अलग करने में कुछ भी कठिनाई न हुई।

चित्र ५६

वायु का भार नापने के लिए भाप के द्वारा वायु निकालने की जो विधि दी गई है उसके द्वारा भी वायु का दबाव बहुत अच्छी तरह दिखलाया जा सकता है। टीन के एक नलीदार डिब्बे में कुछ पानी भरके उसे उबलने दो। जब अच्छी तरह उबल जाय तो नली में रबड़ की डाट लगाकर डिब्बे पर ठंडा पानी डाल दो। फ़ौरन डिब्बा पिचक जायगा क्योंकि जब तक डिब्बे के बाहर और भीतर दोनों तरफ़ हवा थी तब तक तो दोनों तरफ़ का दबाव बराबर होने के कारण उसका कुछ न बिगड़ा किन्तु जब भाप के द्वारा हवा निकाल दी गई और ठंडक के कारण भाप भी जल रूप में परिणत होगई तो डिब्बे के अन्दर शून्य बन गया और बाहर की हवा के दबाव ने तुरन्त ही उसे कुचल डाला।
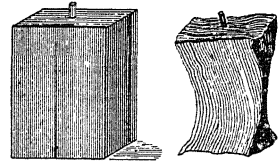
चित्र ५७

८०—दबाव की दिशा । यह न समझना चाहिए कि यह दबाव उसी प्रकार का दबाव है जैसा कि किसी भारी वस्तु को हाथ पर रखने से हमें मालूम होता है । भार के कारण जो दबाव होता है वह केवल नीचे की ओर दबा सकता है । किन्तु वायु का दबाव अणुओं की टक्करों के कारण होता है इसलिए वह सब दिशाओं में और नीचे ऊपर समान भाव से होता है । यह ऊपर के कई उदाहरणों से स्पष्ट है ही । तथापि एक और उदाहरण दिया जाता है कि जिससे प्रत्यक्ष मालूम होता है कि वायु ऊपर की ओर भी दबाव लगाती है ।

कांच के गिलास में पूरा पानी भर दो । ज़रा भी ख़ाली न रहे । तब ज़रा कड़ा सा काग़ज़ अथवा पतला सा अभ्रक लेकर उसके मुँह को इस प्रकार बन्द कर दो कि इस ढक्कन और पानी के बीच में तनिक भी वायु न बचे । तब हथेली से दबा कर गिलास को उलट दो और नीचे से हथेली भी हटा दो । गिलास का पानी न गिरेगा क्योंकि काग़ज़ के नीचे की हवा उसे हथेली ही की भांति ऊपर की ओर दबाये हुए है ।
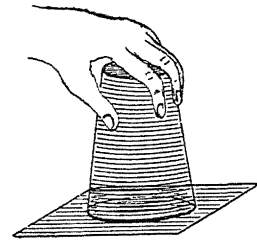
चित्र ५८

८१—वायु-दाब-मापक । ऊपर U-नली के द्वारा दोनों भुजाओं की वायु के दाब का अन्तर नापने की विधि बतलाई गई है । इसी विधि के द्वारा हमारे वायुमंडल के दाब का मूल्य भी नाप लिया जाता है । करना यह होता है कि U-नली की एक भुजा में से समस्त वायु निकाल दी जाती है । तब उस भुजा में पारा चढ़ जाता है क्योंकि अब उस पर कुछ दाब नहीं है अतः ऊपर दिये हुए समीकरण

$$द - द' = क'ख' \times घ \times ग$$

के अनुसार $द' = ०$ होने के कारण $द = क'ख' \times घ \times ग$ । समुद्रतल पर $क'ख' = ३०'' = ७६$ सम० पाया जाता है । अतः वहां पर वायुमण्डल का

दाब ७६ × १३·६ = १०३३·६ ग्राम प्रति वर्ग सम० = लगभग १५ पाउंड प्रति वर्ग इंच होता है। बल के एकांकों में उसका परिमाण १०३३·६ × ९८१ = लगभग $१०^६$ डाइन प्रति वर्ग सम० है। किन्तु सुविधा के लिए इस दाब को डाइन प्रति वर्ग सम० या ग्राम प्रति वर्ग सम० के स्थान में केवल वायु-दाब-मापक के पारे के तल-भेद के द्वारा ही व्यक्त करने का रिवाज है। और साधारण व्यवहार में समुद्र-पृष्ठ के वायुमण्डल के दाब को ७६० मम० का या ३०″ का दाब कहते हैं।

यह स्पष्ट है कि इस नाप की यथार्थता इस बात पर निर्भर है कि U-नली की एक भुजा में से वायु पूर्णरूप से निकाल दी जावे। वहाँ

चित्र ५९
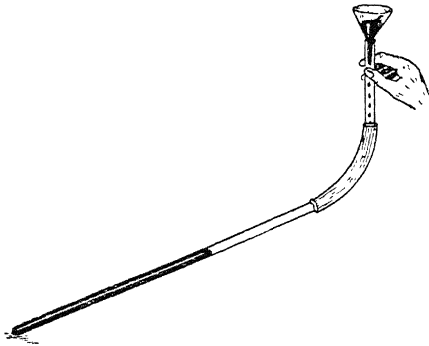
तनिक भी वायु न बच रहनी चाहिए। इसका एक सरल उपाय यह है कि मोटे काँच की प्रायः ३ फुट लम्बी ऐसी नली लो कि जिसका एक मुँह बन्द हो। दूसरे मुँह से मोटे रबड़ की दाब-नली के द्वारा एक छोटी सी सीधी कांच की नली जोड़ दो। तब लम्बी नली के बन्द मुँह को नीचे करके उसे चित्र ५९ के समान टेढ़ी पकड़ लो और तब धीरे धीरे उसमें बिलकुल स्वच्छ पारा इस प्रकार भरो कि हवा का कोई बुलबुला नीचे न रहने पावे। जब प्रायः सब भर जावे तब
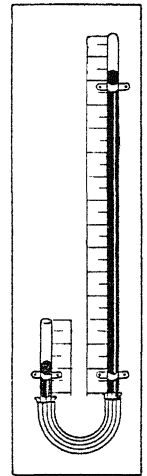
चित्र ६०

नली को टेढ़ी करके एक बड़ा सा वायु का बुलबुला बन्द मुँह की तरफ़ जाने दो। इस प्रकार रहे सहे छोटे मोटे बुलबुले भी उस बड़े बुलबुले में मिल जावेंगे और उसी के साथ बाहिर निकल जावेंगे। तब रबड़ की नली को U-आकार में मोड़ कर चित्र ६० की भांति सीधी खड़ी कर दो। तुरन्त ही बन्द मुँह के पास से पारा नीचे खिसक आवेगा और खुले मुँह से बह जावेगा। बहुत पतली नली के द्वारा इस खुले मुँह से कुछ और पारा निकाल लो ताकि इधर नली में पारा खुले मुँह से दो या तीन इंच नीचे रह जावे। अब इसे किसी लकड़ी के तख़्ते पर लगाकर दीवार पर लटका दो ताकि नलियां सीधी खड़ी रहें। तख़्ते पर काग़ज़ का एक स्केल चिपका दो जिससे दोनों भुजाओं के पारे के पृष्ठ की ऊँचाई नापी जा सके। इस यंत्र का नाम वायु-दाब-मापक या बैरोमीटर है।
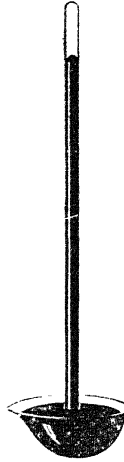
चित्र ६१
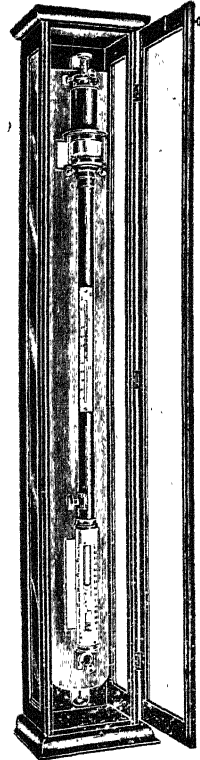
चित्र ६२

चित्र ६१ में वायु-दाब-मापक का एक दूसरा रूप दिखाया गया है। बन्द मुँह की नली को पारे से पूरी भर कर उसका खुला मुँह पारे से भरे हुए प्याले में इस प्रकार उलट दिया गया है कि नली में वायु का एक भी बुल-बुला न बचे। ऐसा करने से नली का ऊपर का भाग वायुरिक्त हो गया है। सिद्धान्त की दृष्टि से इसमें तथा चित्र ६० के यंत्र में कोई भेद नहीं है। प्याले के पारद-पृष्ठ

से नली में के पारद-पृष्ठ की ऊँचाई नापने से ही वायु-दाब ज्ञात हो जायगा।

प्रमाण वायु-दाब-मापक (चित्र ६२) इस दूसरे प्रकार का ही यंत्र है। विशेषता केवल यह है कि उसमें पारद-स्तम्भ की ऊँचाई को यथार्थतापूर्वक नापने के लिए कई साधन लगे रहते हैं जिनके द्वारा दाब मिलीमीटर के २०वें भाग तक ठीक ठीक ज्ञात हो जाता है।

अब प्रश्न यह है कि वायु-दाब-मापक में पारे के स्थान में अन्य कोई द्रव क्यों नहीं काम में लाया जाता। इसका मुख्य कारण केवल पारे का अधिक घनत्व (१३·६) ही है। यह समझने में कोई कठिनाई नहीं कि जितना दाब ३०″ पारद-स्तम्भ का है उतना ही दाब ३०″ × १३·६ = ४०८″ = लगभग ३४ फुट पानी का होगा। अतः यदि पानी का दाब-मापक बनाना हो तो प्रायः ४० फुट लम्बा यंत्र बनाना होगा।

चित्र ६३

८२—द्रवहीन वायु-दाब-मापक।

उपर्युक्त वायु-दाब-मापक इस लायक़ नहीं है कि हम उसे जहाँ चाहें आसानी से ले जा सकें। पहले तो वह बड़ा बहुत है और दूसरे उसके पारे के गिर जाने का भी डर रहता है। अतः एक और प्रकार का वायु-दाब-मापक तैयार किया जाता है जिसमें न तो पारा भरा जाता है और न वह इतने बड़े आकार का होता है। छोटी सी घड़ी की नाईं उसे जेब में रख कर ले जा सकते हैं (चित्र ६३)। इसमें धातु की पतली चद्दर का एक छोटा सा बक्स ब होता है जिसमें से हवा बिलकुल

निकाल दी जाती है। इस कारण बाहिर की वायु के दाब से इसका पतला ढकन कुछ दब जाता है। यदि इस बक्स को कम दाब की हवा में रख दें तो यह ढकन और उसमें लगा हुआ पिन ऊपर उठ जावेंगे और यदि वायु का दाब अधिक हुआ तो पिन और भी नीचे दब जावेगा। अतः यदि कुछ पुर्ज़ों की सहायता से पिन के ऊपर नीचे उठने को कई गुणा वर्धित करके एक सुई के द्वारा नाप सकें तो हमें यह ज्ञात हो सकता है कि व पर वायु का कितना दाब है। पारद के वायु-दाब-मापक यंत्र से तुलना करके इसके डायल पर दाब-सूचक अंक लिख दिये जाते हैं।

८३—भिन्न भिन्न ऊँचाई पर वायु-मंडल का दाब।

ऊपर लिखा जा चुका है कि समुद्र-पृष्ठ पर वायु-मंडल का दाब प्रायः ३०" का होना है किन्तु यदि हम वहाँ से किसी ऊँचे पहाड़ पर चढ़ें तो हमें ज्ञात होगा कि ज्यों ज्यों हम समुद्र से ऊँचे चढ़ते जाते हैं त्यों त्यों वायु का दाब कम होता जाता है। इसका कारण भी स्पष्ट है। U-वायु-दाब-मापक की खुली नली को हम आकाश की ओर इतनी ऊँची बढ़ी हुई समझ सकते हैं कि फिर उस नली के ऊपर बिलकुल भी हवा न रहे। ऐसी दशा में हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस दीर्घ नली की समस्त वायु का भार उक्त पारद-स्तम्भ के भार के बराबर है। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि यदि इस पुस्तक पर वायु का दाब १५ पाउंड प्रति वर्ग इंच है तो इसके एक वर्ग इंच क्षेत्र पर आकाश में वायु-मंडल की सीमा तक लम्बा जो वायु-स्तम्भ है उसका भार भी १५ पाउंड है। इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि ज्यों ज्यों हम पृथ्वी से ऊँचे उठते जावेंगे त्यों त्यों उक्त स्तम्भ की वायु भी कम होती जायगी। अतः वायु-दाब भी घटता जायगा। अनुभव से वायु-दाब और ऊँचाई का सम्बन्ध ज्ञात होगया है। और अब जेब में द्रवहीन वायु-दाब-मापक रख कर किसी भी स्थान की समुद्र-पृष्ठ से ऊँचाई नापी जा सकती है। कई वायु-दाब-मापकों पर तो दाब के साथ साथ ऊँचाई भी अंकित रहती हैं जिससे बिना किसी गणित के ऊँचाई प्रत्यक्ष पढ़ ली जाती है। यद्यपि ऊँचाई और वायु-दाब का सम्बन्ध सरल नहीं है तब भी थोड़ी ऊँचाइयों के लिए तो

यह कहा जा सकता है कि प्रायः ६०० फुट ऊँचे उठने पर वायु-दाब-मापक के पारे की ऊँचाई एक इंच घट जाती है। इसी प्रकार कोयले इत्यादि की खानों में उतरने पर वायु-दाब बढ़ जाता है।

८४—मौसिम और वायु-मंडल का दाब। पहाड़ों और हवाई जहाज़ों की ऊँचाई नापने के अतिरिक्त वायु-दाब-मापक से मौसिम का भी ज्ञान होता है और इसी कारण अख़बारों में प्रतिदिन वायु-दाब प्रकाशित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सुव्यवस्थित देश में राज्य की ओर से एक महकमा होता है जिसका मुख्य काम यह होता है कि वैज्ञानिक रीति से भविष्य के मौसिम की पहले से कुछ सूचना दे दे। यद्यपि अभी तक यह विज्ञान इतना उन्नत नहीं हुआ है कि भरोसे के लायक़ हमें सूचना सदैव मिल सके तथापि इसमें सन्देह नहीं कि बिना इस महकमे की रिपोर्टों के जहाज़ों और हवाई जहाज़ों का चलना प्रायः असम्भव है। इस महकमे के कार्य के लिए संसार भर के मुख्य मुख्य स्थानों का वायु-दाब जानना बहुत आवश्यक है और यह समाचार तार के द्वारा नित्य प्रति इसके दफ़्तरों में पहुँचते रहते हैं।

वायु-दाब से किस प्रकार मौसिम का हाल जाना जाता है यह ठीक ठीक समझना तो ज़रा कठिन है किन्तु मोटे प्रकार से हम यों समझ सकते हैं कि यदि किसी समय यहां दाब कम हो और समुद्र की ओर दाब अधिक हो तो अवश्य ही समुद्र की हवा हमारी ओर बहेगी। वह हवा जल से परिपूर्ण भी होगी। अतः वर्षा की सम्भावना है। यह सच है कि वायु-दाब के अतिरिक्त तापक्रम, वायु के चलने की दिशा आदि अनेक बातों को ध्यान में रखे बिना मौसिम का पता नहीं लग सकता। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वायु-दाब-मापक इस कार्य के लिए एक मुख्य यंत्र है। अतः इसे साधारण भाषा में कभी कभी मौसिमी शीशा भी कहते हैं।

८५—वायु की संपीड्यता और बायल का नियम। फुटबाल और बाइसिकल की नली में जिसने कभी हवा भरी है वह अच्छी

तरह समझ सकता है कि यद्यपि किसी पात्र में ठोस और द्रव कुछ निश्चित परिमाण से अधिक नहीं भरे जा सकते तथापि हम उसी पात्र में वायु प्रायः जितनी चाहें उतनी भर सकते हैं। बाइसिकल के पम्प का छेद उँगली से बन्द करके उसका दस्ता दबाने पर आप देखेंगे कि जो हवा उसमें है उसे दबाकर हम उसका आयतन घटा सकते हैं। किन्तु दाब हटाते ही तुरन्त वह अपने पूर्व आयतन को प्राप्त कर लेती है। इससे स्पष्ट है कि वायु के आयतन और उसके दाब में कुछ सम्बन्ध है। ज्यों ज्यों दाब बढ़ता जायगा त्यों त्यों वायु का आयतन घटता जायगा और उसका घनत्व भी बढ़ता जायगा। निम्नलिखित प्रयोग के द्वारा इस सम्बन्ध का यथार्थ मात्रिक स्वरूप सरलता से ज्ञात हो सकता है।

चित्र ६४ में कख एक कांच की नली है जिसका एक मुँह क बन्द है। दूसरा मुँह ख मोटे रबड़ की दाब-नली के द्वारा चौड़ी काँच की नली ग से जुड़ा हुआ है और इसमें स्वच्छ पारा भरा है जो दोनों काँच की नलियों में क्रमशः प और फ पर स्थित हैं। क से प तक वायु भरी है। इस वायु का आयतन (आ) तो कप की लम्बाई नापने से ज्ञात हो सकता है और इसका दाब प और फ की ऊँचाई का अन्तर पफ नापने से। पृष्ठ ९८ पर दिये हुए समीकरण के अनुसार यदि कप वायु का दाब द सम० हो और ग की वायु का अर्थात् कमरे के वायु-मंडल का दाब द′ सम० हो तो
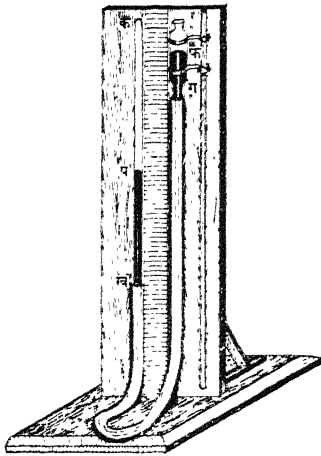
चित्र ६४

$$द - द' = पफ$$

$$\therefore द = द' + पफ$$

यदि फ, प से नीचा हो तो द भी द′ से कम होगा। वस्तुतः इस दशा में

$$द = द' - पफ$$

ग को ऊँचा उठाने से फ भी ऊँचा हो जाता है। अतः प और फ का अन्तर बढ़ जाता है। इसलिए कप की वायु का दाब भी बढ़ जाता है और उसका आयतन घट जाता है। इसी प्रकार ग को नीचा उतारने से वायु का दाब घट जाता है और आयतन बढ़ जाता है। यह सब घट-बढ़ बीच में लगे हुए स्केल से सरलता-पूर्वक नापी जा सकती है।

इस उपकरण के द्वारा यदि हम नली की हवा का दाब धीरे धीरे बढ़ाते जावें और उसके आयतन की कमी को नापते जावें तो हम देखेंगे कि जितना हम दाब बढ़ाते हैं उसी निष्पत्ति से आयतन घटता है। अर्थात् यदि हम दाब को दुगुना कर दें तो आयतन आधा रह जाता है। यदि दाब तिगुना कर दें तो आयतन तिहाई हो जाता है। और यदि दाब को घटाकर आधा कर दें तो आयतन बढ़ कर दुगुना हो जाता है। इसी बात को संक्षेप में यों कहते हैं कि इस वायु का आयतन दाब का उत्क्रमानुपाती है।

अर्थात्
$$आ \propto \frac{१}{द}$$

या
$$आ = र \times \frac{१}{द}$$

या
$$आ \times द = र$$

इन सूत्रों में र एक स्थिरांक है जिसका मूल्य केवल वायु के परिमाण पर निर्भर है। आयतन और दाब के परिवर्तन से र का मूल्य नहीं बदलता। इस नियम का आविष्कार पहले-पहल सन् १६६२ में राबर्ट बायल ने किया था। इसलिए इसका नाम "बायल का नियम" है। वायु के अतिरिक्त समस्त स्थायी गैसों के लिए भी यह नियम ठीक है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रयोग में वायु का तापक्रम न बदले। क्योंकि तापक्रम बदलने पर आयतन ताप के कारण भी बदल जाता है जैसा कि हम आगे

चल कर ताप के प्रकरण में देखेंगे। बायल के नियम का यथार्थ रूप यों है :—

यदि किसी गैस का तापक्रम स्थिर रहे तो दाब के कारण उसका आयतन उत्क्रम अनुपात से बदलता है।

८६—जल का पम्प। कुछ वर्ष पहले कुएँ में से जल खींचने का एक-मात्र उपाय यही था कि उसमें कोई पात्र डाल कर रस्सी के द्वारा मनुष्य या बैल उसे ऊपर खींच लें। अब भी हमारे देश में प्रायः इसी विधि का प्रचार है। किन्तु अब एक और उपाय का भी प्रयोग होने लगा है जिसे पम्प कहते हैं। कई स्थानों में तो छोटे छोटे पम्प प्रायः प्रत्येक घर में लगे हैं जिन्हें हाथ से चला कर बिना कठिनाई जब चाहें तब ताज़ा पानी ज़मीन में से खींच सकते हैं और जहां बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है वहां बड़े बड़े पम्प इंजन या बिजली के द्वारा चलाये जाते हैं। शहरों में इन्हीं की सहायता से नलों में पानी पहुँचाया जाता है।

चित्र ६५ में साधारण जल-पम्प का रहस्य समझाया गया है। ऊपर पिचकारी का कार्य समझाया गया था। ठीक उसी प्रकार यह पम्प भी काम करता है। एक नली न पृथ्वी को खोद कर नीचे के जल-स्रोत तक घुसा दी जाती है। इसका ऊपर का मुख एक ढक्कन $व_1$ से इस प्रकार ढका रहता है कि जब पानी नली में से ऊपर जावे तब तो उसके धक्के से ऊपर उठ कर वह पानी को रास्ता दे देता है। किन्तु यदि पानी ऊपर की तरफ़ से नीचे जाना चाहे तो दब कर यह नली का मुँह बिल्कुल ही बन्द कर देता है। इस प्रकार एक ही दिशा में पानी को जाने देनेवाले ढक्कन को **वाल्व** कहते हैं। $व_1$ से ऊपर एक चौड़ी नली च है जो प्रायः १०-१२ इंच लम्बी होती है। इसमें ऊपर की तरफ़ एक टोंटी ट लगी होती है। च में पिचकारी के दस्ते ही के समान एक पिस्टन प ऊपर नीचे आ जा सकता है। इस पर सूत इत्यादि लपेट कर इसे ऐसा बना देते हैं कि वह च में ठीक बैठता हुआ ही चलता है ताकि पानी या हवा उसके इर्द गिर्द से प के ऊपर या नीचे नहीं जा सकते।

इसे एक दस्ते के सहारे ऊपर नीचे चलाते हैं। प के बीच में भी $व_1$ की तरह ही एक और वाल्व $व_2$ लगा रहता है। यह भी ऊपर ही की ओर खुलता है। चित्र ६५–१ में पिस्टन च के पेंदे में बैठा है। अब यदि हम उसे ऊपर की ओर खींचें तो प और $व_1$ के बीच का स्थान खाली हो जायगा। इससें ऊपर से तो वायु आ नहीं सकती क्योंकि उसके दाब से $व_2$ खूब अच्छी तरह बन्द हो जायगा हां नीचे की नली में से वायु और अंत में जल अवश्य आ जावेगा
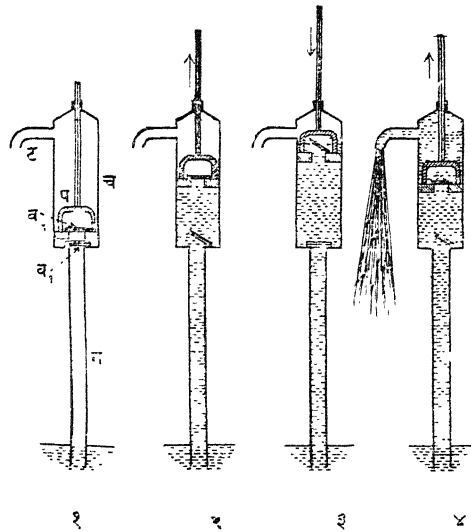
चित्र ६५

क्योंकि नीचे का दाब $व_1$ को खोल देगा (चित्र ६५ – २)। अब यदि प को पुनः नीचे दबावें तो प और $व_1$ के बीच का जल पिस्टन के ऊपर चला जावेगा (चित्र ६५ – ३)। अब फिर पिस्टन को ऊपर खींचने पर यह पानी $व_2$ के बन्द हो जाने के कारण नीचे न जा सकेगा किन्तु पिस्टन के साथ ऊपर उठ कर टोंटी के द्वारा बाहिर निकल जावेगा (चित्र ६५ – ४)। और साथ ही

साथ नीचे से और पानी आकर पिस्टन के नीचे भर जावेगा। इसी प्रकार जब तक पिस्टन को ऊपर नीचे करते रहेंगे बराबर पानी भी आता रहेगा।

किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह पम्प तभी तक काम दे सकता है जब तक कि पृथ्वी में पानी बहुत नीचा न हो। हम ऊपर देख चुके हैं कि वायु-दाब पारे को प्रायः ३०″ चढ़ा सकता है। इस हिसाब से वह पानी को प्रायः ३४ फुट से ज़्यादा नहीं चढ़ा सकता। साधारण पम्प तो पिस्टन की अपूर्णता के कारण प्रायः २२ फुट से ज़्यादा पानी नहीं चढ़ा सकते।

८७—**वायु-पम्प**। जब किसी पात्र को वायुरिक्त करना होता है तब एक प्रकार का पम्प काम में लाया जाता है जिसे वायु-पम्प कहते हैं। इसमें और ऊपर वर्णित जलपम्प में कोई विशेष भेद नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि वायु-पम्प के वाल्व अधिक सावधानी से बनाने पड़ते हैं और पिस्टन भी चमड़े का बना होता है और उस पर कुछ तेल भी चुपड़ दिया जाता है। बाक़ी उसकी कार्य-प्रणाली में और जल-पम्प की कार्य-प्रणाली में कोई अन्तर नहीं।

किन्तु इस पम्प से हवा निकालने में बहुत देर लगती है और जब शेष वायु का दाब एक सीमावशेष तक घट जाता है तब इसके द्वारा वह और नहीं घटाया जा सकता। आज-कल कई कामों के लिए इससे कहीं उत्तम शून्य की आवश्यकता होती है। बिजली के साधारण लम्प, एक्स-किरण की नली आदि अनेक चीज़ें बनाना तब तक सम्भव ही नहीं जब तक कि हम बहुत ही ऊँचे दर्जे का शून्य उत्पन्न न कर सकें। इस कार्य के लिए अब अनेक प्रकार के वायु-पम्पों का आविष्कार होगया है और अब किसी भी पात्र में से वायु निकालते निकालते उसका दाब एक मिलीमीटर के एक लाखवें भाग से भी कम कर देना कुछ कठिन काम नहीं है। किन्तु इन सब पम्पों का वर्णन हम इस पुस्तक में नहीं कर सकते।

८८—**बाइसिकल का पम्प** । इस पम्प को प्रायः प्रत्येक पाठक ने देखा होगा (चित्र ६६) । इसका काम ऊपर वर्णित वायु-पम्प से ठीक उलटा है । वायुपम्प हवा को निकालता है किन्तु यह पम्प हवा को बाइसिकल की रबड़ की नली में भरता है । इसमें भी एक चौड़ी नली में एक पिस्टन होता है । किन्तु प्रत्यक्ष में कोई वाल्व नज़र नहीं आता । वास्तव में बात यह है कि इसमें जल-पम्प के समान ही दो वाल्व होते हैं । एक वाल्व का काम तो पिस्टन का चमड़ा ही करता है । यह प्याले की शकल का होता है । जब पिस्टन नीचे की ओर दबाया जाता है तब पिस्टन के नीचे की हवा का दाब बढ़ जाता है और वह चमड़े को फैला कर पम्प की दीवार से चिपटा देता है । इससे यह वायु पिस्टन के ऊपर की ओर नहीं जा सकती । किन्तु जब पिस्टन को ऊपर की ओर खींचते हैं तब ऊपर की हवा चमड़े और नली के बीच में होकर आसानी से नीचे चली जा सकती है । दूसरा वाल्व बाइसिकल के पहिये की नली में लगा रहता है । जब पम्प को उससे जोड़कर पिस्टन को नीचे दबाते हैं तो पिस्टन के नीचे की हवा दबकर इस वाल्व को खोल देती है और यह वायु नली में प्रवेश कर जाती है । किन्तु पिस्टन को ऊपर खींचते ही यह वाल्व बंद हो जाता है और नली की हवा पम्प में नहीं लौट सकती । ऊपर लिखा जा चुका है कि इस समय पिस्टन के ऊपर से हवा नीचे की ओर आ जाती है । पिस्टन को पुनः नीचे दबाने पर वह हवा भी नली में चली जाती है । और इसी प्रकार बार बार पिस्टन को चला कर हम जितनी चाहें उतनी हवा नली में भर सकते हैं । नलीवाला वाल्व भी बड़ा सीधा सा होता है । इसका मुख्य भाग पीतल की एक नली है जिसमें एक छोटा सा छेद 'छ' है और उस पर एक बहुत ही पतली रबड़ की नली जिसे वाल्व-नली कहते हैं चढ़ी होती है । यह पीतल की नली के साथ खूब सटी रहती है ।

चित्र ६६

और इससे पहिये की नली में पहले से भरी हुई हवा और भी अधिक सटा देती है। अतः छिद्र छ में अन्दर की हवा का प्रवेश कर बाहर निकल जाना सम्भव ही नहीं। किन्तु जब पम्प के द्वारा हवा वाल्व की नली में घुसाई जाती है तब वह छिद्र छ से निकल कर वाल्व-नली को फुला कर अन्दर प्रवेश कर जाती है।

८९—साइफ़न। जब किसी पात्र में से कोई द्रव किसी दूसरे पात्र में डालना हो और उस पात्र को उलटना मंजूर न हो तो बहुधा साइफ़न का प्रयोग किया जाता है। यह केवल एक मुड़ी हुई नली होती है जिसकी एक भुजा दूसरी से लम्बी होती है। (चित्र ६७)। इस नली में पहले वह द्रव भर दिया जाता है और तब उसके दोनों मुँह बन्द करके उसकी छोटी भुजा पात्र के द्रव में डुबा दी जाती है और लम्बी भुजा के मुँह को खोल देते हैं। यह मुँह खुलते ही उसमें से द्रव बहने लगता है। जिससे साइफ़न के मोड़ के पास का दाब कम होने लगता है। तुरन्त वायु-मंडल का दाब पात्र के द्रव को साइफ़न में चढ़ा देता है। इस प्रकार जब तक साइफ़न का मुँह द्रव में डूबा रहेगा और दूसरा मुँह द्रव के पृष्ठ से नीचा रहेगा तब तक बराबर वह द्रव साइफ़न की नली में चढ़ कर दूसरी ओर निकलता रहेगा।
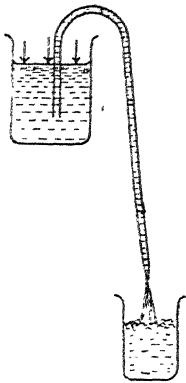
चित्र ६७

जब द्रव ऐसा होता है कि जिसमें हाथ नहीं लगा सकते जैसे कोई तेज़ाब आदि तब चित्र ६८ के आकार का साइफ़न काम में लाया जाता है। इसमें पहले द्रव भरने की आवश्यकता नहीं होती। छोटी भुजा का मुँह द्रव में डुबा कर और नीचे की टोंटी बन्द करके दूसरी ओर की नली 'न' से मुँह लगा कर श्वास खींचने से साइफ़न भर जाता है। तब टोंटी खोल दी जाती है और साइफ़न काम करने लगता है।

बाज़ार में एक खिलौना मिलता है जिसे वासुदेवप्याला कहते हैं (चित्र ६९)। इसमें वसुदेवजी बालक कृष्ण को गोद में लेकर यमुना के पार जाते हुए दिखलाये गये हैं। जिस प्रकार पौराणिक कथा में यमुना नदी का जल श्रीकृष्ण के चरण को स्पर्श करने की लालसा से बढ़ता ही गया और अन्त में अपनी मनोकामना सिद्ध होने पर उतर गया था उसी प्रकार इस खिलौने में भी आप पानी डालते जाइए प्याला भरता जायगा। किन्तु ज्यों ही बालक

चित्र ६८

चित्र ६९
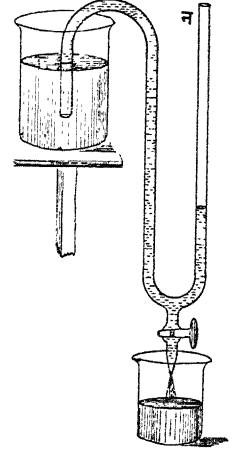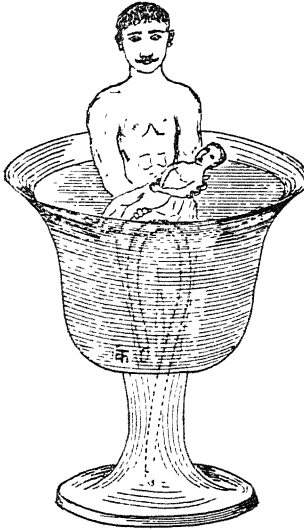
श्रीकृष्ण के चरण को उसका जल स्पर्श कर लेगा त्यों ही आप देखेंगे कि प्याले में से पानी निकलने लगेगा और अन्त में प्याला बिलकुल ही ख़ाली हो जायगा। वसुदेवजी की टाँगों में लगा हुआ जो साइफ़न चित्र में दिखलाया गया है उससे इस खिलौने का यह विचित्र कार्य तुरन्त समझ में आ जायगा। जब तक जल साइफ़न के मोड़ तक नहीं चढ़े तब तक तो साइफ़न काम कर नहीं सकता। किन्तु ज्यों ही उस मोड़ को पार करके जल साइफ़न की दूसरी भुजा में पहुँचता है त्योंही साइफ़न

का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। और एक बार प्रारम्भ होने पर यह कार्य तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक कि इस साइफ़न की नली का मुँह 'क' जल में से बाहर न निकल आवे।

प्रश्न

(१) वायु-दाब-मापक में पारे की साधारण ऊँचाई कितनी होती है? यदि दाब-मापक जल का बनाया जाय तो उसमें जल की ऊँचाई कितनी होगी?

(२) यदि वायु-दाब-मापक का पाठ ३०″ है तो बताओ कि १५ वर्ग सम० क्षेत्र पर वायु कितना बल लगा रही है?

(३) यदि वायु का घनत्व सर्वत्र बराबर होता तो बताओ पृथ्वी पर कितनी ऊँचाई तक वायु होती कि उसका दाब ७६० मम० पारे के दाब के बराबर हो जाता?

(४) जब दाब ७० सम० है तो किसी गैस का आयतन ४०० घ० सम० है। यदि दाब बढ़ कर ७६ सम० हो जाय तो गैस का आयतन कितना होगा?

(५) यदि प्रमाण तापक्रम तथा दाब पर वायु का घनत्व १·३ ग्राम/लिटर हो तो बताओ कि उस वायु का कितना भार है जिसका दाब १०० सम० हो और आयतन ५ लिटर।

(६) साधारण जल-पम्प की क्रिया को समझाओ। इसके द्वारा पानी कितना ऊँचा उठाया जा सकता है?

(७) एक मीनार के ऊपर वायु-दाब ७५४ मम० है और जमीन पर वायु-दाब ७५८ मम०। यदि वायु का घनत्व १·२९३ ग्रा०/लिटर हो तो मीनार की ऊँचाई कितनी है?

(८) साइफ़न किसे कहते हैं? उसकी क्रिया को समझाओ।

द्वितीय भाग

ताप

परिच्छेद ८

ताप तथा तापक्रम

९०—**ताप**। ताप का अनुभव प्राणिमात्र को है। दोपहर की कड़ी धूप से बचने के लिए मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी ठंडा स्थान खोजते हैं। जाड़ों में जब खूब सर्दी होती है तब हम इसी ताप को प्राप्त करने के लिए धूप में जाकर बैठते हैं, आग जलाकर तापते हैं और मोटे मोटे ऊनी वस्त्रों से अपने शरीर को आच्छादित कर लेते हैं। मनुष्य ताप की तीव्रता से अपनी रक्षा करने के लिए अथवा ताप की कमी या ठंड से बचने ही के लिए मकान बनाता है। बिना ताप की सहायता के पौधे उग नहीं सकते, अनाज पक नहीं सकता, और हमारा भोजन भी तैयार नहीं हो सकता। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि ताप ही हमारा प्राण है। उसके बिना हम थोड़ी देर भी नहीं जी सकते। यदि सूर्य भगवान् की कृपा से इस पृथ्वी पर यथेष्ट परिमाण में ताप न पहुँचता रहता तो अवश्य ही इस सजला सुफला धनधान्य-परिपूर्ण वसुन्धरा और असंख्य प्राणियों के आनन्द और उल्लास की क्रीड़ास्थली के स्थान में श्मशान से भी अधिक घोर निस्तब्धता इस पृथ्वी पर होती।

संसार की अन्य शक्तियों के समान ताप भी एक महाशक्ति है। वह हमारी भलाई भी बहुत करता है तो बुराई भी उतनी ही अधिक कर सकता है। प्रचंड अग्नि के रूप में वह हमारे गृह और कुटुम्ब को क्षण भर में जलाकर नष्ट कर सकता है। दुर्जनों के हाथ में पड़कर वह तोप, बन्दूक, बम आदि

के द्वारा सहस्त्रों मनुष्यों के संहार का कारण बन जाता है। किन्तु जब हम इसका उचित उपयोग सीख लें, तो वह मानव-जीवन को सुखमय बनाने में भी खूब सहायता करता है। रेल, जहाज़, और हवाई जहाज़ इसी शक्ति के द्वारा चलते हैं। तथा संसार के प्रायः सभी कल-कारखाने ताप ही के सदुपयोग से काम करते हैं।

९१—ताप की भारहीनता । "ताप क्या है ?" इस प्रश्न का उत्तर देना तो कठिन है किन्तु यह हम अवश्य कह सकते हैं कि वह किसी भी प्रकार का जड़ द्रव्य नहीं है। क्योंकि उसमें द्रव्य का मुख्य लक्षण 'भार' विद्यमान नहीं है। किसी भी वस्तु को तोल लीजिए और तब उसे जितना जी चाहे गरम कर लीजिए आप उसके भार में तनिक भी अन्तर न पावेंगे। वह गर्मी के मारे लाल हो जायगी, आप उसके निकट अपना हाथ न ले जा सकेंगे, उसमें अन्य वस्तुओं को गर्म कर डालने की शक्ति भी आ जावेगी किन्तु भार में कोई वृद्धि न होगी।

९२—ताप एक पदार्थ है । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ताप कोई पदार्थ ही नहीं। यह सत्य है कि वह सदैव द्रव्यों ही में पाया जाता है किन्तु हम उसे श्वेतता, लम्बाई, चिकनापन, भार इत्यादि की भांति द्रव्य का गुण नहीं मान सकते। यह सब जानते हैं कि ताप एक वस्तु में से निकल कर दूसरी वस्तु में चला जा सकता है। लोहा गरम करके पानी में डुबाने से पानी गरम हो जाता है और लोहा ठंडा। भोजन बनाने में चूल्हे का ताप उस पर रखी हुई प्रत्येक वस्तु को गरम कर देता है। बिना स्पर्श किये भी आग का ताप हमारे शरीर को तप्त कर देता है। करोड़ों मील दूर से सूर्य का ताप आकर पृथ्वी को तपा देता है। क्या श्वेतता भी इस ही प्रकार एक वस्तु में से दूसरी वस्तु में जा सकती है ? क्या इस पुस्तक के कागज़ की सफ़ेदी आपके हाथ में घुस सकती है ? या दर्पण का चिकनापन उसके समीप रखी हुई लकड़ी में घुसकर उसे सुचिक्कण बना सकता है ? क्या कोई लम्बा मनुष्य अपनी लम्बाई किसी नाटे मनुष्य

को दे सकता है ? कदापि नहीं। श्वेतता, चिकनापन, लम्बाई आदि गुण हैं जो वस्तु से पृथक् नहीं हो सकते। किन्तु जिस प्रकार धनी मनुष्य अपना धन अवश्य ही दूसरों को दे सकता है उसी प्रकार गरम वस्तु अपना ताप भी अन्य वस्तुओं को दे सकती है। यही नहीं आगे चलकर हम देखेंगे कि ताप को हम नाप भी सकते हैं। कितना ताप एक वस्तु से निकल कर दूसरी वस्तु में गया इसका लेखा भी उतनी ही यथार्थतापूर्वक लगाया जा सकता है जितनी यथार्थता से हम यह जान सकते हैं कि धनी मनुष्य ने कितना धन दूसरों को दिया। जिस प्रकार दान देने पर धन का नाश नहीं होता जितना देनेवाले के पास से कम होता है उतना ही लेनेवाले के पास बढ़ जाता है। उसी प्रकार ताप का भी इस आदान-प्रदान में नाश नहीं होता। जितना ताप एक वस्तु का कम होता है उतना ही दूसरी में बढ़ जाता है। अतः स्पष्ट है कि ताप द्रव्य का गुण नहीं है। वह स्वयं भी एक पदार्थ है।

इन्हीं कारणों से पूर्वकाल में ताप एक भारहीन तरल माना जाता था और यह समझा जाता था कि थोड़ा या बहुत यह प्रत्येक वस्तु में भरा रहता है। यदि किसी प्रकार किसी वस्तु में इसकी मात्रा बढ़ा दी जावे तो वह वस्तु गरम हो जाती है और यदि कम कर दी जावे तो ठंडी। गरम वस्तु से बह-कर यह ताप-तरल ठंडी वस्तु में चला जा सकता है। किन्तु अब यह प्रमाणित हो चुका है कि यह धारणा ठीक नहीं।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि ताप में रेल, जहाज़ आदि भारी भारी वस्तुओं को चलाने की क्षमता है। अर्थात् ताप के द्वारा जड़ पदार्थों को चलाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। विपरीत इसके यांत्रिक शक्ति से ताप भी उत्पन्न होता है। जैसे किसी वस्तु को रगड़ने से वह गरम हो जाती है। दियासलाई के आविष्कार से पहले चकमक से रगड़ ही के द्वारा आग उत्पन्न की जाती थी। और दियासलाई भी रगड़ से ही जलाई जाती है। जाड़े के दिनों में जब हाथों को अधिक सर्दी मालूम होती है तब बहुधा उन्हें आपस में रगड़ कर ही गरम कर लेते हैं। अतः स्थितिज शक्ति और गतिज शक्ति की नाईं ताप को भी हम एक शक्ति कह सकते हैं। वास्तव में

शक्ति ही का ताप भी एक रूप है। प्रकाश, विद्युत्-धारा आदि भी शक्ति के रूपान्तर हैं। इसी कारण ताप से प्रकाश उत्पन्न हो सकता है और बिजली भी पैदा हो सकती है। तथा प्रकाश और विद्युत्-धारा भी ताप में परिणत हो सकते हैं।

९३—ताप का स्वरूप। अब प्रश्न हो सकता है कि यदि ताप शक्ति ही है तो वह द्रव्य में रहती किस रूप में है? पहले भाग में हम लिख आये हैं कि प्रत्येक प्रकार का पदार्थ अणुमय है और ये अणु सदा इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। इन अणुओं की गति की जो शक्ति है उसी को हमें ताप समझना चाहिए। जब वस्तु अधिक गरम होती है तब इन अणुओं की गति बढ़ जाती है। वे और भी वेग से दौड़ने लगते हैं। जब वस्तु को ठंडा कर देते हैं तब अणुओं की गति कम हो जाती है। इस दृष्टि से अणुओं की गतिज शक्ति ही का नाम ताप है। यहां हम ताप के इस सिद्धान्त को प्रमाणित नहीं कर सकते किन्तु स्थान स्थान पर हम यह बतलावेंगे कि यह सिद्धान्त हमें ताप के सम्बन्ध की प्रत्येक घटना को समझने में बड़ी सहायता करता है। जब गरम वस्तु ठंडी वस्तु को स्पर्श करती है तब उसके अधिक गतिवाले अणु, ठंडी वस्तु के थोड़ी गतिवाले अणुओं से टकरा टकरा कर अपनी गति का कुछ भाग उन्हें दे देते हैं। इसी से गरम वस्तु के अणुओं की गति कम हो जाती है। और ठंडी वस्तु के अणुओं की गति बढ़ जाती है। इसी बात को साधारण बोल-चाल में यों कहते हैं कि ताप पहली वस्तु में से निकल कर दूसरी में चला गया। इसके अतिरिक्त यह भी हम ऊपर देख आये हैं कि शक्ति का नाश नहीं हो सकता। अतः प्रत्यक्ष है कि ताप का भी नाश नहीं हो सकता। हां उसका रूपान्तर अवश्य हो सकता है। यदि किसी समय यह जान पड़े कि ताप का नाश होगया है तो उस समय अवश्य ही प्रकाश विद्युत्-धारा, रासायनिक क्रिया अथवा यांत्रिक काम की उत्पत्ति भी हुई होगी।

९४—शीत। यहां यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि ठंडक या शीत कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। ताप की कमी को ही शीत कहते हैं। "अमुक

वस्तु ठंडी है" इसका अर्थ केवल यह है कि उसमें गर्मी कम है। जाड़ों में हम ऊनी वस्त्र पहिन कर साधारणतया यह कहते हैं कि उनके द्वारा बाहर के शीत से हमारी रक्षा होती है अथवा वह शीत हमारे शरीर में प्रविष्ट नहीं हो सकता। किन्तु वास्तव में हमें यों कहना चाहिए कि उनके द्वारा हम अपने शरीर के ताप को निकल कर बाहर नहीं जाने देते। बर्फ़ ठंडक अवश्य पैदा करता है किन्तु इसका यह कारण नहीं कि उसका शीत समीपवर्ती वस्तुओं में घुस जाता है। वास्तव में वह अन्य वस्तुओं के ताप को स्वयं ले लेता है। इसी से ये वस्तुएँ ठंडी हो जाती हैं।

९५—ताप-इन्द्रिय। ताप के विषय में आंख, नाक, कान और जिह्वा के द्वारा हमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। स्पर्श-इंद्रिय ही के द्वारा वस्तुओं को छूकर हम कह सकते हैं कि वह ठंडी है या गरम किन्तु जिस स्पर्श-इन्द्रिय से हम यह जानते हैं कि वस्तु चिकनी है या खुरदरी, उससे हमें ताप का ज्ञान नहीं होता। यदि एक बारीक सुई को गरम करके हम अपने चमड़े पर भिन्न भिन्न स्थानों पर उसकी नोक रखें तो हमें ज्ञात होगा कि कुछ स्थान तो ऐसे हैं कि जहां हम ताप का अनुभव करते हैं और कुछ ऐसे हैं कि जहां हम सुई का चुभना तो अनुभव करते हैं किन्तु उसकी गर्मी का हमें पता नहीं लगता। अतः कहना पड़ेगा कि स्पर्श-इन्द्रिय से भिन्न ताप-सूचक कोई विशेष इन्द्रिय होती है। यह भी हमारे चमड़े ही में स्थित है। और इसके ताप-सूचक बिन्दु तथा स्पर्श-सूचक बिन्दु इतने सूक्ष्म होते हैं और इस प्रकार समस्त चमड़े में फैले रहते हैं कि मोटे प्रकार से देखने पर हमें कोई भी स्थान ऐसा नहीं मिलता जहां ताप और स्पर्श दोनों ही का अनुभव हमें न होता हो। इसी कारण साधारणतया स्पर्श-इन्द्रिय और ताप-इन्द्रिय का भेद हमें ज्ञात नहीं होता। किन्तु अवश्य ही ये दो इन्द्रियां पृथक् हैं और इनका संवाद मस्तिष्क में भिन्न भिन्न ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा पहुँचता है।

९६—तापक्रम। जब हम यह कहते हैं कि अमुक वस्तु ठंडी है और अमुक गरम तब 'ठंडी' और 'गरम' इन शब्दों के द्वारा हम केवल अपनी ताप

इन्द्रिय का अनुभव व्यक्त करते हैं। इसी इन्द्रिय के द्वारा हम यह भी बतला सकते हैं कि अमुक वस्तु अमुक की अपेक्षा अधिक गरम है। यदि किसी एक ही पदार्थ के कई टुकड़े हमारे सम्मुख रख दिये जावें तो हम छूकर उन्हें ऐसे क्रम से रख सकते हैं कि पहला सबसे अधिक गरम, दूसरा उससे कम, तीसरा उससे भी कम और इसी प्रकार उत्तरोत्तर कम होते होते अन्त में सबसे ठंडा टुकड़ा हो। इस अत्यन्त साधारण अनुभव की बात से ही पता चलता है कि वस्तुओं की 'उत्तप्तता' या उनके 'गरमपन' का भी कुछ क्रम हो सकता है। अतः हमें केवल यह कर संतोष कर लेने की आवश्यकता नहीं है कि "यह वस्तु उस दूसरी वस्तु से अधिक गरम है"। हम यह भी ठीक ठीक बतला सकेंगे कि वह **कितनी** अधिक गरम है। इसके लिए हमें 'गरमपन' नापने का कोई न कोई प्रमाण नियत करना होगा। इस प्रमाण के द्वारा नापे हुए 'गरमपन' ही के लिए वैज्ञानिक भाषा में 'तापक्रम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अधिक गरम वस्तु का तापक्रम अधिक 'उच्च' या 'ऊँचा' कहा जाता है। और ठंडी वस्तु का तापक्रम 'कम', 'निम्न' या 'नीचा' कहलाता है।

९७—ताप की मात्रा और तापक्रम का भेद। इस स्थान पर यह स्पष्टतया समझ लेना चाहिए कि तापक्रम ताप की मात्रा का नाप नहीं है। गरमी और गरमपन में बड़ा भेद है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि गरमी या ताप एक पदार्थ है। किन्तु उत्तप्तता या गरमपन वस्तुओं की दशा-विशेष का नाम है। श्वेतता या चिकनापन आदि के समान यह भी वस्तुओं का गुण है। ताप की अधिकता से यह गुण बढ़ जाता है और कमी से घट जाता है किन्तु तब भी ताप पदार्थ और उत्तप्तता गुण एक नहीं हो सकते। मान लीजिए कि हमारे पास एक बर्तन में २० सेर पानी है और दूसरे में एक छटांक। यदि दोनों को ठीक एक ही प्रकार के चूल्हों पर ५ मिनट तक गरम किया जाय तो क्या परिणाम होगा? दोनों चूल्हों ने अवश्य ही दोनों बर्तनों को बराबर परिमाण में ताप दिया। किन्तु क्या दोनों के पानी की उत्तप्तता

बराबर होगी ? अवश्य ही छटांक भर पानी बहुत गरम हो जायगा। कदाचित् वह उबलने भी लगे और यदि हम उसमें उँगली डाल दें तो उस पर फफोले पड़ जावें। किन्तु २० सेर पानी तो नाम-मात्र को बहुत थोड़ा ही सा गरम होगा। शायद हमारे हाथ को उसके गरम होने का पता भी न चल सके। अतः स्पष्ट है कि दोनों में बराबर ताप पहुँचाने पर भी एक बहुत अधिक गरम होगया और दूसरा नहीं। एक का तापक्रम बहुत अधिक बढ़ गया और दूसरे का बहुत थोड़ा। इस दृष्टि से हम ताप और उष्णता की तुलना वायु और उसके दाब से कर सकते हैं। मान लीजिए कि हमारे पास दो बर्तन हैं। एक का आयतन २० घ० सम० है और दूसरे का १,००० घ० सम०। दोनों में समान दाब की वायु भरी है। तब पहले तो प्रत्यक्ष है कि दोनों का दाब बराबर होने पर भी दोनों में वायु की मात्रा बराबर नहीं है। दूसरे यदि प्रत्येक में पम्प के द्वारा २० घ० सम० वायु और घुसा दी जावे तो स्पष्ट है कि छोटे पात्र की वायु का दाब तो पहले से दुगना हो जावेगा किन्तु बड़े पात्र के दाब में बहुत कम अन्तर होगा।

ताप और वायु की इस तुलना से एक और भी बात समझ में आ जावेगी। यह साधारण अनुभव की बात है कि जब एक गरम वस्तु किसी ठंडी वस्तु से स्पर्श करती है तब वह स्वयं तो कुछ ठंडी हो जाती है और ठंडी वस्तु को कुछ गरम कर देती है। इस बात को समझने के लिए आवश्यक है कि हम मान लें कि ताप गरम वस्तु से निकल कर ठंडी वस्तु में चला जाता है। इसी दृष्टि से ताप को तरल पदार्थ माना गया था। अब यद्यपि हम ताप को अणुओं की गति मानते हैं तब भी यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि ताप तरल पदार्थ की नाईं बह कर गरम वस्तु से ठंडी वस्तु में चला जाता है। अतः ताप की तुलना वायु से की जा सकती है। और तब तापक्रम का अर्थ भी ठीक ठीक समझ में आ सकता है। जिस प्रकार वायु अधिक दाब के स्थान से कम दाब की ओर प्रवाहित होती है उसी प्रकार ताप भी अधिक तापक्रमवाली वस्तु से कम तापक्रमवाली वस्तु में चला

जाता है। न तो वायु कम दाब के स्थान से अधिक दाबवाले स्थान को जा सकती है और न ताप कम तापक्रमवाली वस्तु से अधिक तापक्रमवाली वस्तु में जा सकता है।

इसी प्रकार चाहें तो हम ताप की तुलना जल से भी कर सकते हैं। तब तापक्रम को जल-पृष्ठ की ऊँचाई समझना होगा। चित्र ७० में दो पात्र हैं एक छोटा और दूसरा बड़ा। दोनों में बराबर मात्रा में जल डालने पर भी छोटे पात्र में उसका पृष्ठ बड़े पात्र की अपेक्षा अधिक ऊँचा हो जायगा और यदि दोनों को एक नली के द्वारा जोड़ दें तो छोटे बर्तन से बहकर पानी बड़े में चला जायगा। और यह बहना तभी बन्द होगा जब दोनों बर्तनों में जल की ऊँचाई बराबर हो जायगी। इसी प्रकार बराबर ताप देने पर भी कम समावेशनवाली वस्तु का तापक्रम अधिक बढ़ जायगा और अधिक समावेशनवाली वस्तु का तापक्रम उतना न बढ़ सकेगा। दोनों वस्तुओं को स्पर्श करा देने से दोनों का तापक्रम तो बराबर हो जायगा किन्तु एक में ताप की मात्रा अधिक होगी और दूसरी में कम। अतः स्पष्ट है कि जैसा अन्तर वायु और उसके दाब में, अथवा जल और उसकी ऊँचाई में है ठीक वही अन्तर ताप और तापक्रम में है। दोनों को नापने की विधियां भी भिन्न हैं। जिस प्रकार वायु और जल की मात्रायें तो तराजू से नापी जाती हैं, किन्तु वायु का दाब दाबमापक से और जल की ऊँचाई गज़ से नापनी पड़ती है, उसी प्रकार ताप की मात्रा और तापक्रम को नापने के लिए भी भिन्न भिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है।
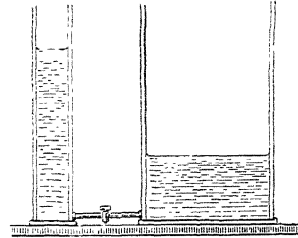
चित्र ७०

इस विषय में एक बात और समझ लेना आवश्यक है। हम लम्बाई या तौल की भांति ताप का एकांक भी नियत कर सकते हैं और तब हम यह भी यथार्थतापूर्वक कह सकते हैं कि अमुक वस्तु में ताप का परिमाण २,१०

या १०० एकांक है। किन्तु तापक्रम का नाप लम्बाई या तौल के नाप की भांति नहीं हो सकता। लम्बाई के नाप में एक गज़ और एक गज़ मिलाने से दो गज़ लम्बाई हो जाती है। इसी प्रकार "१० गज़" "१०० गज़" आदि वाक्यों का अर्थ भी स्पष्ट समझ में आ सकता है। तौल का भी यही हाल है। किन्तु "एक वस्तु का तापक्रम या गरमपन दूसरी वस्तु से दुगना है" इस वाक्य का कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। जैसे "यह बालक चौथी कक्षा में है" यह कहने से तुरन्त ठीक ठीक यह ज्ञात हो जाता है कि उसका ज्ञान किस दर्जे का है, उसकी विद्वत्ता कितनी है। किन्तु क्या हम कह सकते हैं कि आठवीं कक्षा के छात्र की विद्वत्ता चौथी कक्षा के छात्र से द्विगुण है? क्या चौथी कक्षा के दो छात्रों की विद्वत्ता आठवीं कक्षा के एक छात्र की विद्वत्ता के बराबर समझी जा सकती है? ठीक इसी प्रकार तापक्रम के द्वारा भी उत्तप्तता की कक्षायें नियत की जाती हैं और उन कक्षाओं को अंश कहते हैं। जिस वस्तु का तापक्रम १० अंश (१०°) का है वह वस्तु ५° के तापक्रमवाली वस्तु से अधिक गरम है। २०° तापक्रमवाली वस्तु उससे भी अधिक गरम है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि २०° वाली वस्तु ५° वाली वस्तु से चार गुनी अधिक गरम है। या दो दस दस अंश तापक्रमवाली वस्तुओं को मिलाने से २०° का तापक्रम बन जायगा। स्कूल की कक्षाओं का क्रम शिक्षा-विभाग ने अपनी इच्छानुसार नियत कर दिया है और जब चाहें वे उसे बदल भी सकते हैं। आज-कल की दसवीं कक्षा को पहली और पहली कक्षा को १० वीं भी कहा जा सकता है। कक्षाबोधक संख्या वास्तव में संख्या नहीं है वह तो केवल कक्षा का क्रमसूचक नाम-मात्र है। इसी प्रकार तापक्रम-सूचक संख्यायें भी वास्तव में संख्यायें नहीं हैं। वे भी तापक्रमों के नाम-मात्र ही हैं। यह सत्य है कि ये संख्यायें कक्षा-बोधक संख्याओं के समान सर्वथा ही गणित के लिए निरर्थक नहीं हैं क्योंकि वैज्ञानिकों ने अपनी सुविधा के लिए उन्हें बहुत सोच विचार कर नियत किया है। आगे चल कर बतलाया जावेगा कि यह क्रम क्या है।

प्रश्न

(१) यह कैसे प्रमाणित करोगे कि ताप जड़ पदार्थ नहीं है किन्तु एक प्रकार की शक्ति है ?

(२) जड़ पदार्थों में ताप-शक्ति किस रूप में रहती है ?

(३) तापक्रम किसे कहते हैं और उसमें तथा ताप में क्या अन्तर है ?

(४) यह प्रमाणित करने के लिए क्या प्रयोग करोगे कि रक्त-तप्त लोहे की कील की अपेक्षा १० पाउंड लोहे में अधिक ताप है यद्यपि वह ताप के कारण लाल नहीं होगया है किन्तु इतना गरम अवश्य है कि हम उसे छू नहीं सकते ।

परिच्छेद ६

ताप के साधारण परिणाम

९८—ताप के साधारण परिणाम। जड़ पदार्थों में ताप पहुँचाने से उनमें कई प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। इनमें से मुख्य ये हैं :—

१—तापक्रम का बढ़ना जिसका वर्णन किया जा चुका है।

२—प्रसार।

३—अवस्था-परिवर्त्तन।

इनके अतिरिक्त रासायनिक क्रिया, विद्युत्धारा की उत्पत्ति आदि और भी अनेक परिणाम हैं। किन्तु उनका वर्णन इस स्थान पर नहीं किया जा सकता। विद्युत्-सम्बन्धी परिणामों का कुछ वर्णन विद्युत् के विभाग में किया जायगा और रासायनिक परिणामों के विषय में हम केवल इतना ही कह कर सन्तोष करेंगे कि प्रायः प्रत्येक रासायनिक क्रिया को ताप सहायता देता है और उसे अधिक वेगवती बना देता है। और बहुत सी क्रियायें तो बिना ताप के प्रारम्भ ही नहीं हो सकतीं। दियासलाई जलाने में हम रगड़ कर उसका तापक्रम बढ़ा देते हैं और तब ही रासायनिक क्रिया प्रारम्भ होती है जिससे फिर बहुत अधिक ताप उत्पन्न होता है। बारूद का विस्फोटन भी ताप ही के द्वारा होता है। प्राणियों और पौधों के जीवन के लिए जो रासायनिक क्रियायें आवश्यक हैं उनके लिए ताप कितना आवश्यक है यह पहले ही बतलाया जा चुका है।

९९—प्रसार। ठोस, द्रव और गैस जितने भी पदार्थ इस संसार में हैं, प्रायः सभी ताप के कारण फैल जाते हैं। उनकी लम्बाई और

चौड़ाई बढ़ जाती है और आयतन भी अधिक हो जाता है। विपरीत इसके, उन्हें ठंडा करने पर वे सिकुड़ जाते हैं। किन्तु सर्वसाधारण ताप के इस प्रभाव से प्रायः अनभिज्ञ हैं। इसका कारण यह है कि यह प्रसार बहुत ही थोड़ा होता है, और बिना विशेष साधनों के हम उसका अनुभव नहीं कर सकते। किन्तु निम्न-लिखित कुछ प्रयोगों के द्वारा हम सरलतापूर्वक इस प्रसार को प्रत्यक्ष देख सकते हैं।
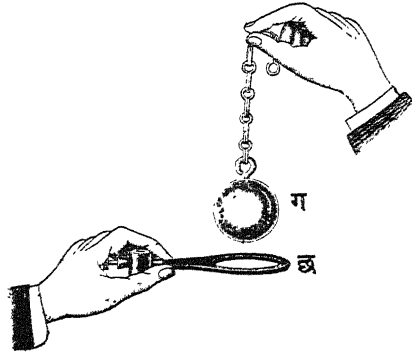
चित्र ७१

१००—ठोस वस्तुओं का प्रसार। चित्र ७१ में ग धातु का गोला है और छ लोहे का ठीक इतना बड़ा छल्ला है कि गोला उसमें से निकल जा सके। अब यदि गोले को आग पर गरम कर लें तो हम देखेंगे कि अनेक प्रकार उलट फेर करने पर भी वह गोला छल्ले में से नहीं निकल सकता। ताप के कारण वह बढ़ जाता है। यदि जल में डुबाकर उसे ठंडा कर लें तो वह पुनः अपने पूर्व विस्तार को प्राप्त कर लेगा और तब फिर उस छल्ले में से निकल सकेगा।

लोहे, पीतल, तांबे या कांच की एक छड़ लकड़ी के दो टुकड़ों पर इस प्रकार रखो कि उसका सिरा क एक टुकड़े पर और दूसरा ख दूसरे पर रहे (चित्र ७२)। क सिरे पर एक भारी बोझ रख दो ताकि यह सिरा अपने स्थान से हट न सके। दूसरे सिरे ख के नीचे एक पतली सुई स रख दो जिससे छड़ लकड़ी के टुकड़े को स्पर्श न करके इस सुई पर ही ठहरी रहे। सुई को इस प्रकार रखना चाहिए कि उसकी लम्बाई छड़ की लम्बाई से सम-कोण बनावे। सुई की नोक में एक तिनका त लगा दो जो बिलकुल सीधा

खड़ा हो। अब यदि स्पिरिट लम्प या बुनसन ज्वालक के द्वारा लोहे की छड़ को गरम करें तो हम देखेंगे कि तिनका बाणांकित दिशा में घूम जायगा। ज्वालक हटाकर छड़ को ठंडा करने पर तिनका पुनः अपने पूर्व
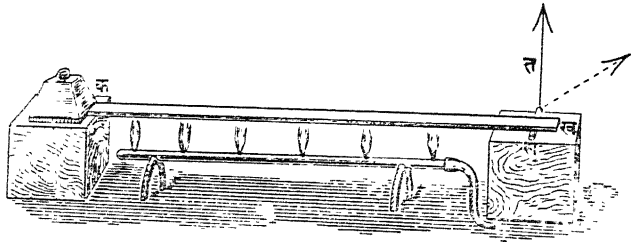
चित्र ७२

स्थान पर लौट आवेगा। तिनके की गति से स्पष्ट है कि सुई भी बेलन की तरह लुढ़कती है और उस पर रखा हुआ छड़ का सिरा ख भी दाहिनी ओर खिसकता है। अतः प्रत्यक्ष है कि छड़ की लम्बाई ताप के कारण बढ़ जाती है।

पीतल और लोहे की दो पत्तियां बराबर लम्बाई की ले लो। उन्हें रिविट करके या झाल लगा के एक संयुक्त पत्ती बना लो। खूब अच्छी तरह सीधी करके उसे गरम करो। तुरन्त वह टेढ़ी हो जायगी और वह भी इस प्रकार की पीतल वक्र के बाहर की ओर रहेगा (चित्र ७३)। इससे यह मालूम होता है कि ताप के कारण पीतल लोहे की अपेक्षा अधिक बढ़ता है।

चित्र ७३

१०१—द्रवों का प्रसार। (१) किसी बोतल या फ्लास्क में एक काग बैठा दो। इस काग में एक छेद करके कांच की पतली नली

घुसा दो। बोतल में लबालब पानी भर के इस काग से उसका मुँह बन्द कर दो ताकि नली में कुछ पानी चढ़ जाय और काग के नीचे बिलकुल हवा न रहने पावे (चित्र ७४)। नली में जिस जगह तक पानी भरा है वहां स्याही से निशान बना दो। अब गरम पानी के किसी बर्तन में इस बोतल को डुबा दो। आप देखेंगे कि पहले तो पानी निशान से नीचे उतर जावेगा और तब धीरे धीरे वह निशान से बहुत ऊपर तक चढ़ जावेगा।
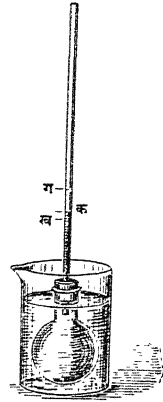
चित्र ७४

पहले पानी के नीचे उतरने का कारण यह है कि सबसे पहले गरमी बोतल के कांच में पहुँचती है। अतः वह बढ़कर बोतल का आयतन बढ़ा देता है और उसे पूर्णरूप से भरने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता हो जाती है। किन्तु ज्योंही ताप बोतल के पानी में पहुँचता है त्योंही पानी भी बढ़ने लगता है और इतना बढ़ता है कि निशान से बहुत ऊपर निकल जाता है। इससे न केवल यह सिद्ध हुआ कि पानी बढ़ता है किन्तु यह भी कि पानी का प्रसार कांच की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

(२) चित्र ७४ ही की भांति के दो तीन और भी उपकरण बना लो। एक में तेल भर दो, एक में स्पिरिट भर दो और एक में यदि हो सके तो पारा भरदो। सबकी नलियों में द्रवों की ऊँचाई बराबर कर लो। तब उन्हें एक ही साथ गरम पानी में डुबा दो। आप देखेंगे कि ताप के कारण सभी द्रवों का आयतन बढ़ता है किन्तु सबका प्रसार बराबर नहीं होता। पारा सबसे कम फैलता है और स्पिरिट सबसे अधिक। किन्तु बोतल के काँच की अपेक्षा पारा भी अधिक फैलता है। वस्तुतः द्रवों का प्रसार ठोसों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

१०२—गैसों का प्रसार। काग और कांच की नली लगाकर जिस प्रकार की बोतल द्रवों का प्रसार देखने के लिए तैयार की थी ठीक

उसी प्रकार की एक बोतल को चित्र ७९ की भाँति इस प्रकार रखो कि नली का मुँह पानी से भरे गिलास में डूबा रहे। देखने की सुविधा के लिए यदि चाहे तो पानी में कोई रंग घोल दो। तब बोतल को हाथ से पकड़ने पर थोड़ी ही देर में नली में से हवा के बुलबुले निकलने लगेंगे। हाथ की थोड़ी सी गरमी ही बोतल की वायु का आयतन इतना काफ़ी बड़ा देगी कि कुछ हवा को उसमें से निकल जाना पड़ेगा। जब यथेष्ट बुलबुले निकल चुकें तो हाथ को हटा लो। वायु सिकुड़ जायगी और रंगीन पानी नली में चढ़ जायगा। तब आप देखेंगे कि बोतल के निकट थोड़ी भी गरम वस्तु लाने पर तुरन्त ही नली का पानी नीचे उतरना प्रारम्भ करेगा। इतने कम ताप से द्रवों का जो प्रसार होता है वह आसानी से दिखलाई नहीं दे सकता। इससे स्पष्ट है कि वायु का प्रसार द्रवों की अपेक्षा भी बहुत अधिक होता है।
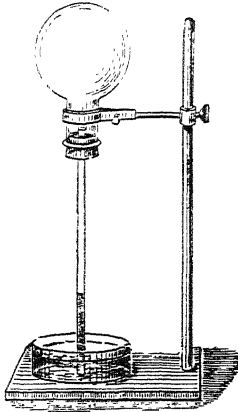
चित्र ७९

१०३—प्रसार के अन्य उदाहरण। इस प्रसार तथा संकोच के अन्य उदाहरण नित्य प्रति हमारे अनुभव में आते रहते हैं किन्तु बहुधा हम उन पर विचार नहीं करते और इसलिए उनका ठीक ठीक कारण हमारी समझ में नहीं आता। रेल का प्रत्येक यात्री देख सकता है कि टेलीग्राफ के तार गरमी के मौसिम में लम्बे हो जाने के कारण अधिक लटक जाते हैं। किन्तु जाड़े के मौसम में तनकर प्रायः सीधे हो जाते हैं। जिन लोहे की पटरियों पर रेल चलती है उनके भिन्न भिन्न टुकड़े आपस में सटकर नहीं जुड़े रहते। उनके बीच में थोड़ी जगह छुटी रहती है। गरमी में पटड़ियों की लम्बाई बढ़ जाती और यह जगह कम हो जाती है। यदि पटड़ी बिछाते समय यह जगह न छोड़ी जाती तो अवश्य ही गरमी में पटड़ियां टेढ़ी होकर ऊपर को उठ जातीं।

इसी प्रकार लोहे के लम्बे लम्बे पुलों को बनाते समय कम से कम उनका एक सिरा बेलनों पर रखकर बिना जमाये ही छोड़ दिया जाता है ताकि मौसिम के अनुसार पुल की लम्बाई घट बढ़ सके। गाड़ी के पहिये पर लोहे की हाल कैसे चढ़ाई जाती है ? पहले हाल को ख़ूब गरम कर लेते हैं। इससे वह बढ़ जाती है। इसी गरम अवस्था में पहिये पर वह चढ़ा दी जाती है। और तब पानी डालकर उसे ठंडा कर देते हैं जिससे सिकुड़ कर वह पहिये को अच्छी तरह जकड़ लेती है। साधारण कम क़ीमत की घड़ियां गरमी में सुस्त चलने लगती हैं और सर्दी में तेज़, क्योंकि उनके दोलक की लम्बाई गरमी में बढ़ जाती है और सर्दी में कम हो जाती है। जब बोतल के मुँह में कांच की डाट अड़ जाती है तब उसके निकालने का उपाय क्या है ? मोमबत्ती या तेल का छोटा सा दिया जलाकर उसकी लौ से बोतल का मुँह चारों ओर घुमा घुमाकर गरम कर दिया जाता है। इससे वह बढ जाता है। डाट तक गरमी पहुँचती नहीं और इस कारण वह ज्यों की त्यों रहती है। इसलिए वह ढीली पड़ जाती है और आसानी से निकल आती है। मोटे कांच के गिलास में उबलता हुआ पानी डाल देने से बहुधा वह टूट जाता है। क्योंकि गिलास का भीतरी भाग तो पानी की गर्मी से बढ़ जाता है और बाहरी भाग ठंडा ही रहने के कारण बढ़ता नहीं। इस बाहर और भीतर की खींचा-तानी का परिणाम यह होता है कि गिलास टूट जाता है। ऐसा गिलास बर्फ़ डालने से भी टूट जायगा। इससे स्पष्ट है कि पतले कांच के गिलास अच्छे होते हैं। उनमें बाहर और भीतर के तापक्रम में अधिक अन्तर नहीं हो सकता और इसी लिए ये कम टूटते हैं। किसी बर्तन में लबालब पानी या अन्य कोई द्रव भर कर गरम करते ही वह बढ़ कर बर्तन में से बह निकलता है। मिट्टी के तेल के लम्प पर कांच की चिमनी लगाने से उसकी रोशनी बहुत अच्छी हो जाती है। इसका कारण भी यह है कि चिमनी की हवा गरम होने से फैल कर हलकी होती जाती है। अतः वह ऊपर को उठती जाती है और उसका स्थान नीचे के छिद्रों में से आकर बाहर की ताज़ी हवा लेती जाती है जिससे तेल जलने की रासायनिक क्रिया अच्छी तरह होने लगती है।

१०४—अवस्था-परिवर्त्तन । प्रसार के अतिरिक्त ताप का वस्तुओं पर एक मुख्य प्रभाव यह है कि वह ठोसों को द्रव रूप बना देता है और द्रवों को गैस रूप । बरफ़ ताप ही के कारण पिघल कर जलरूप हो जाता है और जल को भी उबालने पर भाप बन जाती है । घी जाड़ों में जम कर ठोस-रूप धारण कर लेता है किन्तु धूप में रख देने पर या चूल्हे पर गरम करने से तुरन्त ही पिघल कर पानी के समान पतला हो जाता है और यदि बहुत अधिक गरम कर दें तो यह भी उबलने लगता है और गैस रूप बन कर उड़ जाता है । इसी प्रकार प्रायः प्रत्येक पदार्थ ताप के कारण क्रमशः तीनों अवस्थाओं को धारण कर लेता है । भेद केवल इतना है कि यह अवस्था-परिवर्त्तन भिन्न भिन्न तापक्रमों पर होता है । बरफ़ को पिघलाने के लिए वायुमंडल का साधारण तापक्रम ही पर्याप्त है, घी और मोम को कुछ अधिक गरम करना पड़ता है, गंधक को उससे भी अधिक दर्जे का ताप देना होता है और लोहा, सोना, चांदी आदि के लिए तो इतना अधिक तापक्रम आवश्यक है कि बिना विशेष साधनों के वे पिघल ही नहीं सकते । कोई कोई तो पदार्थ ऐसे भी हैं जिन्हें पिघलाने के योग्य तापक्रम मनुष्य अभी तक उत्पन्न ही नहीं कर सका है यथा कार्बन । विपरीत इसके कुछ ऐसे पदार्थ भी हैं जो साधारण तापक्रम पर ही गैस अवस्था में रहते हैं जैसे वायु, हाइड्रोजन आदि । इन्हें द्रव रूप बनाने के लिए बहुत अधिक ठंडक की आवश्यकता होती है । तब ठोस बनाने के लिए तो कहना ही क्या है । इन दोनों के बीच के वे पदार्थ हैं जिनकी अवस्था साधारणतया द्रव होती है यथा जल, पारा । इनके लिए न तो ठोस बनाने को बहुत ठंडक चाहिए और न गैस बनाने को बहुत गर्मी ।

हां कोई कोई पदार्थ ऐसे भी हैं जो साधारण दृष्टि से इस नियम के अपवाद मालूम होते हैं । कपूर ठोस अवस्था से एक-दम गैस अवस्था को प्राप्त कर लेता है । उसकी द्रव अवस्था देखने में नहीं आती । इसी प्रकार का पदार्थ आयोडीन है । किन्तु विशेष साधनों से इन्हें भी द्रवरूप दिया जा सकता है ।

१०५—प्रसार और अवस्था-परिवर्त्तन का वास्तविक कारण। ताप के आणविक सिद्धान्त के अनुसार इस प्रसार का कारण यह है कि ताप की अधिकता से अणु अधिक वेग से चलने लगते हैं। इसका आवश्यक परिणाम यह है कि उन्हें अधिक स्थान की, अधिक अवकाश की आवश्यकता हो जाती है। अणुओं के बीच का खाली स्थान बढ़ जाता है। दो अणुओं के बीच की औसत दूरी अधिक हो जाती है। और ज्यों ज्यों यह दूरी बढ़ती जाती है त्यों त्यों अणुओं का पारस्परिक आकर्षण भी घटता जाता है। जब यह आकर्षण इतना घट जाता है कि अणु अपने स्थान से हट कर इधर-उधर आ जा सकते हैं तब वस्तु का कोई आकार नहीं रहता। वह द्रव-अवस्था को प्राप्त कर लेती है। इन अवस्थाओं में आकर्षण की कमी के कारण प्रसार और भी अधिक होने लगता है और अन्त में यह आकर्षण प्रायः समूल नष्ट ही हो जाता है। यही पदार्थ की गैस-अवस्था है।

प्रश्न

(१) यदि कॉच की डाट बोतल में फँस गई हो तो कैसे निकालोगे?

(२) जल इत्यादि गरम करने के लिए पतले कांच के बीकर क्यों अच्छे समझे जाते हैं?

(३) एक साधारण घड़ी सरदी के मौसिम में ठीक समय बताती है। क्या गरमी में भी वह ठीक समय बतायगी? यदि नहीं, तो उसे ठीक करने के लिए हमें क्या करना होगा?

(४) यदि लम्प की चिमनी पर पानी के छींटे गिर पड़ें तो यह क्यों टूट जाती है?

(५) ताप के कारण जो प्रसार होता है उसका कारण अणुओं के द्वारा कैसे समझा सकते हो?

(६) अवस्था-परिवर्त्तन किसे कहते हैं और यह कैसे होता है?

(७) ऐसे ठोस पदार्थों के नाम बताओ जो द्रव अवस्था को प्राप्त किये बिना ही गैसरूप धारण कर लेते हैं।

परिच्छेद १०

तापमापक या थर्मामीटर

१०६—तापक्रम का नाप । यह सभी लोग जानते हैं कि वस्तु को स्पर्श करके हमें उसकी उत्तप्तता या गरमपन का अन्दाज़ा हो जाता है और बहुधा हम यह भी ठीक ठीक बतला देते हैं कि कौन वस्तु अधिक गरम है और कौन कम। किन्तु उत्तप्तता का अन्दाज़ा करना एक बात है और तापक्रम का यथार्थतापूर्वक नाप लेना दूसरी ही बात है। नाप की बात तो छोड़ दीजिए हमें अपनी ताप-इन्द्रिय के द्वारा उत्तप्तता का अन्दाज़ा भी सदा विश्वास के योग्य नहीं मिलता। अपने हाथ को पहले ख़ूब गरम पानी में डुबा कर यदि आप कुछ गुनगुने पानी में डालें तो अवश्य ही वह बिलकुल ठंडा जान पड़ेगा। किन्तु यदि आप पहले उसे बरफ़ के पानी में डुबा लें तो वही गुनगुना पानी आपको ख़ूब गरम मालूम होगा। इस ही प्रकार जाड़ों में बन्द कमरे में बैठे हुए मनुष्य भी जब सर्दी के मारे ठिठर रहे हों तब बाहर से आनेवाला मनुष्य यह अनुभव करता है कि कमरा अच्छा गरम है। जब एक ही मनुष्य का एक ही हाथ भिन्न भिन्न अवसरों पर एक ही वस्तु का तापक्रम भिन्न भिन्न बतलाता है तब दो मनुष्यों का मत तो इस संबन्ध में मिलना कठिन ही नहीं बहुधा असम्भव है। अतः यह आवश्यक है कि कोई ऐसी युक्ति निकाली जाय कि जिससे इस प्रकार की ग़लती की सम्भावना भी जाती रहे और नाप भी अच्छी तरह हो जाय।

पिछले परिच्छेद में यह बतलाया जा चुका है कि ज्यों ज्यों किसी वस्तु का तापक्रम बढ़ता है त्यों त्यों उसका प्रसार भी होता जाता है। अतः यदि

हम किसी वस्तु के प्रसार को ठीक ठीक नाप लें तो इसी नाप के द्वारा हम तापक्रम का नाप भी अच्छी तरह कर सकते हैं। मान लीजिए कि चित्र ७४ की नलीदार बोतल को पहले हमने गरम पानी के एक पात्र में रखा जिससे नली में पानी दो इंच ऊँचा उठ गया। अब यदि उसी बोतल को हम किसी गरम तेल के पात्र में रखें और फिर भी नली का पानी ठीक दो इंच ही ऊपर उठे तो क्या हम निस्संदेह यह न कह सकेंगे कि इस तेल का ताप-क्रम ठीक उस गरम पानी के तापक्रम के बराबर है ? यही क्यों, हम चाहें तो उक्त तापक्रम का नाम दो इंच का तापक्रम रख सकते हैं। इसी प्रकार ३, ४, ६, १० इंचों का तापक्रम भी निश्चितरूप से नियत किया जा सकता है। इस दृष्टि से हम उक्त बोतल को तापमापक कह सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम जल के स्थान में अन्य कोई द्रव उस बोतल में भर देते तब भी एक तापमापक बन जाता। किन्तु तब जिसे हमने ऊपर दो इंचों का तापक्रम कहा है उसे १ इंच, ३ इंच या कदाचित् ५ इंच का तापक्रम कहना पड़ता। यही क्यों, यदि हमारी बोतल ही दुगुनी बड़ी होती तो पानी ही भरने पर भी उसे चार इंच का माप कहना पड़ता। चित्र ७५ की उलटी बोतल से भी तापमापक का काम लिया जा सकता है। इसमें वायु के प्रसार का उपयोग होगा। और उपर्युक्त तापक्रम को इसके द्वारा नापने पर वह दो इंच के स्थान में कई फुट का जान पड़ेगा।

अतः स्पष्ट है कि यदि हम ऐसा तापमापक चाहते हैं कि जो सार्वदैशिक हो और यदि उत्तप्तता का हम ऐसा क्रम चाहते हैं कि जिसमें प्रत्येक तापक्रम एक निश्चित संख्या के द्वारा व्यक्त किया जाय और किसी अन्य संख्या के द्वारा वह व्यक्त न हो सके तो यह आवश्यक है कि हम एक बार सोच समझ कर यह निश्चित कर लें कि वह तापमापक किस पदार्थ का बनेगा, और उस पर तापक्रम-सूचक अंक किस रीति से अंकित किये जायँगे।

तापमापक के लिए उपयुक्त पदार्थ की खोज में सबसे पहले तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हम इस कार्य के लिये किसी भी ठोस पदार्थ

का उपयोग नहीं कर सकते क्योंकि उसका प्रसार बहुत ही कम होता है। द्रवों में भी, जल में यह दिक्कत है कि थोड़ा ही तापक्रम घटने पर वह जम कर ठोस बर्फ़ बन जाता है और थोड़ा ही गरम करने पर वह उबल कर भाप बन जाता है। स्पिरिट या अलकोहाल यद्यपि इतने शीघ्र जमते नहीं हैं तथापि वाष्परूप वे जल से भी कम तापक्रम पर धारण कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक कारणों से पारा ही तापमापक बनाने के लिए सर्व-श्रेष्ठ द्रव समझा गया है। इसका पृष्ठ बड़ी आसानी से दिखलाई देता है, यह कांच की नली में चिपकता भी नहीं और इसका प्रसार भी यथेष्ट होता है।

१०७—पारे का तापमापक बनाने की विधि। यद्यपि ऊपर बतलाई हुई रीति से नलीदार बोतल में पारा भर देने से तापमापक बन सकता है किन्तु उसमें तापक्रम-सूचक अंकों की अनिश्चितता के अतिरिक्त अन्य भी कई दोष होंगे। प्रथम तो वह बड़ा बहुत होगा। उसका विस्तार इतना होगा कि उसके द्वारा बीमार के ज्वर का अथवा गिलास के पानी का तापक्रम नहीं नापा जा सकता। बोझ भी उसमें इतना होगा कि सुविधा से इधर-उधर ले जाया नहीं जा सकता। उसके टूटने का अथवा उसमें से पारे के गिर जाने का भी डर है। अतः साधारण तापमापक बहुत ही छोटा होता है और निम्नलिखित रीति से बनाया जाता है।
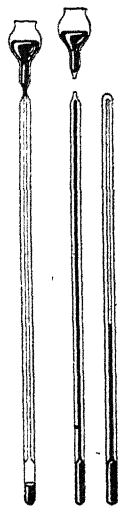
चित्र ७६

पहले बाल के समान बारीक छिद्रवाली कांच की नली के एक सिरे पर छोटी सी एक घुंडी बनाई जाती है। इसे बल्ब कहते हैं। नली के सिरे पर एक छोटी सी कीप लगा दी जाती है। इस कीप में शुद्ध किया हुआ पारा भर दिया जाता है किन्तु वह केश नली में प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि उसमें की हवा को निकलने का कोई मार्ग नहीं है। अतः बल्ब को गरम करके इस वायु को फैला देते

हैं जिससे वह पारे में होकर बुलबुलों के रूप में बहुत सी निकल जाती है। अब बल्ब को ठंडा होने देते हैं। इससे बची हुई वायु सिकुड़ कर ऊपर से पारे को नली में घुस आने देती है और थोड़ा सा पारा बल्ब में एकत्रित हो जाता है। बल्ब को पुनः गरम करके थोड़ी वायु और निकाल दी जाती है जिससे ठंडा करने पर और भी पारा बल्ब में आ जाता है। इसी प्रकार कई बार गरम और ठंडा करके संपूर्ण बल्ब और नली पारे से परिपूर्ण कर ली जाती है। तब इस पारे से भरी हुई नली को इतना गरम किया जाता है कि पारा उबलने लगे। यह कार्य बड़ी सावधानी से किया जाता है ताकि हवा का छोटा सा बुलबुला भी कहीं इसके पारे में न रह जाय। तब पुनः बल्ब को इच्छानुसार गरम करके कीप की ओर का सिरा वहां का काँच गला कर बन्द कर दिया जाता है। यदि यह सब काम ठीक ठीक हुआ तो ठंडा करने पर पारा नली के कुछ भाग तक भरा रहेगा। पारे के ऊपर के भाग में वायु न होगी। यदि वहाँ कुछ रहेगा तो पारे का वाष्प। यही पारे का तापमापक है। आप देखेंगे कि इसके बल्ब को गरम पानी में रखते ही पारा ऊपर चढ़ने लगेगा और ठंडे पानी में रखने से नीचे उतरने लगेगा। किन्तु अभी इस पर तापक्रम-सूचक रेखायें अंकित करना बाक़ी है।

१०८—दो स्थिर तापक्रम। यदि इस तापमापक को साफ़ बर्फ़ में रख दें तो पारा नीचे उतर कर एक विशेष स्थान पर पहुँच जायगा। फिर चाहे कितनी ही देर इसे बर्फ़ में पड़ा रहने दो पारा वहीं रहेगा। इस स्थान पर कोई चिह्न बना दो। अब यदि इस तापमापक को किसी भी अवसर पर संसार के किसी भी स्थान में ले जाकर **साफ़ और पिघलती हुई बर्फ़** में रखें तो आप देखेंगे कि पारा सर्वदा उक्त चिह्न पर ही जाकर ठहरेगा। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पिघलते हुए स्वच्छ बर्फ़ का तापक्रम स्थिर है। वह कभी बदलता नहीं! इसी लिए प्रत्येक तापमापक पर यह चिह्न अवश्य लगाया जाता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि यदि बर्फ़ में नमक इत्यादि कोई

मेल हुआ तो तापक्रम बदल जायगा। और यदि वह पिघलता न हो तो भी उसका तापक्रम उपर्युक्त स्थिर तापक्रम न होगा क्योंकि तब उसका तापक्रम अन्य ठोस पदार्थों की भाँति अवश्य ही इच्छानुसार कम किया जा सकता है। जो तापक्रम स्थिर है वह तो केवल अवस्था-परिवर्त्तन का तापक्रम है। जब जल जम कर बर्फ़ बनेगा या बर्फ़ पिघल कर जल बनेगा तब यह अवस्था-परिवर्त्तन अवश्य ही उक्त स्थिर तापक्रम पर होगा।
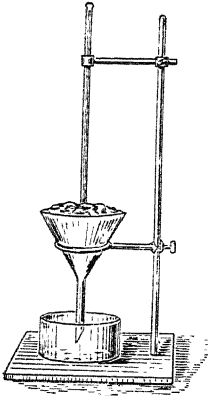
चित्र ७७

इसी भाँति जल की भाप बनने का या भाप से पुनः जल बनने का भी तापक्रम स्थिर है। किसी फ़्लास्क के काग में दो छेद करके एक में तापमापक की नली घुसा दो और एक में कांच की मुड़ी हुई नली। इस फ़्लास्क में पानी भर के उसे उबलने को ज्वालक पर रख दो। ध्यान रहे कि तापमापक का बल्ब जल से कुछ ऊँचा रहे। वह जल में डूबने न पावे। जब जल उबलने लगेगा तब उसकी भाप के द्वारा तापमापक का बल्ब और नली भी गरम होंगे और उसकी नली में पारा चढ़ेगा। किन्तु वह एक निश्चित स्थान पर पहुँच कर स्थिर हो जायगा। जब तक पानी उबलता रहेगा वह वहां से न हटेगा। यह तापक्रम भी स्थिर है। इसे नापने के लिए तापमापक का बल्ब जल में न डुबाना
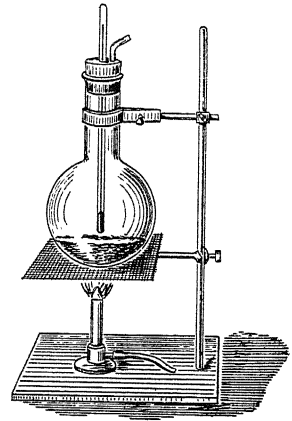
चित्र ७८

चाहिए। यदि जल बिलकुल शुद्ध हो तब तो तापमापक को जल में डुबाने से कोई हानि नहीं क्योंकि उसका तापक्रम भी वही स्थिर तापक्रम होगा। किन्तु यदि जल में कुछ भी मेल हुआ तो उसका तापक्रम बढ़ जायगा। किन्तु भाप का तापक्रम उतना ही रहेगा क्योंकि भाप शुद्ध जल की बनती है।

इस संबंध में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। उबलनेवाले जल पर भाप का कितना दाब है इस बात पर यह स्थिर तापक्रम बहुत कुछ निर्भर है। खुले हुए बर्तन में भाप का दाब कमरे की वायु के दाब के बराबर ही होगा। अतः यदि वायु का दाब अधिक हुआ तो उबलने का तापक्रम भी बढ़ जायगा और यदि वह कम हुआ तो यह तापक्रम भी घट जायगा। अतः ऊँचे पहाड़ की चोटी पर पानी को उबालकर इस स्थिर तापक्रम का पता नहीं लगाया जा सकता। सुविधा के लिए यह निश्चित कर लिया गया है कि जब वायु का दाब ७६ समॅ० हो तभी इस तापक्रम का चिह्न तापमापक पर लगाना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम पृथ्वी पर ऐसा स्थान खोजते फिरें जहां का दाब ७६ समॅ० हो। ऐसी विधियां निकाल ली गई हैं कि जिनके द्वारा किसी भी स्थान पर वहां का दाब वायु-दाब-मापक से नापकर इस स्थिर तापक्रम का चिह्न लगाया जा सकता है।

तापमापक पर गलते हुए बर्फ़ के तापक्रम का जो चिह्न लगाया जाता है उसे अधोविन्दु कहते हैं और उबलते हुए जल के तापक्रम के चिह्न को ऊर्ध्व-विन्दु कहते हैं। इन बिन्दुओं को तापमापक पर अंकित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी नली का पारा भी प्रायः पूरा ही बर्फ़ या भाप से आच्छादित हो। अन्यथा नली के पारे का तापक्रम क्रमशः अधिक या कम रह जावेगा और स्थिर विन्दु ठीक स्थान पर न लग सकेगी।

१०९—तापमापक का अंशाकन। अब यह आवश्यक है कि ऊर्ध्व- और अधोविन्दुओं के बीच के स्थान को किसी नियत संख्या में विभाजित किया

जाय। और तब प्रत्येक चिह्न से जो तापक्रम व्यक्त होता है उसका किसी नियम के अनुसार नामकरण किया जाय। अर्थात् तापमापक पर कोई न कोई स्केल लगाने की आवश्यकता है। संसार में इसकी प्रायः दो विधियाँ प्रचलित हैं।

(१) शतांश अथवा सेंटीग्रेड विधि। इस विधि में अधोविन्दु को शून्य अंश (०°श) कहते हैं और ऊर्ध्व विन्दु को १००°श। इन दोनों के बीच का स्थान १०० समान भागों में विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक भाग को एक अंश या डिगरी कहते हैं। ठीक इतने ही बड़े बड़े विभाग ०° श से नीचे की ओर तथा १०० ° श से ऊपर की ओर भी कर दिये जाते हैं। नीचे के विभागों के नाम – १° श, – २° श, – ५° श, – २०° श इत्यादि तथा ऊपर के विभागों के नाम १०१° श, ११०° श, १४०° श इत्यादि होते हैं। वैज्ञानिक कार्यों के लिए इसी विधि का उपयोग होता है और यूरोप में साधारण व्यवहार में भी यही विधि काम में आती है।

(२) फाहरनहाइट विधि। यह विधि फाहरनहाइट नामी विद्वान् की चलाई हुई है। इसमें अधोविन्दु को ३२° फ कहते हैं और ऊर्ध्वविन्दु को २१२° फ। अर्थात् इन दोनों बिन्दुओं के बीच का भाग १८० भागों में विभक्त किया जाता है। इँगलैंड और उसके आधीन देशों में यही विधि प्रचलित है। डाक्टर लोग रोगी का तापक्रम भी इसी विधि से नापते हैं।

बहुधा यह आवश्यक हो जाता है कि शतांश तापक्रम को फाहरनहाइट अंशों में व्यक्त किया जाय और फाहरनहाइट तापक्रमों को शतांश अंशों में। यह बहुत सरल बात है। ऊर्ध्व और अधोविन्दु का अन्तर शतांश विधि में १०० भागों में और फाहरनहाइट विधि में १८० भागों में विभक्त होता है।

अतः—

१०० डिगरी श = १८० डिगरी फ

∴ १ ” श = $\frac{९}{५}$ ” फ

अथवा १ ” फ = $\frac{५}{९}$ ” श
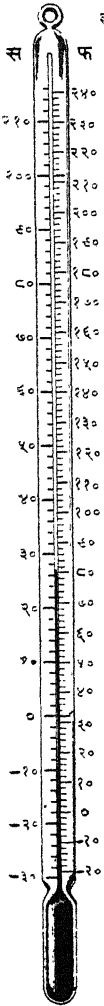
यदि शतांश तापक्रम को फाहरनहाइट में परिवर्त्तन करना हो तो पहले उसे $\frac{\text{९}}{\text{५}}$ से गुणा करना चाहिए। तब जो संख्या प्राप्त हो उसमें ३२ जोड़ देने चाहिए क्योंकि ०° श = ३२° फ। इसी प्रकार फाहरनहाइट से शतांश बनाने के लिए पहले ३२° उसमें से बाक़ी निकाल लेना चाहिए और तब $\frac{\text{५}}{\text{९}}$ से गुणा कर देना चाहिए। संकेतों में यों कह सकते हैं:—

$$\text{त}^\circ\ \text{श} = \left(\frac{\text{९}}{\text{५}} \times \text{त} + \text{३२}\right)^\circ \text{फ}$$

$$\text{और त}^\circ\ \text{फ} = \frac{\text{५}}{\text{९}}\left(\text{त} - \text{३२}\right)^\circ \text{श}$$

$$\text{यथा २५}^\circ\ \text{श} = \left(\frac{\text{९}}{\text{५}} \times \text{२५} + \text{३२}\right)^\circ \text{फ} = \left(\text{४५} + \text{३२}\right)^\circ \text{फ} = \text{७७}^\circ\ \text{फ}$$

$$\text{और १०४}^\circ\ \text{फ} = \frac{\text{५}}{\text{९}}\left(\text{१०४} - \text{३२}\right)^\circ\ \text{श} = \left(\frac{\text{५}}{\text{९}} \times \text{७२}\right)^\circ \text{श} = \text{४०}^\circ\ \text{श}$$

चित्र ७९ में दोनों प्रकार के क्रम दिखलाये गये हैं।

११०—उच्चतम और निम्नतम तापमापक। बहुधा ऐसी वस्तुओं का तापक्रम नापने की आवश्यकता होती है जिनकी उत्तप्तता बदलती रहती है। इस कार्य के लिए तो ऐसे तापमापक की ज़रूरत है जो स्वयमेव प्रतिक्षण के तापक्रम को काग़ज़ पर लिख दे। ऐसे यन्त्र को तापलेखक कहते हैं। इसका वर्णन हम यहां नहीं कर सकते। किन्तु कभी कभी हमें यही जानना अभीष्ट होता है कि तापक्रम अधिक से अधिक कितना हुआ और कम से कम कितना। जैसे मौसिम के ज्ञान के लिए यही पर्याप्त है कि हमें यह मालूम हो जाय कि दिन में वायु का उच्चतम तापक्रम क्या था और रात्रि को निम्नतम कितना। इसके लिये दो विशेष प्रकार के तापमापकों की आवश्यकता होती है जिन्हें उच्चतम तापमापक और निम्नतम तापमापक कहते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। चित्र ८० में उनका एक प्रचलित रूप दिखलाया गया है।

चित्र ७९

उच्चतम तापमापक पारे ही का तापमापक है। उसमें विशेषता केवल यह है कि बल्ब के निकट 'क' स्थान पर उसकी नली विशेषरूप से बारीक बना दी गई है। इससे जब गरमी पाकर बल्ब का पारा फैलता है तब तो वह बलपूर्वक उस अत्यन्त सूक्ष्म द्वार में से निकल कर नली में चला जाता है। किन्तु जब पारा सिकुड़ता है तब नली का पारा इस द्वार में पुनः प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि उस पर अब कोई बल नहीं होता। अतः उच्चतम ताप प्राप्त कर लेने पर जब तापमापक का बल्ब ठंडा हो जाता है तब भी
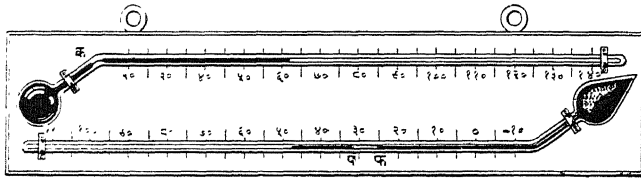
चित्र ८०

नली का पारा ज्यों का त्यों रहता है और उसका सिरा उसी उच्चतम तापक्रम को सूचित करता रहता है। नली के पारे को पुनः बल्ब में घुसाने के लिए तापमापक को हाथ में लेकर ज़ोर से झटका लगाना पड़ता है।

निम्नतम तापमापक स्पिरिट या अलकोहाल का बना होता है। इसकी नली में रंगीन कांच की एक छोटी सी डम्बल की आकृतिवाली सूची 'पफ' पड़ी रहती है। तापमापक को टेढ़ा करके इस सूची का एक सिरा तापमापक के द्रव के पृष्ठ से लगा देते हैं। जब तापक्रम बढ़ता है तब तो वह सूची जहां की तहां पड़ी रहती है और द्रव-पृष्ठ आगे बढ़ जाता है। किन्तु जब तापक्रम घटता है तब द्रव-पृष्ठ पीछे हटता है और इस सूची को भी उसी के साथ साथ पीछे सरकना पड़ता है। अतः इसका सिरा 'प' निम्नतम तापक्रम का सूचक है। यह स्पष्ट है कि इस तापमापक की नली खड़ी नहीं रखी जा सकती। उसे सदा क्षैतिज या आड़ी ही रखना पड़ेगा।

१११—शरीर-ताप-मापक । रोगी का ज्वर देखने के लिए डाक्टर लोग जिस तापमापक का व्यवहार करते हैं उसे शरीर-ताप-मापक या ज्वर-मापक कहते हैं । यह भी उपर्युक्त प्रकार का उच्चतम तापमापक ही होता है क्योंकि यदि साधारण तापमापक को रोगी की बग़ल या उसके मुँह में रखें तो हमें वहीं लगे ही लगे उसको पढ़ना होगा । यह नहीं हो सकता कि उसे मुँह या बग़ल में से निकाल कर रोशनी में ले जाकर आराम से पढ़ लें क्योंकि इतनी देर में तो ठंडा होकर उसका पारा नीचे उतर आवेगा । इसमें भी बल्ब के निकट नली का छिद्र बारीक होता है और झटका लगाने पर ही नली का पारा बल्ब में लौटाया जा सकता है ।

साधारण मनुष्य के शरीर का तापक्रम ९७·८° फ से कम या ९८·९° से अधिक नहीं होता है । इसी लिए ९८·४° फ को स्वस्थ तापक्रम कहते हैं । इससे अधिक तापक्रम ज्वर का सूचक है । १०४° अथवा १०५° पर ज्वर बहुत तीव्र समझना चाहिए । इससे अधिक तापक्रम अनिष्टकर है और १०७° या १०८° पर तो मनुष्य के जीवित रहने की आशा नहीं रहती । इसी प्रकार ९५° से कम का तापक्रम भी जीवन के लिए भयंकर है । अतः शरीर-ताप-मापक के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह ९५°फ से कम अथवा ११०° फ से अधिक तापक्रम को नाप सके । उसे बनाते समय पारा उसमें इस अन्दाज़ से ही भरा जाता है कि ९५° पर वह नली में थोड़ा ही प्रवेश करे और ११०° पर वह समस्त नली को भर दे । इस पर अंशों के चिह्न अन्य तापमापक की सहायता से बनाये जाते हैं ।

चित्र ८१

शरीर-ताप-मापक से शरीर का तापक्रम नापते समय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमें वास्तव में शरीर के भीतर का, शरीर के लहू का ताप-क्रम जानना है । अतः ज्वरमापक को शरीर के उसी भाग से लगाना

होगा जो बाहर की वायु से ठंडा न होगया हो। इसी कारण बग़ल या मुँह उपयुक्त स्थान समझे जाते हैं। किन्तु इन स्थानों में भी यह आवश्यक है कि शरीर ज्वरमापक के बल्ब को अच्छी तरह स्पर्श कर ले और वह काफ़ी समय तक लगा रहे। यद्यपि यह तापमापक ऐसे बनाये जाते हैं कि प्रायः आधे मिनट में ही शरीर का तापक्रम ग्रहण कर लेते हैं किन्तु तब भी कुछ अधिक देर तक ही लगाये रहना चाहिए। यह न समझना चाहिए कि अधिक देर तक लगाने से तापक्रम अधिक हो जायगा।

११२—अन्य प्रकार के तापमापक। पारे का तापमापक प्रायः –३०° श से ३००° श तक के तापक्रम को नाप सकता है। इसका कारण यह है कि पारा –३९° श पर जम जाता है और ३५०° श पर उबलने लगता है। तापमापक की नली के पारे के ऊपर के स्थान को ख़ाली न रख कर यदि उसमें नाइट्रोजन गैस भर दी जावे तो उसके अधिक दाब के कारण ऐसे तापमापक प्रायः ४००° श तक काम में आ सकते हैं। इसके उपरान्त नापने के लिए अन्य प्रकार के तापमापक बनाये जाते हैं। अभी थोड़े ही वर्ष से एक तापमापक बनने लगा है जिसमें काँच के स्थान में सिलिका अर्थात् गलाई हुई बालू या स्फटिक की नली तथा बल्ब का प्रयोग किया जाता है और पारे के स्थान में गैलियम नामक धातु का। यह प्रायः १०००° श तक काम में आ सकता है। इस गैलियम के तापमापक के बनने से पहले अधिक नीचे या अधिक ऊँचे तापक्रमों को नापने के लिये वायु या हाइड्रोजन गैस के तापमापक काम में आते थे। इसके अतिरिक्त विद्युत् से सम्बन्ध रखनेवाले भी दो प्रकार के तापमापक होते हैं जिनकी सहायता से प्रायः –२७०° श से लेकर १२००° श तक नाप लेना सरल कार्य है। जब तापक्रम इससे भी अधिक होता है तब वस्तु में से लाल, पीला या श्वेत प्रकाश निकलने लगता है। इस प्रकाश के द्वारा भी तापक्रम नापने की युक्ति निकाल ली गई है और उससे २०००° या ३०००° श के तापक्रम भी नापे जा सकते हैं। यहाँ तक कि इसी रीति से सूर्य और अनेक तारों का तापक्रम भी नाप लिया गया है। सूर्य का तापक्रम प्रायः ६०००° श है और तारों का तापक्रम

तो कई सहस्र अंश का निकला है। पृथ्वी पर बिजली के आर्कलम्प का ही तापक्रम सबसे अधिक होता है और वह प्रायः ३००० ° श का है।

प्रश्न

(१) तापमापक क्या होता है और उससे हमें क्या बात मालूम होती है ?

(२) किसी तापमापक के स्थिर बिन्दुओं की यथार्थता की परीक्षा कैसे करोगे ?

(३) पारे का तापमापक बनाने की विधि का वर्णन करो।

(४) यदि दो तापमापकों के बल्ब बराबर आयतन के हों किन्तु एक की नली का रंध्र दूसरे की अपेक्षा आधा ही हो तो इनके स्थिर बिन्दुओं के बीच की दूरी में क्या फ़र्क होगा ?

(५) तापमापक में पारा क्यों भरा जाता है ? पारे के स्थान में और क्या पदार्थ भरे जा सकते हैं ? प्रत्येक के हानि-लाभ बतलाओ।

(६) तापमापक की नली का रन्ध्र इतना बारीक क्यों होता है और उनमें बल्ब से क्या लाभ है ?

(७) यदि हम चाहते हैं कि तापमापक किसी पदार्थ का तापक्रम तो न बदले किन्तु उसे शीघ्र ही ठीक ठीक नाप ले तो बताओ कि तापमापक कैसा होना चाहिए ?

(८) निम्नलिखित शतांश तापक्रमों को फाहरनहाइट क्रम में व्यक्त करो :—

९५°, –४०°, ३०००°, –२७३°

(९) निम्नलिखित फाहरनहाइट तापक्रमों को शतांश क्रम में व्यक्त करो :—

९८·४°, १२०°, १०°, —८०°

(१०) किस तापक्रम पर शतांश और फाहरनहाइट दोनों प्रकार के तापमापकों का पाठ एक ही होगा ?

(११) शरीर-तापमापक में और साधारण तापमापक में क्या भेद है ?

(१२) यदि शरीर-तापमापक को उबलते पानी में डुबा दें तो वह क्यों ख़राब हो जाता है ?

(१३) वायु का उच्चतम और निम्नतम तापक्रम कैसे नापा जाता है ?

(१४) यदि तापमापक को स्वस्थ मनुष्य के मुँह में रखें तो वह कितना तापक्रम बतलावेगा ? जीवित मनुष्य के शरीर का तापक्रम अधिक से अधिक कितना और कम से कम कितना हो सकता है ?

(१५) तुम्हारे निवास-स्थान का गरमी में अधिक से अधिक कितना तापक्रम हो जाता है और जाड़ों में कम से कम कितना ?

(१६) ३००° श से अधिक तापक्रम कैसे नापा जाता है ?

परिच्छेद ११

प्रसार के गुणक

११३—प्रसार-गुणक। परिच्छेद ६ में बतलाया गया था कि प्रत्येक पदार्थ ताप के कारण फैल जाता है। चाहे वह ठोस हो, द्रव हो अथवा गैस, ताप से उसका प्रसार होता है। उसके साथ ही यह बतलाया गया था कि यह प्रसार सब पदार्थों में समान परिमाण का नहीं होता। किसी किसी पदार्थ का प्रसार तो इतना कम होता है कि उसका नापना बड़ा कठिन कार्य है। यथा स्फटिक अथवा कुछ विशेष प्रकार के मिश्र धातु। विपरीत इसके गैसों का प्रसार इतना अधिक होता है कि उसका आयतन दुगुना तिगुना हो जाना साधारण बात है। वैज्ञानिक कार्यों के लिए इस प्रसार को ठीक ठीक नापने की आवश्यकता है और नाप कर प्रत्येक पदार्थ के प्रसार को सूचित करने के लिए ऐसी संख्या मालूम करने की भी आवश्यकता है कि जिसके द्वारा हम तुरन्त यह बतला सकें कि अमुक वस्तु का अमुक तापक्रम पर अमुक विस्तार हो जायगा। ऐसी संख्या को प्रसार-गुणक कहते हैं। लम्बाई के प्रसार से सम्बन्ध रखनेवाली संख्या का नाम लम्ब-प्रसार-गुणक, क्षेत्र के प्रसार से सम्बन्ध रखनेवाली संख्या का नाम क्षेत्र-प्रसार-गुणक और आयतन के प्रसार से सम्बन्ध रखनेवाली संख्या का नाम आयतन-प्रसार-गुणक है। लम्ब-प्रसार—तथा क्षेत्र-प्रसार-गुणक तो केवल ठोस पदार्थों के लिए ही हो सकते हैं क्योंकि द्रवों और गैसों के न तो कोई लम्बाई होती है और न कोई खास क्षेत्रफल। आयतन-प्रसार-गुणक तीनों ही अवस्थावाले पदार्थों के लिए काम का है।

११४—लम्ब-प्रसार-गुणक । मान लीजिए कि लोहे की एक छड़ १०० समः लम्बी है और हमने नाप कर मालूम कर लिया कि उसका तापक्रम १००° श बढ़ाने पर उसकी लम्बाई १ ममः बढ़ जाती है। तब यह तो स्पष्ट ही है कि यदि इस छड़ के दो बराबर टुकड़े कर दिये जाते तो प्रत्येक टुकड़े का प्रसार आधा मिलीमीटर मात्र ही होता। अर्थात् हम यों भी कह सकते हैं कि इसके प्रत्येक सेंटीमीटर की लम्बाई का प्रसार $\frac{१}{१००}$ ममः होता है। इसके अतिरिक्त यह भी हम प्रत्यक्ष नाप के द्वारा देख सकते हैं कि यदि उस छड़ का तापक्रम १००° के स्थान में ५०°, २०° या १०° ही बढ़ाया जाता तो उसका प्रसार भी क्रमशः $\frac{१}{२}$ ममः, $\frac{१}{५}$ ममः, या $\frac{१}{१०}$ ममः होता। अर्थात् हम यह भी कह सकते हैं कि उक्त छड़ का प्रसार तापक्रम की एक डिगरी के उत्थान के कारण $\frac{१}{१००}$ ममः होता है।

इन दोनों बातों से परिणाम यह निकला कि जब हम किसी लोहे की छड़ को गरम करते हैं तो उसके प्रत्येक सेंटीमीटर का प्रसार $\frac{१}{१००} \times \frac{१}{१००} = \frac{१}{१००००}$ = ·०००१ ममः = ·००००१ समः प्रति एक डिगरी तापक्रम के उत्थान के कारण हो जाता है। इस संख्या ·००००१ को किसी भी लोहे की छड़ की लम्बाई से तथा तापक्रमों के उत्थान से गुणा करने पर उस छड़ का प्रसार ज्ञात हो सकता है। इसी कारण इस संख्या को लोहे का लम्ब-प्रसार-गुणक (अ) कहते हैं। बीजगणित की भाषा में हम यों कह सकते हैं कि यदि किसी लोहे की छड़ की लम्बाई ल समः हो और उसका तापक्रम त° श से बढ़ाकर त′° श कर दिया जाय तो उसकी लम्बाई की वृद्धि

$$व = अ \times ल \times (त' - त) \qquad ....(१)$$

अथवा यदि त°श पर उसकी लम्बाई ल समः हो और त′°श पर ल′ सम हो तो

$$अ = \frac{ल' - ल}{ल\,(त' - त)} \qquad ....(२)$$

और

$$ल' = ल \left\{१ + अ\,(त' - त)\right\} \qquad ....(३)$$

नीचे की सारिणी में कई साधारण ठोस पदार्थों के लम्ब-प्रसार-गुणक दिये हुए हैं।

लम्ब-प्रसार-गुणक

लोहा	·००००१०९	चाँदी	·००००१८८
ताँबा	·००००१६६	प्लाटिनम	·०००००८९२
पीतल	·००००१९३	काँच	·०००००८६०
जस्ता	·००००२६२	स्फटिक (पिघलाया हुआ)	·००००००४२
सीसा	·००००२७६		

यद्यपि इन गुणकों का नाप पृष्ठ १२८ पर चित्र ७२ में दिखलाई हुई विधि के द्वारा भी हो सकता है किन्तु अधिक यथार्थतापूर्वक नापने के लिए अन्य युक्तियों का प्रयोग होता है। उन सबका वर्णन करने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है।

११५—क्षेत्र-प्रसार-गुणक। जिस प्रकार छड़ की लम्बाई बढ़ती है उसी प्रकार लोहे की चद्दर के टुकड़े की लम्बाई और चौड़ाई दोनों ही बढ़ती हैं। अतः उसका क्षेत्रफल भी बढ़ जाता है। एक सम० लम्बे और एक ही सम० चौड़े टुकड़े को एक डिगरी गरम करने से उसकी लम्बाई (१ + अ) सम० हो जायगी और चौड़ाई भी (१ + अ) सम०। अतः उसका क्षेत्रफल भी १ वर्ग सम० से बढ़कर (१ + अ) (१ + अ) = (१ + २ अ + अ^{२}) वर्ग सम हो जायगा। किन्तु अ बहुत ही छोटी संख्या होने के कारण अ^{२} इतनी छोटी संख्या है कि उसको इस हिसाब में छोड़ देने में कोई हानि नहीं। इसलिए हम समझ सकते हैं एक अंश तापक्रम बढ़ने पर प्रत्येक वर्ग सम० का प्रसार २ अ वर्ग सम होता है। अर्थात् क्षेत्र-प्रसार-गुणक लम्ब-प्रसार-गुणक से दुगुना होता है। अतः यदि किसी वस्तु का त° श पर क्षेत्रफल क्ष हो और त′° पर क्ष′ हो तो।

$$\text{क्ष}' = \text{क्ष} \left\{ १ + २\,\text{अ}\,(\text{त}' - \text{त}) \right\} \quad \text{..........................} (४)$$

मान लीजिए कि हमारे पास लोहे का एक टुकड़ा ४० सम० चौड़ा और ६० सम० लम्बा है। यदि हम उसका तापक्रम २०° श से बढ़ा कर ७०° श कर दें तो बतलाइए कि उसके क्षेत्रफल में कितनी वृद्धि होगी?

२०° श पर उस टुकड़े का क्षेत्रफल है ४० × ६० = २४०० वर्ग सम०।

अतः ७०° श० पर उसका क्षेत्रफल हो जायगा।

$$२४०० \left\{ १ + २ \times \cdot ००००१ \, (७० - २०) \right\}$$

$$= २४०० \left\{ १ + \cdot ००१ \right\}$$

$$= २४०० + २\cdot ४$$

$$= २४०२\cdot ४ \text{ वर्ग० सम०}$$

$$\therefore \text{क्षेत्रफल की वृद्धि} = २\cdot ४ \text{ वर्ग सम०}$$

११६—आयतन-प्रसार-गुणक। ठीक इसी प्रकार यह प्रमाणित हो सकता है कि ठोस पदार्थों का आयतन-प्रसार-गुणक ३ अ होगा। क्योंकि एक सेंटीमीटर घन की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई प्रत्येक (१ + अ) सम० हो जायगी और उसका आयतन १ घन सम० से बढ़ कर $(१ + अ)^३ = १ + ३ \text{ अ} + ३ \text{ अ}^२ + \text{अ}^३ = १ + ३ \text{ अ}$ (लगभग) हो जायगा। अतः यदि किसी वस्तु का त° श पर आयतन आ हो और त′° श पर आ′ हो जाय तो

$$\text{आ}' = \text{आ} \left\{ १ + ३ \text{ अ} \, (\text{त}' - \text{त}) \right\} \quad \cdots\cdots\cdots\cdots (५)$$

द्रवों और गैसों के लिए इस समीकरण में ३ अ के स्थान में प्र लिखा जाता है क्योंकि इनके सम्बन्ध में अ का कुछ अर्थ होता ही नहीं।

$$\text{आ}' = \text{आ} \left\{ १ + \text{प्र} \, (\text{त}' - \text{त}) \right\} \quad \cdots\cdots\cdots\cdots (६)$$

११७—व्यक्त-प्रसार-गुणक। द्रवों का प्रसार-गुणक नापते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस पात्र में द्रव रखा है वह भी

प्रसारित होता है। चित्र ७४ वाले प्रयोग में प्रारम्भ में पानी के नीचे उतरने का यही कारण बताया जा चुका है। किन्तु यह न समझना चाहिए कि पात्र का प्रसार केवल तभी तक द्रव के प्रसार में बाधा डालेगा जब तक पात्र और द्रव का तापक्रम एक न हो जाय। मान लीजिए कि द्रव का आयतन आ घन सम० था। तापक्रम बढ़ने के कारण पात्र के आयतन में ३ अ × आ × (त′ – त) घन सम० की वृद्धि होती है। अतः यदि द्रव का आयतन न बढ़ता तो हमें ऐसा मालूम होता मानों उसका आयतन ३ अ × आ (त′ – त) घट गया हो। किन्तु वास्तव में द्रव का आयतन प्र × आ (त′ – त) घन सम० बढ़ जाता है। अतः उस पात्र में हमें द्रव के आयतन की वृद्धि केवल (प्र – ३ आ) × आ × (त′ – त) घन सम० मात्र ही दिखलाई देती है। इसलिए यद्यपि द्रव का वास्तविक प्रसार-गुणक प्र है तब भी हमारे नाप के अनुसार वह कुछ कम अर्थात् प्र – ३ अ मात्र ही निकलेगा। इस संख्या का नाम व्यक्त-प्रसार-गुणक है और इसमें पात्र के पदार्थ का आयतन-प्रसार-गुणक जोड़ने पर ही हमें द्रव का वास्तविक प्रसार-गुणक ज्ञात हो सकता है।

द्रवों का प्रसार गुणक

बैंज़ीन	·००१२४	पारा	·०००१८
ईथर	·००१६३	अलकाहाल	·००११०
कारबन बाई सलफाइड	·००१२१	पानी (१०° और १००° के बीच में)	·०००४३
ग्लीसरीन	·०००५३	तारपीन का तेल	·०००९४

११८—गैसों का प्रसार-गुणक। चित्र ८२ में गैसों का प्रसार नापने का एक सरल उपाय बतलाया गया है। कख काँच की एक केशनली है जिसका मुँह ख बन्द कर दिया गया है। इसमें प पर थोड़ा सा पारा डाल दिया गया

चित्र ८२
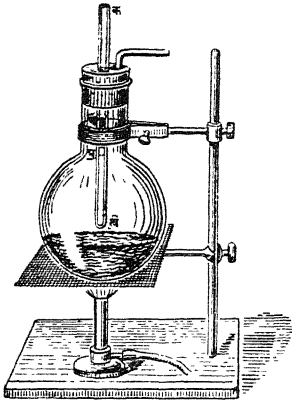
है। इस पारे के नीचे वायु भरी है और नली की सूक्ष्मता के कारण यह पारा नीचे नहीं गिर सकता क्योंकि वायु को निकलने का कोई रास्ता नहीं है। नली के छिद्र की सर्वत्र समान चौड़ाई के कारण वायु का आयतन ख से प तक की लम्बाई नापने ही से ज्ञात हो सकता है। नली को पहले स्वच्छ बर्फ़ में रख कर ०° श तापक्रम पर यह लम्बाई नाप लो। तब इसे भाप द्वारा गरम करो तो पारा चढ़ कर प′ पर पहुँच जायगा। अतः हम कह सकते हैं ०° श पर वायु का आयतन खप था और १००° श पर उसका आयतन खप′ होगया। अतः—

$$\text{खप}' = \text{खप} \left\{ १ + १०० \text{ प्र} \right\}$$

अथवा $$\text{प्र} = \frac{\text{खप}' - \text{खप}}{१०० \times \text{खप}} = \frac{\text{पप}'}{१०० \times \text{खप}}$$

इस नाप में पात्र के प्रसार को छोड़ देने पर अधिक ग़लती नहीं होती क्योंकि गैसों का प्रसार इतना अधिक होता है कि उसके सामने पात्र का प्रसार कुछ भी नहीं। किन्तु इस प्रसार की अधिकता के कारण ही अब हमें प्रसार समीकरण

$$\text{आ}' = \text{आ} \left\{ १ + \text{प्र} \left(\text{त}' - \text{त} \right) \right\}$$

के प्रारम्भिक आयतन आ को सदैव किसी नियत तापक्रम पर नापना होगा। ठोसों और द्रवों में तो हमने आ को त° श के तापक्रम पर नाप कर सन्तोष कर लिया क्योंकि त का मूल्य चाहे जो हो उससे आ के मूल्य

में इतना अधिक अन्तर नहीं हो सकता कि प्र के मूल्य में बहुत फ़र्क पड़े। निम्न-लिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

(१) मान लीजिए कि हमारे पास १०० घ० सम० ग्लीसरीन नामक द्रव है, जिसका तापक्रम ०° श है, और इसका प्रसार-गुणक ·०००५ है। अतः इसका ५०° श और १००° श पर क्रमशः आयतन हुआ

$$आ'_{५०} = १०० \left\{ १ + ५० \times ·०००५ \right\} = १०२·५ \text{ घ० सम०}$$

$$\text{और } आ'_{१००} = १०० \left\{ १ + १०० \times ·०००५ \right\} = १०५ \text{ घ० सम०}$$

यह स्पष्ट है कि यदि हम १०२·५ घ० सम० ग्लीसरीन ५०° श पर लेकर उसे गरम करके १००° श तापक्रम कर दें तो भी १००° श पर उसका आयतन १०५ घ० सम० ही होना चाहिए। किन्तु उपर्युक्त समीकरण से

$$आ'_{१००} = १०२·५ \left\{ १ + ·०००५ (१००° - ५०°) \right\}$$

$$= १०५·०६ \text{ घ० सम०}$$

प्राप्त होता है। इसमें और १०५ घ० सम० में इतना कम अन्तर है कि उसकी पर्वाह न करने पर भी हमारा काम चल सकता है।

(२) अब मान लीजिए कि ग्लीसरीन के स्थान में ०° श पर १०० घ० सम० वायु होती। इसका प्रसार-गुणक ·००३६६ है। अतः—

$$आ'_{५०} = १०० \left\{ १ + ५० \times ·००३६६ \right\} = ११८·३ \text{ घ० सम०}$$

$$\text{और } आ'_{१००} = १०० \left\{ १ + १०० \times ·००३६६ \right\} = १३६·६ \text{ घ० सम०}$$

किन्तु यदि ५०° श पर के आयतन के द्वारा हम १००° श पर आयतन निकालते तो

$$आ'_{१००} = ११८·३ \left\{ १ + ·००३६६ (१०० - ५०) \right\}$$

$$= १३९·९५ \text{ घ० सम०}$$

अतः यह स्पष्ट है कि गैसों के सम्बन्ध में $आ'_{१००}$ निकालने के लिए दोनों विधियां ठीक नहीं हो सकतीं। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि प्रथम विधि ही ठीक है। अर्थात् प्रसार समीकरण तभी ठीक होता है जब आरम्भिक आयतन ०° श पर नापा गया हो। इस समीकरण को अब हमें यों लिखना चाहिए :—

$$आ_{त} = आ_{०} \left\{ १ + प्र \times त \right\} \qquad \text{.......................(७)}$$

यह भेद प्रोफ़ेसर चार्ल्स ने ही पहले-पहल समझा था और उसने यह भी प्रमाणित किया था कि सब गैसों का प्रसार-गुणक एक ही होता है और उसका मूल्य $\frac{१}{२७३}$ = ·००३६६ होता है। अतः

$$आ_{त} = आ_{०} \left\{ १ + \frac{त}{२७३} \right\} \qquad \text{.......................(८)}$$

इसे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि

"यदि दाब न बदले तो प्रत्येक गैस के आयतन में एक डिगरी तापक्रम के उत्थान से जो वृद्धि होती है वह उसके ०° श पर के आयतन के २७३ वें भाग के बराबर होती है।"

यह नियम चार्ल्स का नियम कहलाता है।

"यदि दाब न बदले तो" यह शब्द चार्ल्स के नियम में आवश्यक हैं क्योंकि बायल के नियम के अनुसार दाब स्वयं भी गैस के आयतन को बदल देता है।

यदि हमें किसी गैस का आयतन त° श पर $आ_{त}$ घ० सम० दिया हुआ है और त'° श पर उसका आयतन जानना अभीष्ट है तो हमें पहले ०° श पर उसका आयतन निकाल लेना चाहिए। यथा—

$$आ_{त} = आ_{०} \left\{ १ + \frac{त}{२७३} \right\} = आ_{०} \times \frac{२७३ + त}{२७३}$$

$$\therefore \quad \text{आ}_{\circ} = \text{आ}_{\text{त}} \times \frac{२७३}{२७३+\text{त}}$$

$$\text{और तब आ}_{\text{त}'} = \text{आ}_{\circ}\left\{१ + \frac{\text{त}'}{२७३}\right\}$$

$$= \text{आ}_{\circ}\,\frac{२७३+\text{त}'}{२७३}$$

$$= \text{आ}_{\text{त}} \times \frac{२७३+\text{त}'}{२७३+\text{त}} \quad ....(९)$$

११९—तापक्रम का परमक्रम । चार्ल्स के नियम से स्पष्ट है कि गैस को ठंडा करने पर प्रत्येक शतांश अंश के लिए गैस का आयतन $\frac{१}{२७३}$ घट जायगा। अतः यदि यही नियम अंत तक सत्य हो तो गैस का तापक्रम ०° श से २७३° कम अर्थात्—२७३° श कर देने पर उसका आयतन कुछ भी न रहेगा। यद्यपि ऐसा होना असम्भव है तथापि इस तापक्रम—२७३° श को तापक्रम के क्रम का प्रारम्भ मानकर एक नया क्रम बना लेने में बड़ी सुविधा है। इस क्रम को परमक्रम कहते हैं और – २७३°श के तापक्रम को तापक्रम का परम-शून्य कहते हैं। इसमें

$$०^{\circ}\ \text{श} = २७३^{\circ}\ \text{प}$$

$$\text{त}^{\circ}\ \text{श} = (२७३+\text{त})^{\circ}\ \text{प}$$

$$= \text{ट}^{\circ}\ \text{प}$$

इस क्रम की सहायता से समीकरण (९) का रूप निम्नप्रकार हो जाता है:—

$$\frac{\text{आ}_{\text{त}'}}{\text{आ}_{\text{त}}} = \frac{२७३+\text{त}'}{२७३+\text{त}} = \frac{\text{ट}'}{\text{ट}} \quad ....(१०)$$

अर्थात् गैस की किसी नियत मात्रा का आयतन उसके परमतापक्रम का अनुक्रमानुपाती होता है।

१२०—ताप के कारण स्थिर आयतन पर गैसों के दाब की वृद्धि। दाब-वृद्धि-गुणक। यदि गैस को गरम करते समय हम उसका

आयतन न बढ़ने दें तो उसका दाब बढ़ जावेगा। जिस नियम के अनुसार आयतन की वृद्धि होती है दाब की वृद्धि भी ठीक वैसे ही नियम के अनुसार होती है। अर्थात् यदि किसी गैस का दाब ०° श पर दा॰ हो तो उसका दाब त° श पर दा॰ (१ + प्र′ × त) हो जायगा।

$$दा_त = दा_० (१ + प्र' \times त) \quad \ldots \quad \ldots\ldots (११)$$

प्र′ गैस का दाब-वृद्धि-गुणक है। इसका मूल्य भी गैसों के प्रसार-गुणक की भांति सभी गैसों के लिए $\frac{१}{२७३}$ = ·००३६६ होता है।

चित्र ८३
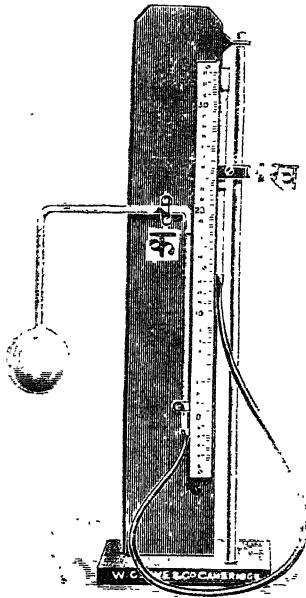
चित्र ८३ में दाब-वृद्धिगुणक नापने का उपकरण दिखलाया गया है। काँच के गोले में गैस है और रबड़ की नली और पारे के द्वारा उसका दाब नापा जाता है। गैस का आयतन स्थिर रखने के लिए ख को ऊँचा-नीचा करके पारा सदैव एक नियत बिन्दु क पर ही रखा जाता है। गोले को पानी में डुबाकर पानी को गरम करते हैं जिससे गैस का तापक्रम बढ़ता है। यह तापक्रम पानी में तापमापक डालकर देख लिया जाता है। तापक्रम बढ़ने पर पारा क से नीचे खिसक जाता है। किन्तु ख को ऊपर उठाकर उसे पुनः क पर पहुँचा देते हैं। तब गोले की गैस का दाब वायुमंडल के दाब तथा क और ख की ऊँचाई के अन्तर के योग के बराबर हो जाता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न तापक्रमों पर दाब को नाप कर दाब-वृद्धि-गुणक निकाला जा सकता है।

१२१—बायल तथा चार्ल्स के नियमों का सम्मेलन।

हम देख आये हैं कि बायल का नियम यह बतलाता है कि यदि तापक्रम स्थिर रहे तो

$$दा_1 \times आ_1 = दा_2 \times आ_2$$

तथा चार्ल्स का नियम यह बतलाता है कि यदि दाब स्थिर रहे तो—

$$\frac{आ_2}{ट_2} = \frac{आ_1}{ट_1}$$

इन दोनों नियमों को मिलाकर हम ऐसा नियम बना सकते हैं कि जिसके द्वारा तापक्रम अथवा दाब किसी के भी स्थिर न रहने पर भी हम गैस की परिवर्त्तित स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

मान लीजिए कि हमारे पास कुछ मात्रा गैस की है जिसका दाब, आयतन और तापक्रम क्रमशः $दा_1$, $आ_1$ और $ट_1$ हैं। यदि इसका तापक्रम $ट_2$ कर दिया जाय और साथ ही साथ दाब भी $दा_2$ कर दिया जाय तो उसका आयतन कितना हो जायगा? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें यह समझना चाहिए कि पहले तापक्रम स्थिर रख कर हमने उसका दाब बढ़ा दिया। मान लीजिये कि ऐसा करने पर उसका आयतन $आ'$ हो गया। तो बायल के नियमानुसार

$$दा_1 \times आ_1 = दा_2 \times आ'$$

$$\text{अर्थात्}\ आ' = \frac{दा_1 \times आ_1}{दा_2}$$

अब हमारे पास जो गैस है उसका दाब $दा_2$ आयतन $आ'$ और तापक्रम $ट_1°$ प है। यदि इसका दाब स्थिर रखके हम तापक्रम बढ़ाकर $ट_2°$ प कर दें तो चार्ल्स के नियमानुसार

$$\frac{आ_2}{ट_2} = \frac{आ'}{ट_1}$$

इसमें आ′ का उपयुक्त मूल्य रख देने पर

$$\frac{आ_2}{ट_2} = \frac{दा_1 \times आ_1}{दा_2 \times ट_1}$$

$$अर्थात्\ आ_2 = आ_1 \times \frac{दा_1}{दा_2} \times \frac{ट_2}{ट_1}$$

इस समीकरण को हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं :—

$$\frac{दा_1 \times आ_1}{ट_1} = \frac{दा_2 \times आ_2}{ट_2} \quad ....(१२)$$

यही बायल तथा चार्ल्स का सम्मिलित नियम है और इसी की सहायता से हम गैसों के दाब, आयतन तथा तापक्रम-सम्बन्धी सब हिसाब कर सकते हैं।

यदि तापक्रम परम अंशों में न दिया हो और शतांश अंशों में दिया हो तो हमें समीकरण (१२) को इस प्रकार लिखना चाहिए :—

$$\frac{दा_1 \times आ_1}{त_1 + २७३} = \frac{दा_2 \times आ_2}{त_2 + २७३} \quad ....(१३)$$

१२२—जल के प्रसार की विलक्षणता। प्रसार के सम्बन्ध में जल एक विलक्षण पदार्थ है। यदि हम जल को ठंडा करते जावें तो अन्य सब पदार्थों की भाँति ही वह भी सिकुड़ता जाता है। किन्तु ४° श पर पहुँच कर उसका सिकुड़ना बन्द हो जाता है। इससे अधिक ठंडा करने पर उसका आयतन फिर बढ़ने लगता है और जब तक ०° श पर पहुँच कर वह जम कर बर्फ़ नहीं बन जाता तब तक तापक्रम घटने से उसका प्रसार होता जाता है। विपरीत इसके ०° श पर जल लेकर यदि हम उसे गरम करें तो वह गरमी से फैलने के स्थान में सिकुड़ता है। किन्तु ४° श के बाद यह विलक्षणता जाती रहती है।

दूसरी विलक्षणता यह है कि जब पानी जम कर बर्फ़ बनता है तब भी बर्फ़ का आयतन पानी के आयतन से बहुत अधिक होता है। अर्थात् बर्फ़ पानी से हलका होता है और इसी लिए वह पानी पर तैरता है।

इस बात से स्पष्ट है कि जल का आयतन ४° श पर सबसे कम होता है अर्थात् इस तापक्रम पर जल का घनत्व अधिकतम होता है। बर्फ़ का घनत्व भी इससे कम होता है। प्रकृति के कार्यों में जल की यह विलक्षणता बड़े काम की है। पृथ्वी के ध्रुवों के निकट बहुत सर्दी होती है। अतः समुद्र के जल का तापक्रम भी बहुत घट जाता है। यहां तक कि वह जम कर बर्फ़ भी बन जाता है। यदि जल का प्रसार भी अन्य सब पदार्थों के समान होता तो यह प्रत्यक्ष है कि ०° श का जल या बर्फ़ सबसे भारी होता और वही पेंदे में जा बैठता। परिणाम यह होता कि पेंदे से लेकर ऊपर तक सबका तापक्रम ०° श से भी कम हो जाता और बर्फ़ का जमना भी पेंदे से प्रारम्भ होता। अर्थात् धीरे धीरे समुद्र का सब पानी जम जाता और उसमें रहने-वाली मछलियां इत्यादि सभी मर जातीं। किन्तु वास्तव में होता यह है कि पहले तो जल ठंडा होने के कारण भारी हो-होकर नीचे बैठता जाता है किन्तु जब सब पानी का तापक्रम ४° श हो चुकता है तब ऊपर का जो पानी ठंडा होता है वह नीचे नहीं बैठ सकता और समुद्रपृष्ठ पर ही तैरता रहता है। और अन्त में यही पृष्ठ का पानी जमकर बर्फ़ बन जाता है किन्तु तब भी नीचे नहीं बैठता। नीचे के पानी का तापक्रम तब भी ४° श के लगभग रहता है और वह तब भी द्रवरूप ही रहता है। उसमें मछलियाँ आराम के साथ इधर-उधर घूम फिर सकती हैं।

प्रश्न

(१) पीतल की एक छड़ ०° श पर २५० सम० लम्बी है। यदि १००° श. पर उसकी लम्बाई २५०·५ सम० हो तो बताओ पीतल का प्रसार गुणक कितना है?

(२) उपर्युक्त छड़ की लम्बाई ५०° श पर कितनी होगी। और कितने तापक्रम पर उसकी लम्बाई २५१· १२५ सम० हो जायगी?

(३) यदि पटरी का अधिकतम तापक्रम १३०° फ हो जाता हो तो रेल की पटरी बनाने के लिए दो रेलों के बीच में कितनी जगह छोड़ना चाहिए यदि प्रत्येक

रेल १५ फुट लम्बी हो और काम ऐसे मौसिम में किया जाय कि वायु का तापक्रम ५८° फ हो।

(४) पीतल के स्केल से ३०° श पर एक वस्तु नापी गई और उसकी लम्बाई ८० सम० निकली। यदि स्केल २०° श० पर बिलकुल ठीक था तो उस वस्तु की यथार्थ लम्बाई कितनी थी ?

(५) खिड़की में लगाने के कांच का क्षेत्रफल यदि ०° श पर ३०० वर्ग सम० है तो ३०° श पर कितना होगा ?

(६) लोहे की एक टंकी का नाप ३′ × ४′ × २½′ है जब उसका तापक्रम २०° श है। यदि उसमें उबलता हुआ पानी डालें तो कितना समायगा ?

(७) काँच की एक बोतल में १००° श पर १००·२५८ घ० सम० पारा समाता है। २०° श पर उसमें कितना पारा समायगा ?

(८) ताँबे का घनत्व ०° श पर ८.९ है। तो बताओ कि १००° श पर उसका घनत्व कितना हो जायगा ?

(९) यदि पारे का घनत्व ०° श पर १३·६ हो तो ७ वें प्रश्न में १००° श तथा २०° श पर बोतल में समानेवाले पारे का भार बताओ।

(१०) किसी द्रव का आयतन २५° श पर ५०·६६ घ० सम० है और ८०° श पर ५२·११ घ० सम०। उसका प्रसार-गुणक बताओ।

(११) ५० घ० सम० वाली काँच की बोतल में कितना पारा भरें कि बोतल के खाली भाग का आयतन सब तापक्रमों पर स्थिर रहे ?

(१२) ३०° श पर वायु का आयतन ८० घ० सम० है। यदि दबाव न बदले तो ८०° श पर कितना हो जायगा ?

(१३) यदि हाइड्रोजन का घनत्व प्रमाण तापक्रम तथा दबाव पर ·०००८९ ग्राम / घ० सम० है तो २५° श और २७३ सम० दबाव पर उसका घनत्व कितना होगा ?

(१४) यदि किसी गैस का ४०° श और ५० सम० दबाव पर आयतन २६ घ० सम० है तो प्रमाण तापक्रम तथा दबाव पर उसका आयतन बताओ।

(१५) एक बर्तन में−१०° श तापक्रम का बर्फ़ भरा है। उसे धीरे धीरे इतना गरम किया गया कि उसका पानी बनकर उबलने लगा। उसके आयतन के परिवर्त्तन का लेखा-चित्र खींचो।

परिच्छेद १२

ताप की मात्रा

१२३—ताप की मात्रा। परिच्छेद ६ में ताप तथा तापक्रम का भेद बतलाया जा चुका है और इन्हें वायु तथा उसके दाब अथवा जल और उसके पृष्ठ की ऊँचाई की उपमा भी दी जा चुकी है। जैसे किसी पात्र में अधिक अधिक वायु घुसाने पर उसका दाब बढ़ता जाता है, जैसे गिलास में अधिक अधिक जल डालने पर जल की ऊँचाई बढ़ती जाती है, ठीक उसी प्रकार वस्तु में अधिक अधिक ताप पहुँचाने से उसका तापक्रम बढ़ता जाता है। वायु की मात्रा नापने के लिए हमें उसे तौलना पड़ेगा, जल की मात्रा भी तौलने से अथवा आयतन नापने से ज्ञात हो सकती है। किन्तु ताप की मात्रा कैसे नापी जायगी ?

बहुधा हम वस्तुओं को आग, चूल्हा, स्टोव, ज्वालक, स्पिरिट-लम्प इत्यादि के द्वारा ही गरम करते हैं। और जितनी ही अधिक देर तक वस्तु इन पर रखी रहे उतना ही अधिक ताप उसमें प्रवेश करता है। अतः यदि कोई वस्तु एक बार ५ मिनट तक चूल्हे पर रखी रहे और दूसरी बार वही वस्तु १० मिनट तक उसी चूल्हे पर रखी रहे तो हम कहते हैं कि दूसरी बार हमने उसे पहली बार की अपेक्षा दुगुना ताप दिया। इस प्रकार गरम करने के समय के द्वारा हम ताप का नाप कर सकते हैं। किन्तु यह नाप कभी भी ठीक नहीं हो सकता। प्रथम तो इसका क्या प्रमाण है कि जिस तीव्रता से प्रथम ५ मिनट में चूल्हा जलता रहा ठीक उतनी ही तीव्रता से वह दूसरी बार भी १० मिनट तक जलता रहा। वास्तव में विशेष प्रकार के विद्युत् के चूल्हों के अतिरिक्त हमें ऐसा स्टोव या ज्वालक या चूल्हा मिलना कठिन है जो ठीक नियत तीव्रता से ताप देता रहे। दूसरे यह भी कहना कठिन है कि

उस वस्तु ने चूल्हे के ताप में से कितना अंश ग्रहण किया। यदि वस्तु के रंग में तनिक भी अन्तर होगया, यदि चूल्हे पर रखने का स्थान तनिक भी बदल गया तो अवश्य ही ताप के परिमाण में भी कुछ अन्तर हो जायगा। फिर भिन्न भिन्न चूल्हों के ताप की हम कैसे तुलना करेंगे। इसके अतिरिक्त इस रीति से तो हम तभी ताप को नाप सकेंगे जब कि उसे विशेष प्रकार के विद्युत् के चूल्हे पर गरम करें। किन्तु प्रत्येक गरम वस्तु को ठंडी वस्तु से स्पर्श कराने पर भी तो कुछ ताप ठंडी वस्तु में जाता है। इसे हम कैसे नापेंगे ? इन सब कारणों से स्पष्ट है कि हमें कोई और ही युक्ति निकालनी होगी। यह युक्ति क्या है यह नीचे की कुछ साधारण अनुभव की बातों के द्वारा समझ में आ जायगा।

(१) जब हम एक सेर पानी को गरम करके उसका तापक्रम २०°श से २१° श कर देते हैं तो हमें पानी को कुछ निश्चित ताप देना पड़ता है। यह प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं कि जब कभी भी हम एक सेर पानी का तापक्रम २०° से बढ़ाकर २१° करना चाहेंगे तो अवश्य ही हमें ठीक उतना ही ताप देना होगा। विपरीत इसके यदि हम उस जल का तापक्रम २१° से घटाकर २०° कर दें तो उसमें से ठीक उतना ही ताप निकाल लेना होगा।

(२) इससे यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि पानी एक सेर के स्थान में २, ४ या दस सेर हो तो हमें ताप के उक्त परिमाण के स्थान में दुगुना, चौगुना अथवा दसगुना अधिक ताप भी देना होगा।

(३) यदि हम एक सेर पानी २०° पर लें और एक सेर २२° पर और इन दोनों को एक ही पात्र में डालकर मिला दें तो हम देखेंगे कि इस मिले हुए जल का तापक्रम २१° होगया। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि २०° वाले पानी का तापक्रम एक डिगरी बढ़ गया और २१° वाले का एक डिगरी घट गया। जितना ताप २२° वाले जल में से निकला उसी ताप ने २०° वाले जल का तापक्रम २१° कर दिया। अर्थात् जितना ताप एक सेर जल का तापक्रम २०° से २१° कर सकता है,

ठीक उतना ही ताप एक सेर जल का तापक्रम २२° से घटाकर २१° कर देने में निकल जाता है। अतः ठीक उतना ही ताप एक सेर जल का तापक्रम २१° से बढ़ाकर २२° भी कर सकता है।

(४) इसी प्रकार यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि जल का प्रारम्भिक तापक्रम जो भी हो, उसे १° बढ़ाने में ठीक एक ही परिमाण के ताप की आवश्यकता होती है। अतः उसका तापक्रम २°, ५°, १०° इत्यादि बढ़ाने में इससे दुगुने, पांच गुणे, तथा दस गुणे ताप की आवश्यकता होना भी स्वाभाविक ही है।*

(५) यदि हमारे पास ५ सेर जल हो और उसका तापक्रम १०° श बढ़ाया जावे तो उपर्युक्त रीति से अवश्य ही हमें ५ × १० = ५० गुणे अधिक ताप की आवश्यकता होगी।

इस दृष्टि से हम एक सेर जल का तापक्रम १° श बढ़ा सकनेवाले ताप को ताप का एकांक मान सकते हैं। वैज्ञानिक कार्यों के लिए एक ग्राम जल का तापक्रम १° श बढ़ाने के लिए जितने ताप की आवश्यकता होती है वही ताप का एकांक माना जाता है। और इस एकांक का नाम **कलारी** रखा गया है। अतः यदि जल की मात्रा म ग्राम हो और उसका तापक्रम त° श से त′° श हो जाय तो स्पष्ट है कि–

आवश्यक ताप = म × (त′—त) कलारी......................(१)

इस प्रकार ताप का एकांक नियत करने के लाभ प्रत्यक्ष हैं। अब हमें ऐसे चूल्हे या ज्वालक की आवश्यकता नहीं जो सर्वथा नियत तीव्रता से जलता रहे। और यह भी ज़रूरी नहीं है कि उस पर जल का बर्तन एक ही स्थान पर एक ही तरह रखा जावे। अब इसका भी हमें कोई डर नहीं कि बर्तन किस पदार्थ का बना है, इसका रंग क्या है, वह तंग है या चौड़ा। चाहे

---

* अधिक सूक्ष्मता से जांच करने पर ज्ञात हुआ है कि यह परिणाम पूर्णतया ठीक नहीं है। किन्तु इसमें गलती इतनी थोड़ी है कि इस प्रारम्भिक पुस्तक में उस पर जोर देने की आवश्यकता नहीं।

कैसा ही बर्तन हो, चाहे किसी प्रकार के चूल्हे पर वह गरम किया जाय, चाहे कितनी ही देर उसे गरम करने में लगे, किन्तु उसमें कोई सन्देह नहीं कि जितना ताप जल में पहुँचा है उसका नाप अब हमें यथार्थतापूर्वक ज्ञात हो जायगा।

१२४—ताप-समावेशन । अब प्रश्न यह होता है कि यदि हम एक ग्राम जल के स्थान में, एक ग्राम लोहा, ताँबा, पारा, अल्यूमिनियम, तैल अथवा अन्य कोई पदार्थ लेकर उसे गरम करें तो क्या बराबर बराबर ताप देने पर सभी समान रूप से गरम हो जायँगे? अथवा यदि सबका तापक्रम बराबर बराबर बढ़ाया जाय तो क्या सबके लिए बराबर परिमाण के ताप की आवश्यकता होगी? ऊपर लिखे हुए पाँचों पदार्थों की बराबर मात्रा (१०० ग्राम) लेकर पृथक् पृथक् परीक्षा-नली में डाल दो और इन सबको जल-पूर्ण एक बड़े बीकर में रखकर ज्वालक पर चढ़ा दो (चित्र ८४)। प्रत्येक परीक्षा-नली का मुँह रुई से बन्द कर देना चाहिए ताकि कमरे की ठण्डी हवा उसमें रखे हुए पदार्थ को ठण्डा न कर दे। पानी को प्रायः १० मिनट तक अच्छी तरह उबलने दो। जिससे कि प्रत्येक पदार्थ का तापक्रम १००° श हो जाय। अब पाँच बीकरों में ठण्डा पानी ले लो। सब बीकरों में जल की मात्रा बराबर होनी चाहिए और सबका तापक्रम भी बराबर होना चाहिए। मान लीजिए कि जल की मात्रा १०० ग्राम है और उसका तापक्रम २०° श है। अब एक एक परीक्षा-नली में से गरम पदार्थ को एक एक बीकर में डालकर, पानी को अच्छी तरह हिलाकर तापमापक से जल का अन्तिम तापक्रम नाप लो। आप देखेंगे कि यह अन्तिम तापक्रम प्रत्येक पदार्थ के लिए भिन्न होगा। इसका परिमाण
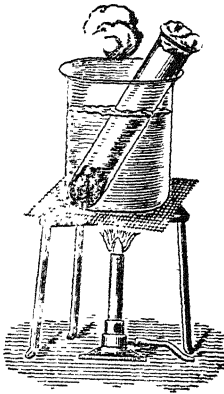
चित्र ८४

क्रमशः २८°, २७°, २२·६°, २१·६° और ४६·५° के लगभग होगा। इससे स्पष्ट है कि जल की मात्रा बराबर होने पर भी सब पदार्थ उसे एक ही तापक्रम तक गरम न कर सके। अर्थात् इन पदार्थों ने जल को समान परिमाण का ताप न दिया। अतः यह भी सिद्ध है कि १००° तक गरम होने में भी इन पदार्थों को भिन्न भिन्न परिमाण के ताप की आवश्यकता हुई होगी।

ताप और तापक्रम को हम जल और उसके पृष्ठ की उपमा दे आये हैं। जिस प्रकार जल की ऊँचाई बराबर करने के लिए कम समावेशनवाले पात्र में जल की मात्रा कम भरनी पड़ती है और अधिक समावेशनवाले में अधिक, ठीक उसी प्रकार इन पदार्थों का तापक्रम बढ़ाने के लिए भिन्न भिन्न परिमाण का ताप देना पड़ता है। अतः उसही उपमा की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि प्रत्येक पदार्थ का ताप-समावेशन भिन्न भिन्न है। सबसे अधिक तैल का, फिर क्रमशः लोहे, पारे, तांबे और अल्यूमिनियम का। किन्तु जल का ताप-समावेशन तो इन सबसे अधिक है। यदि हम इन पदार्थों की भांति ही १०० ग्राम जल को १००° तक गरम करके २०° वाले १०० ग्राम जल में मिलाते तो अंतिम तापक्रम ६०° हो जाता ;

जल के ताप-समावेशन की अधिकता का एक परिणाम सर्व-साधारण के अनुभव की बात है। दिन में धूप की गरमी से जलाशयों का जल तथा पृथ्वी और दूसरे ठोस पदार्थ सभी गरम हो जाते हैं। किन्तु जब अन्य वस्तुओं को छूना कष्टप्रद होता है तब भी जल शीतल रहता है और यद्यपि सायंकाल के थोड़े ही समय के पश्चात् अन्य सब वस्तुएँ ठण्डी हो जाती हैं तथापि जल बड़ी देर तक गरम रहता है। मरुभूमि की बालू में दिन के समय पांव रखने से फफोले पड़ जाने का डर है किन्तु रात्रि के समय वहाँ गरमी के मौसिम में भी कुछ कुछ जाड़ा मालूम होने लगता है। किन्तु समुद्र के किनारे के देश सरदी के मौसिम में भी इतने ठण्डे नहीं हो सकते। इन बातों का कारण केवल यह है कि जल को गरम होने में अधिक ताप की आवश्यकता होती है

और इसलिए बहुत देर लगती है और ठण्डा होने में भी उसमें से अधिक ताप को बाहर निकलना होता है अतः उस समय भी अधिक देर लगती है।

१२५—विशिष्ट ताप। किसी पदार्थ के एक ग्राम को १° श गरम करने में जितने कलारी ताप की आवश्यकता होती है उसका नाम विशिष्ट ताप है। इसके द्वारा पदार्थ के ताप-समावेशन का नाप हो जाता है। जिस प्रकार आपेक्षिक घनत्व यह बतलाता है कि पदार्थ जल से कितने गुणा भारी या हलका है ठीक उसी प्रकार विशिष्ट ताप यह बतलाता है कि पदार्थ का समावेशन जल की अपेक्षा कितना है, क्योंकि जल का विशिष्ट ताप उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार प्रत्यक्ष ही १ है।

१२६—विशिष्ट ताप की गणना। ऊपर जो प्रयोग दिया है उसके अंकों के द्वारा विशिष्ट ताप की गणना अत्यन्त सरल है। यथा हम देखते हैं कि गरम लोहे ने जितना ताप पानी को दिया उससे १०० ग्राम पानी का तापक्रम २०° से बढ़कर २८° होगया। इस कार्य में पानी ने जितना ताप लोहे से लिया उसका परिमाण १०० (२८ − २०) = १०० × ८ = ८०० कलारी है। इस ताप के निकल जाने से १०० ग्राम लोहे का तापक्रम १००° से घट कर २८° हो गया। अतः १०० ग्राम लोहे को (१०० − २८)° गरम होने में भी ८०० कलारी ताप की आवश्यकता है।

∴ १ ग्राम लोहे को (१०० − २८)° गरम होने में $\frac{८००}{१००}$ = ८ कलारी ताप की आवश्यकता है।

∴ १ ग्राम लोहे को १° गरम होने में $\frac{८}{७२}$ = $\frac{१}{९}$ = ·१११ कलारी ताप की आवश्यकता है।

∴ लोहे का विशिष्ट ताप = ·१११

इसी प्रकार अन्य पदार्थों का विशिष्ट ताप भी निकाला जा सकता है। अब यह भी स्पष्ट होगया होगा कि विशिष्ट ताप ज्ञात होने पर हम

तुरन्त ही यह जान सकते हैं कि किसी भी पदार्थ को गरम करने में कितने ताप की आवश्यकता होगी। मान लीजिए कि हमारे पास कोई पदार्थ म ग्राम है और उसका तापक्रम त° श से त′° श कर दिया गया। यदि इसका विशिष्ट ताप स हो तो इस कार्य में जल की अपेक्षा स गुणा ताप लगेगा किन्तु म ग्राम जल का तापक्रम त° से त′° करने के लिए म (त′ − त) कलारी की आवश्यकता होती है। अतः यदि उस पदार्थ के गरम करने के लिए क कलारी की आवश्यकता हो तो

$$क = स \times म = (त' - त) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (२)$$

यह सूत्र बड़े काम का है।

१२७—जल-तुल्यता। ताप की गणना के इस सूत्र से स्पष्ट है कि यदि किसी वस्तु की मात्रा म ग्राम हो तो उसका तापक्रम (त′ − त) बढ़ाने के लिए ठीक उतने ही ताप की आवश्यकता होगी जितने ताप की आवश्यकता स × म ग्राम जल को उतना ही गरम करने के लिए होगी। अतः हम कह सकते हैं कि वह वस्तु स × म ग्राम जल के तुल्य है। इस संख्या स × म को उस वस्तु की जल-तुल्यता कहते हैं।

विशिष्ट ताप की गणना की जो विधि ऊपर दी गई है उसमें एक त्रुटि प्रत्यक्ष ही दिखलाई देती है। गरम वस्तु के ताप ने केवल जल का ही तापक्रम नहीं बढ़ाया था। जिस बीकर में जल रखा था उसका भी तो तापक्रम बढ़ा था। अतः लोह के उदाहरण में यद्यपि जल में पहुँचनेवाले ताप का परिमाण ठीक ८०० कलारी था किन्तु लोह में से निकलनेवाले ताप का परिमाण अवश्य ही इससे अधिक था क्योंकि कुछ ताप बीकर में भी चला गया था। यदि बीकर का तौल २० ग्राम हो और उसके काँच का विशिष्ट ताप ·१५ हो तो उसकी जल-तुल्यता हुई ·१५ × २० = ३ ग्राम अर्थात् यदि इस बीकर के स्थान में हम यह समझ लें कि ३ ग्राम जल अधिक था तो हमारी ताप की गणना ठीक हो सकती है। अतः लोहे के विशिष्ट ताप की गणना में हमें

वास्तव में यह समझना चाहिए कि ठंडे जल की मात्रा (१०० + ३) = १०३ ग्राम थी, तब

$$स \times १०० \times (१०० - २८) = (१०० + ३) (२८ - २०)$$
$$= १०३ \times ८$$
$$= ८४०$$

$$\therefore स = \frac{८४०}{१०० \times ७२} = \cdot ११६७$$

इसी प्रकार जल के अतिरिक्त ताप जिन जिन वस्तुओं में गया हो उन सबकी जल-तुल्यता को जल के परिमाण में जोड़ना आवश्यक है।

१२८—विशिष्ट ताप को नापने की विधि। इसका मूल सिद्धान्त ऊपर समझा दिया गया है। किन्तु जब अधिक यथार्थता-पूर्वक विशिष्ट ताप नापना होता है तब कई बातों का ध्यान रखना होता है। सबसे प्रथम तो कांच के बीकर के स्थान में ठंडे पानी के लिए तांबे का पात्र लिया जाता है। इसे कलारी-मापक कहते हैं। तांबे का पात्र लेने का कारण यह है कि एक तो इसका विशिष्ट ताप ठीक ठीक ज्ञात होता है, दूसरे तांबे के पात्र का तापक्रम तुरन्त सब भागों में बराबर हो जाता है। कांच के बीकर का एक भाग खूब गरम हो सकता है और दूसरा बिलकुल ठंडा। ऐसी दशा में उसने कितना ताप लिया यह गणना करना कठिन है। इसके अतिरिक्त इस कलारी-मापक को रखना भी इस प्रकार पड़ता है कि वह अपना ताप अन्य वस्तुओं को स्पर्श करके न दे सके। इसलिए बहुधा इसे रेशम के पतले डोरे से लटका देते हैं। इसे हवा के झोंकों से भी बचाना आवश्यक है अतः वह लकड़ी के ढक्कनदार संदूक में लटकाया जाता है। गरम वस्तु को कलारी-मापक में डालते समय भी यह ध्यान रखना होता है कि पानी में पहुँचने से पहिले इसका तापक्रम किसी प्रकार कम न होने पावे। मतलब यह कि जिस तरह

चित्र ८६

भी हो सके उस वस्तु का सारा ताप जल और कलारी-मापक को गरम करने ही में खर्च होना चाहिए। अन्य किसी भी प्रकार उसका क्षय न होना चाहिए।

नीचे कुछ साधारण पदार्थों के विशिष्ट ताप दिये गये हैं:—

विशिष्ट ताप

जल—१·००

अल्यूमिनियम	·२१२	काँच	·१५
पीतल	·०९४	गंधक	·१८४
ताँबा	·०९३	ग्लीसरीन	·५७६
लोहा	·११२	पारा	·०३३
सीसा	·०३२	तारपीन का तेल	·४६७
जस्ता	·०९४	पेट्रोल	·५११

प्रश्न

(१) २५० ग्राम पानी को ३०° श से ८०° श तक गरम करने में कितनी कलारी ताप चाहिए ?

(२) १६० कलारी ताप कितने पानी का तापक्रम ५·६° श बढ़ा देगा ?

(३) २२ ग्राम ठंडे पानी में (तापक्रम १५° श) ६ ग्राम गरम पानी (तापक्रम ८०° श) मिलाया गया। मिश्रण का तापक्रम बताओ।

(४) यदि १६ पाउंड पानी का तापक्रम २२° श से बढ़ाकर ६५° श करना हो तो कितना उबलता हुआ पानी उसमें मिलाना होगा ?

(५) पीतल के लोटे में एक पाउंड जल है जिसका तापक्रम १७° श है। इसमें आधा पाउंड गरम जल (तापक्रम ७३° श) डाल दिया गया जिससे तापक्रम बढ़कर ३४·५° होगया। बताओ कि लोटे ने कितना ताप लिया और उसकी जल-तुल्यता कितनी थी ?

(६) एक कलारी-मापक की जल-तुल्यता २ ग्राम है। उसमें २५ ग्राम जल भरा है और उसका तापक्रम २१° है। इसमें १० ग्राम जल ४५° तापक्रमवाला डाल दिया गया। अंतिम तापक्रम बताओ।

(७) २५ ग्राम लोहे को १०° श से ७८° श तक गरम करने में कितना ताप चाहिए ?

(८) ४५ कलारी ताप ३० ग्राम ताँबे का तापक्रम कितना बढ़ा देगा ?

(९) कितने पारे का तापक्रम २० कलारी ताप से ३·४° श बढ़ जायगा ?

(१०) एक वस्तु का भार १५ ग्राम है। उसे भाप से गरम करके ४५ ग्राम पानी में डाल दिया जिससे पानी का तापक्रम १६° श से बढ़कर २०° श हो गया। उस वस्तु का विशिष्ट ताप क्या था ?

(११) ५२ ग्राम सीसा १००° श तक गरम करके २७° श तापक्रमवाले पानी में डाल दिया और उस पानी का तापक्रम ३२° श हो गया। पानी कितना था ?

(१२) यदि ताँबे के कलारी-मापक का भार ४६ ग्राम है तो उसकी जल-तुल्यता बताओ।

(१३) २० ग्राम भारवाले ताँबे के कलारी-मापक में ४९·८ ग्राम पानी भरा है और उसका तापक्रम २४° श है। ३६ ग्राम धातु ९८° तक गरम करके इसमें डालने पर तापक्रम ३३° श होगया। उस धातु का विशिष्ट ताप बताओ।

(१४) शरीर का सेंक करने के लिए कौन अच्छा है—काँच की बोतल में १००° श वाला पानी अथवा उतने ही भार का १००° श तक गरम किया हुआ लोहा ?

(१५) बालू गरमी में दिन के समय तो बहुत गरम हो जाती है और रात्रि के समय खूब ठंडी। इसका क्या कारण है ?

(१६) २० ग्राम ताँबा (तापक्रम १००° श) ५० ग्राम तेल (तापक्रम २०° श) में डाल दिया गया और हिलाने के बाद सबका तापक्रम २६° श हो गया। उस तेल का विशिष्ट ताप बताओ।

——

परिच्छेद १३

अवस्था-परिवर्त्तन

१२९—गलनांक तथा क्वथनांक। ताप के साधारण प्रभावों का वर्णन करते समय हम देख आये हैं कि ताप के कारण ठोस पदार्थ द्रवरूप धारण कर लेते हैं और द्रव पदार्थ गैस-अवस्था में परिणत हो जाते हैं। इस अवस्था-परिवर्त्तन के सम्बन्ध में कुछ बातें अवश्य जानने योग्य हैं। उन्हें हम कुछ अत्यन्त सरल प्रयोगों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।
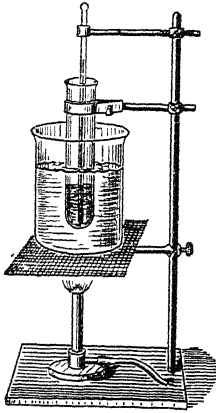
चित्र ८६

(१) एक परीक्षा-नली में पाराफ़िन (मोमबत्ती के मोम) के छोटे छोटे टुकड़े डाल दो और उसमें एक तापमापक भी रख दो। परीक्षा-नली को एक बीकर में रख दो और बीकर में पानी डालकर उसे ज्वालक के द्वारा धीरे धीरे गरम होने दो। घड़ी सामने रखकर प्रति एक मिनट के बाद तापमापक को पढ़ लो और इस तापक्रम को काग़ज़ पर लिख लो। आप देखेंगे कि पहिले तो तापक्रम बढ़ता जायगा किन्तु ज्योंही तापक्रम ५२° श के लगभग पहुँचेगा मोम का पिघलना आरम्भ हो जायगा और तापक्रम की वृद्धि रुक जायगी। यद्यपि ज्वालक बराबर ताप देता रहेगा किन्तु कई मिनट तक तापमापक पर उसका बिलकुल भी असर न होगा। जब तक ठोस मोम का थोड़ा भी टुकड़ा बाक़ी रहेगा तब तक मोम का तापक्रम सर्वथा

स्थिर रहेगा। जब सब मोम पिघल चुकेगा तब पुनः तापक्रम बढ़ना प्रारम्भ होगा और फिर वह बराबर बढ़ता ही जायगा। यदि ख़ूब गरम पिघले हुए मोम को हम ठंडा होने दें तो तापक्रम घटने का क्रम ठीक इसके विपरीत होगा। अर्थात् पहिले तापक्रम जल्दी जल्दी घटेगा तब ५२° श पर पहुँच कर
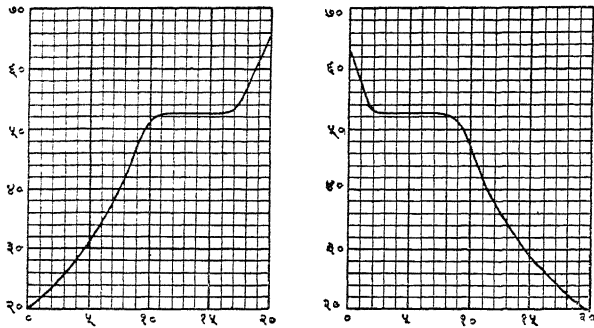
चित्र ८७

उसका घटना सर्वथा बन्द हो जायगा। इसी समय मोम का जमना भी प्रारम्भ होगा। जब तक पूरा मोम जम न जायगा तब तक तापक्रम भी ५२° श से नीचे न उतरेगा किन्तु इसके उपरान्त वह पुनः घटकर धीरे धीरे कमरे की वायु के तापक्रम को प्राप्त कर लेगा।

यही घटना बर्फ़ के पिघलते समय होती है यह हम पहिले ही कह आये हैं। वस्तुतः कुछ थोड़े से पदार्थों को छोड़कर किसी भी ठोस पदार्थ को गरम करने पर तापक्रम-परिवर्त्तन इसी रीति से होगा। अन्तर केवल यह होगा कि अवस्था-परिवर्त्तन का तापक्रम भिन्न भिन्न मिलेगा।

(२) कुछ तेल को एक बीकर में गरम करो और ठीक ऊपर के प्रयोग की ही भाँति उसका तापक्रम भी एक एक मिनट के बाद देखते जाओ। इस बार भी आप देखेंगे कि पहिले तापक्रम बढ़ता जायगा किन्तु ज्योंही द्रव का उबलना प्रारम्भ होगा त्योंही तापक्रम भी स्थिर हो जायगा। फिर चाहे हम कितना ही

ताप लगावें, एक ज्वालक के स्थान में दो या तीन भी लगा दें तब भी तापक्रम में तनिक भी वृद्धि न होगी। जल के उबलने का तापक्रम भी इसी प्रकार स्थिर होता है। यह हम तापमापक के निर्माण के सम्बन्ध में पहिले ही देख आये हैं।

इन प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक पदार्थ के लिए अवस्था-परिवर्त्तन के निश्चित तापक्रम होते हैं। जिस तापक्रम पर ठोस पिघल कर द्रव बनता है अथवा द्रव जमकर ठोसरूप धारण कर लेता है उसे **गलनांक** कहते हैं तथा जिस तापक्रम पर द्रव उबलने लगता है उसे उस पदार्थ का **कथनांक** कहते हैं। निम्न सारिणी में कुछ साधारण पदार्थों के गलनांक व क्थनांक दिये गये हैं:—

गलनांक

पारा	—३९°
बर्फ़	०°
मक्खन	३३°
फ़ास्फ़रस	४४°
मोम (पाराफ़िन)	५०°
,, (मक्खी का)	६१°–६४°
गन्धक	११५°
सीसा	३२७°
लोहा	१५३०°
सोना	१०६२°
चाँदी	९६०°
ताँबा	१०८३°
जस्ता	४१८°

१३०—अशुद्धि का प्रभाव। इस सारिणी में जितने तापक्रम दिये गये हैं वे केवल शुद्ध पदार्थों के अवस्था-परिवर्त्तन के तापक्रम हैं। यदि किसी पदार्थ में कोई दूसरा पदार्थ घुला हो तो ये तापक्रम बदल जाते हैं। गलनांक बहुधा इसके कारण कम हो जाता है और क्वथनांक बढ़ जाता है। यथा जल में नमक घोल देने पर वह ०° श पर नहीं जमता। उसका तापक्रम इससे भी नीचा करना पड़ता है। जितना अधिक नमक घुला हो उतना ही अधिक नीचा यह तापक्रम भी होता है यहाँ तक कि इस प्रकार प्रायः–२२° श तक यह तापक्रम घटाया जा सकता है। कैलशियम क्लोराइड के द्वारा बर्फ़ के पिघलने का तापक्रम—५१° तक कम कर दिया जा सकता है। यही कारण है कि जब हमें मलाई का बर्फ़ जमाना होता है तब हम दूध के बर्तन के चारों ओर केवल शुद्ध बर्फ़ न रख कर उसमें नमक भी मिला देते हैं। यह नमक बर्फ़ के तापक्रम को ०° श० से कई डिगरी नीचे तापक्रम पर स्थिर रखता है क्योंकि उसका गलनांक घट जाता है। जब तक सारा बर्फ़ पिघल न जावे तब तक तापक्रम गलनांक से ऊपर नहीं उठ सकता। ०° श से नीचे तापक्रम प्राप्त करने के लिए बहुधा नमक, कैलशियम क्लोराइड, सोडियम फ़ास्फ़ेट आदि पदार्थों को बर्फ़ में मिलाया जाता है। ऐसे मिश्रण को हिम-मिश्रण कहते हैं।

क्वथनांक पर अन्य पदार्थों के घोलने का प्रभाव उलटा होता है। जिस पानी में नमक घुला हो वह १००° श पर नहीं उबलेगा। उसका तापक्रम नमक की मात्रा के अनुसार १००° श से कई डिगरी अधिक करना होगा।

१३१—बर्फ़ के गलनांक पर दाब का प्रभाव। दाब के कारण भी बर्फ़ का गलनांक ०° श से कुछ कम हो जाता है। अर्थात् ज़ोर से दबाने पर ०° श पर बर्फ़ ठोस अवस्था में नहीं रह सकता। वह पिघलना प्रारम्भ कर देता है। किन्तु दाब हटाते ही तुरन्त पुनः जम जाता है। बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़ों को मुट्ठी में दबाने से ये सब जुड़ कर एक हो जाते हैं। जिन देशों में बर्फ़ पड़ता है वहाँ के बालक इसी प्रकार बर्फ़ की गेंदें बना

बना कर खेला करते हैं। दबाने के कारण दो टुकड़ों के बीच का बर्फ़ पिघलता है और दाब दूर होते ही वह पुनः जम कर दोनों टुकड़ों को जोड़ देता है।

बर्फ़ का गलनांक दाब के कारण घट जाता है इस बात का एक उदाहरण बड़ा रोचक है। बर्फ़ का खूब बड़ा सा एक टुकड़ा चित्र ८८ की भांति दो मेज़ों पर रख दो। तब एक तांबे का तार उस पर रखके उसके दोनों सिरों पर भारी बोझ लटका दो। धीरे धीरे यह तार बर्फ़ को काटता हुआ नीचे निकल आयगा किन्तु बर्फ़ का टुकड़ा ज्यों का त्यों साबुत ही रह जायगा। तार के नीचे का बर्फ़ दाब के कारण पिघल जाता है और तार उसमें नीचे घुस जाता है। पिघला हुआ जल तार के ऊपर पहुँच जाता है। वहां उस पर कोई दाब नहीं रहता इस कारण वह पुनः जम जाता है। बर्फ़ के इस प्रकार पिघल कर फिर जम जाने को पुनर्घनी-भवन कहते हैं।
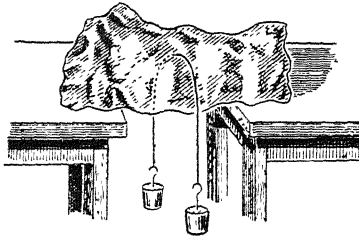
चित्र ८८

१३२—क्वथनांक पर वायु-दाब का प्रभाव। तापमापक का ऊर्ध्व विन्दु अंकित करने की विधि में लिखा गया था कि जल के उबलने का तापक्रम वायुदाब पर निर्भर है। यदि दाब ७६० मम० से अधिक हुआ तो जल का क्वथनांक १००^0 से अधिक हो जायगा और यदि कम हुआ तो क्वथनांक भी घट जायगा। यह प्रमाणित करने के लिए यहां दो सरल प्रयोग दिये जाते हैं।

(१) कांच के एक फ़्लास्क में पानी खूब उबाल दो। उसके नीचे से ज्वालक हटाकर तुरन्त उसका मुँह काग से बन्द कर दो और उसे चित्र ८९ की भांति उलट कर रख दो। फिर थोड़ी देर बाद जब

पानी कुछ ठंडा हो जाय तो फ़्लास्क पर खूब ठंडा पानी डाल दो। तुरन्त फ़्लास्क का पानी उबलने लगेगा। पानी उबलते समय इस फ़्लास्क में से हवा तो सब निकल ही जायगी। पानी के ऊपर केवल कुछ भाप रह जायगी। वह भी ठंडे पानी के स्पर्श से जलरूप हो जायगी। अतः फ़्लास्क में उसका दाब बहुत घट जायगा। इसी कारण जल का तापक्रम ६०° या ७०° श होने पर भी वह उबलने लगेगा।

चित्र ८९
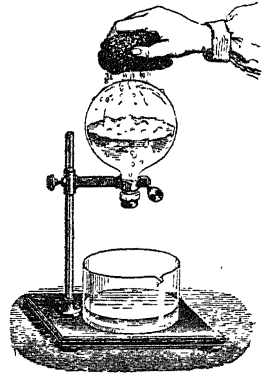
(२) जिस बर्तन में पानी उबल रहा हो उसमें से भाप निकलने का रास्ता खुला न छोड़कर उसमें एक नली लगा दो और इस नली का मुँह जल या पारे में आठ या दस इंच गहरा डुबा दो। अब भाप बाहिर तभी निकल सकेगी जब कि उसका दाब वायु के दाब तथा नली के मुँह पर के द्रव के दाब के योग के बराबर होगा। इसलिए आप देखेंगे कि जल के उबलने का तापक्रम बढ़ जायगा और यह वृद्धि उस समय अधिक होगी जब नली पारे में डूबी हो।
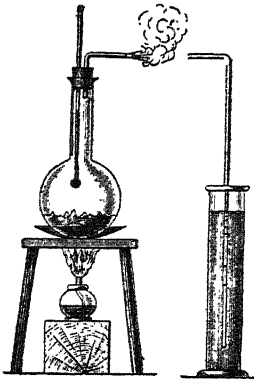
चित्र ९०

इसी प्रकार प्रत्येक द्रव का क्कथनांक दाब घटाने से घट जाता है और दाब बढ़ाने से बढ़ जाता है। इसी बात का परिणाम यह है कि ऊँचे पहाड़ पर चाय अच्छी तैयार नहीं हो सकती और दाल भी नहीं पक सकती। क्योंकि ऊँचाई के कारण वहाँ की हवा का दाब कम होता है और पानी का तापक्रम १००° से बहुत नीचे रह जाता है। स्थूलतया प्रायः पृथ्वी से प्रति

१०८० फुट ऊँचे जाने पर जल का क्थनांक एक डिगरी शतांश घट जाता है। इस हिसाब से शिमला पहाड़ पर जल का क्थनांक प्रायः ६४° श होगा और हिमालय की ऊँची ऊँची चोटियों पर तो यह प्रायः ७५° श तक घट सकता है। बहुधा यात्री लोग जल के क्थनांक के द्वारा ही पहाड़ की ऊँचाई का पता लगा लेते हैं।

१३३—गुप्त-ताप। अवस्था-परिवर्त्तन के सम्बन्ध में दूसरी स्मरण रखने की बात यह है कि जब तक ठोस पदार्थ पिघलता रहता है अथवा द्रव उबलता रहता है तब तक तापक्रम नहीं बढ़ता। वैसे जितना जितना ताप हम वस्तु को देते जाते हैं उतना ही उतना तापक्रम भी बढ़ता जाता है और हम पिछले परिच्छेद में वर्णित सूत्र $स \times म \times (त' - त)$ के द्वारा उसमें प्रविष्ट होने वाले ताप का परिमाण भी जान सकते हैं। किन्तु अवस्था-परिवर्त्तन के समय हम वस्तु को ताप अवश्य देते हैं तथापि उसके तापक्रम में कोई अन्तर नहीं होता। अतः जो ताप इस समय उस वस्तु में प्रवेश करता है वह उक्त सूत्र के द्वारा नापा भी नहीं जा सकता। हम कह सकते हैं कि यह गुप्त है क्योंकि तापमापक इसे बतला नहीं सकता। बिना तापक्रम बदले किसी पदार्थ के एक ग्राम के अवस्था-परिवर्त्तन में जितने ताप की आवश्यकता होती है वह उस पदार्थ का गुप्त ताप कहलाता है। निम्न प्रयोगों के द्वारा हम न केवल गुप्त-ताप का अस्तित्व ही प्रमाणित कर सकते हैं किन्तु हम उसका ठीक ठीक परिमाण नाप भी सकते हैं।

१३४—बर्फ़ का गुप्त-ताप। कलारी-मापक में कुछ मात्रा पानी की भर लो और उसका तापक्रम त नाप लो। अब कुछ छोटे छोटे टुकड़े बर्फ़ के लेकर सोख़ते से उन्हें सुखा लो और तुरन्त कलारी-मापक के जल में डाल दो। धीरे धीरे जल को हिलाने से थोड़ी ही देर में बर्फ़ पिघल जायगा। तब पानी का अंतिम तापक्रम त' भी नाप लो। कलारी-मापक को पुनः तौलकर उसमें डाले हुए बरफ़ की मात्रा ब भी मालूम कर लो। यदि कलारी-मापक की जल-तुल्यता ज हो तो स्पष्ट है कि जल तथा कलारी-मापक

ने जितना ताप खोया उसका परिमाण $=$ (म + ज) (त − त′) कलारी है। इस ताप ने पहिले तो ०° श तापक्रमवाले ब ग्राम बर्फ़ का उसी तापक्रम पर जल बनाया और तब इस ब ग्राम जल का तापक्रम ०° से बढ़ाकर त′° श कर दिया। इस पिछले कार्य में ब (त′ − ०) = ब × त′ कलारी ताप ख़र्च हुआ। अतः स्पष्ट है कि ब ग्राम बर्फ़ को पिघलाने में (म + ज) (त′ − त) − ब × त′ कलारी की आवश्यकता हुई। अतः बर्फ़ का

$$\text{गुप्त-ताप} = \frac{(\text{म} + \text{ज})\ (\text{त}' - \text{त}) - \text{ब} \times \text{त}'}{\text{ब}} \text{ कलारी।}$$

इसी प्रकार अन्य ठोस पदार्थों का गुप्त-ताप भी निकाला जा सकता है। बर्फ़ का गुप्त ताप ८० कलारी है। अर्थात् एक ग्राम बर्फ़ को पिघलाने के लिए उतना ताप चाहिए जितना कि ८० ग्राम पानी का तापक्रम १° श बढ़ा देगा अथवा एक ग्राम पानी का तापक्रम ८०° बढ़ा देगा। विपरीत इसके एक ग्राम जल का बर्फ़ जमाते समय भी हमें ८० कलारी ताप उसमें से निकालना पड़ेगा।

१३५—भाप का गुप्त-ताप। एक बड़े से कलारी-मापक में ठण्डा पानी भर लो। उसकी मात्रा म और तापक्रम त नाप लो। तब उसमें एक नली के द्वारा उबलते हुए पानी की भाप पहुँचाओ। इस नली का मुँह कलारी-मापक के जल में डूबा रहना चाहिए। जब पानी का तापक्रम ७° या ८° श बढ़ जाय तो झट से भाप की नली हटा लो और तापक्रम अच्छी तरह नाप लो। ध्यान रहे कि इस कार्य में भाप कलारी-मापक को बाहर से गरम न करने पावे। ज्वालक और कलारी-मापक के बीच में एक लकड़ी का तख़्ता भी खड़ा कर देना चाहिए ताकि ज्वालक का ताप सीधा कलारी-मापक में न पहुँच सके (चित्र ६१)। भाप ले जानेवाली नली के बीच में भी चित्र में दिखलाई हुई एक चौड़ी नली और लगा देनी चाहिए ताकि कलारी-मापक में जाने से पहिले भाप का जो कुछ पानी बन गया हो वह कलारी-मापक में न चला जावे और केवल सूखी भाप ही वहाँ पहुँचे। इस नली का नाम वाष्प-कूट है।

कलारी-मापक को पुनः तौलकर द्रवीभूत भाप का परिमाण भ नाप लो। पहिले ही की भाँति अब भी
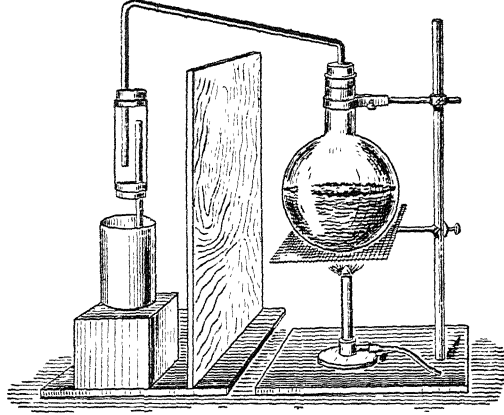
चित्र ६१

कलारी-मापक तथा जल-द्वारा प्राप्त ताप = (म + ज) (त′ – त)

यह ताप कहाँ से आया ? पहिले तो भ ग्राम भाप का १००° श पर जल बना और तब यह भ ग्राम जल १००° से त′° तक ठण्डा हुआ। इस पिछले कार्य में भ × (१०० – त′) कलारी ताप निकला। शेष ताप अवश्य ही भाप के द्रवीभूत होने में निकला होगा। अतः भ ग्राम भाप के द्रवीभूत होने से उत्पन्न ताप = (म + ज) (त′ – त) – भ (१०० – त′)

$$\therefore \text{भाप का गुप्त-ताप} = \frac{(\text{म} + \text{ज})\ (\text{त}' - \text{त}) - \text{भ}\ (१०० - \text{त}')}{\text{भ}}\ \text{कलारी}$$

इस प्रयोग का परिणाम यह निकलेगा कि भाप का गुप्त ताप ५३६ कलारी है। अर्थात् जो ताप ५३६ ग्राम जल का तापक्रम १° बढ़ा सकता है, अथवा ५·३६ ग्राम जल को बर्फ़ के तापक्रम से १००° तक गरम कर सकता है वही १००° वाले केवल एक ग्राम जल को भाप में परिणत कर

सकता है। एक ग्राम भाप का जल भी तभी बनेगा जब ५३६ कलारी ताप उसमें से निकल जावेगा।

१३६—द्रवों का वाष्पीभवन। यह न समझना चाहिए कि जब तक द्रव उबलने न लगें तब तक वे वाष्परूप धारण कर ही नहीं सकते। क्थनांक से बहुत नीचे तापक्रम पर भी यह वाष्पीभवन होता रहता है। किसी खुले पात्र में जल, स्पिरिट या ईथर रख छोड़ने से थोड़ी देर में वह उड़ जाता है। गीले कपड़े को हवा में फैला देने से कुछ ही देर में वह सूख जाता है। जब जाड़ों में कड़ाके की सर्दी पड़ती है और हवा या जल का तापक्रम प्रायः बर्फ़ के तापक्रम तक पहुँच जाता है तब भी कपड़े सूख जाते हैं। इससे सिद्ध है कि साधारण तापक्रमों पर भी द्रव धीरे धीरे वाष्परूप में परिणत होता रहता है। यह भी साधारण अनुभव की बात है कि तापक्रम बढ़ाने पर यह वाष्पीभवन अधिक वेग से होने लगता है।

इस वाष्पीभवन में और क्थनांक पर होनेवाले उबाल दोनों ही में अवस्था-परिवर्त्तन होता है। भेद केवल यह है कि प्रथम प्रकार का परिवर्त्तन केवल द्रव के पृष्ठ पर ही होता है किन्तु जब द्रव उबलने लगता है तब समस्त द्रव में विशेषकर पात्र के नीचे की ओर वाष्प के बुलबुले बन बनकर निकलने लगते हैं और इस कारण उस द्रव में बड़ी हलचल उत्पन्न हो जाती है।

अणु-सिद्धान्त की दृष्टि से हम यह भेद सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। यह तो विदित ही है कि प्रत्येक द्रव के अणु गतिमान् होते हैं और सब अणुओं का वेग बराबर नहीं होता। किसी का वेग बहुत कम होता है तो किसी का बहुत अधिक भी होता है। द्रवों के पृष्ठ में जो अणु स्थित हैं वे अपने वेग के कारण द्रव-पृष्ठ से बाहर निकलने का प्रयत्न करते हैं किन्तु अन्य अणुओं का आकर्षण उन्हें फिर अन्दर खींच लेता है। किन्तु जो अणु अधिक वेगवाले होते हैं वे निकल भागते हैं और एक बार दूसरे अणुओं की सीमा को पार कर लेने पर स्वतंत्रतापूर्वक वे जहाँ चाहें घूम सकते हैं। अधिक वेगवाले अणुओं के इस प्रकार द्रव-पृष्ठ से निकल भागने

को वाष्पीभवन कहते हैं। ज्यों ज्यों द्रव का तापक्रम बढ़ता जाता है त्यों त्यों सब अणुओं का वेग भी बढ़ता जाता है और अणुओं की अधिक संख्या आकर्षण से निकल भागने की क्षमता प्राप्त करती जाती है। इसी से वाष्पीभवन का वेग बढ़ जाता है। किन्तु जब तापक्रम क्वथनांक पर पहुँच जाता है तब तो प्रायः प्रत्येक अणु का वेग इतना हो जाता है कि वह आकर्षण की सीमा को लांघ सकता है। इतने वेगवाले अणुओं का द्रव-रूप में बँधे रहना सम्भव नहीं होता इसी कारण द्रव के समस्त आयतन में वाष्प के बुलबुले बनने लगते हैं और अन्त में द्रव अवस्था का सर्वथा नाश हो जाता है।

१३७—वाष्पीभवन से ठंडक। यदि वाष्पीभवन का यह कारण है कि अधिक वेगवाले अणु द्रव में से निकल भागते हैं तो यह भी स्पष्ट है कि शेष अणुओं का औसत वेग कम हो जायगा। अर्थात् शेष द्रव का तापक्रम भी घट जायगा। वाष्पीभवन से तापक्रम का घटना साधारण अनुभव की बात है।

जब हम गीले हाथ को हवा में हिलाते हैं तो हमें ठंडक का अनुभव क्यों होता है? जब हमें खूब पसीना निकल रहा हो तब पंखा हमें क्यों अच्छा लगता है? अथवा कड़ी गरमी के दिनों में सुराही का पानी क्यों ठंडा रहता है? यह तो प्रत्यक्ष ही है कि हाथ को हिलाने से अथवा पंखे को चलाने से वायु का तापक्रम नहीं घट जाता। वास्तव में होता यह है कि वायु के हिलाने से हाथ पर के जल अथवा शरीर पर के पसीने का वाष्पीभवन अधिक शीघ्रता से होता है। और इस वाष्पीभवन के कारण शेष जल या पसीने का तापक्रम घटना चाहता है। तब हमारे शरीर से निकल कर कुछ ताप जल या पसीने में चला जाता है। यही हमारे ठंडक अनुभव करने का कारण है। सुराही मिट्टी की बनी होती है और उसमें बारीक बारीक सहस्रों छिद्र होते हैं। इन छिद्रों में से थोड़ा थोड़ा पानी बाहर निकल आता है और तब उसे वाष्पीभूत होने का अवसर मिलता है। इसी वाष्पीभवन के कारण शेष जल का तापक्रम घट जाता है। धातु के पात्र में रखे हुए जल का वाष्पीभवन नहीं हो सकता। अतः वह गरम ही रहता है। कभी कभी

जाड़ों में खुले मैदान में मिट्टी के पात्र में रखा हुआ जल जमकर बर्फ़ भी हो जाता है। इसका कारण बहुधा यह नहीं होता कि वायु का तापक्रम ०° श से कम होगया हो। वाष्पीभवन की अत्यधिक ठंडक के कारण ही वह जम जाता है।

स्पिरिट या ईथर का वाष्पीभवन और भी शीघ्रता से होता है। अतः इनके द्वारा ठंडक भी अधिक पैदा होती है। यहां तक कि इस ठंडक के कारण पानी जमाया भी जा सकता है। 'यू डी कोलोन' नामक सुगंधित औषधि को सिर पर लगाने से गरमी में जो सुख अनुभव होता है उसका भी यही कारण है।

१३८—बर्फ़ जमाने की विधि। आजकल बहुधा बर्फ़खानों में जो पानी का बर्फ़ जमाया जाता है उसकी विधि भी वाष्पीभवन पर ही अवलम्बित है। अमोनिया गैस को दाब के द्वारा द्रवरूप बना लिया जाता है और तब इसके वाष्पीभवन से जो ठंडक पैदा होती है उसी से पानी जम

चित्र ९२
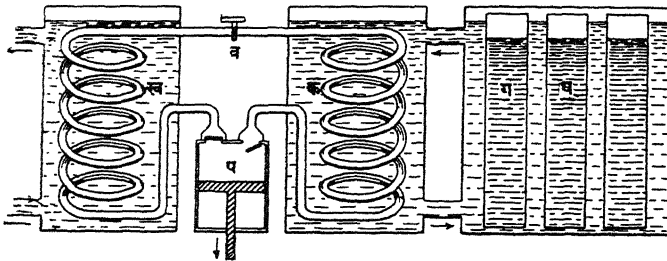
जाता है। चित्र ९२ में क और ख धातु की नली के दो बेठन हैं जो आपस में एक ओर पम्प प के द्वारा तथा दूसरी ओर एक वाल्व व के द्वारा संयोजित हैं। ख पानी के एक पात्र में डूबी हुई है और क के चारों ओर नमक मिला पानी (या कैलशियम क्लोराइड का विलयन) भरा है। यही नमकीन पानी एक ओर टंकी से जुड़ा हुआ है और इस टंकी में स्वच्छ जल से

भरे हुए पात्र ग, घ आदि रखे हैं। क में थोड़ा सा द्रव अमोनिया भरा है। जब पम्प का दस्ता नीचे की ओर खींचा जाता है तब इस द्रव अमोनिया पर दाब कम हो जाता है और उसका कुछ भाग वाष्पीभूत हो जाता है। इससे शेष अमोनिया खूब ही ठंडा हो जाता है और बाहर के नमकीन पानी को भी ठंडा कर देता है। जब पम्प का दस्ता ऊपर की ओर दबाया जाता है तो उसमें का अमोनिया गैस ख में जाकर दब जाता है और उसका पुनः द्रव बन जाता है और धीरे धीरे वाल्व च के रास्ते से पुनः क में पहुँच जाता है और फिर वहाँ वाष्पीभवन के द्वारा नमकीन पानी से ताप ले लेकर उसे ठंडा करने को प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार वही अमोनिया बार बार क में आकर नमक के विलयन को ठंडा करता जाता है। जब इसका तापक्रम -८^0 या -१०° हो जाता है तो टंकी में रखे हुए पात्रों का जल भी जमकर बर्फ़ बन जाता है।

१३९—स्रावण। जब किसी द्रव में लवण इत्यादि कोई ठोस पदार्थ घुले हों तो उस विलयन में से शुद्ध द्रव प्राप्त करने का साधारण उपाय यही है कि उस विलयन को उबाल लो और जो वाष्प बने उसे नली-द्वारा किसी दूसरे पात्र में ले जाओ। ठंडक पाकर वह वहाँ पुनः द्रवरूप धारण कर लेगा। इस रीति को स्रावण कहते हैं और इसके लिये चित्र ९३ में प्रदर्शित उपकरण का प्रयोग किया जाता है। इसमें जिस नली में से वाष्प जाता है वह ठंडे पानी के एक पात्र में डूबी रहती है। वाष्प यहीं द्रवरूप धारण कर लेता है और तब बहकर पात्र में एकत्रित हो जाता है। यह द्रव बिलकुल शुद्ध होता है क्योंकि उबलने पर द्रव के अणु ही वाष्परूप धारण कर
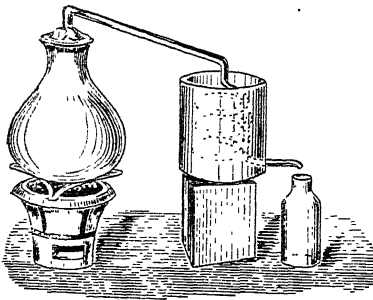
चित्र ९३

सकते हैं। ठोस पदार्थ जो उसमें घुला था उसके अणु इतने तापक्रम पर गैस-रूप धारण नहीं कर सकते।

प्रश्न

(१) ३० ग्राम बर्फ़ को पिघलाने के लिए कितना ताप चाहिए ?

(२) यदि ५ ग्राम बर्फ़ को ४५० कलारी ताप दिया जाय तो क्या होगा ?

(३) एक पाउंड पानी का तापक्रम ३०° श से १०° श करने के लिए कितनी बर्फ़ (०°श) उसमें डालनी चाहिए ?

(४) गुप्त ताप निकालने के लिए एक प्रयोग में निम्नलिखित पाठ लिये गये:—

तांबे के कलारीमापक का भार = २३·४ ग्राम

२७° श के जल के साथ कलारीमापक का भार = ९३·६६ ग्राम

बर्फ़ डालने के बाद कलारीमापक का भार = १०४·६६ ग्राम

अंतिम तापक्रम = १६° श

गुप्त ताप का परिमाण निकालो।

(५) एक लोहे की गोली जिसका भार १०० ग्राम था एक भट्टी में डाल दी गई। थोड़ी देर बाद जब उसका तापक्रम भट्टी के बराबर हो गया तब वह निकाल कर बर्फ़ की सिल के गड्हे में डाल दी गई। इससे १४० ग्राम बर्फ़ पिघल गई। भट्टी का तापक्रम कितना था ?

(६) यदि ४·४५ ग्राम जस्ते को ३०° श से उसके गलनांक तक गरम करने और पिघला देने के लिए ३,००० कलारी ताप की आवश्यकता है तो बताओ कि उसका गुप्त ताप कितना है ?

(७) बर्फ़ के द्वारा –१०° श का तापक्रम कैसे प्राप्त करोगे ?

(८) बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़ों को मुट्ठी में जोर से दबाने से वे क्यों जुड़ जाते हैं ?

(९) एक बरतन में पानी उबल रहा है। एक तापमापक पानी में डूबा है और एक का वल्ब पानी से कुछ ही ऊपर रखा गया है। दोनों तापमापक क्या

तापक्रम बतलावेंगे और आँच तेज़ कर देने से अथवा पानी में थोड़ा नमक डाल देने से इन तापक्रमों में क्या अन्तर हो जायगा ?

(१०) ऊँचे पहाड़ पर दाल क्यों नहीं पकती ? उसे पकाने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

(११) यदि दो द्रवों का मिश्रण तुम्हें दिया जाय तो उन द्रवों को अलग अलग कैसे करोगे ?

(१२) कुएँ के पानी में बहुधा कई लवण घुले रहते हैं। इससे शुद्ध जल प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

(१३) १५ ग्राम जल (तापक्रम ३०° श) को भाप में परिणत करने के लिए कितना ताप चाहिए ?

(१४) ४५ ग्राम जल (तापक्रम २०°श) में कितनी भाप मिलावें कि जल उबलने लगे ?

(१५) यदि ५४ ग्राम जल (तापक्रम २४°) में ३ ग्राम भाप मिला दी जाय तो तापक्रम कितना हो जायगा ?

(१६) भाप का गुप्त ताप निम्नलिखित पाठों से निकालो:—

ताँबे के कलारीमापक का भार=२३·४ ग्राम

२७°श के जल और कलारीमापक का भार=९३·६६ ग्राम

भाप पानी में से चलाने के बाद कलारीमापक का भार=९५·०९ ग्राम

अंतिम तापक्रम=३६°श

(१७) १००° श वाली ५ ग्राम भाप और ०°श वाला २० ग्राम बर्फ़ मिलाने से अंतिम तापक्रम कितना होगा ?

(१८) १० ग्राम अलकाहाल (तापक्रम १८° श) को उबालकर वाष्प में परिणत करने के लिए कितने ताप की आवश्यकता होगी ?

(१९) वाष्पीभवन और उबलने में क्या अन्तर है ?

(२०) जब हमारा शरीर पसीने से तर हो तब वायु का तापक्रम शरीर के तापक्रम से१०°-१२° फ अधिक होने पर भी पंखे की हवा ठंडी क्यों मालूम होती है ?

(२१) (१) पानी की बर्फ़ और (२) मलाई की बर्फ़ जमाने की विधि क्या है ?

(२२) पीने का पानी मिट्टी के घड़े में ठंडा क्यों रहता है ? पुराने घड़े का यह गुण क्यों नष्ट हो जाता है ?

(२३) गरमी के मौसिम में ख़स की टट्टी लगाने से कमरा ठंडा क्यों हो जाता है ?

परिच्छेद १४

जल-वाष्प मेघ आदि

१४०—**वाष्प-दाब।** खुले पात्र में से जल, ईथर इत्यादि के उड़ जाने का कारण यह बतलाया जा चुका है कि अधिक वेगवाले अणु द्रव-पृष्ठ में से निकल निकलकर शेष अणुओं के आकर्षण की सीमा को लांघ कर स्वतंत्र हो जाते हैं। किन्तु यदि इन द्रवों को किसी बन्द पात्र में रख दें तो इन स्वतन्त्रता प्राप्त अणुओं को भी पात्र में द्रव के ऊपर जो स्थान खाली दिखलाई देता है उसी में घूमना पड़ता है। उससे बाहर वे नहीं जा सकते। इसलिए इधर-उधर घूमते-घूमते उन्हें कभी-कभी द्रव-पृष्ठ के समीप आ जाना पड़ता है और वे पुनः द्रव के अणुओं की पकड़ में आ जाते हैं। और ज्यों ज्यों द्रव का वाष्पीभवन होता जाता है त्यों त्यों इन स्वतंत्र अणुओं की भीड़ भी बढ़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि कुछ समय के पश्चात् द्रव-पृष्ठ से निकल कर स्वतंत्र हो जानेवाले अणुओं की संख्या उसमें पुनः प्रवेश करनेवाले अणुओं की संख्या के बराबर हो जाती है। तब एक प्रकार का साम्य हो जाता है। वाष्पीभवन का कार्य होते रहने पर भी द्रव की मात्रा घटती नहीं। ऐसी अवस्था में कहा जाता है कि पात्र के भीतर का आकाश वाष्प-संतृप्त होगया है और इस समय उस वाष्प का जो दाब होता है उसे वाष्प का संतृप्ति-दाब कहते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि इससे अधिक उस वाष्प का दाब नहीं हो सकता। अतः इस दाब को बहुधा वाष्प का अधिकतम दाब भी कहते हैं।

यह अधिकतम दाब इस बात पर निर्भर नहीं हो सकता कि पात्र में वाष्प का आयतन कितना है। यदि आयतन अधिक होगा तो वाष्प की मात्रा भी अधिक होगी किन्तु उसका घनत्व, अथवा उसमें अणुओं की भीड़

केवल इस बात पर निर्भर होगी कि प्रति सैकंड कितने अणु द्रव-पृष्ठ से निकल भागते हैं। पिछले अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि यह संख्या द्रव के तापक्रम पर निर्भर है। ज्यों ज्यों तापक्रम बढ़ता जायगा त्यों त्यों यह संख्या भी बढ़ती जायगी। अतः हम बिना कठिनाई के समझ सकते हैं कि प्रत्येक तापक्रम के लिए यह संतृप्ति-दाब निश्चित है और उसका परिमाण तापक्रम के साथ बढ़ता भी जाता है। यहाँ तक कि क्वथनांक पर यह दाब वायुमंडल के दाब के बराबर हो जाता है। इस पिछली बात को प्रमाणित करने के लिए निम्नलिखित प्रयोग अत्यन्त सरल है :—

चित्र ९४ में एक U – नली है जिसका एक मुँह बन्द है। इसमें क पर कुछ वायु-रहित शुद्ध जल और शेष में वायुरहित शुद्ध पारा भर दिया गया है। अब यदि इस नली को पानी के बीकर में रखकर पानी को उबाल दें तो हम देखेंगे कि दोनों भुजाओं में पारे की ऊँचाई बराबर हो जायगी। इसके बाद बन्द भुजा में जल विद्यमान होने पर भी पारे की ऊँचाई में कुछ परिवर्त्तन न होगा। दोनों भुजाओं के पारे की समान ऊँचाई के द्वारा स्पष्ट ही है कि वाष्प का दाब वायुमंडल के दाब के बराबर है।

चित्र ९४

इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि क्वथनांक उस तापक्रम का नाम है जिस पर कि वाष्प का संतृप्ति-दाब वायु-मंडल के दाब के बराबर हो।

अब यह भी समझ में आगया होगा कि वायु-मंडल के दाब के घटने या बढ़ने से जल अथवा अन्य द्रवों का क्वथनांक क्यों घट या बढ़ जाता है। जल का वाष्पदाब १००° श पर ७६ सम० पारे के बराबर होता है। यदि वायु का दाब भी ७६ सम० हुआ तब तो जल तुरन्त ही उबलने लगता है। किन्तु यदि वायु दाब अधिक हुआ तो उबलना भी तब ही प्रारम्भ होगा जब वाष्पदाब भी ७६ सम० से अधिक हो जाय। और इसके लिए तापक्रम को और बढ़ाना स्पष्ट ही आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी स्मरण रखना चाहिए। संतृप्ति-दाब का परिमाण इस बात पर तनिक भी निर्भर नहीं होता कि बन्द पात्र में वायु अथवा अन्य कोई वाष्प भी उपस्थित है या नहीं। क्योंकि हमें तो केवल उस द्रव के ही अणुओं के आवागमन का समय देखना है। अन्य गैस न तो उन अणुओं की संख्या घटा बढ़ा सकते हैं जो द्रव से निकल कर वाष्परूप धारण करते हैं और न उनकी कि जो पुनः द्रव में प्रवेश करते हैं। वे केवल वाष्प के अणुओं को पात्र के समस्त आयतन में व्याप्त होने में कुछ रुकावट पैदा कर सकते हैं जिसके कारण साम्य स्थापित होने में कुछ विलम्ब हो सकता है। किन्तु जब अन्त में साम्य स्थापित हो जाता है तब वाष्परूप अणुओं की संख्या ठीक उतनी ही होती है जितनी कि अन्य गैसों की अनुपस्थिति में होती।

१४१—वायुमंडल का जल-वाष्प। नदियों, तालाबों और समुद्रों का जल वाष्पीभूत हो-होकर प्रतिक्षण वायु में विलीन होता रहता है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि सदैव ही वायु में कुछ न कुछ जल-वाष्प विद्यमान होता है। वास्तव में यदि वायु के अणु संतृप्ति स्थापित होने में रुकावट पैदा न करते होते तो अवश्य ही समस्त वायु जल-वाष्प-संतृप्त होती। किन्तु कुछ तो इस रुकावट के कारण और कुछ तापक्रम की घट-बढ़ के कारण वायु सदा संतृप्त नहीं रह सकती। क्योंकि यदि किसी समय वह संतृप्त हो भी और तब उसका तापक्रम बढ़ जाय तो उस समय वह अवश्य ही असंतृप्त हो जायगी।

यह प्रत्यक्ष ही है कि असंतृप्त अवस्था में वायु और अधिक जल-वाष्प ले सकती है किन्तु संतृप्त अवस्था में यह सम्भव नहीं। यही कारण है कि वर्षा-ऋतु में जब वायु प्रायः संतृप्त रहती है तब कपड़े नहीं सूखते, पसीना भी नहीं सूखता तथा सुराही का पानी ठण्डा नहीं होता। इन सब कामों के लिए वाष्पीभवन की आवश्यकता है। किन्तु गरमी में तापक्रम की अधिकता के कारण वायु संतृप्त नहीं रह सकती। तब वह शुष्क मालूम पड़ती है और जल बड़ी शीघ्रता के साथ उड़-उड़ कर वायु में विलीन हो जाता है।

१४२—बादल । जल-वाष्प-मिश्रित वायु शुद्ध वायु की अपेक्षा हलकी होती है । अतः ज्यों ज्यों वायु में जल-वाष्प मिलता जाता है त्यों त्यों वह हलकी होकर ऊपर उठती जाती है । किन्तु ऊपर उठने पर दाब की कमी के कारण वह फैलती है और इस कारण उसका घनत्व तथा तापक्रम और भी घटता जाता है । अन्त में वह इतनी ठण्डी हो जाती है कि उसमें जो जलवाष्प विद्यमान था वही उसे अब संतृप्त कर देता है । तनिक भी और तापक्रम घटने पर द्रवीभूत होकर जलवाष्प छोटी छोटी जल की बूँदों का रूप धारण कर लेता है । वाष्परूप में वह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता था किन्तु अब वह दिखलाई देने लगता है । इन्हीं जल की सूक्ष्म बूँदों के समूह को हम मेघ या बादल कहते हैं । ये बूँदें सूक्ष्मता के कारण सहसा नीचे नहीं गिर सकतीं । अतः वे वायु में तैरती रहती हैं और हवा के प्रवाह के साथ साथ यह मेघ सहस्रों मील दूर तक चले जाते हैं । वर्षा-ऋतु में समुद्र की ओर से मेघ को लेकर जो वायु पृथ्वी की ओर आती है उसे मानसून कहते हैं ।

१४३—वर्षा । जब मेघ किसी ऐसे स्थान में पहुँचता है जहां की हवा शुष्क हो तब तो ये जल की बूँदें वाष्पीभवन के कारण और भी छोटी हो जाती हैं । किन्तु यदि जल-संतृप्त वायु इनसे मिले अथवा इनका तापक्रम और भी घट जाय तब इन पर और अधिक जल जमकर इनका आकार बढ़ जाता है और वे पृथ्वी पर नीचे गिर पड़ती हैं । नीचे गिरते समय कई बूँदें आपस में मिल भी जाती हैं और इस कारण उनका विस्तार और भी अधिक हो जाता है । इसी को हम वर्षा कहते हैं ।

१४४—ओले । कभी कभी वर्षा की बूँदें गिरते समय इतनी ठण्डी हवा में होकर गिरती हैं कि वे जमकर ठोसरूप धारण कर लेती हैं । ऐसी अवस्था में जल की बूँदों के स्थान में पत्थर के सदृश कठोर ओले बरसते हैं ।

१४५—हिम । यदि द्रवीभूत होने से पहिले ही जल-वाष्प का तापक्रम ०° श से कम हो जाय तो वह एकदम ठोसरूप धारण कर लेता है । किन्तु तब उसके बड़े बड़े कठोर ओले नहीं बन सकते । वह अत्यन्त सूक्ष्म

कणों के रूप में रहता है और ये कण रुई के पहल की भांति धीरे धीरे उड़ते हुए पृथ्वी पर गिरते हैं। इसे बर्फ़ या हिम कहते हैं।

१४६—कुहरा। यह भी बादल ही के समान जल की बूँदों का समूह होता है। अन्तर यह है कि यह पृथ्वीतल से बहुत ऊँचा नहीं होता। जब पृथ्वी के समीप की वायु तो ठण्डी होती है और उससे ऊपर की वायु गरम तभी कुहरा बनता है क्योंकि ऐसी अवस्था में ऊपर की वायु तो असंतृप्त रहती है और नीचे की संतृप्त हो जाती है।

१४७—ओस। रात्रि के समय हम बहुधा देखते हैं कि खुले मैदान में रखी हुई वस्तुओं अथवा घास तथा पौधों की पत्तियों पर पानी की छोटी छोटी बूँदें जम जाती हैं। पृथ्वी की मिट्टी भी इन जल-बिन्दुओं से भीग जाती है। इस जल का नाम ओस है। इसका कारण यह है कि दिन में सूर्य का जो ताप वस्तुओं ने लिया था वह संध्या होते ही उनमें से निकलने लगता है। किसी वस्तु में से बहुत शीघ्रता से निकल जाता है और किसी में से बहुत धीरे धीरे। अतः संध्या के बाद कई वस्तुएँ तो बहुत देर तक गरम रहती हैं और कई छूने पर बहुत ठण्डी मालूम होती हैं। इन द्वितीय प्रकार की वस्तुओं से स्पर्श करनेवाली वायु का तापक्रम भी एकदम घट जाता है। अतः वह संतृप्त होकर अपना कुछ जल-वाष्प इन्हीं वस्तुओं पर छोड़ देती है।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि ओस के लिए वस्तु का तापक्रम घटना आवश्यक है और इसके लिए तीन बातों का होना ज़रूरी है। पहिले तो ताप को उस वस्तु में से निकलकर आकाश में फैलने का अवसर मिलना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब आकाश स्वच्छ हो। मेघ का आवरण न हो। यह साधारण अनुभव की बात है कि मेघाच्छन्न रात्रि बहुधा गरम होती है। दूसरे वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि उसके पृष्ठ में से जो ताप निकला उसका स्थान तुरन्त उसके भीतरी भागों से आकर और ताप न ले ले। अर्थात् उसके पृष्ठ और भीतरी भागों के तापक्रम में खूब अन्तर हो सकना चाहिए। पत्ते, लकड़ी, कपड़ा आदि इस प्रकार की

वस्तुएँ हैं किन्तु लोहा आदि धातुएँ नहीं। इस विषय को अगले परिच्छेद में स्पष्ट करेंगे। तीसरे वायु निश्चल भी होनी चाहिए अन्यथा ठंडी वस्तुओं को स्पर्श करनेवाली वायु उसके निकट इतनी थोड़ी देर ठहरेगी कि उसका तापक्रम अच्छी तरह कम न हो सकेगा।

१४८—तुषार या पाला। यदि किसी रात्रि को वायु का तापक्रम ०° श या इससे भी कम हो जाय और यह वायु ठंडी वस्तुओं को स्पर्श करके संतृप्ति को प्राप्त करे तब उन वस्तुओं पर ओस नहीं जमती। जल-वाष्प द्रवरूप में नहीं किन्तु बर्फ़ के रूप में जम जाती है। इसी को पाला या तुषार कहते हैं।

१४९—आर्द्रता। अब स्पष्ट होगया होगा कि मौसिम-सम्बन्धी कितनी ही बातें इस बात पर अवलम्बित हैं कि वायु-मंडल में जलवाष्प कितना है। वह संतृप्त है अथवा असंतृप्त और यदि असंतृप्त है तो कितना। अतः मौसिम का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वायु की जलवाष्प-सम्बन्धी स्थिति अथवा आर्द्रता का यथार्थ ज्ञान और नाप अत्यन्त आवश्यक है।

वायु के किसी निश्चित आयतन में जलवाष्प की जितनी मात्रा किसी समय विद्यमान है और जितनी मात्रा से उस समय वह वायु संतृप्त हो सकती है इन दोनों मात्राओं की निष्पत्ति का नाम आपेक्षिक आर्द्रता अथवा आर्द्रता रखा गया है। जैसे यदि किसी समय प्रत्येक घन सम० वायु में क ग्राम जल-वाष्प विद्यमान है और उसे संतृप्त करने के लिए ख ग्राम प्रति घन सम० जल-वाष्प की आवश्यकता है तो आर्द्रता $= \frac{\text{क}}{\text{ख}}$

बायल के नियम के अनुसार यदि आयतन स्थिर रहे तो किसी भी गैस की मात्रा उसके दाब की अनुपाती होती है अतः हम यह भी कह सकते हैं कि

$$\text{आपेक्षिक आर्द्रता} = \frac{\text{जल-वाष्प का प्रस्तुत दाब}}{\text{प्रस्तुत तापक्रम पर जल-वाष्प का संतृप्ति-दाब}} \quad (१)$$

आर्द्रता की यह परिभाषा अधिक व्यवहारोपयोगी है क्योंकि जल-वाष्प की मात्रा नापने में कठिनाई भी अधिक है और समय भी अधिक लगता है। किन्तु उसका दाब नीचे लिखी हुई युक्ति के द्वारा सहज ही में निकल आता है।

१५०—ओसांक। यदि हम आर्द्र किन्तु असंतृप्त वायु का तापक्रम किसी उपाय से घटावें तो स्पष्ट ही है कि जो जल-वाष्प उसमें विद्यमान है वही किसी न किसी तापक्रम पर उसे संतृप्त कर देगा। जैसे यदि गिलास के पानी में थोड़ा थोड़ा बर्फ़ डाल कर उसे ठंडा करते जावें तो हम देखेंगे कि थोड़ी देर में गिलास के बाहर की ओर ओस जम जावेगी। ठीक जिस तापक्रम पर यह ओस जमना प्रारम्भ होता है उसे हम ओसांक कहते हैं। यदि तापक्रम ओसांक से तनिक भी अधिक हुआ तो वायु असंतृप्त रहती है और एक बूँद भी जल गिलास के बाहर नहीं दिखलाई देता।

किस तापक्रम पर जल-वाष्प का संतृप्ति-दाब कितना होता है यह अच्छी तरह नाप लिया गया है। निम्नसारिणी में भिन्न भिन्न तापक्रमों पर जल-वाष्प का संतृप्ति-दाब दिया गया है :—

जल-वाष्प का संतृप्ति-दाब

पारे के मिलीमीटरों में

तापक्रम	वाष्पदाब	तापक्रम	वाष्पदाब	तापक्रम	वाष्पदाब	तापक्रम	वाष्पदाब
०	४.६	१२	१०.४	२४	२२.२	७०	२३३.५
१	४.९	१३	११.१	२५	२३.५	८०	३५५.१
२	५.३	१४	११.९	२६	२५.०	९०	५२५.८
३	५.७	१५	१२.७	२७	२६.५	९६	६५७.७
४	६.१	१६	१३.५	२८	२८.१	९७	६८०.२
५	६.५	१७	१४.४	२९	२९.७	९८	७०७.३
६	७.०	१८	१५.३	३०	३१.५	९९	७३३.१
७	७.५	१९	१६.३	३१	३३.४	१००	७६०
८	८.०	२०	१७.४	३२	३५.३	१०१	७८८
९	८.६	२१	१८.५	४०	५४.९	१०२	८१६
१०	९.१	२२	१९.६	५०	९२.०	११०	३,५६९
११	९.८	२३	२०.९	६०	१४८.९	२००	११,६४७
						२६०	३५,७६०
						३००	६७,६२०

इस सारिणी की सहायता से तुरन्त यह मालूम हो सकता है कि ओसांक पर संतृप्ति-वाष्पदाब कितना है। यह भी स्पष्ट ही है कि गिलास को ठंडा करके उससे स्पर्श करनेवाली वायु का तापक्रम हमने अवश्य घटाया है किन्तु न तो उसके जल-वाष्प की मात्रा में परिवर्त्तन किया है और न जल-वाष्प के दाब में। अतः हमें मानना पड़ेगा कि कमरे की वायु के जल-वाष्प का प्रस्तुत दाव ठीक उतना ही है जितना कि उपर्युक्त सारिणी में ओसांक पर संतृप्ति-दाब का परिमाण लिखा है। यह वायु के जल-वाष्प के प्रस्तुत दाब को नापने की अत्यन्त सरल रीति है और इसी कारण से ओसांक का यथार्थतापूर्वक नापना बड़ा आवश्यक है। अब हम समीकरण (१) को यों लिख सकते हैं:—

$$\text{आर्द्रता} = \frac{\text{ओसांक पर संतृप्ति-दाब}}{\text{प्रस्तुत तापक्रम पर संतृप्ति-दाब}}$$

जिन यन्त्रों से यह नाप किया जाता है उन्हें आर्द्रता-मापक कहते हैं। उन सब का सिद्धान्त वही है जो गिलास के पृष्ठ को ठंडा करने के उपर्युक्त उदाहरण में है। भेद केवल इतना है कि इनमें पात्र के पृष्ठ का तापक्रम अधिक उत्तमता से नापा जा सकता है और ओस जमने का ठीक क्षण भी अधिक अच्छी तरह मालूम हो सकता है। यदि उपर्युक्त गिलास अच्छा पालिश किया हुआ अल्यूमिनियम अथवा चांदी का हो और उसमें के पानी को चम्मच से अच्छी तरह हिलाते रहें तो अवश्य ही ओसांक अच्छी तरह नापा जा सकता है। क्योंकि तनिक भी ओस के जमते ही गिलास की चमक जाती रहेगी और पानी को हिलाते रहने से गिलास के बाहरी पृष्ठ के तापक्रम में तथा तापमापक से संलग्न जल के तापक्रम में भी कोई अन्तर न होगा।

१५१—डाइन का आर्द्रता-मापक। चित्र ६९ में एक और प्रकार का आर्द्रता-मापक दिखलाया गया है। ख एक टंकी है जिसमें बर्फ़ का पानी भरा है। यह पानी क नली में होकर एक दूसरी टंकी घ में जाता है और वहां घूम कर बाणांकित मार्ग से तापमापक के बल्ब को ठंडा करता हुआ

बाहर बह जाता है। तापमापक के बल्ब से छूता हुआ ही एक काला पतला कांच प लगा हुआ है। इसी पर ओस जमती है।

चित्र ९५
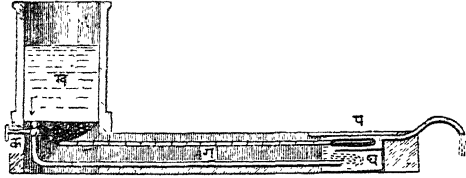
१५२—गीले तथा सूखे बल्ब का आर्द्रतामापक। ओसांक जानने की एक और युक्ति साधारण व्यवहार में प्रचलित है। दो तापमापक (चित्र ९६) एक तख्ते पर लगे होते हैं। एक के बल्ब पर पतला कपड़ा या सूत बँधा होता है और उस कपड़े या सूत का दूसरा छोर पानी में डूबा रहता है। इसलिए यह कपड़ा सदा भीगा रहता है और उस पर से जल का वाष्पीभवन होते रहने के कारण बल्ब का तापक्रम कुछ घट जाता है। यदि वायु शुष्क हुई तब तो वाष्पीभवन बहुत होता है और यदि वायु संतृप्त हुई तो उसका सर्वथा अभाव ही होता है। इसलिए दोनों तापमापकों के तापक्रमों के अन्तर के द्वारा वायु की आर्द्रता का अन्दाज़ा लग सकता है। जितना ही कम यह अन्तर होगा उतनी ही अधिक आर्द्रता वायु में होगी। इस अन्तर के द्वारा आर्द्रता मालूम करने के लिए वास्तविक अनुभव के द्वारा निम्न प्रकार की सारिणी बनाली गई है जिसमें प्रत्येक सूखे तापक्रम और सूखे तथा गीले तापक्रमों के अन्तर के लिये प्रस्तुत वाष्प का दाब मिलीमीटरों में दिया है।
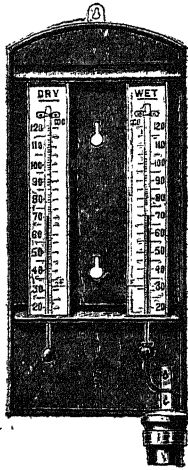
चित्र ९६

सूखा तथा गीला तापमापक

प्रस्तुत वाष्प-दाब मम० में

सूखा ताप-क्रम °श	सूखे तथा गीले तापक्रमों का अन्तर											
	०°	१°	२°	३°	४°	५°	६°	७°	८°	९°	१०°	११°
०	४·६	३·७	२·९	२·१	१·३							
१	४·९	४·०	३·२	२·४	१·६	०·८						
२	५·३	४·४	३·४	२·७	१·९	१·०						
३	५·७	४·७	३·७	२·८	२·२	१·३						
४	६·१	५·१	४·१	३·२	२·४	१·६	०·८					
५	६·५	५·५	४·५	३·५	२·६	१·८	१·०					
६	७·०	५·९	४·९	३·९	२·९	२·०	१·१					
७	७·५	६·४	५·३	४·३	३·३	२·३	१·४	०·४				
८	८·०	६·९	५·८	४·७	३·७	२·७	१·७	०·८				
९	८·६	७·४	६·३	५·२	४·१	३·१	२·१	१·१	०·२			
१०	९·२	८·०	६·८	५·७	४·६	३·५	२·५	१·५	०·५			
११	९·८	८·६	७·४	६·२	५·१	४·०	२·९	१·९	०·९			
१२	१०·२	९·२	८·०	६·८	५·६	४·५	३·४	२·३	१·३			
१३	११·२	९·८	८·६	७·३	६·२	५·०	३·९	२·८	१·७			
१४	११·९	१०·६	९·२	८·०	६·७	५·६	४·४	३·३	२·२	१·१		
१५	१२·७	११·३	९·९	८·६	७·४	६·१	५·०	३·८	२·७	१·६	०·५	
१६	१३·५	१२·१	१०·७	९·३	८·०	६·८	५·५	४·३	३·२	२·१	१·०	
१७	१४·४	१३·०	११·५	१०·१	८·७	७·४	६·२	४·९	३·७	२·६	१·५	०·४
१८	१५·४	१३·८	१२·३	१०·९	९·५	८·१	६·८	५·५	४·३	३·१	२·०	०·९
१९	१६·४	१४·७	१३·२	११·७	१०·३	८·९	७·५	६·२	४·९	३·७	२·५	१·४
२०	१७·४	१५·७	१४·१	१२.६	११·१	९·७	८·३	६·९	५·६	४·३	३·१	१·९
२१	१८·५	१६·८	१५·१	१३·५	१२·०	१०·५	९·०	७·६	६·३	५·०	३·७	२·५
२२	१९.७	१७·९	१६·२	१४·५	१२·९	११·४	९·९	८·४	७·०	५·७	४·४	३·१
२३	२०·९	१९·०	१७·३	१५·६	१३·९	१२·३	१०·८	९·२	७·८	६·४	५·१	३·८
२४	२२·२	२०·३	१८·४	१६·६	१४·९	१३·३	११·७	१०·१	८·७	७·२	५·८	४·५
२५	२३·६	२१·६	१९·७	१७·८	१६·०	१४·३	१२·७	११·१	९·५	८·०	६·६	५·२
२६	२५·०	२२·९	२१·०	१९·०	१७·२	१५·४	१३·७	१२·१	१०·५	८ ९	७·४	६·०
२७	२६·५	२४·९	२२·३	२०·३	१८·४	१६·६	१४·८	१३·१	११·४	९·८	८.३	६·८
२८	२८·१	२५·९	२३·७	२१·७	१९·७	१७·६	१६·०	१४·२	१२·५	१०·८	९·२	७·७
२९	२९·८	२७·५	२५·३	२३·१	२१·१	१९·१	१७·२	१५·३	१३·६	११·९	१०·२	८·६
३०	३१·६	२९·२	२६·९	२४·६	२२·५	२०·५	१८·५	१६·६	१४·७	१३·०	११·२	९·६

मान लीजिये कि सूखे तापमापक का तापक्रम २५° श है और गीले का २२° श। इन दोनों का अन्तर हुआ ३°। सारिणी से ज्ञात होता है कि वायु में प्रस्तुत वाष्प का दाब १७.८ मम० है। यदि वायु संतृप्त होती तो गीले तथा सूखे तापक्रम में अन्तर ०° ही होता। अतः सारिणी के ०° वाले स्तम्भ से यह भी ज्ञात होता है कि २५° श पर संतृप्ति-दाब २३.६ मम० होता है। इसलिये

$$\text{आर्द्रता} = \frac{\text{प्रस्तुत वाष्प का दाब}}{\text{संतृप्ति-दाब}}$$

$$= \frac{१७.८}{२३.६}$$

$$= .७९७$$

$$= ७९.७\ \%$$

तथा ओसांक वह तापक्रम है जिस पर १७.८ मम० का वाष्प-दाब ही संतृति दाब हो। यह सारिणी के ०° वाले स्तम्भ से स्पष्ट ही २०.४° श है।

प्रश्न

(१) किसी वायु-दाबमापक में पारा भरते समय कुछ जल नली में रह गया। यदि वास्तविक दाब ७६ मम० हो, तापक्रम २५° श हो और नली में थोड़ा जल अब भी दिखलाई दे तो इस दाबमापक का पाठ कितना होगा ?

(२) संतृप्ति-वाष्प-दाब की सारिणी को देखकर यह बताओ कि यदि किसी भाप के अंजन में भाप का दाब १५ वायुमंडल के बराबर है तो उसमें पानी कितने तापक्रम पर उबल रहा है ?

(३) यदि हवा में नमी अधिक हो अथवा यदि हवा बिलकुल न चल रही हो तो कपड़े भी देर में सूखते हैं और सुराही का पानी भी ठंडा नहीं होता। इसका क्या कारण है ?

(४) एक तंग मुँह की बोतल में कुछ ईथर भरा है और एक चौड़ी तश्तरी में भी उतना ही ईथर रख दिया गया। क्या इन दोनों के तापक्रमों में कुछ अन्तर होगा? क्यों?

(५) जब खूब कड़ाके का जाड़ा हो तो बाहिर से किसी गरम कमरे में जाते ही चश्मा धुँधला क्यों हो जाता है? और थोड़ी ही देर में पुनः आपही आप साफ़ क्यों हो जाता है?

(६) ओस किसे कहते हैं और ओसांक कैसे जाना जाता है?

(७) यदि वायु का तापक्रम २०° श हो और ओसांक १०° श हो तो बताओ कि उस वायु में वाष्प-दाब कितना है और उसकी आपेक्षिक आर्द्रता कितनी है?

(८) सूखे और गीले तापमापकों के तापक्रम में अन्तर क्यों होता है? यदि तापमापक के बल्ब पर तेल चुपड़ दिया जाय तो क्या परिणाम होगा?

(९) यदि सूखे और गीले बल्ब के तापमापकों का तापक्रम क्रमशः २०° श और १५° श हो तो वायु की आपेक्षित आर्द्रता बताओ।

(१०) जाड़े के मौसिम में मुँह से भाप निकलती हुई क्यों दिखाई देती है। और बरफ़ के टुकड़े में से भी भाप उठती हुई क्यों दिखाई देती है?

(११) "आपेक्षिक आर्द्रता ५६% है" इसका क्या अर्थ है?

(१२) किसी पहाड़ पर वायु-दावमापक का पाठ ४३० मम० है। वहाँ पानी कितने तापक्रम पर उबलेगा?

(१३) कुछ हाइड्रोजन पानी के ऊपर एकत्रित की गई। उसका आयतन ५०० घ० सम० है, दबाव ७९ सम० और तापक्रम ३०° श। इस हाइड्रोजन का भार निकालो यदि प्रमाण तापक्रम और दाब पर उसका घनत्व ·०९ ग्राम/लिटर हो।

(१४) किसी आर्द्रता-मापक का वर्णन करो और उसके व्यवहार की विधि बतलाओ।

परिच्छेद १५

ताप-स्थानान्तरकरण

१५३—ताप-चालन । प्रत्येक मनुष्य जानता है कि यदि हम चूल्हे में लोहे की छड़ या चीमटे का एक सिरा रख दें तो थोड़ी ही देर में उसका दूसरा सिरा भी गरम होने लगता है और अन्त में इतना गरम हो जाता है कि हम उसे छू भी नहीं सकते । चूल्हे का ताप तो केवल एक सिरे को गरम करता है । तब यह ताप दूसरे सिरे पर कैसे पहुँचा ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह ताप लोहे की छड़ के प्रत्येक भाग को उत्तरोत्तर गरम करता हुआ इस दूसरे सिरे तक पहुँचा है । हम देख सकते हैं कि इस छड़ का तापक्रम सर्वत्र एक सा नहीं होता । चूल्हे में जो सिरा रखा है उसका तापक्रम तो बहुत अधिक होकर वह लाल हो जाता है और मध्यवर्त्ती भागों का तापक्रम प्रथम सिरे से दूसरे सिरे तक उत्तरोत्तर घटता जाता है । दूसरे सिरे का तापक्रम सबसे कम होता है । इससे स्पष्ट मालूम होता है कि ताप-स्थानान्तरकरण का यह तरीक़ा ऐसा है कि जिसमें लोहे के जो अणु, परमाणु पहिले गरम हुए, उन्होंने अपने समीपवर्त्ती अणुओं से टकरा कर उन्हें अपना कुछ ताप दे दिया । इन्होंने अपने पड़ोसियों को उसमें से कुछ दिया और उन पड़ोसियों ने भी इनका अनुकरण किया । इस प्रकार कोई भी अणु ताप को लेकर अपने स्थान से हट कर दूसरी जगह तो न गया किन्तु सब अणुओं ने मिल कर उत्तरोत्तर दूसरे सिरे तक ताप पहुँचा दिया । इसका उदाहरण यों दिया जा सकता है कि मान लीजिए कि १०० मनुष्य एक पंक्ति में दो दो फ़ुट के अन्तर पर खड़े हो गये । प्रथम मनुष्य ने एक बाल्टी पानी भर के दूसरे मनुष्य को दे दी । दूसरे ने उसे तीसरे को दी, तीसरे ने चौथे को इत्यादि । इस प्रकार अन्त में वह बाल्टी २०० फ़ुट चली जायगी । यदि प्रथम मनुष्य बराबर बाल्टियाँ भर भर कर इसी प्रकार दूसरे मनुष्य को देता रहे तो अन्तिम

मनुष्य के पास भी बराबर बाल्टियां पहुँचती रहेंगी। इस क्रिया में यद्यपि कोई भी मनुष्य अपने स्थान से नहीं हटा तथापि पानी २०० फ़ुट चला गया। इस प्रकार किसी भी जड़ पदार्थ का स्थानान्तर हुए बिना ही ताप एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है और इन स्थानों के बीच में जो भी वस्तु अथवा वस्तुएँ होती हैं उनका तापक्रम भी बढ़ जाता। ताप के इस स्थानान्तरकरण को **चालन** कहते हैं। ठोस पदार्थ चालन ही की क्रिया के द्वारा ताप को स्थानान्तरित कर सकते हैं। द्रव तथा गैसों में भी यह क्रिया होती अवश्य है किन्तु वे अधिकतर ताप एक दूसरी ही क्रिया के द्वारा स्थानान्तरित करते हैं।

१५४—वाहन। उपर्युक्त उदाहरण में वे मनुष्य पानी पहुँचाने का यह उपाय भी कर सकते थे कि प्रत्येक मनुष्य बाल्टी लेकर २०० फ़ुट दौड़ जाता। इस अवस्था में पानी भी स्थानान्तरित होता और मनुष्य भी। इसी प्रकार यदि उत्तप्त अणु दौड़कर अपने स्थान से किसी दूसरे स्थान पर चले जावें और वहां के ठंडे अणुओं को उस स्थान से हटा दें तब भी वहां का तापक्रम बढ़ सकता है। इस क्रिया का नाम **वाहन** है। इसमें ताप को लेकर द्रव या गैस के अणु स्वयं स्थानान्तरित होते हैं।

चित्र ६७

जब हम जल का पात्र चूल्हे पर रखते हैं तो ताप सबसे प्रथम पेंदे के अणुओं ही में पहुँचता है। पेंदे के पानी का तापक्रम बढ़ने से उसका प्रसार होता है और उसका घनत्व घट जाता है। अतः यह हलका पानी ऊपर को उठता है और ऊपर का ठंडा और भारी पानी नीचे आ जाता है। यह भी अधिक गरम होकर पुनः ऊपर उठ जाता है। और ऊपर का फिर और अधिक गरम होने को नीचे चला जाता है। इस प्रकार थोड़ी ही देर में पात्र का समस्त जल गरम हो जाता है। काँच के
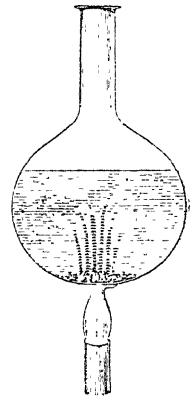
पात्र में पानी भर के और उसमें कुछ लकड़ी का बुरादा या अन्य हलकी वस्तु के छोटे छोटे टुकड़े अथवा रंग की डली डाल कर गरम करने से पानी का यह प्रवाह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। पात्र के बीच में पानी उठता देख पड़ेगा और इधर-उधर नीचे आता हुआ (चित्र ९७)।

वायु में भी यह वाहन की क्रिया सरलतापूर्वक देखी जा सकती है। एक रकाबी में एक मोमबत्ती को खड़ी करके जला दो। उस पर कांच की एक चिमनी रख दो और रकाबी में पानी भर दो अब आप देखेंगे कि मोमबत्ती की रोशनी धीरे धीरे घटती जायगी और थोड़ी ही देर में बिलकुल बुझ जायगी। अब मोमबत्ती को पुनः जला दो और चिमनी को पानी से कुछ ऊँची पकड़े रहो। इस बार बत्ती न बुझेगी। कागज़ को जलाकर कुछ धुआं करने पर देख पड़ेगा कि चिमनी में नीचे की ओर से वायु प्रवेश कर रही है और ऊपर की ओर से बाहर निकल रही है। गरम हवा उठ उठ कर ऊपर को चली जा रही है और ताज़ी ठंडी हवा चिमनी में प्रवेश करके मोमबत्ती के लिए आक्सिजन पहुँचा रही है। इसी कारण वह अच्छी तरह जल रही है। जब चिमनी में दो रास्ते नहीं थे तब वायु का प्रवाह नहीं हो सकता था। अतः आक्सिजन की कमी के कारण मोमबत्ती बुझ गई थी।
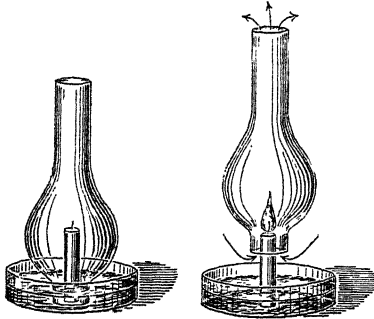
चित्र ९८

मनुष्य के सांस लेने से भी वायु की आक्सिजन घटती जाती है और कारबन-डाइ-आक्साइड बढ़ती जाती है। इसलिए यदि कमरे की हवा बाहर न निकाल दी जाय और बाहर से आक्सिजन-परिपूर्ण ताज़ी हवा का प्रवेश कमरे में न हो तो वह स्वास्थ्य के लिए

अत्यन्त हानिकर होती है और जिस प्रकार ऊपर के प्रयोग में मोमबत्ती बुझ गई थी उसी प्रकार कभी कभी मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक कमरे में गन्दी हवा निकलने और ताज़ी हवा के प्रवेश के लिए उचित मार्ग बनाये जायँ। जो हवा श्वास के साथ मनुष्य के शरीर से बाहर निकलती है वह गरम होती है और ऊपर उठती है इसलिए इसके बाहर निकलने का मार्ग ऊपर की ओर छत के निकट होना चाहिए और शुद्ध वायु के प्रवेश करने के लिए खिड़की या दरवाज़े खुले रहने चाहिए।

१५५—विकिरण। ताप-स्थानान्तरकरण की तीसरी विधि का नाम **विकिरण** है। इसमें न तो किसी पदार्थ के अणु ताप को लेकर एक स्थान से दौड़कर दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं और न मध्यवर्ती पदार्थ के अणु स्वयं गरम हो-होकर अपने निकटस्थ अणुओं को गरम करते हैं। जैसे आग के समीप अथवा धूप में बैठने से हमारा शरीर गरम हो जाता है। इसका कारण यह नहीं है कि हमारे शरीर को स्पर्श करनेवाली वायु का तापक्रम बढ़ जाता है। यदि ऐसा होता तो पेड़ों की छाया में पथिक को आराम क्यों मिलता और छाता लगा कर सूर्य के आतप से हम कैसे बच सकते? वास्तव में बात यह है कि सूर्य की किरणों के द्वारा प्रकाश के साथ साथ ताप भी हमारे पास पहुँचता है। जिस प्रकार प्रत्येक दीप्त वस्तु में से प्रकाश की किरणें चारों तरफ़ फैलती हैं उसी प्रकार प्रत्येक गरम वस्तु में से भी ताप की किरणें चारों ओर फैलती हैं। जिस प्रकार प्रकाश-किरणें काँच के समान पारदर्शक पदार्थों के द्वारा रुकती नहीं और लोह, लकड़ी, ईंट आदि अपारदर्शक पदार्थों के द्वारा पूर्णतया रुक जाती हैं इसी प्रकार ताप की किरणें भी वायु आदि अनेक पदार्थों में होकर बिना अधिक रुकावट के चली जाती हैं किन्तु हमारे शरीर, पेड़ के पत्ते, छाते के कपड़े आदि पदार्थों पर पड़ने से उनका शोषण हो जाता है और उनकी शक्ति अणुओं में जाकर उक्त पदार्थों का तापक्रम बढ़ा देती है। जिस प्रकार प्रकाश की किरणों को हम देख नहीं सकते किन्तु जब वे हमारे नेत्र में घुस जाती हैं तभी हमें प्रकाश का

अनुभव होता है; इसी प्रकार ताप की किरणें भी स्वयं गरम नहीं होतीं किन्तु जब वे वस्तु पर पड़ती हैं और उसमें शोषित हो जाती हैं तभी गरमी पैदा करती हैं। जिन पदार्थों में इन किरणों का शोषण नहीं होता उनमें होकर ये पार निकल जाती हैं और वे पदार्थ गरम नहीं होते। यद्यपि सूर्य की किरणें इतना अधिक ताप पृथ्वी पर पहुँचाती हैं तथापि जिस वायु में होकर ये किरणें आती हैं उसका तापक्रम ज्यों ज्यों हम पृथ्वी से ऊपर जाते हैं त्यों त्यों कम होता हुआ पाते हैं। यहां तक कि १५-१६ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई के पहाड़ों पर तो यह तापक्रम इतना कम हो जाता है कि गरमी में भी बर्फ़ नहीं पिघलता। इसमें सन्देह नहीं कि और अधिक ऊँचाई पर तो वायु का तापक्रम इतना कम होता है कि जितना शायद हम बिना बड़ी कठिनाई के उत्पन्न कर ही नहीं सकते।

प्रकाश की किरणों की ही भांति ताप की किरणें भी सरल रेखा में गमन करती हैं। तभी तो छाता हमें धूप से बचा सकता है और अपने मुख को पुस्तक या समाचार-पत्र की आड़ में कर लेने से हम अँगीठी के ताप से भी बच सकते हैं। यही क्यों, प्रकाश तथा ताप की किरणें प्रायः प्रत्येक बात में सर्वथा समान हैं। जिस वेग से प्रकाश की किरणें चलती हैं उसी वेग से ताप की किरणें भी गमन करती हैं, जिन नियमों के अनुसार प्रकाश का वर्तन और परावर्तन होता है ताप-किरणें भी ठीक उन्हीं नियमों का पालन करती हैं। ये सब बातें प्रकाश का कुछ अध्ययन कर लेने के बाद अच्छी तरह समझ में आवेंगी और तभी यह भी समझ में आवेगा कि इन दोनों प्रकार की किरणों में इतनी समानता होने पर भी अन्तर क्यों है और इन किरणों का वास्तविक स्वरूप क्या है।

१५६—शून्य स्थान में ताप-किरणों का गमन। यहां हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि ताप के विकिरण में किसी जड़ पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती। वास्तव में उच्चतम कोटि के शून्य स्थान में से ताप तथा प्रकाश की किरणें बड़ी अच्छी तरह गमन कर सकती हैं। यों तो यह प्रत्यक्ष ही है कि सूर्य और पृथ्वी के बीच का ९,३०,००,००० मील लम्बा आकाश

वायु आदि जड़ पदार्थों से सर्वथा विहीन होने पर भी सूर्य की किरणों को हमारे पास पहुँचा देता है और सर्वथा वायु से रिक्त होने पर भी बिजली के लम्प के गरम तार का ताप हम अनुभव कर लेते हैं। किन्तु यदि चाहें तो हम एक और भी सरल प्रयोग के द्वारा यह बात देख सकते हैं। चित्र ६६ में एक तापमापक का काला रँगा हुआ बल्ब कांच की .फ्लास्क के ठीक बीच में रख दिया गया है और वायु-पम्प के द्वारा इस .फ्लास्क की हवा निकाल ली गई है। इसे जलते हुए अंगार के पास ले जाते ही तापमापक का पारा चढ़ने लगता है। गरम पानी का पात्र इसके निकट लाने से भी यही परिणाम होता है। अवश्य ही यह ताप .फ्लास्क के शून्य स्थान में होकर तापमापक में गया है क्योंकि .फ्लास्क के कांच की चालकता इतनी कम है कि उस मार्ग से तापमापक के बल्ब तक इतनी जल्दी ताप पहुँच ही नहीं सकता। चालन तथा वाहन अणुओं की सहायता के बिना नहीं हो सकते। किन्तु विकिरण को इन अणुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं। यह चालन और वाहन तथा विकिरण में सबसे बड़ा भेद समझा जा सकता है।

चित्र ६६

१५७—चालकता। यह साधारण अनुभव की बात है कि कुछ पदार्थों में ताप का चालन सुगमता से होता है और कुछ में बड़ी कठिनाई से। धातुएँ सब ही अच्छी चालक हैं। किन्तु लकड़ी, कांच, रुई, रेशम आदि की चालकता बहुत कम है। इन्हें कुचालक कह सकते हैं। यही कारण है कि लोहे की छड़ का एक सिरा आग में रख देने पर थोड़ी ही देर में दूसरे सिरे को हाथ से स्पर्श करना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है किन्तु जलती हुई लकड़ी के दूसरे सिरे को हम निर्भय होकर पकड़े रह सकते हैं। ज्वालक की ज्वाला में रखकर कांच की नली को पिघलाते समय पिघलने के स्थान से प्रायः डेढ़ दो इंच हटाकर ही हम उसे हाथ में थामे रह सकते हैं। चाँदी की चायदानी में लकड़ी का दस्ता इसी कारण लगाया जाता है और बर्फ़ को लकड़ी के

बुरादे से ढककर रखने का भी यही कारण है। हम जाड़े में ऊन या रेशम के वस्त्र भी इसी कारण पहनते हैं कि जिसमें हमारे शरीर का ताप निकलकर हवा में न चला जाय। जाड़े की रात्रि में लकड़ी की अपेक्षा लोहे की वस्तुएं अधिक ठंडी मालूम होती हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उनका तापक्रम ही कम होता है। असल में बात यह है कि लोहे की सुचालकता के कारण हाथ की गरमी लोहे की वस्तु के प्रत्येक भाग में शीघ्रता से फैल जाती है और स्पर्श-स्थान का तापक्रम हाथ के तापक्रम से कम ही रहता है। किन्तु लकड़ी में ऐसा नहीं हो सकता। स्पर्श-स्थान का तापक्रम तुरन्त ही बढ़कर हाथ के बराबर हो जाता है।

धातु और लकड़ी की चालकता का भेद दिखलाने के लिए एक उत्तम प्रयोग यह है कि लकड़ी के एक टुकड़े में बहुत से लोहे या पीतल के पेंच इस प्रकार कस दो कि वे न तो लकड़ी से ऊपर उठे रहें और न अन्दर धँस जायँ। इस टुकड़े पर पतला कागज़ सटाकर ज्वालक की ज्वाला कागज़ पर लगने दो। आप देखेंगे कि लकड़ी के ऊपर का कागज़ तो जल गया है किन्तु पेंचों पर का कागज़ ज्यों का त्यों है क्योंकि वहां का ताप तुरन्त ही पूरे पेंच में फैल गया और कागज़ का तापक्रम इतना न बढ़ सका कि वह जल जाय।

चित्र १००
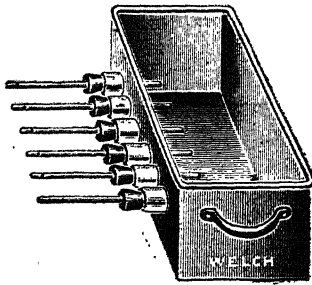
धातुओं में भी सभी धातुओं की चालकता समान नहीं होती। चाँदी सबसे श्रेष्ठ सुचालक है। ताँबा भी प्रायः उतना ही अच्छा है। किन्तु सीसे की चालकता सबसे कम है। यह भिन्नता निम्न लिखित प्रयोग के द्वारा देखी जा सकती है। एक ही नाप की छड़ें भिन्न भिन्न धातुओं की लेकर चित्र १०० के अनुसार एक बर्तन में लगा दो। मोम पिघलाकर सब छड़ों पर पतला पतला पोत दो तब बर्तन में पानी भर के उसे गरम करो। आप देखेंगे कि भिन्न भिन्न छड़ पर भिन्न भिन्न

दूरी तक मोम पिघलेगा । चांदी की छड़ पर सबसे अधिक दूर तक और सीसे की छड़ पर सबसे कम दूर तक।

१५८—अभय दीप । धातु की चालकता का एक बड़ा ही लाभदायक उपयोग कोयले की खानों के लिए किया गया है। वहाँ लालटेन जलाकर ले जाने से वहां की पंक गैस में आग लग जाने का बड़ा भय रहता है और जब तक डेवी नामक सज्जन ने अपना अभय दीप न बनाया था सैकड़ों ही मज़दूर अपने प्राण
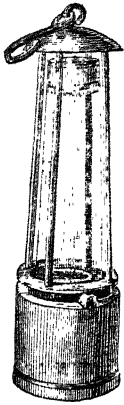
चित्र १०१
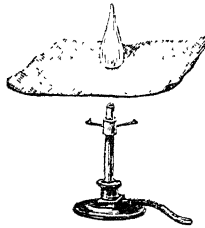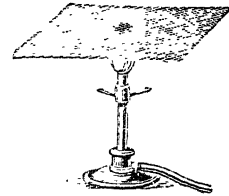
क चित्र १०२ ख

गवां चुके थे। इस लम्प में अन्य लालटैनों की अपेक्षा विशेषता केवल यह है कि इसके चारों ओर लोहे की जाली लगी है जिससे वायु भी आ जा सके और रोशनी भी हो जाय (चित्र १०१)। किन्तु इस जाली के बाहर की गैस में आग नहीं लग सकती। क्योंकि जाली की चालकता के कारण ताप फैल जाता है और बाहर की गैस का तापक्रम अधिक नहीं बढ़ता। चित्र १०२-क में बुन्सन ज्वालक से कुछ ऊपर लोहे की जाली रखी है । जाली के ऊपर दियासलाई से गैस जला दी गई है। जाली के नीचे की गैस अब नहीं जलती। यदि दियासलाई जाली के नीचे लगाई जाती तो ज्वाला भी जाली के नीचे ही नीचे रहती (चित्र १०२-ख)।

द्रव तथा गैसों में चालकता बहुत कम होती है। इनमें ताप का स्थानान्तर अधिकतर वाहन के द्वारा ही होता है। एक परीक्षा-नली में बर्फ़

का एक टुकड़ा बोझा बांधकर पेंदे में रखा हुआ है। ऊपर पानी भरा है (चित्र १०३)। ज्वालक के द्वारा ऊपर का पानी उबाल देने पर भी बरफ़ नहीं पिघलता। पहिनने के कपड़ों की कुचालकता मुख्यतया वायु की कुचालकता है। ताने और बाने के बीच में जो हवा स्थित है वह आसानी से इधर-उधर हट नहीं सकती। अतः उसमें वाहन नहीं होता और जो कुछ ताप गमन करता है उसे वायु में चालन ही के द्वारा गमन करना पड़ता है। कपड़े के ऊन या सूत की कुचालकता इतनी अच्छी नहीं होती जितनी कि इस वायु की। इसी लिए रुई भर के बनाये हुए कपड़े पुराने होने पर उतने गरम नहीं रहते क्योंकि दब दबकर उनकी वायु कम हो जाती है और रुई के तन्तु प्रायः एक दूसरे से सट जाते हैं। किन्तु ऊन के बाल दबने पर भी एक दूसरे से चिपक नहीं जाते और उनके बीच की वायु प्रायः ज्यों की त्यों रहती है। इसी से वे पुराने होने पर भी गरम बने रहते हैं।
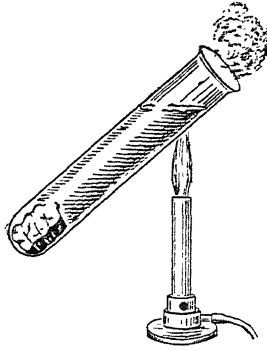
चित्र १०३

१५९—ताप-किरणों का शोषण। जब ताप-किरणें किसी वस्तु पर पड़ती हैं तब उनमें से कुछ तो परावर्तित होकर लौट जाती हैं। वे वस्तु में प्रवेश नहीं करतीं। और कुछ अन्दर घुस कर अपना ताप उस वस्तु को दे देती हैं। इस परावर्त्तन तथा शोषण का परिमाण इस बात पर निर्भर है कि उस वस्तु का पृष्ठ कैसा है। यदि वह दर्पण के समान सुचिक्कण हो तो अधिकतर ताप-किरणें परावर्त्तित हो जायँगी। यदि पृष्ठ इतना चिकना न हो किन्तु वस्तु का रंग सफ़ेद हो तब भी परावर्तन ही अधिक होगा। काले रंग की वस्तु में सबसे अधिक शोषण होता है। यही कारण है कि मनुष्य गरमी के मौसिम में

श्वेत वस्त्र पहनना पसन्द करता है। सूर्य का ताप इन कपड़ों पर से परावर्तित होकर अन्यत्र चला जाता है और इनका तापक्रम अधिक नहीं बढ़ता। काला कपड़ा पहिन कर थोड़ी ही देर धूप में खड़े रहने से शरीर जलने लगता है।

शोषण के समान विकिरण पर भी पृष्ठ की प्रकृति का ऐसा ही प्रभाव होता है। सुचिक्कण या श्वेत रंग के पृष्ठ से बहुत कम ताप-किरणें निकलती हैं। किन्तु खुरदरी काली वस्तुओं से विकिरण अधिक होता है। वास्तव में बात यह है कि जो वस्तु शोषण अधिक कर सकती है वही विकिरण भी अधिक कर सकती हैं। अच्छी तरह पालिश किये हुए चमकदार बर्तन में रखी हुई गरम चाय जल्दी ठंडी नहीं होती किन्तु काली देगची में बहुत जल्दी ठंडी हो जाती है।

१६०—**थरमास।** इन बातों का उपयोग एक ऐसे पात्र के बनाने में किया गया है जिसमें रखने से गरम दूध या चाय १०-१२ घंटे तक ठंडी नहीं होती और बर्फ़ भी चारों ओर की गरम वायु से सर्वथा सुरक्षित रह सकता है। इस पात्र का नाम थरमास है और इसकी बनावट चित्र १०४ में दिखलाई गई है। यह बर्तन कांच का बना है और इसकी दीवारें दुहरी हैं। अथवा यों कहिए कि यह एक पात्र में दूसरा पात्र रख कर इस प्रकार बनाया गया है कि दोनों पात्रों के बीच में कुछ जगह बच जाय। इस बीच की जगह की समस्त वायु पम्प के द्वारा 'क' मार्ग से निकाल ली गई है और इस मार्ग को कांच पिघला कर बन्द कर दिया है। इसके अतिरिक्त अन्दर से दोनों पात्रों पर क़लई भी कर दी गई है जिससे ये दर्पण के समान चमकदार बन गये हैं। इस पात्र में रखी हुई गरम वस्तु का ताप बाहर कैसे निकलेगा? अथवा बाहर का ताप इसमें कैसे प्रवेश करेगा? उसके चारों ओर के वायुरिक्त
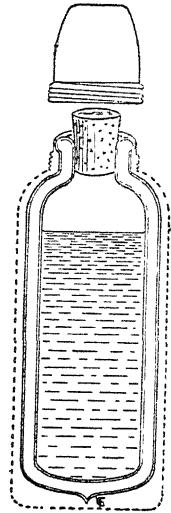
चित्र १०४

स्थान में न तो चालन हो सकता है और न वाहन और न उसका श्वेत सुचिक्कण पृष्ठ विकिरण अथवा शोषण ही होने देता है। काँच के मार्ग से कुछ चालन अवश्य होगा किन्तु वह मार्ग इतना लम्बा, इतना संकीर्ण और इतना कुचालक है कि इस मार्ग से ताप का आवागमन अधिक नहीं हो सकता।

प्रश्न

(१) बर्फ़ को कम्बल में लपेट कर क्यों रखते हैं और जाड़ों में हम कम्बल क्यों ओढ़ते हैं ?

(२) खानों में ले जाने के लिए लालटैन पर तार की जाली क्यों लगा दी जाती है ?

(३) जाड़े में लकड़ी की अपेक्षा पीतल या लोहा क्यों अधिक ठंडा मालूम होता है ?

(४) यह कैसे प्रमाणित करोगे कि पानी ताप के लिए अच्छा चालक नहीं है।

(५) क्या कागज़ के बरतन में पानी उबाला जा सकता है ? कैसे ?

(६) यदि पानी को गरम करना हो तो गरमी बरतन के नीचे लगाना चाहिए और यदि उसे ठंडा करना हो तो बर्फ़ पानी के ऊपर रखना चाहिए। इस अन्तर का क्या कारण है ?

(७) कमरे की वायु को शुद्ध रखने के लिए खिड़कियाँ ऊँची होनी चाहिए अथवा नीची ?

(८) समुद्र के किनारे वायु प्रवाह की दिशा दिन में रात से भिन्न क्यों होती है ?

(९) ओस घास पर पत्थर या धातु की अपेक्षा अधिक क्यों जमती है और जब आकाश मेघाच्छन्न हो तब क्यों नहीं जमती ?

(१०) चाय को ५-६ घंटे तक गरम रखने का क्या उपाय है ? बर्फ़ मिले हुए शरबत को इतनी ही देर तक ठंडा कैसे रख सकते हैं ?

(११) रजाई जब नयी होती है तब तो बड़ी गरम होती है किन्तु पुरानी हो जाने पर उससे जाड़ा नहीं रुकता। इसका क्या कारण है ?

(१२) दो तापमापक धूप में रखे हैं। एक का बल्ब काला रँग दिया गया है किन्तु दूसरे का नहीं रँगा गया। दोनों के तापक्रम भिन्न क्यों दिखलाई देते हैं ?

परिच्छेद १६

इंजन

१६१—इंजन। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि ताप एक प्रकार की शक्ति है और रेल, जहाज़ आदि इसी के द्वारा चलाये जाते हैं। वास्तव में जल-प्रपात की शक्ति को छोड़ कर हमारे पास कल-कारख़ाने चलाने के लिए ताप के अतिरिक्त कोई उपाय है ही नहीं। जहाँ बिजली का प्रयोग किया जाता है वहां भी पहले ताप ही की शक्ति को बिजली के रूप में परिणत किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि हम यह जान लें कि ताप से यांत्रिक शक्ति कैसे उत्पन्न की जाती है।

जिन यंत्रों के द्वारा ताप की शक्ति का उपयोग यंत्र-संचालन के लिए किया जाता है उन्हें इंजन कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनमें बाहर से उत्तप्त भाप प्रवेश करती है और दूसरे वे जिनमें ताप अन्दर ही उत्पन्न होता है। पहले प्रकार के इंजन को भाप का इंजन कहते हैं। इसका आविष्कार जेम्स वाट और स्टीफनसन ने किया था। और दूसरे को अन्तर्दहन इंजन कहते हैं।

१६२—भाप का इंजन। रेल, जहाज़ और बड़े बड़े सभी कारख़ानों में भाप के इंजन का प्रयोग होता है। इसके लिए खनिज कोयला जलाया जाता है। इसलिए इसमें ख़र्च कम बैठता है। इसके मुख्य तीन भाग होते हैं।

(१) बायलर—इसमें पानी को उबालकर भाप बनाई जाती है। रेल के इंजन में सबसे आगे का लम्बा भाग बायलर होता है। किन्तु कारख़ानों के स्थिर इंजनों के लिए बायलर इंजन से सर्वथा

पृथक्, बहुधा दूसरे ही कमरे में होता है। इनमें ताप का भली भांति उपयोग करने के लिए जल को गरम करने का उपाय कुछ विशेष प्रकार का होता है। जल किसी बड़े पात्र में भर कर नीचे से आंच लगाने की साधारण रीति के स्थान में इसका जल-पात्र लोहे की नलियां लगाकर इस प्रकार बनाया जाता है कि आग की ज्वाला जल के किसी भी भाग से २ या ३ इंच से अधिक दूर नहीं रहती। इसके अतिरिक्त यह पात्र सब ओर से बन्द रहता है ताकि भाप एक निश्चित मार्ग ही से इच्छानुसार निकाली जा सके। ज्यों ज्यों पानी उबलता जाता है भाप बन बनकर एकत्रित होती जाती है और उसका दाब बढ़ता जाता है। इससे जल का क्वथनांक भी बढ़ता जाता है। ऐसे बायलरों में २००° – ३००° श तक जल और भाप का तापक्रम हो जाना साधारण बात है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इतने अधिक दाब को सह सकने के लिए बायलर बहुत मोटी और मज़बूत फौलाद का बना होता है और उसमें एक वाल्व भी लगा रहता है जिसे सेफ़्टी वाल्व (रक्षक वाल्व) कहते हैं। यदि भाप का दाब आवश्यकता से अधिक हो जाय तो यह वाल्व खुल जाता है और भाप बाहर निकल जाती है। अन्यथा बायलर के फट जाने का डर रहता है।

(२) सिलिन्डर—यही इंजन का मुख्य भाग है। यह भी मोटे फौलाद का बना होता है और इसमें एक पिस्टन 'प' होता है जो सिलिन्डर में ऐसा ठीक बैठता है कि भाप उसके और सिलिन्डर के बीच में से आ जा नहीं सकती। इस पिस्टन से एक छड़ 'छ' लगी रहती है जो पिस्टन के साथ इधर-उधर चलती है। सिलिन्डर के दोनों सिरों के पास भाप के आने जाने के द्वार 'क' और 'ख' होते हैं। इनका सम्बन्ध बायलर से तथा बाहर की वायु से इस प्रकार होता है कि जब 'क' में से बायलर की भाप सिलिन्डर में आती है तो ख के द्वारा पिस्टन के दाहिनी ओर की भाप निकलकर बाहर चली जाती है। 'क' में से आनेवाली भाप के अत्यधिक दाब के कारण पिस्टन ज़ोर से हटकर दाहिनी ओर चला जाता है और साथ ही

'क' और 'ख' का सम्बन्ध भी बदल जाता है। अब 'ख' के द्वारा बायलर की भाप सिलिन्डर में प्रवेश करती है और 'क' के द्वारा पहले आई हुई भाप बाहर निकलती है। अतः पिस्टन अब बाईं ओर हटता है। इसी
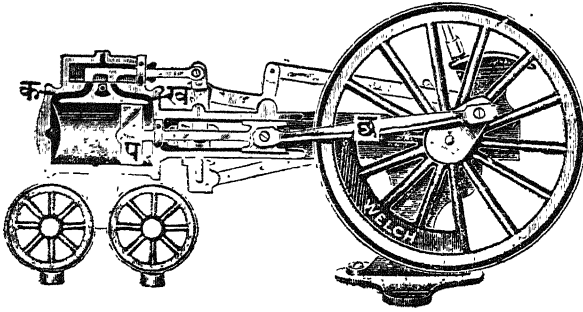
चित्र १०९

प्रकार पिस्टन और उससे लगी छड़ बार बार इधर से उधर बड़े वेग से चलती रहती है।

(३) **विकेन्द्र**—पिस्टन की छड़ का सम्बन्ध एक बड़े पहिये से चित्र १०९ की नाईं होता है। यह पहिये पर केन्द्र से हटकर धक्का मारती है जिससे पहिया घूम जाता है और ज्यों ज्यों छड़ इधर-उधर हटती रहती है पहिया भी घूमता रहता है। इस पहिये की गति के द्वारा ही जिस कल को चाहें चला सकते हैं। रेल के इंजन में यह पहिया पटरी पर रखा होता है जिससे इसके घूमने से इंजन अपने स्थान से हटता भी जाता है।

१६३—**टरबाइन**। आजकल भाप के इंजन का रूप बदलकर कुछ अधिक सरल कर दिया गया है। इस नये प्रकार के इंजन को टरबाइन कहते

हैं। यद्यपि अभी इसका प्रयोग इतना सर्वसाधारण में नहीं हुआ है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि थोड़े ही वर्षों में यह बहुत लोकप्रिय हो जायगा। क्योंकि इसमें कार्य अधिक श्रेष्ठता से होता है। इसमें पहिये को भाप स्वयं घुमा देती है और सिलिन्डर तथा पिस्टन की आवश्यकता नहीं होती। पहिये की बनावट चित्र १०६ में दिखलाई गई है। पहिये की हाल इस प्रकार बनी है कि भाप जब उसके टेढ़े छिद्रों में से निकलती है तब पहिये को घुमा देती है, जैसे नदी का पानी पनचक्की के पहिये को घुमा देता है।
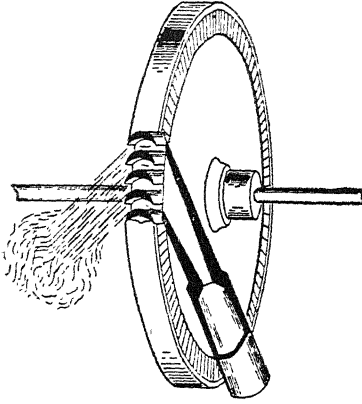
चित्र १०६

१६४—अन्तर्दहन इंजन। इस इंजन का प्रयोग उन अवस्थाओं में होता है जब बहुत कम बोझवाले इंजन की आवश्यकता हो। यथा मोटरों अथवा हवाई जहाज़ों में। इसमें कोयले के स्थान में मिट्टी का तेल अथवा पेट्रोल जलाया जाता है। तेल का वाष्प वायु से मिलकर सिलिन्डर में प्रवेश करता है और वहाँ गरमी पाकर उसका विस्फोटन हो जाता है। इससे पिस्टन पर बड़ा दाब लगता है और वह तुरन्त हट जाता है। बाक़ी सब काम भाप के इंजन के ही समान होता है।

१६५—दक्षता। इन इंजनों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखना चाहिए। यद्यपि रगड़ने में जितना काम हम करते हैं अथवा जितनी यांत्रिक शक्ति ख़र्च होती है वह सब ताप रूप में परिणत हो जाती है तथापि मनुष्य के लिए यह असम्भव है कि कोयले या तेल के जलाने से जितना ताप उत्पन्न हुआ उस

सभी को काम अथवा यांत्रिक शक्ति के रूप में परिणत कर दे। वास्तव में अच्छे से अच्छे इंजनों में भी प्रायः दशमांश ताप ही लाभदायक काम करता है। बाक़ी ९/१० भाग व्यर्थ ही सिलिन्डर से बाहर निकलनेवाली भाप अथवा अन्य गैसों के साथ बाहिर निकल जाता है। जो इंजन जितना अधिक भाग ताप का लाभदायक काम में ला सके उसकी दक्षता उतनी ही अधिक समझी जाती है।

$$\text{दक्षता} = \frac{\text{लाभदायक यांत्रिक काम}}{\text{इंजन में व्यय होनेवाली समस्त शक्ति}}$$

प्रश्न

(१) इंजन किसे कहते हैं और उसमें शक्ति कहाँ से आती है?

(२) तुम्हें कितने प्रकार के इंजनों का परिचय है? उनमें मुख्य भेद क्या हैं?

(३) कोयले से यांत्रिक शक्ति किस प्रकार उत्पन्न की जाती है?

तीसरा भाग

प्रकाश

परिच्छेद १७

प्रकाश और उसका गमन

१६६—नेत्र। ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य के पास जितनी इन्द्रियाँ हैं उनमें आंख से बढ़कर उपयोगी और आश्चर्यजनक कोई दूसरी नहीं है। केवल एक ही बार देख लेने से किसी वस्तु के सम्बन्ध में जितना ज्ञान हमें
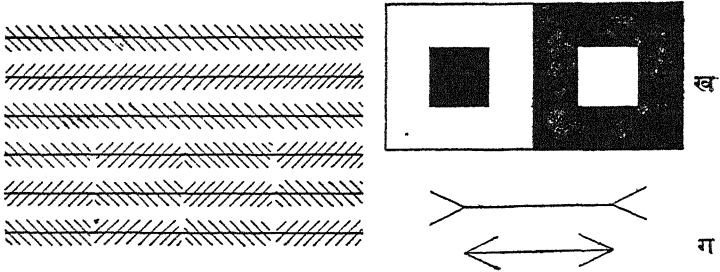
क चित्र १०७

प्राप्त हो जाता है उतना तो क्या उसका दसवां भाग भी अन्य सब इन्द्रियों के सम्मिलित प्रयत्न से हमें नहीं मिल सकता। यह सच है कि कभी कभी हमारे नेत्र हमें धोखा भी दे देते हैं। जैसे चित्र १०७—क में आड़ी रेखाएँ सीधी और समानान्तर होने पर भी टेढ़ी और असमानान्तर देख पड़ती हैं। १०७-ख में यद्यपि दोनों छोटे वर्ग बिलकुल बराबर हैं तब भी सफ़ेद काले से

बड़ा दिखलाई देता है और १०७-ग में यद्यपि दोनों आड़ी रेखाओं की लम्बाई बराबर है तब भी ऊपरवाली बड़ी नज़र आती है। किन्तु तब भी यही कहना पड़ेगा कि नेत्र ही सबसे श्रेष्ठ इंद्रिय हैं। इसका सबसे मुख्य कारण यह है कि नेत्र को ज्ञान प्राप्त करने के लिए वस्तु के निकट नहीं जाना पड़ता। वस्तु गरम है या ठण्डी, नरम है या कठोर इत्यादि जानने के लिए हमें उसे हाथ से छूना पड़ता है। स्वाद जानने के लिए भी उसे जीभ पर रखना होता है। गन्ध के ज्ञान के लिए भी यह आवश्यक है कि उसके सूक्ष्म कण हमारी नाक में प्रवेश करें। किन्तु आंख को इतना नज़दीक जाने की ज़रूरत नहीं। दूर ही से वह अपना काम कर लेती है। करोड़ों मील की दूरी पर स्थित सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का ज्ञान क्या अन्य किसी इन्द्रिय के लिए सम्भव था?

१६७—प्रकाश। किन्तु इस कार्य में आँख अन्य इन्द्रियों के समान सर्वथा स्वतंत्र नहीं है। स्पर्श, स्वाद और गंध के ज्ञान के लिए हमारी इन्द्रियों को किसी दूसरी वस्तु की सहायता नहीं लेना पड़ता। किन्तु नेत्रों की सहायता करने के लिए एक और वस्तु की आवश्यकता है। तब ही तो रात्रि के समय हमें कुछ नहीं दिखलाई देता। और दिन में भी अँधेरी कोठरी में हम स्वयं अपना हाथ तक नहीं देख सकते। सूर्य, तारे, मोमबत्ती, तेल, गैस या बिजली के दीपक इत्यादि कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं कि जो स्वयं भी हमें दिखलाई देती हैं और उनकी उपस्थिति में हम अन्य वस्तुओं को भी देख लेते हैं। किन्तु वास्तव में जो वस्तु नेत्रों के कार्य के लिए आवश्यक है वह सूर्य दीपक आदि से भिन्न कुछ और ही है। अँधेरी कोठरी के दरवाजे में छोटा सा भी छिद्र होने पर अन्दर की सब वस्तुएँ तुरन्त दिखने लगती हैं। अवश्य ही उस छिद्र में से कोई न कोई वस्तु कोठरी में घुस जाती है। छिद्र को बन्द कर देने पर उसका मार्ग रुक जाता है और कोठरी में पुनः अन्धकार का साम्राज्य हो जाता है। इस विलक्षण वस्तु का नाम "प्रकाश" है। सूर्य, तारे, दीपक आदि इस प्रकाश को उत्पन्न करने ही के यंत्र हैं। इस प्रकार की वस्तुओं को हम 'प्रकाशमान' कहते हैं। अन्य वस्तुएँ प्रकाशहीन होती

हैं और जब उन पर किसी प्रकाशमान वस्तु का प्रकाश पड़ता है तभी उन्हें हम देख सकते हैं।

१६८—प्रकाश की अदृश्यता। किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि जो प्रकाश हमें संसार की सब वस्तुओं को दिखलाता है स्वयं उसे हम नहीं देख सकते। अँधेरे कमरे की खिड़की में से जब धूप अन्दर आ रही हो तब ऐसा जान पड़ता है कि हम प्रकाश को देख रहे हैं। किन्तु वास्तव में हम केवल धुएँ या धूल के उन छोटे छोटे कणों ही को देख पाते हैं जो प्रकाश के कारण दीप्त होकर हवा में इधर-उधर दौड़ते नज़र आते हैं। यदि धुआँ या धूल न हो तो प्रकाश के गमन का मार्ग हमें तनिक भी दिखलाई नहीं दे सकता।

१६९—पारदर्शक, अपारदर्शक तथा पारभासक पदार्थ। यह तो हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि सूर्य और तारों का प्रकाश करोड़ों मील सर्वथा शून्य स्थान को पार कर पृथ्वी पर पहुँचता है और वायु में से भी वह बिना रुकावट बहुत दूर तक चला जाता है। पानी, कांच आदि और भी बहुत से पदार्थ हैं जो प्रकाश को नहीं रोकते। इनकी आड़ में होने पर भी हम वस्तुओं को अच्छी तरह देख सकते हैं। इन्हें 'पारदर्शक' पदार्थ कहते हैं। किन्तु लोहा, तांबा, सोना, लकड़ी, ईंट, पत्थर आदि पदार्थ प्रकाश को रोक लेते हैं। इनमें होकर प्रकाश नहीं निकल सकता। इन्हें 'अपारदर्शक' कहते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं कि जिनमें प्रकाश एक ओर से दूसरी ओर चला तो जाता है किन्तु उनमें होकर हम वस्तुओं को देख नहीं सकते। जैसे पतला कागज़, बालू से घिसा हुआ कांच, चीनी के बर्तन आदि। ऐसे पदार्थों को "पारभासक" कहते हैं। किन्तु यह न समझना चाहिए कि इन तीन प्रकार की वस्तुओं में कोई गहरा भेद है। वास्तव में बात यह है कि जब प्रकाश किसी वस्तु में होकर गमन करता है तो उसका शोषण होता जाता है। पारदर्शक वस्तुएँ वे हैं जिनमें यह शोषण इतना कम होता है कि बहुत दूर तक चलने पर भी प्रकाश की तीव्रता में अधिक कमी नहीं होती और अपारदर्शक वे हैं जिनमें यह शोषण इतना अधिक होता है कि उनमें प्रवेश करते ही प्रायः

समस्त प्रकाश का नाश हो जाता है। इसी से पारदर्शक पदार्थ की बहुत मोटी तह प्रायः अपारदर्शक हो जाती है और अपारदर्शक पदार्थ की बहुत पतली तह को प्रकाश पार कर लेता है। सुवर्ण और चांदी की अपारदर्शकता तो सब जानते हैं किन्तु इनके जो वरक़ बनाये जाते हैं उनमें से कुछ न कुछ प्रकाश निकलता हुआ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

१७०—रंगीन प्रकाश। प्रकाश कई प्रकार का होता है यथा श्वेत, लाल, पीला, हरा इत्यादि। सूर्य तथा अनेक प्रकार के बिजली के लम्पों का प्रकाश श्वेत होता है। मोमबत्ती तथा तेल के साधारण दीपकों का प्रकाश कुछ कुछ पीला होता है। बहुत से तारे भी रंगीन दिखलाई देते हैं। रासायनिक लवणों से जो महताब बनाये जाते हैं उनसे भी अनेक रंगों का प्रकाश निकलता है।

यद्यपि किसी किसी पारदर्शक पदार्थ में से सभी रंगों का प्रकाश बिना रुकावट गमन कर सकता है किन्तु बहुधा पदार्थ ऐसे होते हैं कि जो किसी ख़ास रंग के प्रकाश के लिए तो पारदर्शक हैं और अन्य रंगों के लिए अपार-दर्शक। लाल रंग के काँच में से लाल ही रंग का प्रकाश निकल सकता है नीला नहीं। नीलेथोथे का विलयन नीले के अतिरिक्त प्रायः अन्य सब प्रकार के प्रकाशों को सोख लेता है। जब ऐसे पदार्थों पर श्वेत प्रकाश पड़ता है तो पार निकलने पर वह रंगीन बन जाता है। उपर्युक्त लाल काँच अथवा नीले-थोथे के घोल में से सूर्य भी लाल तथा नीला दिखलाई देता है। इसका कारण यह नहीं कि ये पदार्थ श्वेत प्रकाश को रंग देते हों। किन्तु बात यह है कि श्वेत प्रकाश सब रंगों का समुदाय-मात्र है। उसमें लाल, हरा, नीला इत्यादि सभी रंग विद्यमान हैं। अतः इन पदार्थों में से श्वेत प्रकाश ज्यों का त्यों नहीं निकल सकता। उसके कुछ रंगों का तो शोषण हो जाता है और कुछ रंग पार निकल जाते हैं। अनेक सर्वथा अपारदर्शक वस्तुएँ भी श्वेत प्रकाश में रंगीन दिखलाई देती हैं। इसका भी कारण यही है कि उन पर पड़नेवाले श्वेत प्रकाश में से कुछ रंग तो वस्तु में प्रवेश करते ही शोषित हो जाते हैं

और कुछ पुनः लौट कर हमारे नेत्रों में पहुँच जाते हैं। पेड़ के पत्ते से हरे रंग का प्रकाश हमारे पास पहुँचता है। इसी लिए वह हमें हरा नज़र आता है। काली वस्तु सभी रंगों के प्रकाश को सोख लेती है। उससे लौट कर हमारे नेत्रों में कोई प्रकाश आता ही नहीं।

१७१—सरल रेखागमन। यह बात सभी जानते हैं कि छोटी सी भी अपारदर्शक वस्तु बीच में आ जाने पर हम किसी वस्तु को नहीं देख सकते। इसका कारण यह है कि प्रकाश के चलने का मार्ग सीधा होता है। वह टेढ़े रास्ते से नहीं चल सकता। बीच की अपारदर्शक वस्तु के समीप से मुड़ कर वह हमारे नेत्र में नहीं पहुँच सकता। खिड़की के छिद्र में से कमरे में जो धूप आती है वह भी धूल के कणों को सहायता से सीधी रेखा में गमन करती हुई मालूम होती है। किसी नली में होकर प्रकाश तभी निकल सकता है जब कि नली बिलकुल सीधी हो।

तीन मोटे गत्तों में एक एक बारीक छेद कर दो और चित्र १०८ के अनुसार मोमबत्ती के निकट रख दो। मोमबत्ती की रोशनी तभी दिखलाई
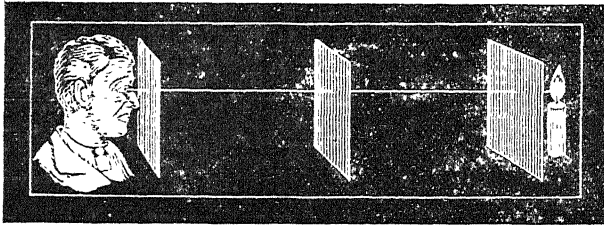
चित्र १०८

देगी जब कि तीनों छिद्र सीधी अथवा सरल रेखा पर स्थित हों। तीनों में से एक भी छिद्र यदि सीधी रेखा से बाल भर भी इधर-उधर खसक जाय तो आप मोमबत्ती की ज्वाला को नहीं देख सकते।

इस बात से यह भी स्पष्ट है कि वस्तुओं को हम ठीक उसी दिशा में देखते हैं जिधर से चल कर प्रकाश हमारे नेत्र में प्रवेश करता है। यदि यह नियम न होता तो बन्दूक़ से निशाना लगाना असम्भव हो जाता।

१७२—किरण। जिस सीधी रेखा पर प्रकाश गमन करता है उसे 'किरण' कहते हैं। किन्तु बहुधा इस रेखा पर चलनेवाले प्रकाश के लिए भी 'किरण' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। ऊपर दिये हुए प्रयोग में तीनों छेदों में से निकलनेवाला प्रकाश एक किरण है। मोमबत्ती में से ऐसी असंख्य किरणें चारों ओर फैलती हैं। यदि ये छेद इतने सूक्ष्म न हों तो अवश्य ही उनमें से अनेक किरणें एक ही साथ निकल जावेंगी। ऐसे किरण-समूह को किरणावलि कहते हैं।

१७३—परिक्षेपण। जब प्रकाश की किरणें किसी वस्तु पर गिरती हैं तब उनमें से कुछ तो उस वस्तु में प्रवेश कर जाती हैं। और शोषण से उनका जो भाग बच रहता है वह पार निकल जाता है। किन्तु कुछ किरणें वस्तु के पृष्ठ से ही वापस लौट जाती हैं। यदि यह पृष्ठ खुरदरा हो तो वहां से लौटनेवाली किरणें किसी दिशाविशेष में न जाकर चारों ओर फैल जाती हैं। तब किसी नियम द्वारा यह ज्ञात नहीं हो सकता कि अमुक किरण खुरदरी वस्तु पर पड़ने से पहले कहाँ से अथवा किस दिशा से आई थी। किरणों के इस अनियमित दिशाओं में फैलने को 'परिक्षेपण' कहते हैं। जब ऐसी परिक्षिप्त किरणें नेत्र में पहुँचती हैं तो हमें वह वस्तु दिखलाई देती है जिसने उन किरणों का परिक्षेपण किया था।
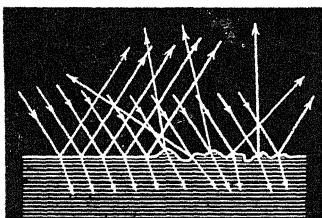
चित्र १०९

इस पुस्तक का काग़ज़, दीवार, कपड़े, मनुष्य आदि संसार की प्रायः सभी प्रकाशहीन वस्तुएँ हमें इन्हीं परिक्षिप्त किरणों के द्वारा दिखलाई देती हैं।

१७४—परावर्तन । किन्तु जब वस्तु का पृष्ठ खूब चिकना अथवा पालिश किया हुआ हो तब उस पर से लौटी हुई किरणें चारों ओर नहीं
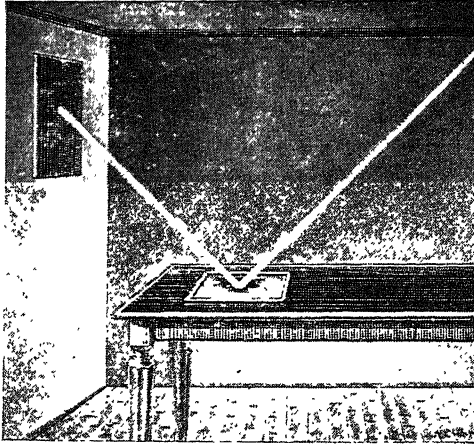
चित्र ११०

फैलतीं। वे एक विशेष नियम के अनुसार किसी खास दिशा की ओर ही जाती हैं। किरणों के इस प्रकार लौटने का नाम **'परावर्तन'** है। दर्पण, चमकदार बरतन, पानी तथा अन्य द्रवों के पृष्ठ प्रकाश का परावर्तन करते हैं। इस बात को प्रत्यक्ष देखने के लिए सूर्य का प्रकाश एक छिद्र के द्वारा अँधेरे कमरे में प्रविष्ट कराकर एक दर्पण पर डालिए (चित्र ११०)। तब वह परावर्तित होकर दीवार पर पड़ेगा। अब यदि धूल से पूर्ण एक कपड़ा उस दर्पण के सामने झाड़ दें तो जो किरणावलि छिद्र में से आकर दर्पण पर पड़ती है और जो परावर्तित होकर सामने की दीवार पर गिरती है दोनों ही दिखलाई देंगी। दर्पण को थोड़ा मोड़ देने पर परावर्तित किरणों की दिशा भी बदल जायगी। दर्पण के स्थान में सफ़ेद काग़ज़ रख देने से कमरे भर में प्रकाश फैल जायगा किन्तु कोई ख़ास परावर्तित किरण नहीं देख पड़ेगी।

१७५—प्रतिबिम्ब। परावर्तित किरणें दर्पण पर ऐसी नियमबद्ध रीति से मुड़ती हैं कि जब वे हमारे नेत्र में पहुँचती हैं तब हम यह किसी प्रकार भी नहीं कह सकते कि वे सीधी दीप्त वस्तु से आ रही हैं अथवा दर्पण से मुड़ कर आ रही हैं। इन किरणों से हमें दर्पण का सुचिक्कण पृष्ठ दिखलाई नहीं देता। हमें तो वह वस्तु दिखलाई देती है जहां से आकर यह किरणें दर्पण पर पड़ी थीं। किन्तु इस वस्तु का स्थान अब हमें दर्पण के अन्दर नज़र आता है क्योंकि हमारे नेत्र में उसी दिशा से यह किरणें पहुँचती हैं। वास्तव में वस्तु दर्पण के पीछे नहीं है। जो आकार हमें दिखलाई देता है वह इन परावर्तित किरणों ही के द्वारा बना हुआ है। इसे "प्रतिबिम्ब" कहते हैं। दर्पण का पृष्ठ जो कुछ थोड़ा बहुत हमें दिखलाई देता है वह केवल इस कारण कि उस पर धब्बे या धूल के कण कुछ प्रकाश को परिक्षिप्त कर देते हैं।

१७६—वर्तन। जो किरणें किसी वस्तु के पृष्ठ पर पड़कर अन्दर प्रवेश कर जाती हैं उनका मार्ग भी पृष्ठ के चिकनेपन या खुरदरेपन के अनुसार नियमित अथवा अनियमित दिशा में होता है। चिकने पृष्ठ में घुसनेवाली किरणें नियमानुसार किसी विशेष दिशा की ओर मुड़ जाती हैं। इस प्रकार के मुड़ने को वर्तन कहते हैं।
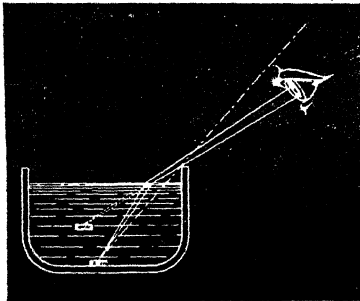
चित्र १११

प्याले में एक रुपया डाल कर मेज़ पर रख दो और उससे हट कर ऐसी जगह खड़े होओ कि वह रुपया वहां से तो दिखलाई न दे किन्तु ज़रा भी आगे बढ़ो तो वह दिखलाई देने लगे। अब किसी से कह कर उस प्याले में पानी भरवा दो। तुरन्त वह रुपया आपको दिखलाई देने लगेगा। इसका

कारण चित्र १११ से स्पष्ट है। जब प्याले में पानी नहीं था तब रुपये से परिक्षिप्त होनेवाली कोई भी किरण आपके नेत्र में नहीं जा सकती थी। वे नेत्र के ऊपर से निकल जाती थीं। अब इनमें से कुछ किरणें जल से निकलते समय ख पर मुड़ कर आपके नेत्र में जा पहुँचती हैं। इसी कारण अब आप रुपये को इन मुड़ी हुई किरणों की दिशा में कुछ ऊँचा उठा हुआ देख सकते हैं। तालाब और नदियों की गहराई इसी कारण हमेशा कुछ कम नज़र आती है।

एक कांच के बर्तन में पानी भर कर उसमें कुछ लाल स्याही घोल दो (चित्र ११२)। अँधेरी कोठरी में एक छोटे छिद्र में से सूर्य की किरणों को इस पानी पर गिराओ। पानी में घुस जानेवाली किरणों का मार्ग कुछ हरा सा दिखाई देगा। धुँये या धूल की सहायता से पानी पर पड़नेवाली किरणों को भी आप देख सकेंगे। इस प्रकार जलपृष्ठ पर किरणों का वर्तन स्पष्ट देख पड़ेगा।
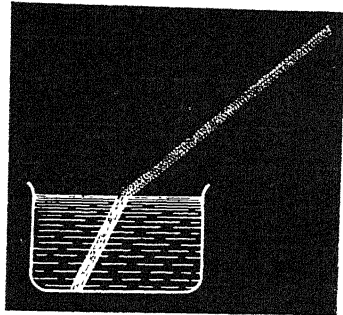
चित्र ११२

१७७—प्रकाश का वेग। ऊपर की बातों से यह अवश्य स्पष्ट हो गया कि प्रकाश में यह गुण है कि दीप्त वस्तु से निकल कर किसी निश्चित मार्ग से वह हमारे नेत्र में पहुँच जाता है। अब प्रश्न यह है कि क्या जड़ पदार्थों की भाँति प्रकाश को भी इस यात्रा में कुछ समय लगता है। साधारण अनुभव से तो यही जान पड़ता है कि प्रकाश का काम तात्कालिक होता है और उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में कुछ भी समय नहीं लगता। किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। अनेक उपायों से यह निश्चित हो गया है कि प्रकाश को भी स्थानान्तर जाने में समय की आवश्यकता होती है। यह

सच है कि यह समय इतना कम होता है कि साधारण रीति से हमें उसका अनुभव नहीं हो सकता। किन्तु आज-कल के वैज्ञानिक चातुर्य्य ने इसे भी ठीक ठीक नाप लिया है और अब हम निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि शून्य स्थान में प्रकाश का वेग लगभग १,८६,००० मील है अथवा ३० अरब (=३०, ००, ००, ००, ०००) सेंटीमीटर प्रतिसैकंड है। इस वेग का अन्दाज़ा लगाना हमारे लिए अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि हमारे तेज़ से तेज़ चलनेवाले वायुयान भी एक घंटे में ३०० मील से अधिक नहीं चल सकते। इनका वेग हुआ १/१२ मील (प्रायः १५० गज़) प्रतिसैकंड। अर्थात् जितनी देर में यह हवाई जहाज़ १५० गज़ भी न चल सके उतनी ही देर में प्रकाश पृथ्वी की सात बार परिक्रमा कर सकता है। सूर्य हमसे सवा नौ करोड़ मील की दूरी पर है किन्तु प्रकाश को वहां से पृथ्वी तक पहुँचने में केवल आठ ही मिनट लगते हैं। हमारे हवाई जहाज़ को इतनी ही दूर जाने में प्रायः ३६ वर्ष लग जावेंगे।

जड़ पदार्थों में चलते समय प्रकाश का वेग इससे कुछ कम होता है। वायु इत्यादि गैसों में तो यह कमी बहुत थोड़ी सी होती है। किन्तु द्रव और घन पदार्थों में प्रकाश का वेग बहुत घट जाता है। पानी में उसका परिमाण प्रायः १,४०,००० मील और साधारण कांच में १,२४,००० मील प्रतिसैकंड है।

१७८—प्रकाश क्या है? हम देख चुके हैं कि जब प्रकाश हमारे नेत्रों में प्रवेश करता है तभी हम कुछ देख सकते हैं। अवश्य ही उसमें हमारे नेत्र में विकार उत्पन्न करने और उसके अवयवों में हलचल पैदा करने की शक्ति होती है। यह शक्ति प्रकाशमान वस्तु में उत्पन्न होती है। और वहां से आश्चर्यजनक किन्तु परिमित वेग से दौड़ कर वह हमारे पास पहुँचती है। शक्ति को स्थानान्तरित करने के हम केवल दो उपाय जानते हैं। एक तो वह जिसमें कोई जड़ पदार्थ शक्ति को लेकर स्वयं एक जगह से दूसरी जगह चला जाता है। इसमें शक्ति भी गमन करती है और उसी वेग से जड़ पदार्थ भी चलता है। जैसे बन्दूक की गोली। दूसरा उपाय वह है

जिसमें कोई जड़ पदार्थ स्वयं तो नहीं चलता किन्तु शक्ति को चलने में सहायता करता है। जैसे जब पानी में लहरें आती हैं तब पानी लहरों के साथ गमन नहीं करता किन्तु लहरों की शक्ति से पानी के बीच में तैरती हुई वस्तु को हम हिला अवश्य सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि प्रकाश-शक्ति किस प्रकार चलती है। क्या प्रकाशमान वस्तु में से छोटे छोटे कण निकल कर बन्दूक की गोली की तरह आकर हमारे नेत्रों से टकराते हैं? न्यूटन और प्राचीन काल के सभी विद्वान् इसी मत को मानते थे। इसमें सन्देह नहीं कि यह तरीका सरल है। इसके द्वारा प्रकाश का सरल-रेखा-गमन, वर्तन और परावर्तन के साधारण नियम आदि सहज ही में समझ में आ जाते हैं। किन्तु अनेक घटनायें ऐसी हैं कि जो इस कण-सिद्धान्त के द्वारा स्पष्ट नहीं हो सकतीं। यही नहीं बहुत सी बातें तो इस कण-सिद्धान्त के विपरीत सिद्ध हुई हैं। अतः विवश होकर संसार को दूसरे उपाय की शरण लेना पड़ा है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह सारा संसार एक प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु तरल पदार्थ से भरा है। जिन स्थानों को हम सर्वथा शून्य समझते थे उन्हें भी अब इस विचित्र पदार्थ से परिपूर्ण मानना पड़ता है। तारों के मध्यवर्त्ती आकाश से लेकर ठोस से ठोस पदार्थ के अणुओं के बीच में यहां तक कि परमाणु के अन्दर भी कोई स्थान इससे ख़ाली नहीं। इस पदार्थ का नाम रखा गया है "ईथर"। हम सब ईथर के समुद्र में ही रहते हैं। प्रकाशमान वस्तु इस ईथर समुद्र में केवल तरंगें उत्पन्न कर देती है और यही तरंगें किरणों के रूप में हम इधर-उधर चलती हुई देखते हैं। यद्यपि इस सिद्धान्त को समझना ज़रा कठिन कार्य है और इसके द्वारा सरल-रेखा-गमन आदि साधारण बातों की व्याख्या भी आसानी से नहीं होती तो भी यह निर्विवाद है कि एक बार अच्छी तरह समझ लेने पर प्रकाश-सम्बन्धी जटिल से जटिल घटनाओं की व्याख्या इस सिद्धान्त के द्वारा यथार्थतापूर्वक हो जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाशों में अन्तर केवल यह है कि उनकी तरंगों की लम्बाई भिन्न भिन्न होती है। लाल तरंगें सबसे लम्बी होती हैं और नीली तरंगें सबसे छोटी।

ताप का विकरण जिन तरंगों के द्वारा होता है वे भी प्रकाश ही की सी तरंगें होती हैं। इनकी लम्बाई लाल प्रकाश की तरंगों से भी अधिक होती है।

अब यह भी प्रमाणित हो चुका है कि प्रकाश का बिजली से भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। तार-रहित टेलीफोन अथवा रेडियो में संगीत और समाचार जिस प्रकार की विद्युत्तरंगों के द्वारा दूर दूर तक पहुँचते हैं, प्रकाश की तरंगें भी ठीक उसी प्रकार की किन्तु छोटी विद्युत्तरंगें हैं।

जैसे प्रकाश का वेग आश्चर्य्यजनक है वैसे ही उसकी तरंगों की लम्बाई भी आश्चर्य्यजनक है। उनके बराबर छोटी वस्तु का अन्दाज़ा करना भी कठिन है। लाल प्रकाश की तरंगें एक इंच स्थान में प्रायः २५,००० आ सकती हैं और नीली तो प्रायः ४०,०००। वैज्ञानिक नाप में यों कह सकते हैं कि लाल तरंगों की लम्बाई प्रायः ७×१०^{-५} सेंटीमीटर और नीली तरंगों की ४×१०^{-५} सेंटीमीटर होती है।

प्रश्न

(१) "सूर्य की किरणें कमरे में आती हुई साफ़ नज़र आती हैं" इस वाक्य में क्या ग़लती है?

(२) प्रकाशमान और प्रकाशहीन वस्तुओं में क्या अन्तर है और प्रकाशहीन वस्तुओं को हम कैसे देखते हैं?

(३) प्रकाश सीधी रेखा में गमन करता है इसका कोई प्रयोगात्मक प्रमाण बताओ।

(४) किरण किसे कहते हैं?

(५) बताओ उन किरणों का क्या होगा जो काँच के (१) खुरदरे अथवा (२) चिकने पृष्ठ पर पड़ें?

(६) प्रकाश की शक्ति किस रूप में गमन करती है? ऐसा समझने का क्या कारण है?

(७) तरंग-सिद्धान्त के अनुसार नीले और लाल प्रकाश में क्या अन्तर है?

(८) ईथर किसका नाम है और उसके विषय में तुम क्या जानते हो?

परिच्छेद १८

सरल रेखागमन के परिणाम

१७९—छाया। प्रकाश सरल रेखा में गमन करता है इसलिए वह मुड़ कर अपारदर्शक वस्तु के पीछे की ओर नहीं पहुँच सकता। वह स्थान अंधकारमय होता है और उसे छाया कहते हैं। मान लीजिए कि क एक अत्यन्त छोटा दीप्त विन्दु है और ग एक अपारदर्शक गोला (चित्र ११३)। क से
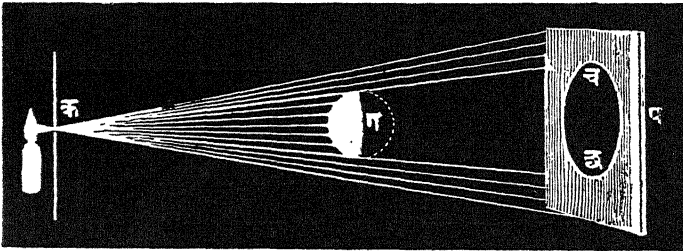
चित्र ११३

चलनेवाली कुछ किरणों को ग रोक लेता है और इसलिए ग के पीछे रखे हुए पर्दे 'प' पर कुछ स्थान चछ ऐसा रह जाता है जहाँ क का प्रकाश नहीं पहुँचता। बाक़ी का सब परदा प्रदीप्त रहता है किन्तु चछ काला नज़र आता है। यही उस गोले की छाया है। इस छाया के किसी भी भाग में अपनी आंख रख कर हम क को नहीं देख सकते।

अब मान लीजिए कि दीप्त विन्दु के स्थान में हमारे पास बड़े आकार की एक दीप्त वस्तु कख है। इसके प्रत्येक विन्दु से प्रकाश निकलेगा और प्रत्येक

ही विन्दु एक एक छाया बनावेगा। जो कुछ हम देखेंगे वह इन सब छायाओं का सम्मिलित परिणाम होगा। चित्र ११४ से स्पष्ट है कि इस दीप्त वस्तु का ऊपर का छोर क जो छाया बनावेगा वह चछ होगी और नीचे के छोर ख के कारण छाया जझ बनेगी। अतः स्पष्ट है कि छाया का विस्तार अब ज से लेकर छ तक होगा। किन्तु चित्र ११३ की नाईं यह
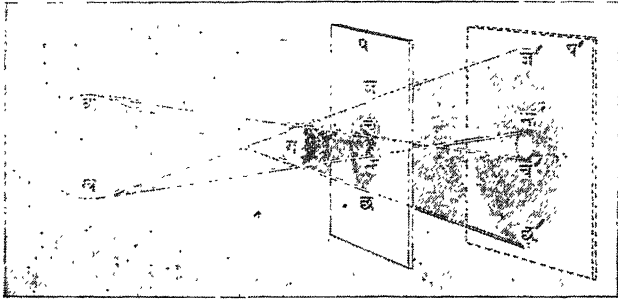
चित्र ११४

छाया सर्वत्र एक सी न होगी। इसमें च और झ के बीच का स्थान तो बिलकुल काला होगा। वहां कुछ भी प्रकाश न पहुँचेगा और यदि हमारा नेत्र वहां हो तो हमें दीप्त वस्तु का कोई भी भाग दिखाई न देगा। इस भाग को हम प्रच्छाया कह सकते हैं। किन्तु च से लेकर ज तक और झ से छ तक जो छाया है वहां पूर्ण अन्धकार न होगा। क्योंकि वहां दीप्त वस्तु के किसी न किसी भाग का प्रकाश अवश्य ही पहुँचेगा। इस भाग की प्रदीप्ति प्रच्छाया के छोर से बाहर की ओर बराबर बढ़ती जायगी। इसे उपच्छाया कहते हैं। इसमें आँख रखने से हम दीप्त वस्तु को पूरी नहीं देख सकते उसका वही भाग दिखलाई देगा जहाँ का प्रकाश वहाँ पहुँचता है। दोनों भाग सहित पूरी छाया कैसी नज़र आती है यह चित्र में दिखलाया गया है।

यदि परदा और अधिक दूर प′ पर स्थित हो तो स्पष्ट है कि प्रच्छाया श पर ही ख़तम हो जायगी और परदे पर सर्वत्र उपच्छाया ही रह जायगी। इस

उपच्छाया में च' और झ' के बीच में कुछ प्रकाश दीप्त वस्तु के ऊपर की ओर से आवेगा और कुछ नीचे की ओर से। अतः वहाँ नेत्र रखने से दीप्त वस्तु के बीच का भाग न देख पड़ेगा किन्तु चारों ओर का भाग दिखलाई पड़ेगा।

१८०—चन्द्रमा की कलायें। चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान नहीं है। जैसे धूप पड़ने पर पृथ्वी या दीवार हमें चमकती हुई मालूम होती है ठीक उसी प्रकार सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा भी दीप्त जान पड़ता है। अमावस्या के दिन जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों पृथ्वी के एक ही ओर हो जाते हैं तब चन्द्रमा का जो भाग हमारे सम्मुख होता है उस पर सूर्य की किरणें बिलकुल नहीं पड़तीं। अतः हम उसका तनिक भी भाग नहीं देख सकते। किन्तु ज्यों ज्यों चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा में अग्रसर होता जाता है त्यों त्यों उसका अधिक अधिक भाग हमें दिखलाई देता जाता है। पूर्णिमा की रात्रि को जब चन्द्रमा हमारे सामने होता है तो सूर्य हमारे पीछे की ओर से उसके सम्पूर्ण बिम्ब को उद्भासित कर देता है।
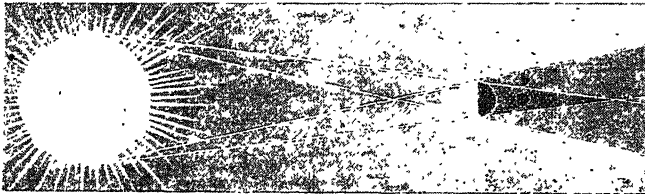
चित्र ११५

१८१—चन्द्रग्रहण। किन्तु कभी कभी पृथ्वी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा और सूर्य के ठीक बीच में आ जाती है। तब चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में पड़ जाता है (चित्र ११५)। इसे चन्द्रमा का ग्रहण कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है, पूर्ण और अपूर्ण। पूर्ण ग्रहण तब होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी की प्रच्छाया में प्रवेश करता है। ऐसी अवस्था में वह अमावस्या के समान सर्वथा छुप

जाता है। किन्तु यदि वह उपच्छाया ही में पड़े तो उसके प्रकाश में कमी होकर वह कान्तिहीन देख पड़ता है। इसे अपूर्ण ग्रहण कहते हैं। यह कहना न होगा कि चन्द्रग्रहण पृथ्वी के सब स्थानों से एक-सा दिखलाई देता है।

इसी प्रकार कभी कभी अमावस्या के दिन चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के ठीक मध्य में आ जाता है। तब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है। इस घटना को सूर्य ग्रहण कहते हैं (चित्र ११६)। पृथ्वी का जो भाग प्रच्छाया में होता है वहां के निवासी सूर्यबिम्ब के किसी भी भाग को नहीं देख सकते और वहां रात्रि के समान अन्धकार हो जाता है। तारे भी दिखलाई देने लगते हैं। यह सूर्य का पूर्ण ग्रहण हुआ (चित्र ११७-ख)। इस समय सूर्यबिम्ब से निकलने
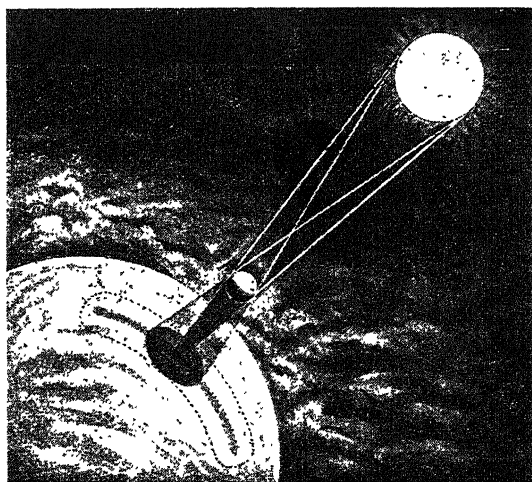
चित्र ११६

वाली ज्वालायें दिखलाई देने लगती हैं। किन्तु चन्द्रमा की प्रच्छाया का विस्तार इतना छोटा होता है कि पृथ्वी का बहुत ही थोड़ा सा भाग उसमें पड़ता है। केवल

वहीं के निवासी यह दृश्य देख सकते हैं। उपच्छाया में भी समस्त पृथ्वी प्रवेश नहीं कर सकती। हां, प्रच्छाया से यह बहुत अधिक विस्तृत होती है। वहाँ सूर्य के कुछ भाग का प्रकाश पहुँचता है और कुछ का नहीं। अतः वहाँ से सूर्य का बिम्ब कटा हुआ दिखलाई देता है। इसे अपूर्ण ग्रहण या खंड ग्रहण कहते हैं (चित्र ११७-क)। इस उपच्छाया के सब प्रदेशों से ग्रहण का दृश्य एकही सा नहीं दिखलाई देता। सूर्यबिम्ब कहीं से कम और कहीं से अधिक कटा नज़र आता है। कभी कभी जब पृथ्वी प्रच्छाया-शंकु के अग्र से अधिक दूर
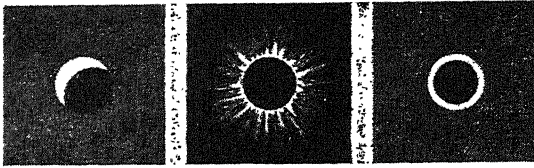
क ख ग

चित्र ११७

हो जाती है तब पूर्ण ग्रहण के स्थान में वलयाकार ग्रहण देख पड़ता है (चित्र ११७-ग)। चित्र ११६ में विन्दुमय रेखाओं से यह भी दिखलाया गया है कि किस प्रकार यह प्रच्छाया और उपच्छाया पृथ्वी के एक स्थान से आरम्भ होकर धीरे धीरे बड़ी दूर तक हट जाती है जिससे सूर्य ग्रहण को सैकड़ों मील तक देख सकते हैं।

१८२—सूक्ष्म छिद्र द्वारा चित्र-निर्माण। यदि अँधेरी कोठरी की खिड़की में एक बहुत छोटा छेद कर दिया जाय तो सामने की दीवार पर या अन्य किसी श्वेत पर्दे पर जो छिद्र के सम्मुख रखा हो बाहिर की वस्तुओं का अत्यन्त सुन्दर चित्र बन जाता है। इसमें प्रत्येक वस्तु का रंग भी ज्यों का त्यों देख पड़ता है। किन्तु यह चित्र उलटा होता है। अर्थात् मनुष्यों के सिर नीचे और पैर ऊपर दिखलाई देते हैं, आकाश नीचे नज़र आता है और घास, सड़क आदि ऊपर। यदि पर्दे को छिद्र से दूर हटा दें तो चित्र बड़ा बन जाता है और यदि उसे निकट ले आवें तो चित्र का विस्तार घट जाता है।

यह चित्र कैसे बनता है यह बात चित्र ११८ से ज्ञात हो जायगी। कख एक मोमबत्ती है और छ गत्ते में बारीक छेद है। बत्ती के क विन्दु से जो अनेक किरणें निकलती हैं उनमें से कुछ ही ऐसी हैं जो छिद्र में से निकल कर पर्दे पर पड़ती हैं। इस पर्दे पर क' के अतिरिक्त और कहीं क का प्रकाश नहीं पहुँचता और न क' पर मोमबत्ती के अन्य किसी भाग का प्रकाश आता है। अतः क' का रंग भी क के ही अनुरूप हो जायगा। यह केवल सरल-रेखात्मक गमन का परिणाम है। इस ही प्रकार
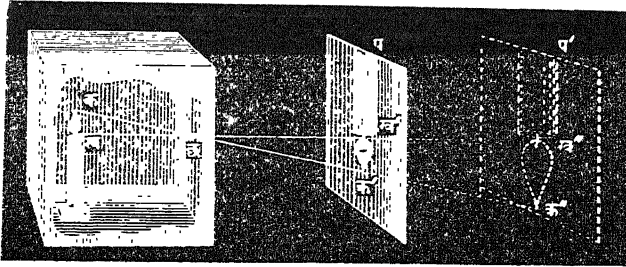
चित्र ११८

ख का प्रकाश ख' पर पहुँचता है और मोमबत्ती के अन्य भागों का प्रव भी यथास्थान परदे पर पड़ता है। अतः वहां मोमबत्ती का पूरा चित्र बन जाता है। यह भी स्पष्ट है कि ऊपर के विन्दु क का प्रकाश नीचे की ओर क' पर तथा नीचे के विन्दु ख का प्रकाश ऊपर की ओर ख' पर पहुँचता है। इसी से चित्र उलटा होता है। यदि पर्दा छिद्र से और अधिक दूर प' पर हटा दिया जाय तो चित्र का विस्तार क''ख'' हो जायगा जो स्पष्ट ही क'ख' से बड़ा होगा। रेखागणित के साधारण नियमानुसार

$$\frac{\text{चित्र की लम्बाई}}{\text{दीप्त वस्तु की लम्बाई}} = \frac{\text{क}'\text{ख}'}{\text{कख}} = \frac{\text{क}'\text{छ}}{\text{कछ}} = \frac{\text{छिद्र से पर्दे की दूरी}}{\text{छिद्र से दीप्त वस्तु की दूरी}}$$

चित्र की चौड़ाई के लिये भी यही नियम लागू होगा। अतः चित्र का क्षेत्रफल जो लम्बाई तथा चौड़ाई को गुणा करने से प्राप्त होता है पर्दे की दूरी के वर्ग के अनुपात से बढ़ेगा। अर्थात् यदि पर्दा

छिद्र से उतनी ही दूर हो जितनी दूर पर दीप्त वस्तु है तब तो चित्र की लम्बाई, चौड़ाई और क्षेत्रफल भी दीप्त वस्तु के बराबर होंगे। किन्तु यदि पर्दे की दूरी दुगुनी हो तो चित्र की लम्बाई तथा चौड़ाई भी दुगुनी हो जायगी और उसका क्षेत्रफल चौगुना हो जायगा।

यदि उपर्युक्त प्रयोग में छिद्र छ के निकट एक दूसरा छिद्र छ' बना दिया जाय तो स्पष्ट ही है कि पर्दे पर एक चित्र और बन जायगा। और जितने ही छिद्र हम बनाते जायँगे उतने ही अधिक चित्र भी बनते जावेंगे। किन्तु छिद्रों के नज़दीक नज़दीक होने के कारण ये चित्र पृथक् पृथक् न रह सकेंगे। यदि सब चित्र पास ही पास हों तब तो इस अवगुंठन से अधिक हानि न होगी। और चित्र प्रायः स्पष्ट ही रहेगा। किन्तु यदि छिद्र दूर दूर हुए तो ये चित्र एक दूसरे पर पड़ कर इतनी गड़बड़ मचा देंगे कि हमें कोई भी चित्र साफ़ साफ़ दिखलाई न दे सकेगा। हां पर्दे पर कुछ प्रकाश अवश्य गिरता हुआ देख पड़ेगा। यदि छिद्र इतने पास पास हों कि सब मिल कर एक ही बहुत बड़ा छेद बन जाय तब भी यही परिणाम होगा। और पर्दे पर हमें दीप्त वस्तु के आकार के चित्र के स्थान में केवल छिद्र के आकार का कुछ भाग प्रदीप्त नज़र आवेगा।

१८३—प्रदीप्ति। ऊपर बतलाया जा चुका है कि प्रकाशहीन वस्तुओं के प्रदीप्त होने का कारण यह है कि उन पर किसी प्रकाशमान वस्तु का प्रकाश निरन्तर आआ कर पड़ता रहता है। प्रकाश की जितनी मात्रा एक सैकंड में उस वस्तु के पृष्ठ के एक वर्ग सम० क्षेत्र पर पड़ती है वह उसकी प्रदीप्ति की तीव्रता कहलाती है क्योंकि जितना ही अधिक प्रकाश उस वस्तु पर पड़ेगा उतनी ही अधिक प्रदीप्त वह दिखलाई देगी।

यह सभी जानते हैं कि जब रात्रि के समय प्रकाश की कमी के कारण पुस्तक पढ़ने में नेत्रों को कष्ट होता है तब हम दीपक को अपने निकट खींच लेते हैं। ऐसा करने से पुस्तक के पृष्ठ की प्रदीप्ति बढ़ जाती है। इसका कारण चित्र ११९ से स्पष्ट हो जायगा। प एक गत्ता है जिसमें एक बहुत बारीक छेद द है। ठीक इसके पीछे एक मोमबत्ती जल रही है। इसके सम्मुख

कुछ दूरी पर एक पर्दा क रखा है जो एक सम० लम्बा और एक सम० चौड़ा वर्गाकार है। इसके किनारों के पास से जो किरणें दूसरी ओर निकल जाती हैं वे चित्र में दिखलाई गई हैं। जो किरणें क के द्वारा रुक जाती हैं यदि वे किसी अन्य पर्दे पर गिराई जावें तो उस पर भी एक वर्गाकार क्षेत्र प्रदीप्त हो जावेगा। ज्यों ज्यों पर्दा दूर हटाया जायगा त्यों त्यों इस प्रदीप्त क्षेत्र का विस्तार भी बढ़ता जायगा। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि पर्दा चाहे कितनी ही दूर हो उस पर प्रतिसैकंड पड़नेवाली प्रकाश की मात्रा वही होगी जो क पर प्रतिसैकंड
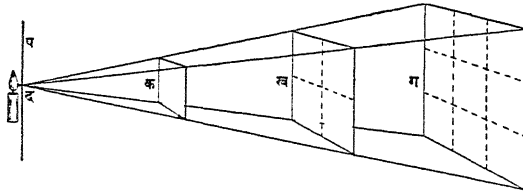
चित्र ११९

पड़ती है। किन्तु यदि वह क की अपेक्षा दुगुनी दूरी पर अर्थात् ख पर रखा जाय तो प्रदीप्त क्षेत्र २ सम० लम्बा और २ सम० ही चौड़ा हो जायगा। अर्थात् इसका क्षेत्रफल ४ वर्ग सम० हो जायगा। अतः अब इसके प्रत्येक वर्ग सम० पर क की अपेक्षा प्रकाश की मात्रा १/४ हो जायगी अर्थात् प्रदीप्ति की तीव्रता घट कर चौथाई रह जायगी। यदि पर्दा तिगुनी दूरी पर अर्थात् ग पर रखा जाय तो प्रदीप्त क्षेत्र ९ वर्ग सम० हो जायगा और प्रदीप्ति की तीव्रता १/९ हो जायगी। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि प्रदीप्ति की तीव्रता उतनी ही घटती जाती है जितना कि दीप्त विन्दु से पर्दे की दूरी का वर्ग बढ़ता जाता है। अथवा यदि एक सम० दूरी पर प्रदीप्ति की तीव्रता $ती_1$, हो और द सम० दूरी पर $ती_द$ हो तो

$$\frac{ती_द}{ती_1} = \frac{1}{द^2}$$

इस नियम को उत्क्रम वर्ग नियम कहते हैं। वास्तव में विन्दु के समान

छोटे दीपकों के लिए ही यह नियम ठीक है किन्तु यदि पर्दा बहुत निकट न हो तो साधारण छोटे आकार के दीपकों के लिए भी इसका उपयोग हो सकता है।

१८४—दीप्तिमापक। बहुधा यह जानने की आवश्यकता होती है कि एक दीपक की अपेक्षा दूसरे में से कितने गुणा अधिक प्रकाश निकलता है। इसका सुगम उपाय यह है कि किसी प्रकार प्रत्येक दीपक से किसी निश्चित दूरी पर स्थित पर्दे की प्रदीप्ति की तीव्रता नाप ली जाय क्योंकि जितना ही अधिक प्रकाश दीपक से निकलेगा उतनी ही अधिक तीव्रता से वह पर्दे को प्रदीप्त करेगा। अर्थात् उतनी ही अधिक दीप्ति उसमें होगी। यह कार्य उपर्युक्त उत्क्रम वर्ग नियम की सहायता से सहज ही में हो सकता है। जिस यंत्र का उपयोग इस कार्य के लिए किया जाता है उसे दीप्तिमापक कहते हैं।

यह तो कहना हमारे नेत्रों के लिए असम्भव है कि अमुक प्रदीप्ति की तीव्रता अमुक की अपेक्षा कितनी गुनी है। किन्तु दो प्रदीप्त पर्दों को पास पास रखने पर यह कहना कठिन नहीं कि दोनों की तीव्रता बराबर है या नहीं। अतः दीप्तिमापन में ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि प्रत्येक दीपक एक एक पर्दे को प्रदीप्त करे। और तब पर्दों से दीपकों की दूरी को घटा बढ़ा कर दोनों पर्दों की तीव्रता बराबर कर ली जाती है। जिस दीपक में अधिक दीप्ति होती है उसे अधिक दूर रखना होता है। उत्क्रम वर्ग नियम के अनुसार यदि पर्दे से एक दीपक की दूरी $द_1$ हो और दूसरे की $द_2$ हो तो

$$\frac{\text{पहले की दीप्ति}}{\text{दूसरे की दीप्ति}} = \frac{द_2^2}{द_1^2}$$

ये दीप्तिमापक कई प्रकार के होते हैं जिनमें पर्दों को प्रदीप्त करने के भिन्न भिन्न उपाय काम में लाये जाते हैं। रमफोर्ड के छाया दीप्तिमापक में एक अपारदर्शक छड़ खुरदरे सफ़ेद कागज़ के पर्दे के पास खड़ी कर दी जाती है (चित्र १२०)। और दोनों दीपक क तथा ख इस प्रकार

रख दिये जाते हैं कि पर्दे पर छ की दो छाया ग और घ पास पास किन्तु पृथक् पृथक् पड़ें। यह प्रत्यक्ष है कि क के द्वारा बनी हुई छाया ग में क का प्रकाश नहीं पहुँचता किन्तु ख का पहुँचता है। इसी प्रकार घ केवल क के प्रकाश से प्रदीप्त है। इनमें यदि ग अधिक काली मालूम हो तो ख को पर्दे
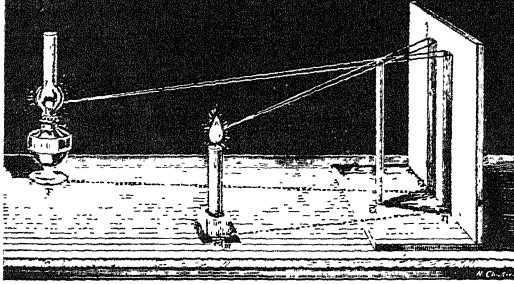
चित्र १२०

की ओर खिसका दो अथवा क को दूर हटा दो। जब दोनों छायाओं की प्रदीप्ति में कुछ भेद न मालूम हो तब

$$\frac{\text{क की दीप्ति}}{\text{ख की दीप्ति}} = \frac{\text{खग}^2}{\text{कघ}^2}$$

रिंची के बनाये हुए टंक दीप्तिमापक में पर्दे का आकार चित्र १२१ के जैसा होता है। क का प्रकाश एक पार्श्व को प्रदीप्त करता है और ख का दूसरे को। नेत्र च पर रखा जाता है जिससे पर्दे के दोनों पार्श्व एक साथ दिखलाई देते हैं और दीपकों को इधर-उधर हटा कर दोनों पार्श्वों की प्रदीप्ति बराबर करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

एक विशेष प्रकार की मोमबत्ती की दीप्ति दीपकों की दीप्ति के नाप के लिए प्रमाण-स्वरूप नियत कर ली गई थी। यही दीप्ति का एकांक है। यद्यपि अब उक्त मोमबत्ती से बहुत अच्छे प्रमाण दीपक बना लिये गये हैं किन्तु एकांक अभी तक उसी मोमबत्ती की दीप्ति है। जिस दीपक की दीप्ति इस

मोमबत्ती के बराबर होती है उसे एक बत्ती बल का दीपक कहते हैं। अमुक दीपक ५० बत्ती बल का है इस वाक्य का अर्थ केवल यह है कि इस दीपक की दीप्ति प्रमाण मोमबत्ती से ५० गुणा अधिक है अथवा जितना प्रकाश ५० मोमबत्तियों से प्रतिसैकंड निकलता है उतना ही अकेले उस दीपक में से निकलता है। संक्षेप में बत्ती बल ब० ब० लिखा जाता है। और उक्त दीपक को हम ५० ब० ब० का दीपक कहते हैं।
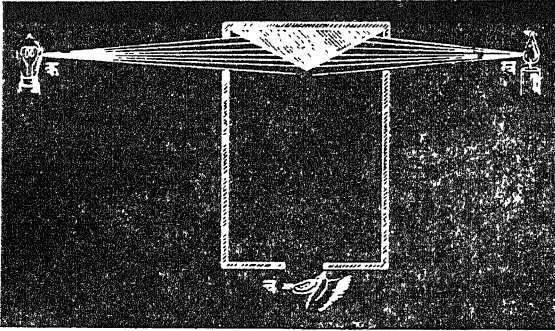
चित्र १२१

इसी प्रकार प्रमाण मोमबत्ती से एक फ़ुट की दूरी पर रखी हुई वस्तु की जो प्रदीप्ति होती है वह प्रदीप्ति का एकांक नियत कर दिया गया है और उसे फ़ुट-बत्ती कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि ५० ब० ब० के दीपक के द्वारा एक फ़ुट दूरी पर ५० फ़ुट-बत्ती की प्रदीप्ति होगी २ फ़ुट पर ५०/४ = १२·५ फ़ुट-बत्ती की तथा १० फ़ुट पर $\frac{५०}{१००} = \frac{१}{२}$ फ़ुट-बत्ती की प्रदीप्ति होगी। पढ़ने के लिए प्रायः ३ फ़ुट-बत्ती की प्रदीप्ति की आवश्यकता है और बारीक काम के लिए १५-२० फ़ुट-बत्ती की आवश्यकता हो जाती है।

प्रश्न

(१) यदि दीपक की ज्वाला बहुत छोटी हो तब तो वस्तुओं की छाया बहुत स्फुट होती है किन्तु यदि ज्वाला बड़ी हो तो छाया अस्फुट हो जाती है। इसका क्या कारण है ?

(२) एक सम० व्यास के गोले की छाया का चित्र खींचो यदि दीपक का व्यास (१) $\frac{1}{2}$ सम० (२) २ सम० और (३) विन्दु मात्र हो।

(३) सूर्य के पूर्ण ग्रहण का मर्मचित्र खींचो और उसमें चन्द्रमा की प्रच्छाया की लम्बाई तथा पृथ्वी के उस भाग की चौड़ाई बताओ जहाँ से पूर्ण ग्रहण दिखलाई दे सके।

(४) सड़क पर लालटैन की ऊँचाई १० फ़ुट है। यदि ५ फ़ुट ऊँचा मनुष्य उससे ३ गज़ दूर खड़ा हो तो उसकी छाया की लम्बाई बताओ।

(५) चौड़ी ज्वाला के दीपक के सामने पेंसिल रखने से दीवार पर दो छाया दिखलाई देती हैं। क्यों ?

(६) अँधेरी कोठरी में एक सन्दूक़ में मोमबत्ती जल रही है। सन्दूक़ के पार्श्व में बहुत छोटा सा छिद्र है। उसके सामने सफ़ेद काग़ज़ रखने से क्या और क्यों दिखलाई देगा ? यदि काग़ज़ को अधिक दूर हटा कर रखें तो क्या होगा ?

(७) यदि छठे प्रश्न के सन्दूक़ का छिद्र धीरे धीरे बड़ा कर दिया जाय तो क्या होगा ? क्या छिद्र के आकार का भी कुछ असर होता है ?

(८) पेड़ की छाया में बहुत से गोल अथवा दीर्घवृत्ताकार प्रकाशित स्थान क्यों दिखलाई देते हैं ?

(९) यदि सूची-छिद्र से २० सम० दूर रखी हुई ३ सम० लम्बी वस्तु का किसी पर्दे पर तीन गुणा लम्बा चित्र बने तो बताओ पर्दा छिद्र से कितनी दूर रखा है।

(१०) छाया दीप्तिमापक में दो दीपक बराबर प्रदीप्ति की छाया पर्दे पर गिराते हैं और उनकी पर्दे से दूरी क्रमशः ४० और ५० सम० है। उनके बत्ती-बलों की तुलना करो।

(११) कागज़ पर फ़ोटो छापने के लिए प्रकाश के निर्दिष्ट परिमाण की आवश्यकता है। यदि दीपक को कागज़ से ४ फ़ुट दूर रखने पर ५ सैकंड में फ़ोटो छप जाता है तो दस सैकंड में छापने के लिये दीपक को कितनी दूर रखना होगा ?

(१२) १६ बर्त्ती-बल के दीपक से पुस्तक कितनी दूर रखना चाहिए कि उस पर १ फ़ुट-बर्त्ती की प्रदीप्ति हो ?

(१३) कौन अधिक प्रकाश मेज़ पर डालेगा १० ब० ब० का १ फ़ुट ऊँचा मेज़ का लम्प या २०० ब० ब० का मेज़ से ५ फ़ुट ऊँचा लटका हुआ लम्प ?

(१४) दो दीपक किसी पर्दे पर क्रमशः ६० और ८० समः की दूरी से बराबर प्रकाश डालते हैं। प्रथम दीपक के सामने एक धूप में लगाने का काला चश्मा रख दिया गया। पर्दे पर दोनों का प्रकाश बराबर रखने के लिए अब दूसरे दीपक को हटा कर २०० सम० दूर ले जाना पड़ा। चश्मा प्रकाश के कितने भाग को नष्ट कर देता है ?

———

परिच्छेद १६

समतल दर्पण से प्रकाश का परावर्तन

१८५—परावर्तन। यह बतलाया जा चुका है कि जब प्रकाश-किरण किसी दर्पण पर पड़ती है तब उसका नियमबद्ध परावर्तन होता है। जो किरण कख दर्पण दद' पर गिरती है उसे आपतित किरण और जो किरण खग वहाँ से परावर्तित होती है उसे परावर्तित किरण कहते हैं। ख आपतन बिन्दु है। आपतन बिन्दु से दर्पण के धरातल पर खल अभिलम्ब खींचा गया है। आपतित किरण और अभिलम्ब के बीच का कोण कखल आपतन कोण कहलाता है तथा परावर्तित किरण और अभिलम्ब के बीच के कोण गखल का नाम परावर्तन कोण है।
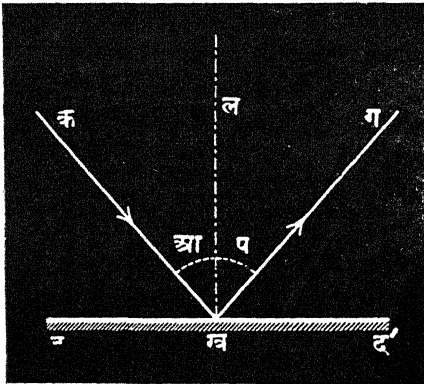
चित्र १२२

१८६—परावर्तन के नियम। अनेक परीक्षाओं के द्वारा यह प्रमाणित हो गया है कि परावर्तन निम्नलिखित नियमों के अनुसार होता है।

(१) परावर्तन कोण सदैव आपतन कोण के बराबर होता है।

(२) आपतित किरण और परावर्तित किरण दोनों एक ही समतल में स्थित होती हैं और आपतन बिन्दु पर का अभिलम्ब भी इसी धरातल में दोनों किरणों के बीच में स्थित होता है।

इन नियमों से यह भी स्पष्ट है कि यदि आपतित किरण अभिलम्बतः ही दर्पण पर गिरे तो परावर्तित होकर वह पुनः अभिलम्बतः ही लौट जावेगी।

१८७—नियमों की परीक्षा। आलेख्य-पट्ट पर एक सफ़ेद काग़ज़ लगाकर पिनों से स्थिर कर दो। तब एक समतल दर्पण उस पर इस प्रकार रखो कि वह काग़ज़ से समकोण बनावे (चित्र १२३)। दर्पण के सम्मुख दो बिन्दु
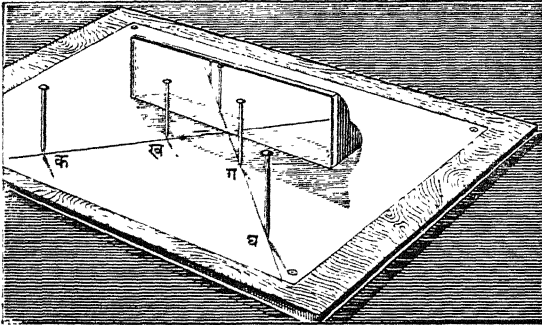
चित्र १२३

क और ख ऐसे लो कि उन्हें जोड़नेवाली रेखा दर्पण के बीच में जाकर पड़े। इन पर दो पिनें सीधी गाड़ दो। दर्पण में दोनों पिनों के प्रतिबिम्ब दिखलाई देंगे। आँख को इधर-उधर हटाने से एक प्रतिबिम्ब दूसरे के ठीक पीछे आ जावेगा। ऐसी ही जगह आँख को स्थिर रख कर दो पिनें और इस प्रकार गाड़ो कि ये दोनों तथा क और ख के प्रतिबिम्ब चारों एक ही सीध में मालूम हों। अब यह स्पष्ट है कि जो किरण क से चल कर हमारे नेत्र में पहुँचती उसे यथाक्रम ख, ग और घ रोक लेते हैं। अतः इस किरण का मार्ग

कखगघ हुआ। अर्थात् यदि काग़ज़ पर क ख को जोड़नेवाली रेखा खींच दें तो वह आपतित किरण का मार्ग बतलावेगी और ग घ को जोड़नेवाली रेखा परावर्तित किरण का। दर्पण के जिस धरातल पर क़लई है उसका स्थान प्रदर्शित करने के लिए भी काग़ज़ पर एक रेखा खींच दो। कख और गघ दोनों इस रेखा के समीप ही अ बिन्दु पर मिलेंगी। इस बिन्दु में से दर्पण की रेखा पर लम्ब खींचो और आपतन और परावर्तन कोणों को कोण-मापक से नाप लो। ज्ञात होगा कि दोनों बराबर हैं। इसी प्रकार क से भिन्न भिन्न दिशाओं में किरणें खींच कर देखने से परावर्तन के नियमों की सत्यता सिद्ध हो जायगी।

१८८—प्रतिबिम्ब का स्थान। इन नियमों की सहायता से यह सहज ही समझ में आ जाता है कि परावर्तन के द्वारा प्रतिबिम्ब कैसे और कहाँ बनता है। मान लीजिये कि चित्र १२४ में दद' दर्पण है और क एक दीप्त बिन्दु। क से चारों ओर जो किरणें निकलती हैं उनमें से कख और कग कोई भी दो किरणें समझो। ये किरणें परावर्तित होकर खघ और गच मार्ग से नेत्र न१ में पहुँचती हैं। यह बतलाया जा चुका है कि दीप्त बिन्दु उसी दिशा में दिखलाई देता है जिस दिशा
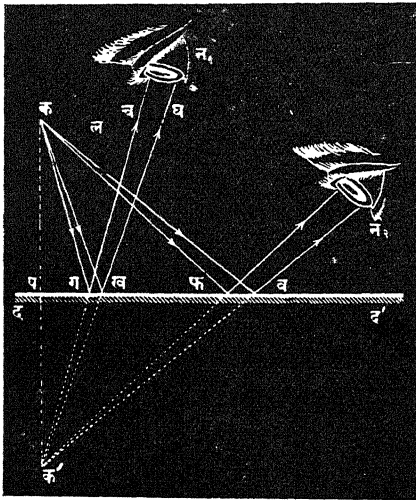
चित्र १२४

में आकर किरणें नेत्र में प्रवेश करती हैं। अतः बिन्दु क, नेत्र को घख दिशा में दिखलाई देगा और चग में भी। अर्थात् वह इन दोनों के छेदन बिन्दु

क′ पर स्थित मालूम होगा। क′ ही क का प्रतिबिम्ब है। ख पर खल दर्पण पर लम्ब खींच लो। और क क′ को जोड़ दो। यह रेखा दर्पण से प पर मिलेगी।

अब ∠ कखल = ∠ घखल

∴ ∠ कखप = ∠ घखद′ = ∠ क′खप

और इसलिए ∠ कखग = ∠ क′खग

ऐसे ही ∠ कगख = ∠ क′गख

अब कखग और क′गख इन दोनों त्रिकोणों में खग पार्श्व उभयनिष्ठ हैं और

∠ कखग = ∠ क′खग तथा ∠ कगख = ∠ क′गख

अतः △ कखग = △ क′खग

और कख = क′ख

अब त्रिकोण कखप और क′खप लीजिए। इनमें

कख = क′ख

पख उभयनिष्ठ

और ∠ कखप = ∠ क′खप

अतः यह दोनों त्रिकोण भी बराबर हैं। अर्थात्

कप = क′प

तथा ∠ कपख = ∠ क′पख = एक समकोण।

इससे प्रमाणित हुआ कि दीप्त बिन्दु से जो अभिलम्ब दर्पण पर गिराया जाता है उसी पर प्रतिबिम्ब बनता है और उसकी दूरी दर्पण से उतनी ही होती है जितनी कि दीप्त बिन्दु की। क की जितनी भी किरणें दर्पण पर पड़ेंगी वे सभी परावर्तित होकर क′ से आती हुई जान पड़ेंगी।

१८९—किरणें खींचने की विधि। यदि नेत्र किसी दूसरे स्थान $न_२$ पर हो तो उसे प्रतिबिम्ब किन किरणों से दिखलाई पड़ेगा यह भी चित्र १२४

में दिखाया गया है। इन किरणों को खींचने के लिए पहले एक रेखा के द्वारा नेत्र को प्रतिबिम्ब क′ से जोड़ दो। यह रेखा दर्पण को फ पर काटेगी। क को फ से जोड़ दो स्पष्ट है कि किरण कफ परावर्तित होकर फन₂ मार्ग से नेत्र में पहुँचती है और इसी से क′ दिखाई देता है।
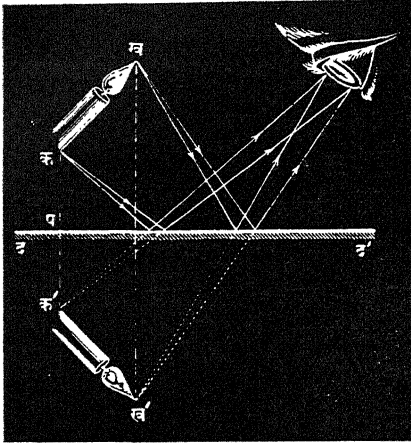
चित्र १२५

१९०—बड़ी वस्तु का प्रतिबिम्ब।

चित्र १२५ में दर्पण दद′ के सामने दीप्त वस्तु कख रखी है। क से दर्पण पर अभिलम्ब कप डाल कर उसे क′ तक बढ़ाओ ताकि कप = क′प। तब क′ ही क का प्रतिबिम्ब होगा। इसी प्रकार ख′ भी ख का प्रतिबिम्ब होगा। क′ ख′ को जोड़ दो। यही कख का प्रतिबिम्ब होगा। जिन किरणों से यह प्रतिबिम्ब नेत्र को दिखलाई देगा वे भी उपर्युक्त रीति से खींच कर चित्र में दिखलाई गई हैं।

प्रतिबिम्ब जिस रीति से खींचा गया है उससे निम्नलिखित दो बातें भी स्पष्ट हैं :—

(१) प्रतिबिम्ब क′ख′ विस्तार में बिलकुल कख के बराबर है।

(२) वस्तु के सम्मुख खड़े होने पर जो भाग हमारे बाईं ओर होता वह प्रतिबिम्ब में दाहिनी ओर दिखलाई देता है और जो दाहिनी ओर होता वह बाईं ओर अर्थात् परावर्तन से वस्तु का पार्श्विक उत्क्रमण हो जाता है। पुस्तक के अक्षरों का प्रतिबिम्ब देखने से यह बात

स्पष्ट हो जायगी। स्याही से लिख कर सोख़्ते से सुखाने पर सोख़्ते पर जिस प्रकार के अक्षर दिखलाई देते हैं वैसे ही दर्पण में दिखलाई देंगे (चित्र १२६)। यदि हम सोख़्ते के उलटे अक्षरों का प्रतिबिम्ब दर्पण में देखें तो अक्षर बिलकुल सीधे नज़र आवेंगे।

चित्र १२६

१९१—दो दर्पणों से परावर्तन। यदि किसी वस्तु के पास दो दर्पण रखे हों तो प्रत्येक दर्पण में उसका एक एक प्रतिबिम्ब तो दिखलाई दे होगा। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि एक दर्पण द्वारा परावर्तित किरणें दूसरे दर्पण पर जा पड़ें। यहाँ उनका पुनः परावर्तन होकर एक और प्रतिबिम्ब बन जायगा। इस प्रकार दो दर्पणों से अनेक प्रतिबिम्ब बन सकते हैं। इनकी संख्या दर्पणों के बीच के कोण पर निर्भर है।

चित्र १२७

चित्र १२७ में यह कोण समकोण है। $क_1$ और $क_2$ तो साधारण प्रतिबिम्ब हैं जो नेत्र को केवल एक ही बार परावर्तित किरणों से दिखलाई देते हैं। किन्तु जो किरण कखगन एक दर्पण
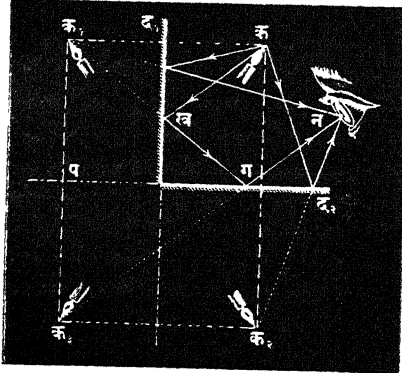
से परावर्तित होकर दूसरे पर जा पड़ती है और वहाँ से पुनः परावर्तित होकर नेत्र में प्रवेश करती है उसके द्वारा एक और प्रतिबिम्ब क$_{३}$ दिखलाई देगा। यह स्पष्ट है कि इस प्रतिबिम्ब को बनानेवाली किरणें दर्पण द$_{२}$ पर इस प्रकार पड़ती हैं मानों वे सब क$_{१}$ से आ रही हों। अतः क$_{३}$ को क$_{१}$ का ही प्रतिबिम्ब कहना चाहिए। और उसका स्थान भी क$_{१}$ से द$_{२}$ पर अभिलम्ब डाल कर क$_{३}$प को क$_{१}$प के बराबर करने से मिलेगा। इसी
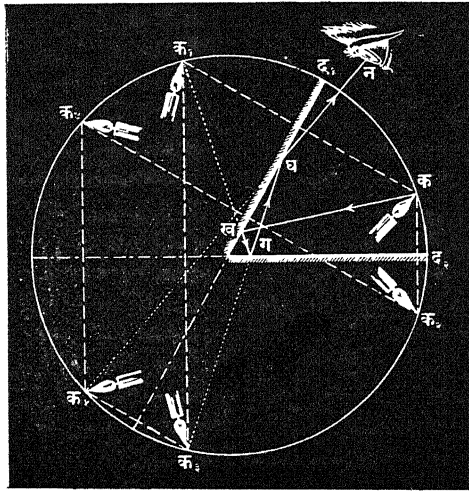
चित्र १२८

प्रकार जो किरणें पहले द$_{२}$ से परावर्तित होकर तब द$_{१}$ से परावर्तित होंगी वे भी एक और प्रतिबिम्ब बनावेंगी जिसे हम द$_{१}$ में क$_{२}$ का प्रतिबिम्ब कह सकते हैं। किन्तु दर्पणों के बीच का कोण सम होने के कारण ये दोनों प्रतिबिम्ब एक ही स्थान पर पड़ेंगे। क$_{३}$ का अब और कोई प्रतिबिम्ब नहीं बन सकता क्योंकि वह दोनों में से किसी दर्पण के सम्मुख नहीं है। अतः इन दर्पणों से हम केवल ३ प्रतिबिम्ब देख सकते हैं।

चित्र १२८ में दोनों दर्पणों के बीच का कोण ६०° का है। इसमें पांच प्रतिबिम्ब बने हैं। केवल अन्तिम प्रतिबिम्ब ही की किरणें दिखलाई गई हैं।

ज्यों ज्यों दर्पणों के बीच का कोण छोटा होता जायगा त्यों त्यों प्रतिबिम्बों की संख्या भी बढ़ती जायगी। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि यदि
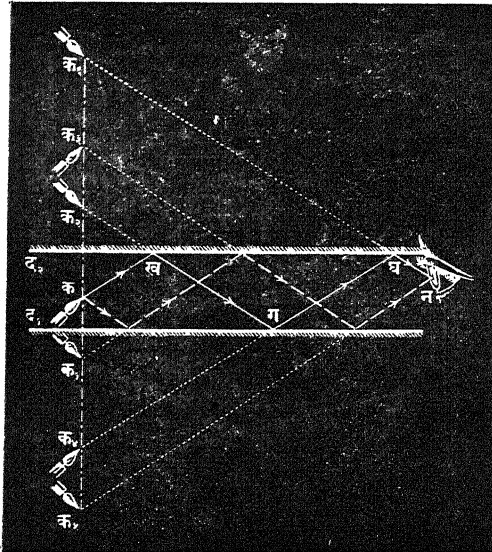
चित्र १२९

कोण अ° का हो तो यह संख्या $\frac{३६०}{अ} - १$ होगी। जब कोण शून्य अंश का हो अर्थात् दर्पण समानान्तर हों तो स्पष्ट है कि प्रतिबिम्बों की संख्या अनन्त हो जायगी क्योंकि कोई भी प्रतिबिम्ब ऐसा न बनेगा जो किसी न किसी दर्पण के सम्मुख न हो। यह सच है कि अधिक बार परावर्तन होने के

कारण किरणों का प्रकाश इतना घट जायगा कि हम बहुत अधिक प्रतिबिम्ब न देख सकेंगे। और जो दिखलाई देंगे उनकी कांति भी उत्तरोत्तर क्षीण मालूम होगी। कमरे में आमने सामने की दीवारों पर दो बड़े दर्पण लटका कर बीच में खड़े होकर यह दृश्य आसानी से देखा जा सकता है।

१९२—बहुरूपदर्शक। इस यन्त्र में एक नली में दो लम्बे दर्पण ६०° के कोण पर रखे होते हैं। नली का सिरा घर्षित काँच के द्वारा बन्द कर दिया जाता है और उस पर भिन्न भिन्न रंगों के काँच के छोटे छोटे पाँच सात टुकड़े रख दिये जाते हैं। दूसरे सिरे पर आंख रख कर नली में झाँकने से प्रत्येक टुकड़े के पाँच पाँच प्रतिबिम्ब दिखलाई देते हैं। इससे एक सुन्दर चित्र बन जाता है। नली को घुमाने से उन टुकड़ों का स्थान बदल जाता
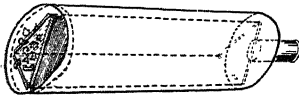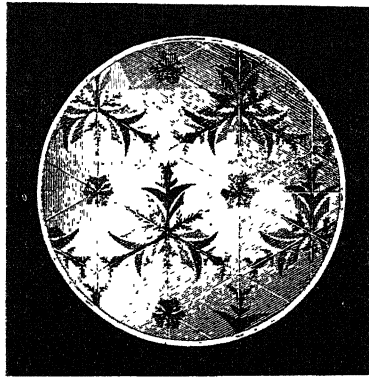
चित्र १३०

चित्र १३१

है और एक नवीन प्रकार का चित्र बन जाता है। इस प्रकार जितनी बार नली को घुमावेंगे उतनी ही बार नये चित्र दिखलाई देंगे (चित्र १३१)।

प्रश्न

(१) परावर्तन और परिक्षेपण में क्या अन्तर है ? खुरदरे काँच में प्रतिबिम्ब क्यों नहीं दिखलाई देता ?

(२) प्रतिबिम्ब किसे कहते हैं ? उसका स्थान समतल दर्पण में कहाँ होता है ?

(३) समतल दर्पण के सामने अक्षर ट रखा है। चित्र में प्रतिबिम्ब और वे किरणें दिखलाओ जिनसे प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है।

(४) यदि दो दर्पणों के बीच का कोण (१) ९०° (२) ६०° (३) ४५° हो तो एक वस्तु के प्रतिबिम्बों की संख्या बताओ। अन्तिम स्थिति में अन्तिम प्रतिबिम्ब बनानेवाली एक किरण का मार्ग चित्र में दिखलाओ।

(५) यदि कोई किरण समतल दर्पण पर पड़ रही हो और हम दर्पण को अ° घुमा दें तो प्रमाणित करो कि परावर्तित किरण २अ° घूम जायगी।

(६) दीवार पर लटके हुए दर्पण मे नजदीक जाने से कमरे का अधिक भाग क्यों दिखलाई देता है ?

(७) मनुष्य अपनी उँचाई से आधी लम्बाईवाले दर्पण में अपना सारा शरीर कैसे देख सकता है ?

(८) समतल दर्पण में जो प्रतिबिम्ब बनता है उसका विस्तार वस्तु के विस्तार के ठीक बराबर होता है यह बात प्रमाणित करो।

(९) दो परावर्तक पृष्ठों पर दो समानान्तर किरणें पड़ती हैं। परावर्तित किरणों के बीच का कोण ११०° पाया जाता है। तो बताओ उन परावर्तक पृष्ठों के बीच का कोण कितना था ?

परिच्छेद २०

गोलीय दर्पणों से प्रकाश का परावर्तन

१९३—गोलीय दर्पण। अब तक जिस दर्पण का वर्णन किया गया है उसका धरातल सम था। किन्तु कई दर्पण वक्र धरातल वाले भी होते हैं। जिनका धरातल गोल के पृष्ठ का भाग समझा जा सके उन्हें गोलीय दर्पण कहते हैं। चित्र १३२ में दद' ऐसा ही दर्पण है। वह गोल तदधद' का भाग है। इस गोल के केन्द्र क को दर्पण का **वक्रताकेन्द्र** कहते हैं और दर्पण के मध्य बिन्दु ध को उसका **ध्रुव** कहते हैं। क ध दर्पण की **अक्ष** है। यदि प्रकाश केन्द्र की ओर से दद' पर पड़े और उसका परावर्तन दर्पण के नत भाग से हो तब तो दर्पण **नतोदर** कहलाता है। और यदि प्रकाश दूसरी ओर से आवे और उन्नत भाग से परावर्तन हो तो वह **उन्नतोदर** कहलाता है।
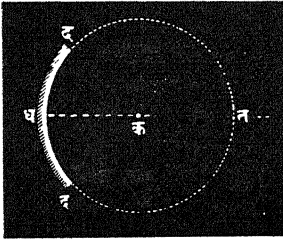
चित्र १३२

यह तो स्पष्ट ही है कि गोलीय दर्पण का कोई भी छोटा सा भाग समतल समझा जा सकता है और केन्द्र से उस भाग तक जो रेखा खींची जाय वह दर्पण पर अभिलम्ब रूप होती है। अतः प्रकाश-परावर्तन के जो नियम समतल दर्पण के लिए दिये गये हैं उन्हीं की सहायता से गोलीय दर्पण से

परावर्तित होनेवाली किरण का मार्ग भी जाना जा सकता है। चित्र १३३ में दर्पण की अक्ष पर एक दीप्त बिन्दु व है। वख एक आपतित किरण है और आपतन बिन्दु ख को केन्द्र क से जोड़नेवाली रेखा खल वहाँ पर अभिलम्ब है। आपतन कोण वखल के बराबर परावर्तन कोण लखग बनाया गया है। अतः खग ही परावर्तित किरण है। यह किरण अक्ष पर के प्र
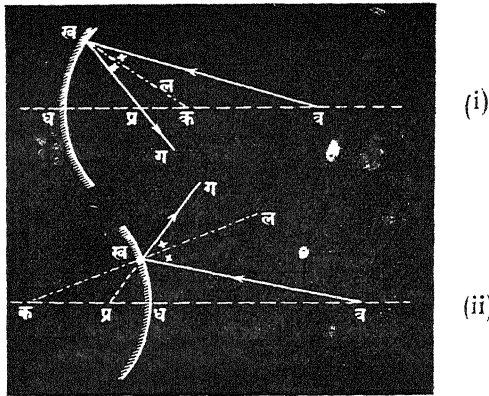
चित्र १३३

बिन्दु से आती हुई जान पड़ेगी। यदि दर्पण का मुख-व्यास दद' (चित्र १३२) उसकी त्रिज्या कघ की अपेक्षा छोटा हो तो ज्यामिति द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि वख के अतिरिक्त व की प्रत्येक किरण परावर्तित होकर प्र से आती हुई जान पड़ेगी (चित्र १३४)। अतः प्र ही व का प्रतिबिम्ब हुआ।

१९४—वास्तविक तथा काल्पनिक प्रतिबिम्ब। इस प्रतिबिम्ब के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है। नतोदर दर्पण के चित्र (१३४-i) में तो परावर्तित किरणें सचमुच प्र में से होकर निकलती हैं। व की समस्त किरणें दर्पण से लौट कर पुनः प्र पर एकत्र हो जाती हैं। और

यदि वहाँ कागज़ का टुकड़ा रखें तो उस पर इन सब किरणों का प्रकाश एकत्रित देख पड़ेगा। प्र दीप्त बिन्दु का **वास्तविक** प्रतिबिम्ब है। किन्तु उन्नतोदर दर्पण के चित्र (१२४-ii) में ऐसा नहीं है। इसमें प्र दर्पण के पीछे की ओर है और उस तक कोई भी किरण नहीं पहुँचती। वहाँ कागज़
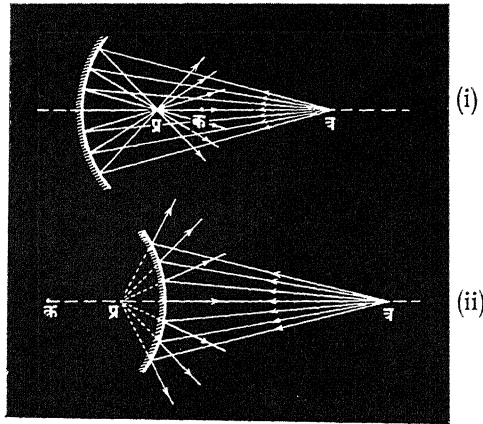
चित्र १२४

रखने से उस पर कुछ भी प्रकाश न पड़ सकेगा। किन्तु परावर्तित किरणों को यदि पीछे की ओर बढ़ावें तो वे अवश्य प्र पर जा मिलेंगी। अतः नेत्र में पहुँचने पर यह सब प्र ही से आती हुई मालूम होंगी। प्र दीप्त बिन्दु का प्रतिबिम्ब अवश्य है किन्तु वह **काल्पनिक** है वास्तविक नहीं। समतल दर्पण का प्रतिबिम्ब भी इसी प्रकार का काल्पनिक होता है।

१९५—प्रतिबिम्ब का स्थान। ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि यदि दीप्त बिन्दु अक्ष पर स्थित हो तो प्रतिबिम्ब भी अक्ष पर ही बनता

है। किन्तु दर्पण से वह कितनी दूरी पर बनता है इसका हिसाब समतल दर्पण के समान सीधा नहीं है। मान लीजिए कि

व = दर्पण से दीप्त वस्तु की दूरी।
प्र = ,, ,, प्रतिबिम्ब ,, ,,।
त्र = ,, ,, वक्रता केन्द्र की दूरी अर्थात्
दर्पण की त्रिज्या की लम्बाई

तब ज्यामिति द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है कि नतोदर और उन्नतोदर दोनों ही प्रकार के दर्पणों में

$$\frac{१}{प्र} + \frac{१}{व} = \frac{२}{त्र} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

इस सूत्र को व्यवहार में लाने के लिए दो बातें ध्यान में रखना चाहिए :—

(१) दूरी नापने का आरम्भ सदा दर्पण से किया जाता है।

(२) जिस दिशा में आकर प्रकाश दर्पण पर पड़ता है उसी दिशा में नापी हुई दूरी ऋणात्मक समझी जाती है और उससे विपरीत दिशा में नापी हुई धनात्मक। इस हिसाब से चित्र १३४-i में व, प्र और त्र तीनों ही धनात्मक हैं किन्तु चित्र १३४-ii में व तो धनात्मक है और प्र तथा त्र दोनों ऋणात्मक हैं।

१९६—नाभि। इस सूत्र का एक परिणाम विशेष महत्त्व का है। यदि दीप्त वस्तु अनन्त दूरी पर हो तो दर्पण पर पड़नेवाली सब किरणें समानान्तर होंगी। इस दशा में

$$\frac{१}{व} = ०$$

$$अतः\ प्र = \frac{त्र}{२}$$

अर्थात् प्रतिबिम्ब दर्पण और केन्द्र के मध्यबिन्दु पर बनेगा। इस बिन्दु को नाभि कहते हैं। और दर्पण से नाभि की दूरी को नाभ्यन्तर कहते हैं।

इसका परिमाण दर्पण की त्रिज्या से आधा होता है। यदि यह 'न' के द्वारा व्यक्त किया जाय तो सूत्र (१) यों लिखा जा सकता है:—

$$\frac{१}{प्र} + \frac{१}{व} = \frac{१}{न} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (२)$$

स्मरण रखना होगा कि नतोदर दर्पण का नाभ्यन्तर धनात्मक होता है और उन्नतोदर दर्पण का ऋणात्मक।

अक्ष से समानान्तर चलनेवाली किसी भी किरण का परावर्तित मार्ग
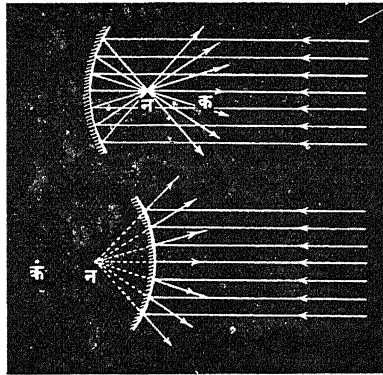
चित्र १३५

जानने का सुगम उपाय यही है कि आपतन विन्दु को नाभि से जोड़ दो। यही परावर्तित किरण होगी। विपरीत इसके यदि कोई किरण नाभि में से निकल कर दर्पण पर पड़ी हो तो वह परावर्तित होकर अक्ष से समानान्तर दिशा में चलेगी।

१९७—नाभ्यन्तर नापने की रीति। नतोदर दर्पण को सूर्य के सम्मुख करके इस प्रकार रखो कि सूर्य की किरणें अक्ष से समानान्तर हों। छोटे से काग़ज़ पर सूर्य का प्रतिबिम्ब गिराओ और काग़ज़ को आगे पीछे

हटा कर देखो कि कहाँ सबसे अच्छा प्रतिबिम्ब बनता है। दर्पण से इस स्थान की दूरी नाप लो! यही नाभ्यन्तर है। ३० या ४० फ़ुट की दूरी पर रखे हुए दीपक का प्रतिबिम्ब भी अँधेरी कोठरी में इसी प्रकार काग़ज़ पर देखा जा सकता है। उसकी दूरी भी प्रायः नाभ्यन्तर के बराबर ही होती है। इसके अतिरिक्त दीपक को दर्पण के निकट रख कर भी नाभ्यन्तर नापा जा सकता है। किन्तु इस दशा में केवल प्रतिबिम्ब की दूरी नापने से काम न चलेगा। दीपक की दूरी भी नापना होगा। तब उपर्युक्त सूत्र में व तथा प्र का मूल्य लिख कर न का मूल्य निकालना पड़ेगा। उन्नतोदर दर्पण का नाभ्यन्तर इस रीति से नहीं नापा जा सकता क्योंकि उसके प्रतिबिम्ब काल्पनिक होते हैं।

१९८—प्रतिबिम्ब की रचना। यों तो परावर्तन के नियमानुसार दीप्त बिन्दु से निकलनेवाली कोई भी दो किरणों का परावर्तित मार्ग खींच कर हमें प्रतिबिम्ब के स्थान का पता चल सकता है। किन्तु नीचे लिखी विधि से बिना कोण आदि नापे ही सहज में प्रतिबिम्ब खींचा जा सकता है।

चित्र १२६
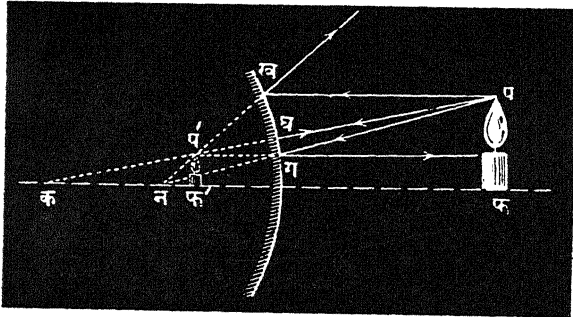
चित्र १२६ और १२७ में पफ दीप्त वस्तु है। प से अक्ष से समानान्तर चलनेवाली किरण पख खींचो। परावर्तित होकर यह नाभि
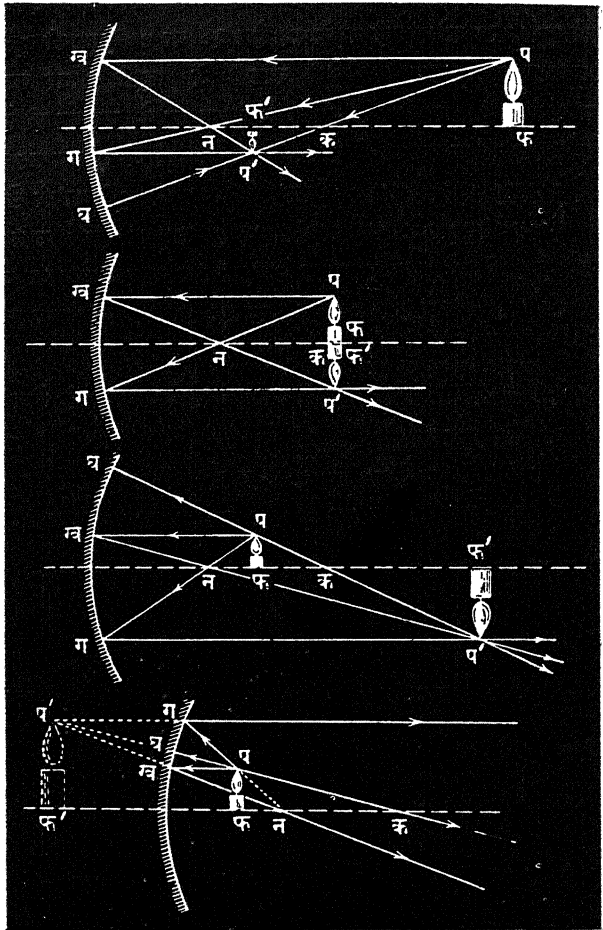
चित्र १२७

न में से निकलेगी। दूसरी किरण पव केन्द्र क में होकर खींचो। यह दर्पण पर अभिलम्बतः पड़ेगी और जिस मार्ग से आई थी उसी से लौट जायगी। दोनों परावर्तित किरणें प' पर मिलेंगी। अतः प' ही प का प्रतिबिम्ब हुआ। इसी प्रकार फ' भी फ का प्रतिबिम्ब है। प और फ के बीच के विन्दुओं के प्रतिबिम्ब भी प' और फ' के बीच में बनेंगे। इसलिए प'फ' ही दीप्त वस्तु का प्रतिबिम्ब है।

इन चित्रों तथा प्रतिबिम्ब खींचने की विधि से स्पष्ट है कि उन्नतोदर दर्पण में तो दीप्त वस्तु चाहे कहीं भी रखी हो उसका प्रतिबिम्ब सदा काल्पनिक, सीधा और छोटा बनेगा। वह दर्पण के पीछे दिखलाई देगा और दर्पण से उसकी दूरी नाभ्यन्तर की अपेक्षा सदा कम ही होगी (चित्र १३६)।

किन्तु नतोदर दर्पण में प्रतिबिम्ब कई प्रकार के बनते हैं। जब तक दीप्त वस्तु केन्द्र से परे हो तब तक तो प्रतिबिम्ब वास्तविक, उलटा और छोटा बनेगा तथा उसका स्थान नाभि और केन्द्र के बीच में होगा (चित्र १३७-i)। यदि वह केन्द्र ही पर स्थित हो तो प्रतिबिम्ब भी केन्द्र ही पर बनेगा और विस्तार में वह दीप्त बिन्दु के बराबर हो जायगा (चित्र १३७-ii)। यदि दीप्त वस्तु केन्द्र और नाभि के बीच में स्थित हो तो भी प्रतिबिम्ब वास्तविक और उलटा किन्तु बड़ा बनेगा और उसका स्थान केन्द्र से परे रहेगा (चित्र १३७-iii) किन्तु यदि वस्तु दर्पण से इतने निकट रख दी जाय कि वह नाभि और दर्पण के बीच में हो तब तो प्रतिबिम्ब काल्पनिक और सीधा बन जायगा। वह दर्पण के पीछे की ओर होगा (चित्र १३७-iv)।

अँधेरी कोठरी में मोमबत्ती और सफ़ेद कागज़ का पर्दा लेकर ऊपर लिखी हुई सब बातों की परीक्षा हो सकती है। मोमबत्ती को नतोदर दर्पण से बहुत दूर रख कर दर्पण की ओर दूर से देखने पर बत्ती का उलटा और छोटा चित्र स्पष्ट देख पड़ेगा। उस चित्र को पर्दे पर ग्रहण कर लो। पर्दे को आगे पीछे हटाने से एक स्थान पर यह चित्र बहुत स्पष्ट हो जायगा। यही चित्र का वास्तविक स्थान है। अब ज्यों ज्यों मोमबत्ती को दर्पण के निकट खिसकावेंगे त्यों त्यों प्रतिबिम्ब को स्पष्ट रखने के लिए पर्दे को दर्पण से दूर हटाना

होगा और प्रतिबिम्ब भी अधिक बड़ा दिखलाई देगा। जब बत्ती नाभि से भी निकट आ जायगी तब पर्दे पर कोई चित्र न दिखलाई देगा। किन्तु पर्दे को हटा कर ख़ाली नेत्र से देखने पर उसका बड़ा और सीधा प्रतिबिम्ब दर्पण के अन्दर की ओर देख पड़ेगा। अन्तिम बात तो नतोदर दर्पण में अपने मुख का बड़ा प्रतिबिम्ब देखने ही से स्पष्ट हो जाती है। उन्नतोदर दर्पण में मुख छोटा दिखलाई देगा।

१९९—प्रतिबिम्ब का विस्तार। ऊपर के चित्रों से यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि प्रत्येक दशा में

$$\frac{प'फ'}{पफ} = \frac{प्र}{व}$$

$$\text{अर्थात्} \quad \frac{\text{प्रतिबिम्ब की लम्बाई}}{\text{दीप्त वस्तु की लम्बाई}} = \frac{\text{दर्पण से प्रतिबिम्ब की दूरी}}{\text{दर्पण से वस्तु की दूरी}}$$

इस निष्पत्ति का नाम अभिवर्धन है जब इसका परिमाण १ से अधिक हो तब तो प्रतिबिम्ब बड़ा होता है अन्यथा छोटा।

प्रश्न

(१) बिना स्पर्श किये कैसे जानोगे कि दर्पण नतोदर है या उन्नतोदर ?

(२) नतोदर दर्पण का नाभ्यन्तर नापने का सबसे सरल उपाय क्या है ?

(३) वास्तविक और काल्पनिक प्रतिबिम्बों मे क्या भेद है ? नतोदर दर्पण से दोनों प्रकार के और उन्नतोदर से एक ही प्रकार के प्रतिबिम्ब कैसे बनते हैं ? यह चित्र खींच कर समझाओ ?

(४) दीवार से ३ .फुट दूर पर एक दीपक रखा है। यदि दीवार पर उसका बहुत बड़ा प्रतिबिम्ब बनाना चाहो तो कैसा दर्पण चाहिए, उसका नाभ्यन्तर कितना होना चाहिए और उसे कहाँ रखना होगा ?

(५) ३ सम० लम्बी वस्तु ३० सम० त्रिज्यावाले उन्नतोदर दर्पण से १० सम० दूर रखी है। बताओ प्रतिबिम्ब कहाँ और कैसा बनेगा तथा वह कितना बड़ा होगा ?

(६) एक नतोदर दर्पण का नाभ्यन्तर ६″ है और दीप्त वस्तु उससे ९″ दूर रखी है। चित्र के द्वारा प्रतिबिम्ब का स्थान, आकार आदि मालूम करो।

(७) यदि दर्पण से दीप्त वस्तु २० सम० दूर हो और उसका प्रतिबिम्ब दर्पण से ४० सम० पर बने तो दर्पण कैसा है और उसका नाभ्यन्तर कितना है ?

(८) एक नतोदर दर्पण का नाभ्यन्तर १२″ है। और उसके द्वारा हम वस्तु का ऐसा प्रतिबिम्ब बनाना चाहते हैं जिसकी लम्बाई वस्तु से ४ गुणी अधिक हो। बताओ वस्तु दर्पण से कितनी दूर रखी जावे यदि प्रतिबिम्ब (१) काल्पनिक बनाना हो, (२) वास्तविक बनाना हो।

(९) १ सम० लम्बी वस्तु १५ सम० नाभ्यन्तरवाले नतोदर दर्पण के सामने रखी है। यदि दोनों के बीच की दूरी क्रमशः ८, १८, और ३६ सम० हो तो प्रतिबिम्ब का स्थान और आकार बतलाओ।

(१०) ९ वें प्रश्न में यदि दर्पण उन्नतोदर हो तो क्या होगा ?

परिच्छेद २१

समतल पृष्ठ से प्रकाश का वर्तन

२००—**वर्तन**। जब तक प्रकाश किसी एक ही पदार्थ में चलता है तब तक तो वह सीधी रेखा में ही गमन करता है किन्तु जब वह एक पदार्थ से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है तब हम देख चुके हैं कि वह कुछ मुड़ जाता है। यदि दोनों पदार्थों के बीच का धरातल खुरदरा न हो तो यह मुड़ना नियमबद्ध होता है और उसे **वर्तन** कहते हैं।

चित्र १३८
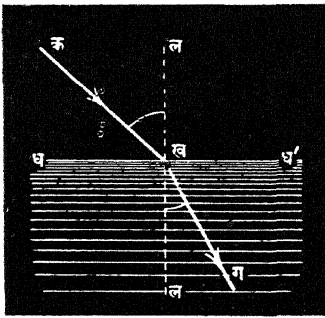
चित्र १३८ में धध' ऐसा सम धरातल है इसके ऊपर की ओर वायु है और नीचे की ओर कांच। एक किरण कख इस पर आकर पड़ती है और कांच में प्रवेश करते ही मुड़ कर खग मार्ग पर चलने लगती है। कख को आपतित किरण कहते हैं और खग को वर्तित किरण। लखल' मध्यवर्त्ती तल धध' पर अभिलम्ब है। कखल आपतन कोण है और गखल' वर्तन कोण।

२०१—**वर्तन के नियम**। वर्तन के नियम निम्नलिखित हैं :—

(१) आपतित किरण और वर्तित किरण दोनों एक ही सम धरातल में स्थित होती हैं और आपतन बिन्दु पर का लम्ब भी इसी धरातल में होता

हैं। आपतित किरण लम्ब के एक ओर होती है और वर्तित किरण दूसरी ओर।

(२) आपतन और वर्तन कोणों की ज्याओं* की निष्पत्ति स्थिर होती है। अर्थात् आपतन कोण का परिमाण चाहे कितना ही क्यों न हो वर्तन सदा ऐसा होगा कि

$$\frac{\text{आपतन कोण की ज्या}}{\text{वर्तनकोण की ज्या}} = \text{स्थिर} = \text{व}$$

इस निष्पत्ति व का मूल्य वर्तक तल के दोनों ओर के पदार्थों पर निर्भर है।

---

* **ज्या की परिभाषा**—यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि ज्या किसे कहते हैं। मान लीजिए कि कखल कोई कोण है (चित्र १३९)। इसकी
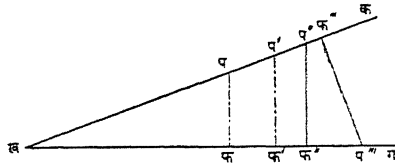
चित्र १३९

दोनों भुजाओं में से किसी भी भुजा पर कोई भी बिन्दु प लीजिए। प से एक अभिलम्ब पफ दूसरी भुजा पर डालिए। तब पफ और खप की निष्पत्ति को ज्या कहते हैं। अर्थात्

$$\text{ज्या} \angle \text{कखल} = \frac{\text{पफ}}{\text{खप}}$$

यह प्रकट ही है कि प चाहे ख से कितनी ही दूर लिया जाय (यथा प′, प,″ प,‴) और चाहे किसी भी भुजा पर लिया जाय $\frac{\text{पफ}}{\text{खप}}$ का मूल्य उतना ही रहेगा। हाँ यदि कोण बड़ा या छोटा कर दिया जाय तो इस निष्पत्ति का मूल्य भी बदल जाता है। अतः इस निष्पत्ति अथवा ज्या को भी हम एक प्रकार का कोण का नाप ही समझ सकते हैं।

उनमें से एक भी पदार्थ बदल देने से तुरन्त व का मूल्य बदल जाता है। यथा यदि प्रकाश हवा से जल में प्रवेश करे तो व = $\frac{४}{३}$; काँच से हवा के लिए व = $\frac{२}{३}$; पानी से कांच के लिए व = $\frac{९}{८}$; हीरे से कांच के लिए व = $\frac{५}{३}$ इत्यादि।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि जब व का मूल्य १ से अधिक होगा तो आपतन कोण वर्तन कोण की अपेक्षा बड़ा होगा। अर्थात् वर्तन के कारण किरण अभिलम्ब की ओर मुड़ जायगी। विपरीत इसके जब व का मूल्य १ से कम होगा तो किरण अभिलम्ब से दूर हट जायगी। साधारणतया अधिक घनत्ववाले पदार्थ में किरण अभिलम्ब की ओर अधिक झुकी रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि जब प्रकाश अधिक घनत्ववाले पदार्थ में प्रवेश करता है तब तो वह अभिलम्ब की ओर मुड़ जाता है और जब वह कम घनत्ववाले पदार्थ में घुसता है तब वह अभिलम्ब से अधिक दूर हट जाता है। किन्तु घनत्व का यह सम्बन्ध सर्वथा सत्य नहीं है।

२०२—वर्तनांक। आपतन कोण और वर्तन कोण की ज्याओं की निष्पत्ति व को एक पदार्थ से दूसरे में जाने का वर्तनांक कहते हैं। यथा $\frac{४}{३}$ वायु से जल का वर्तनांक है, $\frac{९}{८}$ जल से काँच का आदि। किन्तु जब प्रकाश शून्य स्थान से निकल कर किसी पदार्थ में प्रवेश करता है तब व का जो मूल्य होता है उसे उस पदार्थ का वर्तनांक कहते हैं।

यहाँ यह भी कह देना उचित जान पड़ता है कि वर्तन का मूल कारण यह है कि प्रकाश भिन्न भिन्न पदार्थों में भिन्न भिन्न वेग से गमन करता है। जब वह एक पदार्थ में से निकल कर किसी दूसरे ऐसे पदार्थ में प्रवेश करता है जिसमें उसका वेग कम हो तब वह पार्थक्य तल के अभिलम्ब की ओर मुड़ जाता है। प्रकाश के तरंगसिद्धान्त को अच्छी तरह से समझ लेने पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि यदि दो पदार्थों में प्रकाश-वेग क्रमशः $प्र_१$ और $प्र_२$ हो तो उपर्युक्त वर्तनांक

$$व = \frac{प्र_१}{प्र_२}$$

अतः यह भी सिद्ध हो जाता है कि यदि शून्य में प्रकाश वेग $प्र_0$ हो तो पदार्थ का वर्तनांक $= \frac{प्र_0}{प्र}$ होगा। किन्तु शून्य के प्रकाश-वेग तथा वायु के प्रकाश-वेग में इतना थोड़ा अन्तर है कि साधारण व्यवहार के लिए हम यह भी कह सकते हैं कि

$$\text{पदार्थ का वर्तनांक} = \frac{प्र\ (\text{वायु})}{प्र}$$

वर्तनांक की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि यदि दो पदार्थों के वर्तनांक क्रमशः $व_१$ और $व_२$ हों तो प्रकाश के पहले पदार्थ से निकल कर दूसरे में जाने का वर्तनांक

$$व = \frac{व_२}{व_१}$$

क्योंकि
$$\frac{व_२}{व_१} = \frac{\frac{प्र_0}{प्र_२}}{\frac{प्र_0}{प्र_१}} = \frac{प्र_१}{प्र_२}$$

और दूसरे से निकल कर पहले में जाने का वर्तनांक

$$व' = \frac{व_१}{व_२} = \frac{१}{व}$$

इससे यह ज्ञात होता है कि हमें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि हम प्रत्येक दो पदार्थों के जोड़े के लिए पृथक् पृथक् वर्तनांक मालूम करें क्योंकि दोनों पदार्थों के पृथक् पृथक् वर्तनांक ज्ञात होने ही से हम गणना-द्वारा एक पदार्थ से दूसरे में जाने का वर्तनांक जान सकते हैं।

निम्नसारिणी में कुछ मुख्य पदार्थों के वर्तनांक दिये गये हैं :—

पदार्थ	वर्तनांक	पदार्थ	वर्तनांक
अभ्रक	१·५७—१·६०	अलकोहाल	१·३६
कांच (क्राउन)	१·५६—१·५२	कार्बन डाइसलफाइड	१·६३
” (फ्लिन्ट)	१·६१—१·६८	कैनाडा बालसम	१·५३
नमक	१·५५	ग्लीसरीन	१·४७
बर्फ़	१·३१	जल	१·३३३
स्फटिक	१·५५	बैंज़ीन	१·५०
हीरा	२·४२	आक्सिजन	१·०००२७
		वायु	१·०००२९
		हाइड्रोजन	१·०००१४

२०३—नियमों की परीक्षा। आलेख्य-पट्ट पर एक सफ़ेद कागज़ लगाकर उस पर एक सरल रेखा खींच दो। तब कांच का एक मोटा सम-

चित्र १४०
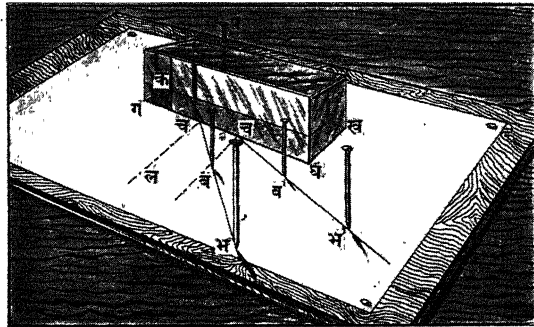
चतुरश्र टुकड़ा जो प्रायः ४ इंच लम्बा ३ इंच चौड़ा और १ इंच मोटा हो

उस कागज़ पर इस प्रकार रखो कि उसका एक लम्बा पार्श्व कख ठीक उस रेखा पर रहे। तब कागज़ पर एक पिन फ चित्र १४० की भांति कख से सटाकर गाड़ दो। कांच के टुकड़े के दूसरे पार्श्व गघ में से यह पिन दिखलाई देगी। आंख को वहीं स्थिर रख कर दो पिन ब,भ इस प्रकार गाड़ दो कि तीनों पिनें ठीक एक ही सीध में मालूम हों। ब भ को सरल रेखा से जोड़ दो। यह गघ से च पर मिलेगी। फच को भी जोड़ दो। इस अवस्था में जो किरण फ से हमारे नेत्र में पहुँचती है उसका मार्ग फचबभ है। फच कांच के अंदर गघ पर आपतित किरण है। और चबभ कांच से बाहिर निकलनेवाली वर्तित किरण का मार्ग है। च में से एक अभिलम्ब लचल′ गघ पर खींचो। आपतन कोण फचल हुआ तथा वर्तन कोण बचल′। इन्हें नाप लो और इनकी ज्याओं का मूल्य गणितीय सारिणी में से देख लो। तब

$$व = \frac{\angle \text{ फचल की ज्या}}{\angle \text{ बचल}' \text{ की ज्या}}$$

इसका मूल्य प्रायः $^2/_3$ निकलेगा। भिन्न भिन्न आपतन कोण बनानेवाली अन्य कई आपतित किरणें खींच कर ठीक इसी भांति उन सबके द्वारा भी व का मूल्य निकालो। प्रत्येक किरण के लिए यह प्रायः $^2/_3$ ही निकलेगा। यही कांच से हवा में जाने का वर्तनांक है।

इसी प्रकार यदि चित्र १४१ के समान दो पिनें प और फ कांच के एक ओर गाड़ दी जायँ और उनके प्रतिबिम्बों की सीध में पिनें ब,भ गाड़ी जायँ तो किरण पफ कांच के अन्दर फच मार्ग से चलकर पुनः वायु में चबभ की दिशा में निकल जाती है। कोण पफल$_१$ और चभल′$_१$ के द्वारा भी वर्तनांक नापा जा सकता है और फचल$_२$ तथा बचल′$_२$ से भी। इन नापों से ज्ञात हो जायगा कि

$$\text{कांच से हवा का वर्तनांक} = \frac{२}{३} = \frac{१}{\frac{३}{२}} = \frac{१}{\text{कांच का वर्तनांक}}$$

आप यह भी देखेंगे कि $\angle$ पफल$_१$ = $\angle$ बचल′$_२$। और इसलिए आपतित किरण पफ और वर्तन के बाद कांच में से बाहिर निकलनेवाली निर्गत

किरण बभ समानान्तर हैं। अतः प्रमाणित हुआ कि किसी समानान्तर पार्श्ववाली वस्तु में से निकलने पर किरण की दिशा पुनः वही हो जाती है जो उसमें प्रवेश करने के पूर्व होती है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि ये दोनों किरणें एक ही सरल रेखा पर स्थित होती हैं। चित्र से स्पष्ट है कि समानान्तर होने पर भी दोनों रेखायें भिन्न भिन्न हैं। अर्थात् किरण का पार्श्विक स्थानान्तर तो हो गया है किन्तु कोणीय विचलन नहीं हुआ।
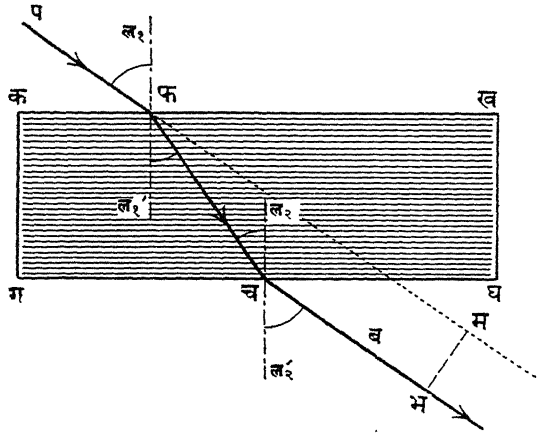
चित्र १४१

२०४—वर्तित किरण खींचने की युक्ति। यों तो वर्तन के नियम के अनुसार आपतन कोण को नापकर वर्तन कोण का मूल्य ज्ञात हो सकता है और तब वर्तित किरण भी खींची जा सकती है। किन्तु रेखागणित की सहायता से यह कार्य कुछ सरल हो जाता है। मान लो कि कख एक किरण है (चित्र १४२) जो वायु से काँच में घुस रही है और काँच का वर्तनांक है $\frac{३}{२}$। ख को केन्द्र मानकर एक वृत्त खींचो जो आपतित किरण को क पर काटे। क से वर्तक धरातल पर एक लम्ब कच डालो। खच को तीन बराबर भागों में विभक्त करो और ख से दूसरी ओर एक बिन्दु छ

ऐसे स्थान पर लो कि खछ इन तीन भागों में से दो के बराबर हो। छ से वर्तक धरातल पर छग एक लम्ब खींचो जो वृत्त को ग पर काटे। तब खग वर्तित किरण होगी। क्योंकि चित्र से प्रकट है कि आपतन कोण कखल = ∠ खकच और वर्तन कोण गखल' = ∠ खगछ
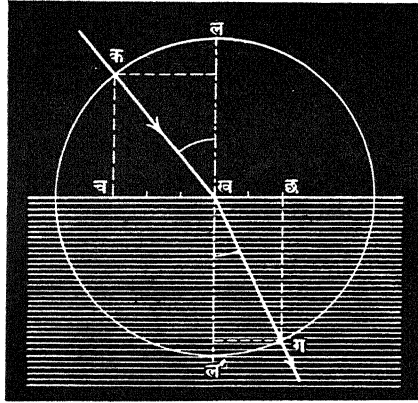
चित्र १४२

$$\text{अतः } \frac{\text{आपतन कोण की ज्या}}{\text{वर्तन कोण की ज्या}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{ खकच}}{\text{ज्या} \angle \text{ खगछ}} = \frac{\frac{\text{खच}}{\text{कख}}}{\frac{\text{खछ}}{\text{खग}}} = \frac{\text{खच}}{\text{खछ}} = \frac{3}{2}$$

यह प्रत्यक्ष ही है कि यदि किरण कांच में से वायु में आती तो वर्तनांक $\frac{2}{3}$ होता। उस दशा में खच के दो बराबर भाग करने होते और खछ को ऐसे ऐसे तीन भागों के बराबर बनाना पड़ता। इस बार वर्तित किरण लम्ब की ओर न मुड़कर विपरीत दिशा में मुड़ती।

२०५—प्रतिबिम्ब का स्थान। मान लो कि द एक दीप्त बिन्दु है (चित्र १४३) जो पानी में स्थित है और उसमें से किरणें निकल निकलकर वायु में आती हैं। यदि नेत्र $न_1$ स्थान पर हो तो उसमें किरणें कख और गघ प्रवेश कर जावेंगी। अतः पहले बतलाये हुए नियमों के अनुसार दीप्त बिन्दु

नेत्र को ओर कख गघ की दिशाओं में अर्थात् द′ विन्दु पर स्थित दिखलाई देगा। द′ ही द का प्रतिबिम्ब हुआ किन्तु परावर्तन की नाईं इस बार सब वर्तित किरणें द′ से चलती हुई न जान पड़ेंगी। प्रतिबिम्ब का स्थान नेत्र के स्थान पर निर्भर है और जैसे जैसे नेत्र अधिक टेढ़ा देखेगा वैसे वैसे प्रतिबिम्ब भी अधिक ऊँचा उठता जायगा और नेत्र की ओर भी खिसकता जायगा। यदि नेत्रदीप्त वस्तु को ठीक ऊपर
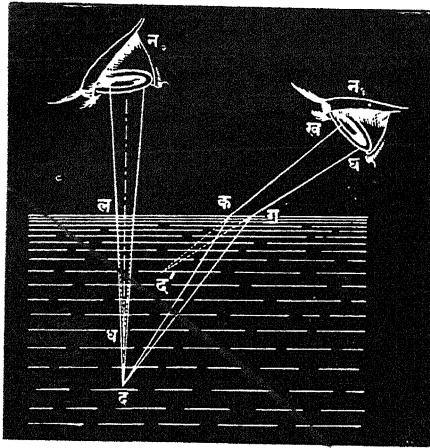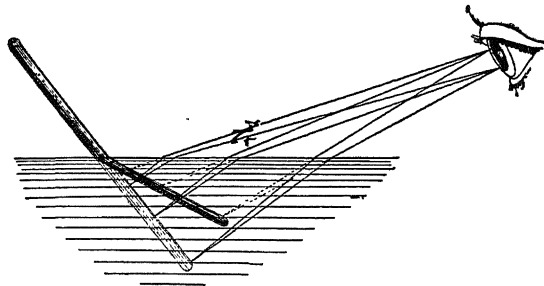
चित्र १४३

चित्र १४४

से देखे तो प्रतिबिम्ब ध पर बनता है और $\frac{\text{लद}}{\text{लध}}$ वर्तनांक के बराबर होता है।

अब यह समझने में कोई कठिनाई न होगी कि पानी में आधी डुबाई हुई लकड़ी टेढ़ी क्यों मालूम होती है (चित्र १४४)।

२०६—पूर्ण परावर्तन । जब किरण कम वर्तनांकवाले पदार्थ से अधिक वर्तनांकवाले पदार्थ में प्रवेश करती हैं यथा हवा से पानी में तब तो किरण लम्ब की ओर मुड़ती है और वर्तन कोण आपतन कोण से छोटा होता है । किन्तु यह स्पष्ट है कि यदि प्रकाश अधिक वर्तनांकवाले पदार्थ से कम वर्तनांकवाले पदार्थ में प्रवेश करे यथा पानी से हवा में तो वर्तन कोण आपतन कोण से बड़ा होगा और ज्यों ज्यों आपतन कोण को बड़ा किया जायगा त्यों त्यों वर्तन कोण और भी बड़ा होता जायगा । अन्त में वह एक समकोण अर्थात् ९०° के बराबर हो जायगा । इस समय भी आपतन कोण समकोण से छोटा ही रहेगा । और उसका परिमाण इतना होगा कि

$$\frac{\text{आपतन कोण की ज्या}}{\text{ज्या } 90^\circ} = \frac{1}{\text{व}}$$

जहां व पानी का वर्तनांक है । यदि अब आपतन कोण को और भी बढ़ाया जाय तो क्या होगा ? नियमानुसार अब वर्तन कोण की ज्या का मूल्य १ से अधिक होना चाहिए । किन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि किसी कोण की ज्या १ से अधिक हो । इसके अतिरिक्त वर्तित किरण खींचने की जो रीति चित्र १४२ में बतलाई गई है वह भी अब काम की नहीं क्योंकि अब बिन्दु छ वृत्त से बाहर जा पड़ेगा । अतः परिणाम यह निकला कि अब वर्तन होगा ही नहीं । तब उस आपतित किरण का क्या होगा ? यह पहले कहा जा चुका है कि जब कभी किरण एक पदार्थ की सीमा पर पहुँचती है तब उसके कुछ भाग का परावर्तन हो जाता है और कुछ भाग सीमा को पार कर वर्तित किरण के रूप में दूसरे पदार्थ में प्रवेश कर जाता है । अतः अब वर्तन के अभाव में सम्पूर्ण आपतित किरण का परावर्तन हो जायगा । ऐसे परावर्तन को **पूर्ण परावर्तन** कहते हैं और जिस आपतन कोण पर वर्तन का अभाव होकर पूर्ण परावर्तन आरम्भ होता है उसे **चरम कोण** कहते हैं । चित्र १४९ में ∠ दकल चरम कोण है ।

चरम कोण का मूल्य पानी के लिए ४९° है और क्राउन कांच के लिए ४२° है।

चित्र १४५
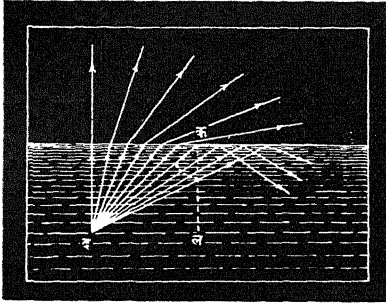
एक कांच के गिलास में पानी भर कर उसे नेत्र से कुछ ऊँचा पकड़ने पर पानी की सतह नीचे से ऐसी चमकती हुई जान पड़ेगी मानों खूब पालिश किया हुआ चांदी का पट्ट या पारे का पृष्ठ है। और यदि इस गिलास में एक चम्मच पड़ा हो तो उस चम्मच के जल-निमग्न भाग का प्रतिबिम्ब भी देख पड़ेगा। किन्तु जो भाग पानी से ऊपर है वह बिलकुल भी न दिखलाई देगा। इसका कारण यही है कि पानी में से ऊपर की ओर जानेवाली किरणें पानी की सतह से पूर्णतः परावर्तित होकर हमारे नेत्र में प्रवेश कर जाती हैं और ऊपर से आनेवाली किरणें प्रायः गिलास के पेंदे में होकर निकल जाती हैं।

यह पूर्ण परावर्तन ठोस पदार्थों में भी होता है। कांच के एक समकोण त्रिपार्श्व पर यदि चित्र १४६ की नाईं प्रकाश पड़े तो वह कर्ण से पूर्ण परावर्तित होकर दूसरी ओर निकल जाता है क्योंकि कर्ण पर आपतन कोण ४५° है और यह चरम कोण (४२°) से अधिक है। बहुधा किरण को मोड़ने के लिए साधारण दर्पण के स्थान में ऐसे त्रिपार्श्व का इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि इसके द्वारा परावर्तित किरणों की तीव्रता अधिक रहती है और प्रतिबिम्ब भी अधिक स्पष्ट बनता है क्योंकि दर्पण में दो परावर्तक धरातल होने से दो प्रतिबिम्ब बनते हैं और दोनों के
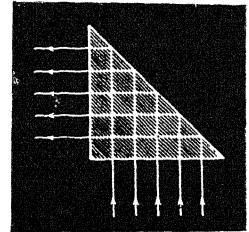
चित्र १४६

मेल से अस्पष्टता आ जाती है। सजावट के लिए कमरों में जो झाड़ फ़ानूस लगाये जाते हैं उनकी चमक भी उनमें लटके हुए काँच के त्रिपार्श्व इत्यादि टुकड़ों के पूर्ण परावर्तन के कारण होती है। वस्तुतः पारदर्शक पदार्थों की चमक का सदा यही पूर्ण परावर्तन मुख्य कारण होता है। और पदार्थ का जितना ही अधिक वर्तनांक होगा, उतना ही छोटा चरमकोण होगा और उतना ही अधिक यह पूर्ण परावर्तन देख पड़ेगा। अतः अधिक वर्तक पदार्थ बहुत चमकदार मालूम होते हैं। हीरे का वर्तनांक २·४ है और यही उसकी चमक का मुख्य कारण है।

२०७—मृगतृष्णा। अरब इत्यादि मरुभूमियों में यात्रियों को कभी कभी दूर से जलाशय दिखलाई देता है किन्तु निकट जाने पर जल का कहीं नाम भी नहीं मिलता। इसी धोखे का नाम है **मृगतृष्णा**। इसका कारण भी
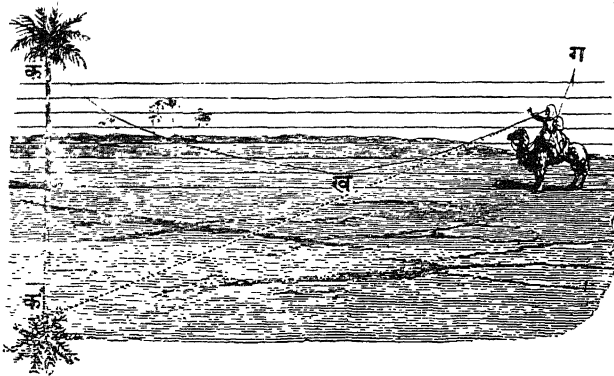
चित्र १४७

यही पूर्ण परावर्तन है। सूर्य के ताप से बालू खूब गरम हो जाती है और उसके स्पर्श से वायु भी गरम हो जाती है। किन्तु समस्त वायु एक साथ ही गरम नहीं हो सकती। बिलकुल पृथ्वी से लगी हुई वायु सबसे अधिक

गरम होती है और ऊपर की तहों का तापक्रम क्रमशः घटता जाता है। गरम होने से हवा का वर्तनांक भी घट जाता है। अतः किसी वृक्ष के ऊपरी भाग से पृथ्वी की ओर चलनेवाली किरण कम कम वर्तनांकवाली वायु में प्रवेश करती है और इस कारण वह मुड़ मुड़ कर वायु की नीचे की तहों पर अधिक अधिक टेढ़ी पड़ती है और अन्त में जब उसका आपतन कोण चरम कोण के बराबर हो जाता है तब वह पूर्णतः परावर्तित होकर ऊपर की ओर लौट जाती है। अर्थात् वृक्ष से चलनेवाली किरण यात्री के नेत्र में परावर्तित होकर पहुँचती है। वह यात्री उस वृक्ष को उस दिशा में देखता है जिससे ये किरणें उसके नेत्र में पहुँचती हैं। किन्तु कुछ किरणें बिना परावर्तन भी यात्री के नेत्र में पहुँचती हैं। इससे ठीक जलाशय के समान ही वह वृक्षों को भी देखता है और उनके प्रतिबिम्बों को भी। यह चित्र १४८ से स्पष्ट है।

२०८—त्रिपार्श्व। यदि कांच का एक टुकड़ा ऐसा हो कि जिसके दो समतल पार्श्व समानान्तर न हों अर्थात् उनके बीच में एक कोण बना हो तो उसे त्रिपार्श्व कहते हैं। यदि ऐसे एक त्रिपार्श्व को नेत्र के पास रख कर उसमें से किसी वस्तु की ओर देखें तो वह वास्तव में जिस दिशा में है उसमें दिखलाई न देगी किन्तु एक दूसरी ही दिशा में देख पड़ेगी। इसी प्रकार यदि छोटे छिद्र में से अँधेरे कमरे में प्रवेश करनेवाली सूर्य की किरणें त्रिपार्श्व पर डाली जावें तो उसमें से निकलने पर वे त्रिपार्श्व के मोटे भाग की ओर मुड़ जावेंगी। इन दोनों प्रयोगों में कुछ रंग भी दिखलाई देते हैं जिनके विषय में परिच्छेद २४ में विवेचन किया जायगा।

चित्र १४८ में कखग त्रिपार्श्व है जिसके दो पार्श्व कख और कग किरणों का वर्तन करते हैं। इनके बीच का कोण खकग त्रिपार्श्व का कोण कहलाता है। पच आपतित किरण है जो कख से वर्तित होकर त्रिपार्श्व के अन्दर चछ की दिशा में चलती है। छ पर इसका पुनः वर्तन होता है और त्रिपार्श्व से बाहर निकलने पर इसका मार्ग छब है। छब को निर्गत

किरण कहते हैं। इस निर्गत किरण तथा आपतित किरण पच के बीच में जो कोण झजब बनता है उसे **विचलन** कोण कहते हैं। ऐसी तीन किरणें खींची गई हैं और यह भी दिखलाया गया है कि त्रिपार्श्व के द्वारा वस्तु का प्रतिविम्ब कहाँ बनता है।
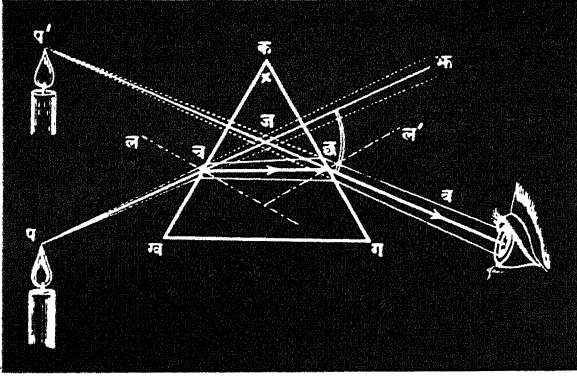
चित्र १४८

उपर्युक्त प्रयोगों में यदि त्रिपार्श्व को घुमा कर आपतन कोण पचल को घटाया या बढ़ाया जावे तो हम देखेंगे कि विचलन कोण का परिमाण भी बदल जाता है। किन्तु वह एक नियत परिमाण से छोटा नहीं हो सकता। त्रिपार्श्व को इस अल्पतम विचलन की स्थिति में रख कर नापने से ज्ञात हो जायगा कि इस अवस्था में आपतन कोण पचल निर्गमन कोण बछल' के बराबर होता है और त्रिपार्श्व के अन्दर की किरण चछ दोनों पार्श्वों से समान परिमाण के कोण बनाती है, अर्थात् ∠ कचछ = ∠ कछच'। इस अल्पतम विचलन कोण का परिमाण त्रिपार्श्व के कोण तथा वर्तनांक पर भी निर्भर है। जितना ही अधिक त्रिपार्श्व का कोण होगा और जितना ही अधिक काँच का वर्तनांक होगा उतना ही अधिक विचलन कोण का भी परिमाण होगा।

प्रश्न

(१) कोण की ज्या किसे कहते हैं? आकृति खींच कर निम्नलिखित कोणों की ज्या निकालो:—

६०°, ३०°, ४५°, १२०°

०° और ९०° की ज्या कितनी होगी ?

(२) प्रमाणित करो कि ज्या का मूल्य १ से अधिक नहीं हो सकता।

(३) वर्तनांक किसे कहते हैं? यदि आपतन कोण और वर्तन कोण क्रमशः ५०° और २८° तथा ३०° और २०° हों तो वर्तनांक का मूल्य निकालो।

(४) यदि वर्तनांक $\frac{3}{2}$ हो और आपतन कोण ६०° हो तो वर्तित किरण खींचो।

(५) काँच की इष्टिका ५ सम० चौड़ी है। इस पर एक किरण ४५° का आपतन कोण बनाती है। यदि वर्तनांक १·५ हो तो इष्टिका के दूसरी ओर निकलने पर इस किरण का मार्ग चित्र में बताओ और यह बताओ कि वह अपने पूर्व मार्ग से कितनी हट गई।

(६) यदि २″ मोटा काँच इस पृष्ठ पर रख दिया जाय तो चित्र खींच कर बताओ कि अक्षर कहाँ दिखलाई देंगे।

(७) पानी में आधी डूबी छड़ी टेढ़ी क्यों दिखलाई देती है? जो किरणें नेत्र में जाकर उसे टेढ़ी दिखाती हैं उन्हें चित्र में प्रदर्शित करो।

(८) चरम कोण क्या होता है? उसका वर्तनांक से क्या सम्बन्ध है? चित्र के द्वारा जल के चरम कोण का मूल्य निकालो (वर्तनांक= $\frac{4}{3}$)।

(९) नदी की गहराई वास्तविक गहराई से कम क्यों नज़र आती है?

(१०) वायु में प्रकाश का वेग १,८६,००० मील/सैकंड है। काँच और जल में प्रकाश का वेग बतलाओ।

(११) एक किरण काँच में से निकल कर जल में प्रवेश करती है। यदि आपतन कोण २०° अथवा ६०° का हो तो वर्तित किरण खींचो। वर्तनांक काँच और जल का क्रमशः $\frac{3}{2}$ और $\frac{4}{3}$ है।

(१२) बहुत मोटे काँच के बने दर्पण के समीप मोमबत्ती जल रही है। एक पार्श्व से देखने पर मोमबत्ती के बहुत से प्रतिबिम्ब दिखलाई देते हैं। कारण समझाओ।

(१३) एक त्रिपार्श्व का कोण ९०° है। यदि किरण इसके पृष्ठ से ७०° का कोण बनाती है तो इसका मार्ग खींचो (वर्तनांक=१·५)।

(१४) एक त्रिपार्श्व के सब कोण बराबर हैं और उस पर एक किरण ६०° का आपतन कोण बनाती है और उसका विचलन अल्पतम होता है। विचलन कोण तथा वर्तनांक बतलाओ।

(१५) चित्र-द्वारा बतलाओ कि त्रिपार्श्व में से देखने पर एक छोटी सी वस्तु कहाँ दिखलाई देगी।

परिच्छेद २२

लैंस से प्रकाश का वर्तन

२०९—**लैंस**। यदि काँच या अन्य किसी पारदर्शक पदार्थ का कोई टुकड़ा ऐसा हो कि जिसके दोनों पार्श्वों के धरातल वक्र हों तो उसे लैंस कहते हैं। बहुधा लैंसों के धरातल गोलीय ही होते हैं किन्तु कभी कभी ख़ास मतलब से उन्हें किसी दूसरे प्रकार का भी बना देते हैं। यहाँ हम केवल गोलीय लैंसों का ही वर्णन करेंगे। चित्र १४६ में कई प्रकार के लैंस दिखाये
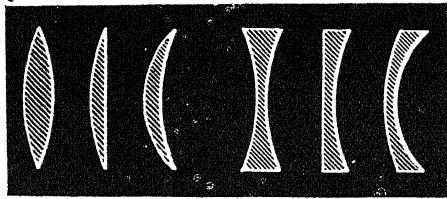
चित्र १४६

गये हैं। यद्यपि पहले तीन लैंसों के धरातल एक से नहीं हैं किन्तु प्रकाश-वर्तन में यह तीनों एक ही सा काम करते हैं। इन सबका मध्य भाग किनारों की अपेक्षा मोटा होता है अतः इन्हें **उन्नतोदर** लैंस कहते हैं। अन्तिम तीनों लैंस बीच में पतले हैं और उन्हें **नतोदर** कहते हैं।

लैंस के दोनों वक्र धरातलों के केन्द्रों को जोड़नेवाली रेखा **मुख्य अक्ष** कहलाती है यथा $क_1$ $क_2$ (चित्र १५०)।

जब प्रकाश किरण ऐसे किसी लैंस पर पड़ती है तो उसका वर्तित मार्ग वर्तन के नियमों की सहायता से सहज ही में जाना जा सकता है
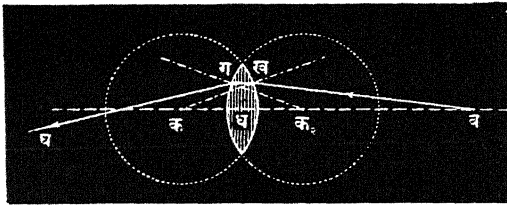
चित्र १५०

क्योंकि गोलीय धरातल का कोई भी छोटा सा टुकड़ा सम समझा जा सकता है और इसलिए लैंस के किसी भी छोटे भाग को हम त्रिपार्श्व समझ सकते हैं। जिस प्रकार त्रिपार्श्व में वर्तित किरण और तत्पश्चात् निर्गत किरण खींची जाती है ठीक उसी प्रकार लैंस में भी खींची जा सकती है।
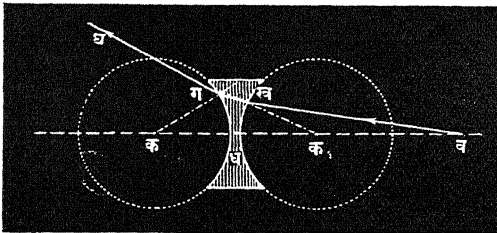
चित्र १५१

चित्र १५०-१५१ में लैंस की अक्ष पर व एक दीप्त बिन्दु है और वख आपतित किरण। ख को लैंस के प्रथम धरातल के केन्द्र $क_1$ से जोड़ने-

वाली रेखा क$_{१}$ख ही ख पर अभिलम्ब है। खग लैंस के अन्दर वर्तित किरण है। ग पर क$_{२}$ग अभिलम्ब है और गघ निर्गत किरण।

इन चित्रों से स्पष्ट है कि उन्नतोदर लैंस के द्वारा निर्गत किरण लैंस के मध्य भाग की ओर मुड़ जावेंगी और नतोदर लैंस के द्वारा किनारों की ओर। जिस प्रकार गोलीय दर्पण के चित्र १३४ में व से चलनेवाली सभी किरणें प्र से आती हुई जान पड़ती हैं उसी प्रकार यदि लैंस का व्यास बड़ा न हो और उसकी मोटाई भी अधिक न हो तो ज्यामिति द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि चित्र १५२ में भी व से
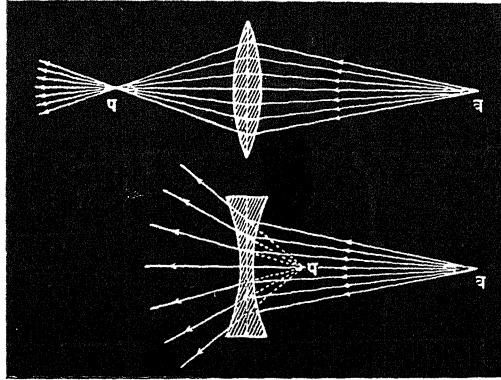
चित्र १५२

निकलनेवाली सभी किरणें उन्नतोदर लैंस के द्वारा मुड़ कर अक्ष पर ही स्थित बिन्दु प में से जावेंगी और इसी प्रकार नतोदर लैंस के द्वारा मुड़ कर यद्यपि वे प में से वास्तव में न जावेंगी तौ भी यदि उन्हें पीछे की ओर बढ़ाया जावे तो अवश्य वे प में जा मिलेंगी। दोनों अवस्थाओं में किरणें प से ही आती हुई जान पड़ेंगी। अर्थात् प ही व का प्रतिबिम्ब दिखलाई देगा। यह भी स्पष्ट ही है कि उन्नतोदर लैंस-द्वारा बनाया हुआ प्रतिबिम्ब वास्तविक है और नतोदर द्वारा बनाया हुआ काल्पनिक।

२१०—प्रतिबिम्ब का स्थान। मान लीजिए कि लैंस बहुत पतला है और उसका व्यास भी अपेक्षाकृत बहुत छोटा है। ऐसी अवस्था में यदि

व = लैंस से दीप्त वस्तु की दूरी।

प्र = लैंस से प्रतिबिम्ब की दूरी।

क = लैंस से उसके प्रथम धरातल के केन्द्र की दूरी अथवा प्रथम धरातल की त्रिज्या।

ख = लैंस के द्वितीय धरातल की त्रिज्या

और म = लैंस के कांच का वर्तनांक

तब ज्यामिति से सिद्ध किया जा सकता है कि

$$\frac{१}{प्र} - \frac{१}{व} = (म - १) \left(\frac{१}{क} - \frac{१}{ख}\right) \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

इस सूत्र के व्यवहार में भी गोलीय दर्पण के सूत्र की भांति निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना पड़ेगा :—

(१) दूरी नापने का आरम्भ सदा लैंस से होना चाहिए।

(२) प्रकाश जिस दिशा में चलता है उसी दिशा में नापी हुई दूरी ऋणात्मक समझी जाय और उसके विपरीत दिशा में धनात्मक।

इस हिसाब से चित्र १५० में व और ख धनात्मक हैं और प्र तथा क ऋणात्मक हैं और १५१ में व, क तथा प्र धनात्मक हैं किन्तु ख ऋणात्मक है।

२११—नाभि। यदि दीप्त वस्तु लैंस से अनन्त दूरी पर हो तो प्रत्यक्ष ही है कि उससे आकर लैंस पर पड़नेवाली सभी किरणें अक्ष से समानान्तर होंगी। तथा

$$\frac{१}{व} = ०$$

अतः उपर्युक्त सूत्र के अनुसार वे सब समानान्तर किरणें वर्तित होकर जिस बिन्दु में से निकलेंगी अथवा निकलती हुई मालूम होंगी उस बिन्दु (अर्थात् अनन्त दूर स्थित दीप्त वस्तु के प्रतिबिम्ब) की दूरी प्र निम्नलिखित समीकरण के द्वारा प्राप्त होगीः—

$$\frac{१}{प्र} = (म - १) \left(\frac{१}{क} - \frac{१}{ख} \right) \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (२)$$

इस बिन्दु को **नाभि** कहते हैं और लैंस से इस नाभि की दूरी **नाभ्यन्तर** कहलाती है। यदि हम इस नाभ्यन्तर को न के द्वारा व्यक्त करें तो लैंस सूत्र (१) निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता हैः—

$$\frac{१}{प्र} - \frac{१}{व} = \frac{१}{न} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (३)$$

बहुधा लैंस सूत्र का इस अन्तिम रूप में ही व्यवहार किया जाता है।
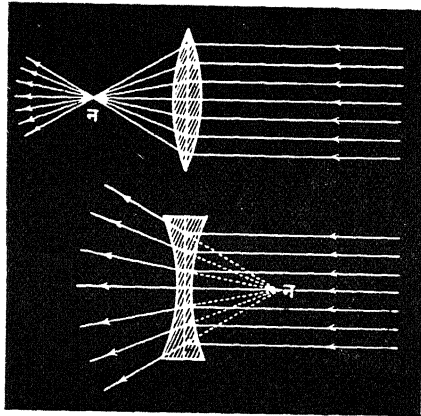
चित्र १५३

उन्नतोदर लैंस में क ऋणात्मक तथा ख धनात्मक होने के कारण समीकरण (२) से प्रकट है कि उन्नतोदर लैंस का नाभ्यन्तर सदा ऋणात्मक

होगा। और नाभि वास्तविक होगी तथा लैंस के दूसरी ओर स्थित होगी। यही बात चित्र १५३ से भी स्पष्ट है। इसी प्रकार नतोदर लैंस का नाभ्यन्तर सदा धनात्मक होगा, नाभि काल्पनिक होगी और आपतित किरण की ओर ही स्थित होगी।

लैंस सूत्र (१) या (३) से यह भी प्रकट है कि यदि दीप्त वस्तु ऐसी जगह रख दी जाय कि उन्नतोदर लैंस से उसकी दूरी नाभ्यन्तर के बराबर हो अर्थात् यदि व = न तो प्र = ∞ होगा। अर्थात् इस दशा में प्रतिबिम्ब अनन्त दूरी पर बनेगा और समस्त वर्तित किरणें समानान्तर चलेंगी। दीप्त वस्तु के इस स्थान को भी लैंस की नाभि कहते हैं। जिस प्रकार सभी समानान्तर आपतित किरणें वर्तित होकर ऊपर बतलाई हुई नाभि से जाती हैं ठीक उससे उलटा कार्य इस नाभि का है। उस स्थान से चलनेवाली सभी आपतित किरणें वर्तन के बाद समानान्तर हो जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक लैंस के दोनों ओर दो नाभियां समझनी चाहिए। जहां से चलने पर किरणें समानान्तर हो जावें वह प्रथम नाभि कहलाती है और जहां समानान्तर किरणें वर्तन के पश्चात् संगृहीत मालूम हों वह द्वितीय नाभि कहलाती है।

२१२—नाभ्यन्तर नापने की रीति। उन्नतोदर लैंस का नाभ्यन्तर ठीक उसी प्रकार नापा जाता है जिस प्रकार नतोदर दर्पण का। लैंस को सूर्य के सम्मुख इस प्रकार रखो कि लैंस पर किरणें अक्ष के समानान्तर पड़ें। कागज़ पर सूर्य का स्पष्ट प्रतिबिम्ब जिस स्थान पर पड़े वही लैंस की नाभि है। लैंस से इस स्थान की दूरी ही उसका नाभ्यन्तर है। काफ़ी दूर रखे हुए दीपक अथवा अन्य किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब भी प्रायः नाभि ही पर बनेगा। अँधेरी कोठरी में इस प्रतिबिम्ब की दूरी नापने से भी लैंस का नाभ्यन्तर ज्ञात हो जायगा। इसके अतिरिक्त दीपक को लैंस के निकट रख कर सूत्र (३) की सहायता से भी नाभ्यन्तर नापा जा सकता है। इस दशा में दीपक की दूरी तथा प्रतिबिम्ब की दूरी दोनों ही नापना होगा।

नतोदर लैंस के प्रतिबिम्ब काल्पनिक होने के कारण, उसका नाभ्यन्तर इन रीतियों से नहीं नापा जा सकता।

२१३—प्रतिबिम्ब की रचना। यों तो वर्तन के नियमानुसार दीप्त वस्तु से निकलनेवाली किसी भी किरण का लैंस-द्वारा वर्तित मार्ग खींचा जा सकता है और जहां दो निर्गत किरणें मिल जावें वही दीप्तवस्तु का प्रतिबिम्ब होता है क्योंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है सभी निर्गत किरणें इस बिन्दु पर मिल जाती हैं। किन्तु नीचे लिखी खास किरणों का मार्ग बहुत ही आसानी से खींचा जा सकता है (चित्र १५४)।

१—पफ दीप्त वस्तु है। प से लैंस की अक्ष से समानान्तर चलनेवाली किरण पख खींचो। लैंस में से निकलने पर यह किरण लैंस की द्वितीय नाभि $न_२$ में से निकलेगी।

२—प से प्रथम नाभि $न_१$ की ओर चलनेवाली किरण $पन_१$ लैंस में से निकल कर अक्ष से समानान्तर चलेगी।

३—प से लैंस के मध्य बिन्दु म की ओर चलनेवाली किरण पम बिना मुड़े सीधी निकल जावेगी क्योंकि इस स्थान पर लैंस के दोनों धरातल समानान्तर हैं।

इनमें से कोई भी दो किरणें खींचने पर जिस बिन्दु प′ पर वे परस्पर मिलें वही प का प्रतिबिम्ब होगा। इसी प्रकार फ का प्रतिबिम्ब भी फ′ होगा। इसलिए समस्त दीप्त वस्तु पफ का प्रतिबिम्ब प′फ′ हुआ।

इस विधि से स्पष्ट है कि दीप्त वस्तु चाहे कहीं हो नतोदर लैंस से प्रतिबिम्ब सदा काल्पनिक, सीधा और छोटा बनेगा (चित्र १५४-v)। और लैंस से उसकी दूरी नाभ्यन्तर से सदा कम होगी। वह लैंस के उसी ओर बनेगा जिस ओर दीप्त वस्तु हो। किन्तु उन्नतोदर लैंस में जब तक दीप्त वस्तु की लैंस से दूरी २ न से अधिक होगी तब तक तो चित्र (१५४-i) के अनुसार प्रतिबिम्ब वास्तविक, उलटा और छोटा बनेगा और उसका स्थान लैंस के दूसरी ओर होगा और उसकी दूरी न और
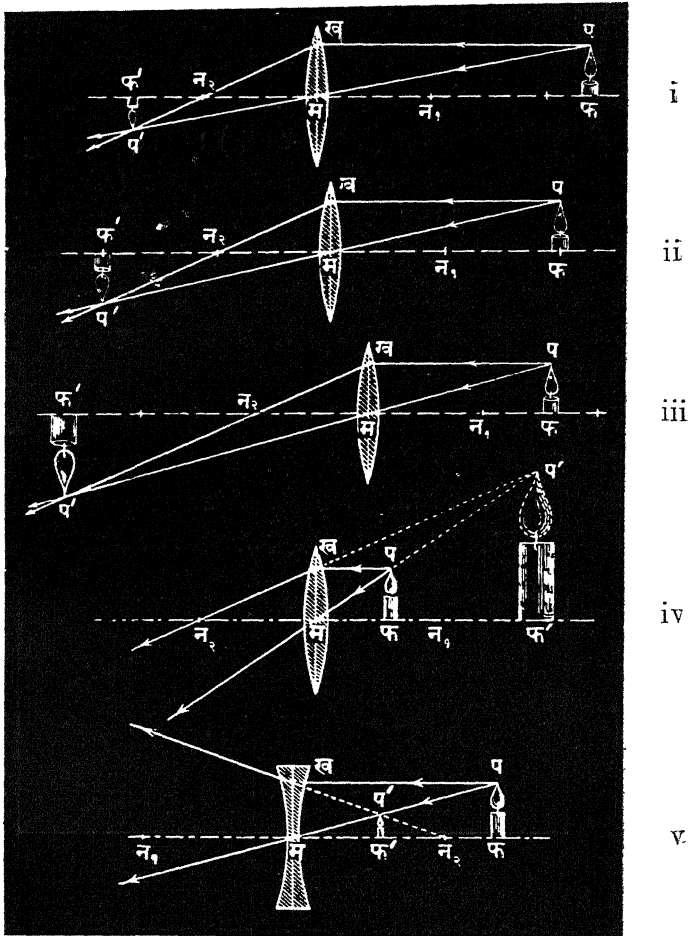
चित्र १९४

२ न के बीच में होगी। ज्यों ज्यों दीप्त वस्तु लैंस के निकट आती जायगी त्यों त्यों प्रतिबिम्ब अधिक दूरी पर बनता जायगा और आकार में भी बढ़ता जायगा। जब उसकी दूरी ठीक २ न के बराबर हो जायगी तब प्रतिबिम्ब की दूरी भी २ न हो जायगी और आकार में प्रतिबिम्ब दीप्त वस्तु के बराबर हो जायगा (चित्र १५४-ii)। यदि दीप्त वस्तु और भी निकट आवे तो प्रतिबिम्ब और भी दूर तथा बड़ा होगा (चित्र १५४-iii)। यहां तक कि जब दीप्त वस्तु नाभि पर ही रखी हो तो प्रतिबिम्ब अनन्त दूर बनेगा। इन सब दशाओं में प्रतिबिम्ब वास्तविक और उलटा रहेगा। किन्तु यदि दीप्त वस्तु नाभि से भी निकट रखी हो तो चित्र १५४-iv के अनुसार प्रतिबिम्ब लैंस के उसी ओर बनेगा। वह सीधा, काल्पनिक और आकार में बड़ा होगा।

जिस प्रकार गोलीय दर्पण के प्रतिबिम्ब के लिए परीक्षा की गई थी ठीक उसी प्रकार अँधेरी कोठरी में मोमबत्ती और एक काग़ज़ का टुकड़ा लेकर ऊपर लिखी सभी बातों की परीक्षा की जा सकती है। इस बार भी पर्दे पर प्रतिबिम्ब देखने के लिए उसे हटा कर चित्र को स्पष्ट करने की

चित्र १५५
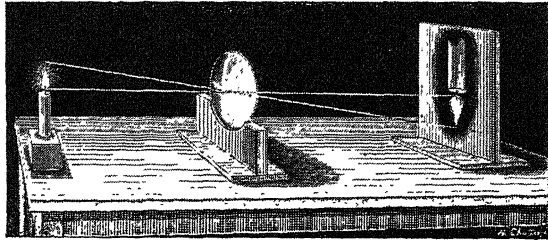
आवश्यकता होगी। चित्र १५४-iv तथा v वाली बात को देखने के लिए परदे की आवश्यकता नहीं क्योंकि काल्पनिक प्रतिबिम्ब पर्दे पर न बनेगा। उसे खाली नेत्र से ही देखना होगा। लैंस को पुस्तक के निकट रख कर उसमें

से अक्षरों को देखने ही से मालूम हो जायगा कि वे कितने बड़े दिखलाई देते हैं। बहुत सूक्ष्म वस्तुओं को इसी प्रकार उन्नतोदर लैंस की सहायता से देख सकते हैं। नतोदर लैंस में से पुस्तक के अक्षर छोटे दिखलाई देंगे।

२१४—प्रतिबिम्ब का विस्तार। गोलीय दर्पण ही की भाँति यहाँ भी यह प्रमाणित करना कठिन नहीं कि

$$\frac{\text{प्रतिबिम्ब की लम्बाई}}{\text{दीप्त वस्तु की लम्बाई}} = \frac{\text{लैंस से प्रतिबिम्ब की दूरी}}{\text{लैंस से वस्तु की दूरी}}$$

$$= \frac{\text{प्र}}{\text{व}} \qquad \text{............} (४)$$

इस निष्पत्ति का नाम अभिवर्धन है। जब इसका मूल्य १ से अधिक होता है तब तो प्रतिबिम्ब आकार में वस्तु से बड़ा बनता है और जब यह १ से छोटा होता है तब प्रतिबिम्ब भी छोटा बनता है। जब अभिवर्धन धनात्मक होता है तब प्रतिबिम्ब काल्पनिक तथा सीधा होता है और जब वह ऋणात्मक हो तो प्रतिबिम्ब भी वास्तविक तथा उलटा बनता है।

२१५—लैंस की क्षमता। नाभ्यन्तर की व्युत्क्रान्त संख्या को लैंस की क्षमता कहते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में नाभ्यन्तर का मूल्य मीटरों में व्यक्त करने का रिवाज है। यदि किसी लैंस का नाभ्यन्तर एक मीटर हो तो उसकी क्षमता एक डायोप्टर कही जाती है। यदि नाभ्यन्तर ५० सम० $= \frac{1}{2}$ मीटर हो तो क्षमता २ डायोप्टर हुई, १० सम० $= \frac{1}{10}$ मीटर हो तो क्षमता = १० डायोप्टर। ऊपर बतलाया जा चुका है कि वैज्ञानिक संसार में उन्नतोदर लैंस का नाभ्यन्तर ऋणात्मक कहलाता है और नतोदर का धनात्मक किन्तु दुर्भाग्यवश ऐनक बेचनेवाले उन्नतोदर लैंस की क्षमता को धनात्मक कहते हैं और नतोदर लैंस की क्षमता को ऋणात्मक।

२१६—लैंस सूत्र के उपयोग के उदाहरण। (१) किसी उन्नतोदर लैंस का नाभ्यन्तर ३० सम० है और उससे क्रमशः ५० सम० और

२० सम० दूरी पर कोई वस्तु रखी है। बताओ प्रतिबिम्ब कहां और कैसा बनेगा।

(क) यहां $व = ५० \text{ सम०}; \quad न = -३० \text{ सम०}$

अतः $\frac{१}{प्र} = \frac{१}{न} + \frac{१}{व} = -\frac{१}{३०} + \frac{१}{५०}$

$$= \frac{-५० + ३०}{३० \times ५०}$$

$$= -\frac{२०}{१५००} = -\frac{१}{७५}$$

$$\therefore प्र = -७५ \text{ सम०}$$

ऋण-चिह्न से प्रकट होता है कि प्रतिबिम्ब लैंस के दूसरी ओर बनेगा। अतः वह वास्तविक तथा उलटा होगा।

(ख) $व = २० \text{ सम०}; \quad न = -३० \text{ सम०}$

अतः $\frac{१}{प्र} = -\frac{१}{३०} + \frac{१}{२०} = \frac{-२० + ३०}{३० \times २०} = +\frac{१०}{६००} = \frac{१}{६०}$

$$\therefore प्र = +६० \text{ सम०}$$

धन-चिह्न से प्रकट है कि प्रतिबिम्ब लैंस के उसी ओर बनेगा जिस ओर वस्तु रखी है। अतः वह काल्पनिक और सीधा होगा। उसका

$$\text{अभिवर्धन} = \frac{६०}{२०} = ३$$

अर्थात् लम्बाई में वह वस्तु से तीन गुणा बड़ा होगा।

प्रश्न

(१) लैंस किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के होते हैं ?

(२) लैंस की मुख्य नाभि क्या होती है और उन्नतोदर लैंस की मुख्य नाभि का स्थान कैसे मालूम किया जाता है ?

(३) यदि एक वस्तु को लैंस के समीप से हटा कर धीरे धीरे बहुत दूर ले जावें तो प्रतिबिम्ब का क्या होता है ? इस सम्बन्ध में उन्नतोदर और नतोदर लैंसों की तुलना करो ।

(४) बिना स्पर्श किये कैसे पहिचानोगे कि लैंस नतोदर है अथवा उन्नतोदर ?

(५) निम्नलिखित स्थितियों में प्रतिबिम्ब का स्थान, विस्तार और प्रकार बतलाओ :—

लैंस	व	न	वस्तु की लम्बाई ।
उन्नतोदर	६ सम०	१० सम०	१ सम०
,,	१८ सम०	,,	,,
नतोदर	१५ सम०	,,	२ सम०

(६) नतोदर लैंस से १० सम० दूर की वस्तु का प्रतिबिम्ब २·५ सम० दूर बनता है । लैंस का नाभ्यन्तर कितना है ?

(७) एक लैंस २० सम० दूर रखी हुई वस्तु का आधे विस्तार का प्रतिबिम्ब बनाता है । लैंस का नाभ्यन्तर बताओ यदि प्रतिबिम्ब (१) वास्तविक और (२) काल्पनिक हो । लैंस किस प्रकार का है ?

(८) यदि किसी लैंस का नाभ्यन्तर ५ सम० का हो और वह तीन गुणा अभिवर्धित प्रतिबिम्ब बनावे तो बताओ वस्तु कहाँ कहाँ रखी जा सकती है ?

(९) यदि उन्नतोदर लैंस समतल दर्पण पर रख दिया जाय और कोई वस्तु उसकी मुख्य नाभि पर रख दी जाय तो प्रमाणित करो कि प्रतिबिम्ब वहीं बनेगा जहाँ वस्तु रखी है । यह प्रतिबिम्ब कैसा होगा ?

(१०) एक दीपक दीवार से ४ फ़ुट दूर रखा है । ८ इंच नाभ्यन्तरवाला उन्नतोदर लैंस दीपक और दीवार के बीच में रख कर दीपक का वास्तविक चित्र दीवार पर बनाया गया तो ज्ञात हुआ कि एक स्थान पर लैंस रखने से प्रतिबिम्ब बड़ा बनता है और दूसरी जगह रखने से छोटा । इसका क्या कारण है ?

परिच्छेद २३

लैंस के उपयोग तथा नेत्र

पिछले परिच्छेद में यह बतलाया जा चुका है कि लैंस क्या होता है और वह किस प्रकार के प्रतिबिम्ब बनाता है। अब इस परिच्छेद में यह बतलाया जायगा कि लैंस-सम्बन्धी नियमों को जान कर मनुष्य को कितना लाभ हुआ है और उसने लैंसों के द्वारा कैसे कैसे यंत्र बनाये हैं।

२१७—चित्र-दर्शक लालटैन। व्याख्यान देनेवाला मनुष्य कभी कभी अपने श्रोताओं को अपनी बात समझाने के लिए उसका चित्र भी दिखाना चाहता है। किन्तु सैकड़ों मनुष्यों को एक ही साथ छोटा सा चित्र तो दूर से दिखलाई दे नहीं सकता और बड़ा चित्र बनवाने में ख़र्च भी बहुत होता है और उसे इधर-उधर ले जाना भी कठिन होता है। इस कठिनाई को दूर करने का सरल उपाय यह है कि एक छोटा सा चित्र लेकर उन्नतोदर लैंस की सहायता से उसका बहुत बड़ा प्रतिबिम्ब सफ़ेद पर्दे पर डाल दिया जाय। जिस यन्त्र के द्वारा यह कार्य किया जाता है उसे चित्र-दर्शक लालटैन कहते हैं। चित्र १९६ में ऐसी लालटैन की बनावट बतलाई गई है। च चित्र है जो प्रायः ३$\frac{1}{4}$ इंच लम्बा चौड़ा होता है। यह काग़ज़ पर न बना कर काँच पर बनाया जाता है ताकि पीछे से प्रकाश डाल कर उसे दीप्त कर सकें। क वह उन्नतोदर लैंस है जो पर्दे पर च का वास्तविक प्रतिबिम्ब बनाता है। यह स्पष्ट है कि प्रतिबिम्ब जितना बड़ा बनाना होगा उतना ही पर्दे को क से दूर रखना होगा और च को

उतना ही क की नाभि के निकट। यह पहले बतलाया जा चुका है कि उन्नतोदर लैंस द्वारा बनाया हुआ वास्तविक प्रतिबिम्ब उलटा होता है। इस कारण यदि पर्दे पर चित्र सीधा बनाना हो तो च को उलटा रखना होगा।
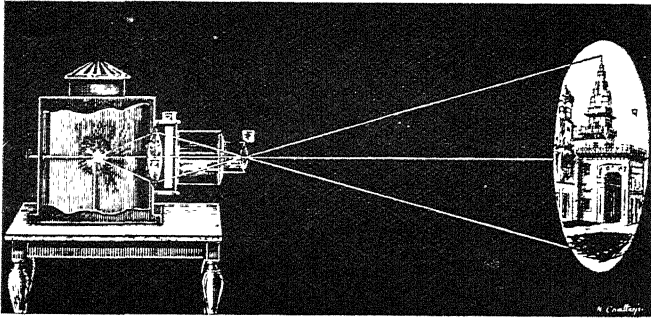
चित्र १५६

जो प्रकाश छोटे से चित्र च में से निकलता है वही उस १०-१२ फ़ुट लम्बे-चौड़े प्रतिबिम्ब को प्रकाशित करता है। इस कारण यह आवश्यक है कि जिस दीपक से चित्र च पर प्रकाश डाला जाय उसकी प्रदीपन-शक्ति बहुत अधिक हो। इसके लिए सबसे अच्छा दीपक बिजली का आर्क-लम्प है, किन्तु बिजली के अन्य प्रकार के दीपक तथा ऐसीटिलीन गैस के दीपक से भी काम चल सकता है। इस दीपक और चित्र के बीच में एक उन्नतोदर लैंस ख भी रखा जाता है। इस लैंस के कारण चित्र च पर पड़नेवाली किरणें मुड़ कर प्रक्षेपक लैंस क में घुस जाती हैं। इसलिए प्रतिबिम्ब की प्रदीप्ति और भी बढ़ जाती है। ख संग्राहक लैंस कहलाता है। दीपक को ऐसे सन्दूक़ में बन्द कर देना भी आवश्यक है कि जिसमें से प्रकाश केवल चित्र पर ही पड़े और अन्य किसी तरफ़ न निकले। इस लालटैन के द्वारा चित्र रात्रि के समय अथवा अँधेरे ही में

दिखलाये जा सकते हैं क्योंकि यदि परदे पर प्रतिविम्ब के अतिरिक्त अन्य प्रकाश भी पड़ता हो तो प्रतिविम्ब अच्छी तरह दिखलाई न देगा।

२१८—फ़ोटो का कैमरा। चित्र १५७ में इस यंत्र की बनावट बतलाई गई है। यह एक ऐसा बक्स होता है कि जिसके सामने की ओर एक
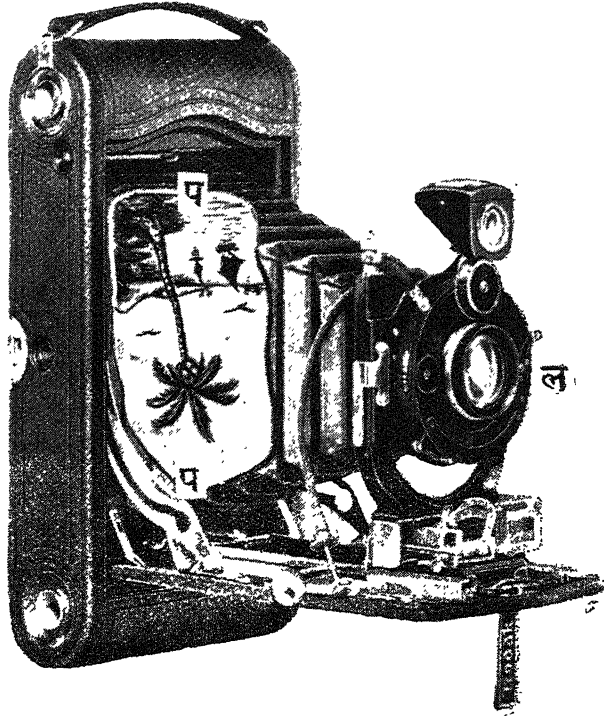
चित्र १५७

उन्नतोदर लैंस ल लगा होता है। इसमें इस लैंस के अतिरिक्त और कहीं से भी प्रकाश नहीं घुस सकता। पीछे की ओर पप घर्षित काँच का परदा है और बक्स चमड़े का ऐसा बना है कि लैंस और परदे की दूरी इच्छानुसार

कम या ज़्यादा की जा सकती है। जिस वस्तु का चित्र खींचना हो उसके सामने इस कैमरे को रखने से लैंस ल उसका वास्तविक किन्तु उलटा चित्र परदे पर बना देता है। यह चित्र लैंस को आगे पीछे हटा कर स्पष्ट कर लिया जाता है। अब लैंस में से प्रकाश के जाने का मार्ग भी एक टोपी या परदे के द्वारा रोक दिया जाता है और घर्षित काँच के परदे पप को हटा कर ठीक उसी स्थान पर एक प्लेट इस प्रकार रख दिया जाता है कि उस पर कहीं से भी प्रकाश न पड़ने पावे। प्लेट बहुधा काँच का होता है और उस पर एक रसायन ऐसा लगा रहता है कि तनिक सा प्रकाश पड़ते ही उसमें रासायनिक परिवर्त्तन हो जाता है। जहाँ जहाँ जितना तीव्र प्रकाश प्लेट पर पड़े वहां वहां उतना ही अधिक रासायनिक परिवर्त्तन भी होता है। यह कार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि साधारण तीव्र प्रकाश को इस कार्य में $\frac{१}{१००}$ सैकंड से अधिक नहीं लगता। लैंस के सामने का परदा आवश्यकतानुसार थोड़े समय के लिए हटा दिया जाता है जिससे प्रतिबिम्ब प्लेट पर बन कर इस रासायनिक क्रिया के द्वारा अंकित हो जाता है। अब इस प्लेट को अँधेरी कोठरी में ले जाकर उसके बक्स से बाहर निकालते हैं क्योंकि स्पष्ट ही है कि थोड़ा भी प्रकाश लगने से वह तुरन्त ख़राब हो जायगा। अतः अँधेरी कोठरी में इस पर कुछ रासायनिक क्रिया करके इस पर के चित्र को स्थिर कर लिया जाता है। अर्थात् जहाँ इस पर प्रकाश नहीं पड़ा था वहाँ से आलोकग्राही रसायन हटा लिया जाता है। इस क्रिया के बाद इसे उजाले में लाकर देख सकते हैं। जिस जिस स्थान पर प्रकाश इस पर पड़ा था वह काला नज़र आवेगा और अन्यत्र सफ़ेद। इस चित्र में अन्य रंग नहीं होते। काँच पर खिँचे हुए इस चित्र को **नैगेटिव** कहते हैं क्योंकि वस्तु का जो भाग दीप्त था अर्थात् जहाँ से प्रकाश अधिक आया था वही भाग चित्र में काला होता है। किन्तु इस एक नैगेटिव से आलोकग्राही काग़ज़ पर अनेक चित्र छापे जा सकते हैं और इनमें अब यह दोष नहीं रहता कि रंग उलटा पलटा हो।

२१९—नेत्र की बनावट । प्रकाश के कार्य की दृष्टि से फ़ोटो के कैमरे की बनावट में और हमारे नेत्र की बनावट में कोई अन्तर नहीं है। नेत्र में भी एक उन्नतोदर लैंस होता है जिसे नेत्र-काच कहते हैं (चित्र १८८)। जिसे हम आँख की पुतली कहते हैं वह इस लैंस के सामने के अपारदर्शक परदे में एक छोटा सा छिद्र है। इसी छिद्र में से प्रकाश नेत्र में प्रवेश कर सकता है। लैंस के पीछे की ओर एक परदा भी है जिस पर इस लैंस-द्वारा बनाया हुआ वास्तविक चित्र बनता है। यह सच है कि लैंस और यह परदा काँच के बने हुए नहीं हैं और हमारे शरीर के अन्य अवयवों के समान ही इनकी बनावट है किन्तु इससे प्रकाश-वर्तन और लैंस के चित्रनिर्माण में कोई अन्तर नहीं हो सकता। पीछे का परदा दृष्टि-नाड़ियों से बना होता है जिस पर प्रकाश पड़ने से हमारे मस्तिष्क पर असर हो जाता है और हमें वस्तु के रंग-रूप आदि का ज्ञान हो जाता है।
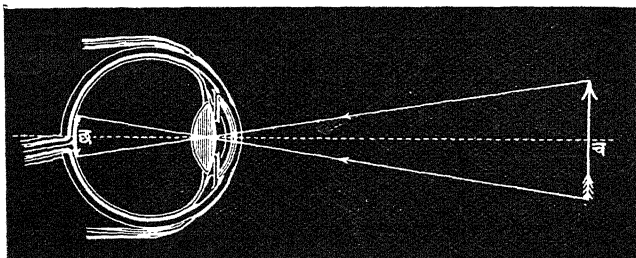
चित्र १८८

यह स्पष्ट है कि वस्तु हमें साफ़ साफ़ तभी दिखलाई देगी जब कि वह नेत्र के उपयुक्त परदे पर खूब साफ़ बने। मनुष्य की स्वस्थ आँख ऐसी बनी होती है कि स्वाभाविक अवस्था में अर्थात् जब नेत्र पर कुछ ज़ोर न पड़ रहा हो तब नेत्र-काच की नाभि पर यह परदा रहता है। अतः जो वस्तुएँ

नेत्र से बहुत दूर होती हैं उनका प्रतिबिम्ब इस पर खूब अच्छा और स्पष्ट बनता है। दूर की वस्तुएँ साफ़ देख पड़ती हैं। किन्तु इस दशा में नेत्र के निकट की वस्तुओं का प्रतिबिम्ब अधिक दूर अर्थात् इस परदे के पीछे बनेगा और इस कारण ऐसी वस्तुएँ हमें अस्पष्ट दिखलाई देंगी। फ़ोटो के कैमरे में लैंस को आगे पीछे हटा कर प्रतिबिम्ब को स्पष्ट कर लिया जाता है किन्तु नेत्र में लैंस से परदे की दूरी बदली नहीं जा सकती। इसलिए निकट की वस्तुओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब नेत्र के परदे पर बनाना तभी सम्भव है कि जब नेत्र-काच का नाभ्यन्तर छोटा हो सके। यदि यह लैंस काँच के समान कठोर पदार्थ का बना होता तो यह असम्भव था किन्तु नेत्र-काच नरम वस्तु का बना है और वह हमारी पेशियों की सहायता से दबा कर मोटा या पतला बनाया जा सकता है। यदि उसे अधिक मोटा कर दिया जाय तो उसका नाभ्यन्तर छोटा हो जाता है और तब निकट वस्तु का प्रतिबिम्ब परदे पर स्पष्ट बन सकता है। नेत्र की इस शक्ति को संविधान-क्षमता कहते हैं और इसके द्वारा साधारण मनुष्य प्रायः १०-१२ इंच दूर के पदार्थों को भी स्पष्ट देख सकता है। किन्तु १० इंच से निकट की वस्तुएँ स्पष्ट नहीं दिखाई देतीं। इस दूरी को स्पष्ट दृष्टि की निकटतम दूरी कहते हैं। भिन्न भिन्न मनुष्यों की संविधान-क्षमता कम या ज़्यादा होती है। बुढ़ापे में भी यह घट जाती है।

ऊपर कहा गया है कि नेत्र के परदे पर वस्तु का वास्तविक प्रतिबिम्ब बनता है। पिछले परिच्छेद में हम देख चुके हैं कि लैंस द्वारा बनाये हुए वास्तविक प्रतिबिम्ब उलटे होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि नेत्र में भी वस्तुओं के प्रतिबिम्ब उलटे ही बनने चाहिए। तब हम उन्हें सीधा क्यों देखते हैं? केवल अभ्यास के कारण। इसका एक अत्यन्त सरल प्रमाण दिया जा सकता है। एक मोटे कागज़ में सुई से छोटा सा छेद कर दो और उसे नेत्र के सम्मुख प्रायः एक इंच की दूरी पर रखो। तब एक पिन या अन्य कोई ऐसी ही पतली सी वस्तु इस छिद्र और नेत्र के बीच में रखो और उसे ऊपर नीचे उठाओ। पिन स्पष्ट देख पड़ेगा किन्तु उलटा (चित्र १९६)। यह तो प्रत्यक्ष

है कि पिन को नेत्र के इतने निकट रखने पर उसका कोई प्रतिबिम्ब नेत्र के परदे पर नहीं पड़ सकता। फिर हम देखते क्या हैं ? केवल पिन की छाया जो इतनी स्पष्ट इस कारण दिखलाई देती है कि प्रकाश एक अत्यन्त छोटे छिद्र में से आता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि छाया
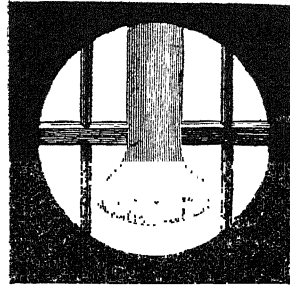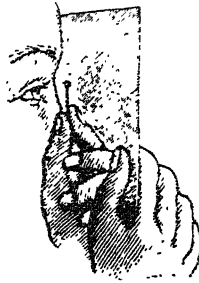
चित्र १५६

सदा सीधी ही होती है किन्तु नेत्र-पटल पर पड़ी हुई छाया को हम उलटी देखते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि जैसा प्रतिबिम्ब हमारे नेत्र के पर्दे पर पड़ता है वस्तु को हम ठीक उससे उलटी ही समझते हैं।

२२०—नेत्र के विकार। कई कारणों से नेत्र में अनेक रोग हो जाते हैं। उनमें से मुख्य ये हैं:—

(१) निकट-दृष्टि, (२) दीर्घ-दृष्टि, (३) विषम-दृष्टि (४) और जरा-दृष्टि।

२२१—निकट-दृष्टि। कुछ मनुष्य दूर की वस्तुओं को साफ़ साफ़ नहीं देख सकते। उन्हें पुस्तक पढ़ने में कष्ट नहीं होता किन्तु दस गज़ दूर

पर के मनुष्य को पहिचानना भी उनके लिए कठिन हो जाता है। इसका कारण यह होता है कि स्वाभाविक अवस्था में भी इनके नेत्र-काच का नाभ्य-

चित्र १६०
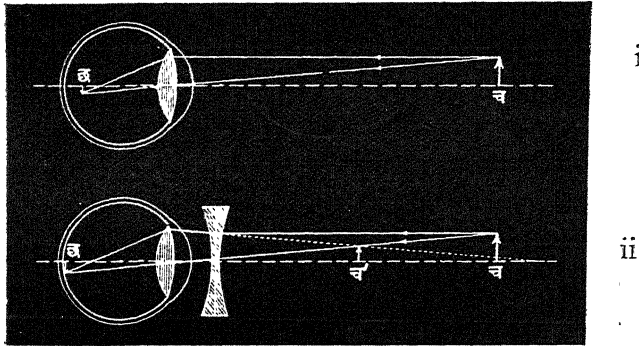
न्तर इतना छोटा होता है कि दूर की वस्तुओं का प्रतिबिम्ब नेत्र-पटल पर नहीं पड़ सकता (चित्र १६०) । संविधान-क्षमता इस नाभ्यन्तर को केवल छोटा बना सकती है, बड़ा नहीं सकती। इस कारण जब तक वस्तु नेत्र से इतने निकट बिन्दु पर नहीं आ जाती कि उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब नेत्र-पटल पर बन जाय तब तक वे उस वस्तु को स्पष्ट नहीं देख सकते। इस बिन्दु को नेत्र का दूर-बिन्दु कहते हैं। इससे निकट की वस्तुएँ संविधान क्षमता की सहायता से स्पष्ट दिखलाई देती हैं।

ऐसे मनुष्य एक नतोदर लैंस के ऐनक की सहायता से दूर की वस्तुओं को खूब अच्छी तरह देख सकते हैं (चित्र १६०-ii)। क्योंकि नतोदर लैंस और नेत्र-काच का सम्मिलित नाभ्यन्तर अकेले नेत्र के नाभ्यन्तर से बड़ा होता है। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य की ऐनक का नाभ्यन्तर ठीक इतना

होना चाहिये कि जो नेत्र की स्वाभाविक अवस्था में दूर की वस्तुओं को साफ़ दिखला दे।

२२२—दीर्घ-दृष्टि। जब नेत्र में यह विकार होता है तब मनुष्य दूर की वस्तुओं को तो स्पष्ट देख सकता है किन्तु निकट की वस्तुओं को वह नहीं देख सकता। पुस्तक को ३-४ फ़ुट दूर रखने पर तो शायद ऐसा मनुष्य उसके अक्षरों को कुछ देख सके किन्तु इससे निकट होने पर वह कुछ भी नहीं देख सकता। जिस निकटतम बिन्दु पर स्थित वस्तु को नेत्र देख सके उसे नेत्र का निकट-बिन्दु कहते हैं। इस विकार का कारण निकट-दृष्टि के कारण से ठीक उलटा होता है। नेत्र के लैंस का नाभ्यन्तर इतना बड़ा होता है अथवा नेत्र का परदा इतना निकट होता है कि स्वाभाविक अवस्था में दूर की वस्तुओं का
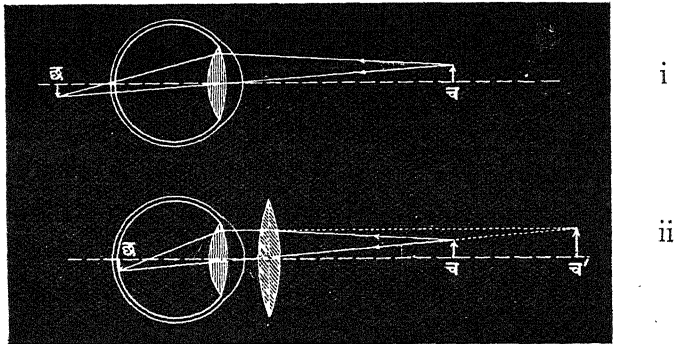
चित्र १६१

प्रतिबिम्ब भी परदे के पीछे बनता है। संविधान-शक्ति के द्वारा मनुष्य नाभ्यन्तर को छोटा बना कर प्रतिबिम्ब परदे पर स्पष्ट बना लेता है। अतः वह दूर की वस्तुओं को देख सकता है किन्तु यह शक्ति निकट की वस्तुओं के प्रतिबिम्ब को परदे पर गिराने के लिए काफ़ी नहीं होती। ऐसी अवस्था में उन्नतोदर

लैंस इस दोष को मिटा सकता है (चित्र १६१—ii)। क्योंकि इसे नेत्र के निकट रखने पर नेत्र का और इसका सम्मिलित नाभ्यन्तर छोटा हो जाता है।

२२३—विषम-दृष्टि। चित्र १६२ में एक ही बिन्दु से बहुत सी रेखायें भिन्न भिन्न दिशाओं में खींची हुई हैं। जिस नेत्र में विषम-दृष्टि का रोग हो उसे ये सब रेखाएँ स्पष्ट न दिखलाई देंगी। यदि खड़ी रेखा स्पष्ट देख पड़ेगी तो आड़ी रेखा बिलकुल अस्पष्ट। यदि अक बहुत साफ़ नज़र आयगी तो अख धुँधली सी जान पड़ेगी। इसका कारण यह होता है कि इस रोग में नेत्र का लैंस गोलीय नहीं होता। उसके पृष्ठ की वक्रता भिन्न भिन्न दिशाओं में भिन्न भिन्न होती है। अतः यदि ऊर्ध्वाधर तल में अवस्थित किरणावलि की नाभि नेत्र के परदे पर हो तो क्षैतिज तल में स्थित किरणावलि की नाभि उससे कुछ आगे या पीछे होती है। ऐसी दशा में बेलन-तल लैंस का ऐनक व्यवहार किया जाता है। इसकी वक्रता एक ही दिशा में होती है और इसके द्वारा नेत्र के लैंस की अधिकतम और अल्पतम वक्रता का अन्तर मिटाया जा सकता है। ऐसे ऐनक के लैंस को चाहे जिस प्रकार घुमाकर नेत्र के सामने नहीं रख सकते। उसका वक्रता-तल नियत कोण पर ही रखना होगा। लैंस की क्षमता के समान ही यह कोण भी ठीक ठीक ज्ञात होना आवश्यक है।
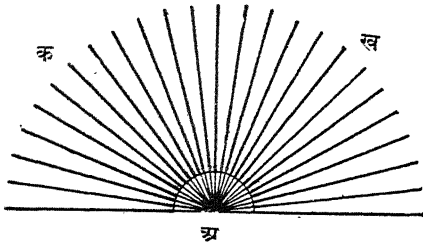
चित्र १६२

जब विषम-दृष्टि के साथ ही साथ निकट-दृष्टि अथवा दीर्घ-दृष्टि का रोग होता है तब यौगिक लैंस का व्यवहार करना होता है। इसका एक पृष्ठ

गोलीय होता है और एक बेलन-तल। इन्हें गोलीय-बेलन-तल लैंस भी कहते हैं।

२२४—जरा-दृष्टि । इसमें नेत्र की क्षमता का ह्रास हो जाता है। बुढ़ापे ही में बहुधा यह दोष पैदा होता है और मनुष्य न तो बहुत दूर की चीज़ों को देख सकता है और न बहुत निकट की। ऐसे मनुष्य को दो ऐनकों की आवश्यकता होती है—एक दूर की वस्तुओं के लिए और दूसरा निकट की वस्तुओं के लिए। बहुधा दोनों प्रकार के लैंस चित्र १६३ के समान एक ही साथ लगा दिये जाते हैं।
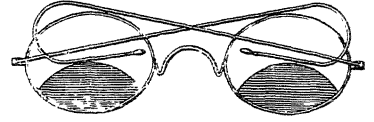
चित्र १६३

२२५—अभिवर्धक लैंस । यह सभी जानते हैं कि दूर की वस्तुएँ छोटी जान पड़ती हैं और उन्हीं वस्तुओं को निकट से देखने पर वे बड़ी दिखलाई देती हैं। इसका कारण समझना कुछ कठिन नहीं क्योंकि यह स्पष्ट है कि नेत्र के परदे पर जो प्रतिबिम्ब बनेगा उसके आकार पर ही वस्तु का बड़ा छोटा नज़र आना निर्भर है। यह हम पहले देख ही चुके हैं कि उन्नतोदर लैंस के द्वारा बनाये हुए वास्तविक प्रतिबिम्ब का आकार ज्यों ज्यों वस्तु निकट आती जाती है त्यों त्यों बढ़ता जाता है।

साधारणतया हम वस्तु को प्रायः १० इंच से कम दूरी पर रख कर नहीं देख सकते। अतः हमें वह सबसे बड़ी इसी स्थान पर दिखलाई देगी। यह सत्य है कि यदि हम उसे और भी निकट रखें तो उसका आकार और भी बढ़ेगा किन्तु इससे हमें कोई लाभ नहीं क्योंकि हम उसे स्पष्ट देख ही नहीं सकते। हाँ यदि हम एक उन्नतोदर लैंस में से देखें तो अवश्य उसका आकार और भी बड़ा दिखलाई दे सकता है। क्योंकि यदि वस्तु इस लैंस की नाभि की अपेक्षा कुछ निकट रखी जाय तो यह उसका बड़ा और काल्पनिक चित्र बनावेगा। और इस प्रतिबिम्ब को हम १० इंच की दूरी से स्पष्ट

देख सकेंगे (चित्र १६४)। जब लैंस इस प्रकार वस्तुओं को बड़े आकार की दिखलाता है तो उसे अभिवर्धक लैंस कहते हैं। यह स्पष्ट है कि इस लैंस का नाभ्यन्तर खूब छोटा होना चाहिए। प्रायः १–१॥ इंच पर्याप्त होता
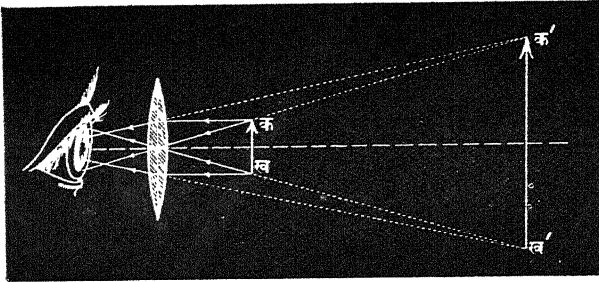
चित्र १६४

है। घड़ीसाज़ छोटे छोटे पुर्ज़ों को देखने के लिए ऐसे ही अभिवर्धक लैंस का प्रयोग करता है।
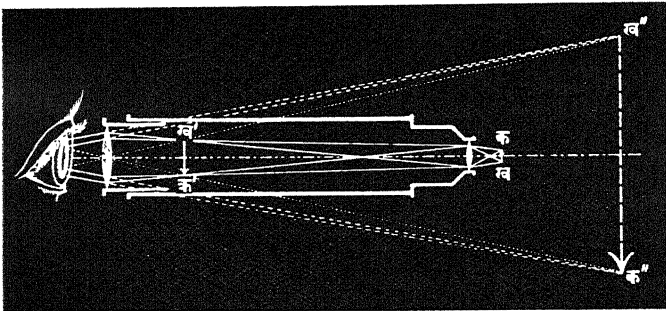
चित्र १६५

२२६—सूक्ष्मदर्शक अथवा माइक्रोसकोप। यदि वस्तु बहुत ही छोटी हो तो उसे बड़े आकार की देखने के लिए सूक्ष्मदर्शक का प्रयोग किया जाता है। इसमें दो उन्नतोदर लैंसों की सहायता से वस्तु का बहुत

बड़ा प्रतिबिम्ब बना सकते हैं। चित्र १६५ में दोनों लैंसों का कार्य बतलाया गया है। पहला उपदृश्य लैंस अत्यन्त छोटे नाभ्यन्तरवाला लैंस है। वस्तु कख इसके समीप रखी जाती है और यह उसका बहुत बड़ा वास्तविक प्रतिबिम्ब क′ख′ बना देता है। इस प्रतिबिम्ब को एक दूसरे लैंस द्वारा हम और भी बड़ा क″ख″ बना कर देखते हैं। इस उपनेत्र लैंस का कार्य ठीक उपर्युक्त अभिवर्धक लैंस के समान है। उपदृश्य लैंस का नाभ्यन्तर जितना छोटा होगा उतना ही बड़ा प्रतिबिम्ब वह बनावेगा। इस प्रकार प्रायः नाभ्यन्तर को १/१२ इंच तक छोटा करके हम वस्तु को प्रायः १००० गुणी लम्बी और
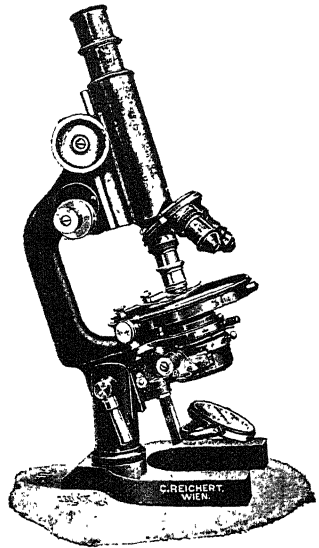
चित्र १६६

१००० गुणी चौड़ी अर्थात् इसके क्षेत्र को १०,००,००० गुणा बड़ा करके देख सकते हैं। रोगों के सूक्ष्म जीवाणु इसी यंत्र की सहायता से देखे जाते हैं। चित्र १६६ में सूक्ष्मदर्शक का प्रत्यक्ष चित्र दिया गया है।

२२७—दूरबीन। इसी प्रकार बहुत दूर की वस्तु को भी हम दूरबीन की सहायता से स्पष्ट देख सकते हैं। इस यंत्र में भी एक उन्नतोदर उपदृश्य लैंस के द्वारा पहले वस्तु का वास्तविक प्रतिबिम्ब बनाया जाता है और इसे दूसरे उपनेत्र लैंस के द्वारा और बड़ा बनाकर हम देखते हैं (चित्र १६७)।
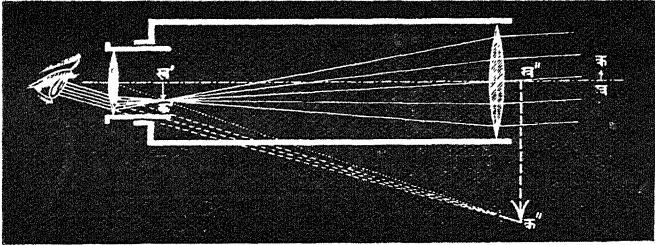
चित्र १६७

किन्तु इसमें और सूक्ष्मदर्शक में एक भेद है। इस यंत्र के उपदृश्य लैंस का नाभ्यन्तर जितना ही बड़ा होगा उतना ही प्रतिबिम्ब बड़ा बनेगा। इस भेद का कारण यह है कि सूक्ष्मदर्शक में तो वस्तु उपदृश्य लैंस की नाभि के निकट रक्खी जाती है किन्तु इसमें वस्तु बहुत दूर पर होती है और इस कारण उसका प्रतिबिम्ब लैंस की नाभि पर बनता है। उपनेत्र लैंस दोनों यंत्रों में एक सा ही होता है।

यह भूल न जाना चाहिए कि इन दोनों ही यंत्रों में वस्तु उलटी दिखलाई देगी। सूक्ष्मदर्शक में तो इस बात से कोई असुविधा नहीं होती और आकाश के तारे देखते समय दूरबीन में भी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु बहुधा पृथ्वी पर की ही वस्तुओं को देखने की आवश्यकता हो जाती है। उस समय मनुष्यों के सिर नीचे की ओर देखना रुचिकर नहीं होता। इसलिए कोई ऐसी युक्ति करनी होती है कि दूरबीन में वस्तुएँ सीधी दिखलाई दें। इसका एक सरल उपाय यह है कि उपनेत्र लैंस उन्नतोदर न रख कर नतोदर रखा जाय और उसे उपदृश्य लैंसवाले प्रतिबिम्ब के आगे ही रखें जिससे उक्त

प्रतिबिम्ब को बनानेवाली किरणें इस नतोदर लैंस पर पहले ही पड़ जावें। चित्र १६८ में लैंसों के स्थान और किरणों के मार्ग स्पष्ट दिखाये गये हैं। अन्तिम प्रतिबिम्ब क″ख″ बड़ा और सीधा बना है। इस उपाय
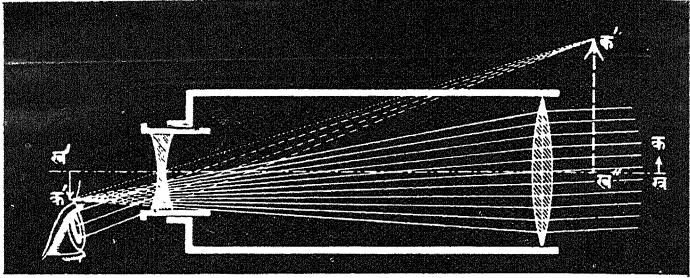
चित्र १६८

में एक और भी सुविधा यह है कि अब दूरबीन की लम्बाई उपदृश्य लैंस के नाभ्यन्तर से भी छोटी होगी।

२२८—दो नेत्रों से लाभ। नेत्रों के सम्बन्ध में और भी एक बात का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। हमारे दो आंखें क्यों होती हैं? क्या केवल इसी लिए कि एक ख़राब हो जाय तो दूसरी काम दे? नहीं। यदि हमारे दो आंखें न हों तो हमें सब वस्तुएं एक ही धरातल में देख पड़ें जिस प्रकार चित्र में लिखी हुई वस्तुएँ सब काग़ज़ के धरातल में ही स्थित जान पड़ती हैं। एक नेत्र से हम वस्तु की दूरी का कुछ भी अन्दाज़ा नहीं कर सकते और उसके आकार का भी हमें कुछ पता नहीं चल सकता। यदि एक आँख बन्द करके सुई में डोरा पिरोने का प्रयत्न करें तो हमें तुरन्त पता लग जायगा कि एक आंख इस काम के लिए काफ़ी नहीं। बात यह है कि जैसा प्रतिबिम्ब एक नेत्र में बनता है ठीक वैसा ही दूसरे नेत्र में नहीं बनता क्योंकि वस्तु को दोनों नेत्र एक ही स्थान से नहीं देखते। काली रेखायुक्त एक गत्ता ट

नेत्र से प्रायः एक फ़ुट की दूरी पर खड़ा रखो और ठीक वैसा ही दूसरा गत्ता ठ उसी के पीछे और एक फ़ुट दूर रखो। अब दाहिना नेत्र बन्द करके
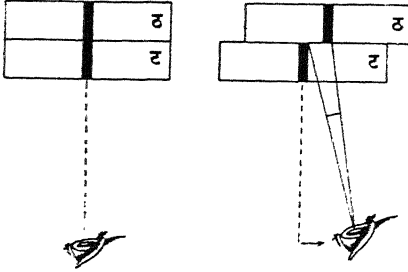
चित्र १६९

इन गत्तों को इस प्रकार रखो कि दोनों रेखाएँ एक सीध में देख पड़ें (चित्र १६९)। अब बाईं आँख बन्द करके दाहिनी आँख से इन रेखाओं को देखो। उनके स्थान बदले हुए नज़र आवेंगे अर्थात् अब ठ की रेखा दाहिनी ओर दिखलाई देगी। इसी प्रकार प्रायः एक सेंटीमीटर लम्बे चौड़े धन को सामने रखकर देखने पर भी दोनों आँखें भिन्न भिन्न आकृति दिखलावेंगी (चित्र १७०)। इससे स्पष्ट है कि दोनों नेत्र वस्तु को एक सा नहीं देखते। एक उसके दाहिनी ओर का कुछ अधिक भाग देखता है और दूसरा बाईं ओर का। दोनों का मिलकर मस्तिष्क पर ऐसा असर होता है कि वस्तु एक ही धरातल
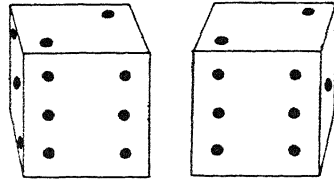
चित्र १७०

पर बने हुए चित्र की नाईं न दीखकर पीछे की अन्य वस्तुओं से उभरी हुई जान पड़ती है।

२२९—सैरबीन। इसी बात का उपयोग सैरबीन नामक यन्त्र में किया जाता है। इस यंत्र में चित्र उभरे हुए जान पड़ते हैं। चित्र की कोई वस्तु निकट और कोई दूर मालूम होती है और ऐसा जान पड़ता है मानों हम चित्र न देखकर वास्तविक दृश्य देख रहे हैं। इसका रहस्य यह है कि इस यंत्र में हम दोनों नेत्रों से एक ही चित्र को नहीं देखते। किन्तु एक आँख से एक चित्र और दूसरी से दूसरा। इन दोनों चित्रों में वैसा ही अन्तर होता है जैसा कि चित्र १७१ में है। जिस कैमरे से ये चित्र लिये जाते हैं उसमें भी

हमारे नेत्रों की भांति ही दो लैंस होते हैं और वह अलग अलग दो चित्र एक साथ ही खींच लेता है। एक चित्र में ठीक वह दृश्य होता है जो हमारा दाहिना नेत्र देखता है और दूसरे में वह जो बांया नेत्र देखता है। सैरबीन में पहले चित्र को दाहिना नेत्र देखता है और दूसरे को बांया। परिणाम यह होता है कि नेत्रों को ठीक ठीक वही दृश्य दिखलाई देता है जो वे सचमुच देखते। चित्र १७१ में सैरबीन दिखलाई गई है। इसमें दोनों नेत्रों के लिये पृथक् पृथक् दो लैंस लगे हैं। दोनों लैंसों से बने हुए प्रतिबिम्ब नेत्रों को एक ही स्थान पर दिखलाई देते हैं और हम समझते हैं कि वास्तविक वस्तु ही को हम देख रहे हैं।
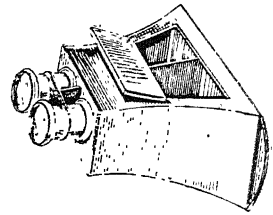
चित्र १७१

२३०—सिनेमा अथवा बायस्कोप—दृष्टि का स्थायित्व।

दूसरी बात नेत्रों के सम्बन्ध में जानने योग्य यह है कि प्रकाश का जो असर नेत्र पर एक बार होगया वह प्रकाश को हटा लेने पर एक-दम नहीं मिट जाता। प्रायः १/१० सैकंड तक वह असर बना ही रहता है। अर्थात् यदि किसी वस्तु को हम देखें और वह एकाएक ग़ायब हो जाय तो भी १/१० सैकंड तक वह हमें दिखलाई देती ही रहेगी। यदि जली हुई दियासलाई को हाथ में पकड़ कर हाथ जल्दी जल्दी हिलायें तो हमें प्रकाश का एक वृत्तखंड दिखलाई देगा। यह प्रत्यक्ष है कि किसी भी क्षण में दियासलाई केवल एक ही स्थान पर स्थित होगी और हमें वह केवल उसी स्थान पर दिखलाई देनी चाहिए। किन्तु उस क्षण से पहले भी जहाँ वह थी और जहाँ उस क्षण के पहले उसे हमने देखा था वहाँ अब भी हम उसे देखते रहेंगे। वस्तुतः १/१० सैकंड में वह जिन जिन स्थानों पर थी उन सभी स्थानों पर हम उसे एक ही साथ देखेंगे। यही कारण है कि हमें प्रकाश का एक वृत्त सा दिखलाई देता है। तेज़ दौड़ती हुई गाड़ी के पहियों की ताड़ियाँ हम नहीं देख

सकते। सारा पहिया ताड़ियों से भरा नज़र आता है। किन्तु अँधेरे में यदि पहिया घूम रहा हो और एक क्षण भर के लिए उस पर प्रकाश पड़े (यथा बिजली की चमक से) तो हम उसकी ताड़ियां देख सकेंगे। बायस्कोप या सिनेमा में नेत्र के इस गुण का प्रयोग किया जाता है और एक सैकंड में हमें प्रायः १६-२० चित्र चित्र-दर्शक लालटैन के द्वारा दिखलाये जाते हैं। परिणाम यह होता है कि हम उन्हें पृथक् पृथक् चित्र न समझ कर एक ही चित्र समझते हैं और उसमें के मनुष्य इत्यादि हमें हिलते चलते जान पड़ते हैं। प्रत्येक चित्र में पिछले चित्र से प्रायः १/१५ सैकंड बाद का दृश्य दिखलाया जाता है।

प्रश्न

(१) नतोदर और उन्नतोदर लैंसों के मुख्य मुख्य उपयोगों का कुछ वर्णन करो।

(२) चित्र-दर्शक लालटैन में संग्राहक लैंस की क्या आवश्यकता है ?

(३) यदि चित्र-दर्शक लालटैन से परदा २० फुट दूर हो और उसकी तसवीरें $३\frac{१}{४}'' \times ३\frac{१}{४}''$ हों तो दर्शक-लैंस का नाभ्यन्तर कितना होना चाहिए कि प्रतिविम्ब (१) $६' \times ६'$ और (२) $३' \times ३'$ बन सके ?

(४) फ़ोटो खींचने के कैमेरे में किस प्रकार का लैंस काम में आता है ? सूची-छिद्र कैमेरे की अपेक्षा यह क्यों अच्छा समझा जाता है ?

(५) यह कैसे प्रमाणित कर सकते हो कि मनुष्य के नेत्र में वस्तुओं के उलटे चित्र बनते हैं ?

(६) दीर्घ-दृष्टि और निकट-दृष्टि का क्या कारण होता है और इनका इलाज क्या है ?

(७) फ़ोटो का नैगेटिव क्या होता है ? इसके द्वारा सच्चा चित्र कैसे बनाया जाता है ?

(८) एक मनुष्य ३ फुट से अधिक दूर की सब वस्तुओं को अच्छी तरह देख सकता है। उसे एक फुट पर रखकर पुस्तक पढ़ सकने के लिए किस क्षमता का और कैसा ऐनक चाहिए ?

(९) एक मनुष्य को केवल ४″ से ४०″ तक की वस्तुएँ स्पष्ट दिखलाई देती हैं। उसके नेत्र में क्या रोग है ? और उसे बहुत दूर की वस्तु देख सकने के लिए किस क्षमता का ऐनक चाहिए ? इस ऐनक से उसकी स्पष्ट दृष्टि की निकटतम दूरी कितनी हो जायगी ?

(१०) विषम दृष्टि की क्या पहिचान है और इसका प्रतीकार किस प्रकार के लैंस से होता है ?

(११) दूरबीन और सूक्ष्मदर्शक में क्या भेद होता है ? चित्र के द्वारा समझाओ।

(१२) सीधे प्रतिबिम्ब दिखलानेवाली दूरबीन बनाने के लिए कैसे लैंसों की आवश्यकता होगी और उन्हें किस प्रकार जमाना पड़ेगा ? यदि दूरबीन का अभिवर्धन १० हो और उपनेत्र लैंस का नाभ्यन्तर १″ हो तो उपदृश्य लैंस का नाभ्यन्तर कितना होना चाहिए ?

(१३) दूरबीन के उपदृश्य का व्यास बड़ा क्यों बनाया जाता है और सूक्ष्मदर्शक के उपदृश्य का व्यास छोटा क्यों होता है ?

(१४) यदि सूक्ष्मदर्शक के उपनेत्र का नाभ्यन्तर १″ हो तो उपदृश्य द्वारा निर्मित वास्तविक प्रतिबिम्ब कहाँ बनना चाहिए कि जिससे नेत्र अन्तिम प्रतिबिम्ब स्पष्ट-दृष्टि की निकटतम दूरी पर देख सके ?

(१५) यदि १४ वें प्रश्न का उपनेत्र १/८″ के नाभ्यन्तर के उपदृश्यवाले सूक्ष्मदर्शक में लगा है और इन दोनों लैंसों के बीच की दूरी ८″ है तो वस्तु उपदृश्य से कितनी दूर रखनी चाहिए ?

(१६) १५ वें प्रश्न के उपदृश्य का अभिवर्धन कितना होगा और पूरे सूक्ष्मदर्शक का अभिवर्धन कितना होगा ?

(१७) दो नेत्र होने से क्या लाभ है ? सैरबीन का कार्य समझाओ।

(१८) परदे पर चलते फिरते चित्र कैसे दिखलाये जा सकते हैं ?

परिच्छेद २४

वर्ण-विश्लेषण

२३१—वर्णपट । त्रिपार्श्वों और लैंसों का वर्णन करते समय अब तक तो हमने केवल इसी प्रश्न पर विचार किया है कि प्रकाश-किरणें इनमें प्रवेश करने पर किस प्रकार मुड़ जाती हैं और इस विचलन के कारण वस्तुओं के प्रतिबिम्ब किस प्रकार बन जाते हैं। किन्तु यदि श्वेत वस्तुओं के प्रतिबिम्बों को भी ग़ौर से देखें तो तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि उनके किनारे रंगीन होते हैं। त्रिपार्श्व द्वारा बनाये हुए प्रतिबिम्ब के एक किनारे पर तो कुछ लाल और पीला रंग नज़र आता है
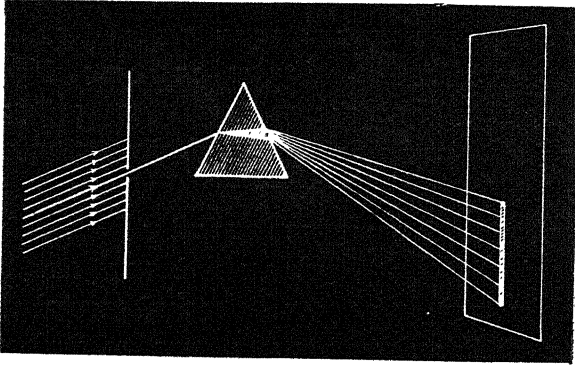
चित्र १७२

और दूसरे पर नीला और बैंजनी। केवल बीच का भाग ही श्वेत दिखलाई देता है। और यदि वस्तु बहुत पतली सी हो तो उसमें और भी अधिक

रंग दिखाई देते हैं और श्वेत भाग का सर्वथा अभाव होता है। इस बात को अच्छी तरह देखने के लिए अँधेरे कमरे में खिड़की के एक अत्यन्त छोटे सूराख़ में से सूर्य की किरणें प्रवेश करने दो। ये किरणें फ़र्श पर पड़ कर सूर्य का एक छोटा सा प्रतिबिम्ब बनावेंगी। अब यदि एक त्रिपार्श्व इन किरणों के मार्ग में इस प्रकार रख दें कि उसका कोण नीचे की ओर हो (चित्र १७२) तो ये किरणें मुड़ कर सामने दीवार पर जा पड़ेंगी। किन्तु अब वहाँ पर श्वेत प्रतिबिम्ब न होगा और कई रंग देख पड़ेंगे। सबसे नीचे लाल रंग होगा और उसके ऊपर क्रम से नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और अन्त में बैंजनी रंग देख पड़ेगा। रंगों के इस समुदाय को वर्णपट कहते हैं। अब यदि सूराख़ के सामने लाल काँच रख दिया जाय तो इन रंगों में से केवल लाल रंग ही दीवार पर रह जायगा। शेष सब ग़ायब हो जायँगे। नीला काँच रखने से नीले के अतिरिक्त अन्य सब रंगों का लोप हो जायगा।

इस सरल प्रयोग से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्रथम तो यह कि श्वेत प्रकाश कई रंगों के प्रकाश का समुदाय मात्र है। दूसरे यह कि प्रत्येक रंग का प्रकाश त्रिपार्श्व के द्वारा भिन्न भिन्न परिमाण में मुड़ता है। लाल सबसे कम और बैंजनी सबसे अधिक। इसका अर्थ यह है कि भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाश के लिए त्रिपार्श्व के काँच का वर्तनांक भी भिन्न भिन्न होता है। हम पहले ही कह आये हैं कि भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाश की तरंगों की लम्बाई भिन्न भिन्न होती है। वर्तनांक की भिन्नता से यह भी प्रकट है कि काँच में इनके वेग में भी अन्तर होता है। लाल प्रकाश का वेग सबसे अधिक होता है और बैंजनी का सबसे कम।

वर्तनांक की भिन्नता के कारण श्वेत प्रकाश का विश्लेषण होकर भिन्न भिन्न रंगों के पृथक् हो जाने को **वर्ण-विश्लेषण** कहते हैं।

२३२—अवयव-रंगों से श्वेत प्रकाश की उत्पत्ति।

यद्यपि उपर्युक्त प्रयोग से ही यह प्रमाणित है कि श्वेत प्रकाश सब रंगों के

प्रकाश का समुदाय-मात्र है तथापि निम्न-लिखित प्रयोग इस बात को और भी स्पष्ट कर देते हैं। इनके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार श्वेत प्रकाश का विश्लेषण हो जाता है उसी प्रकार रंगीन प्रकाशों को मिलाने से श्वेत प्रकाश बन भी जाता है।
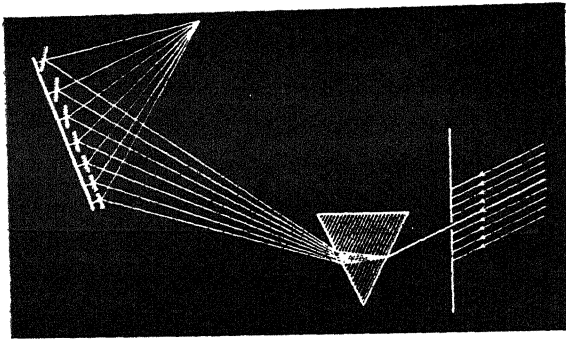
चित्र १७३

ऊपर लिखी हुई रीति से वर्णपट बनाओ। चित्र १७३ की भाँति कई छोटे छोटे दर्पणों के द्वारा इसके भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाश को परावर्तित कर के सामने की दीवार पर एक ही जगह डाल दो। आप देखेंगे कि वह स्थान श्वेत मालूम होगा।

एक त्रिपार्श्व से बने हुए वर्णपट के रंगों को दूसरे त्रिपार्श्व के द्वारा भी पुनः सम्मिलित कर सकते हैं। चित्र १७४ में दूसरा त्रिपार्श्व उलटा लगा दिया गया है जिससे सब रंगों का विचलन उलट कर सभी किरणें एकत्र हो जाती हैं। इस स्थान पर हमें पुनः श्वेत प्रकाश दिखलाई देता है।

एक वृत्ताकार चक्र के भिन्न भिन्न खंडों को वर्णपट के रंगों का रँग लो। तब उसे ज़ोर से घुमाओ। आप देखेंगे कि चक्र अब रंगीन न मालूम होगा। किन्तु श्वेत नज़र आयगा। इसका कारण यह है कि दृष्टि के स्थायित्व के कारण किसी एक दिशा से क्रमशः आनेवाले सब रंगों का प्रकाश नेत्र में

एकत्रित हो जायगा और हमें ऐसा जान पड़ेगा है मानो वह चक्र केवल श्वेत प्रकाश ही हमारे नेत्र में भेजता है ।
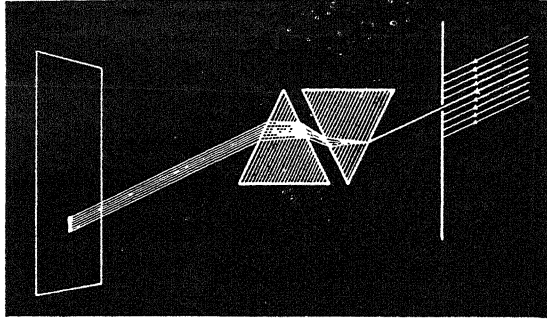
चित्र १७४

२३३—शुद्ध वर्ण पट । चित्र १७२ में जो वर्णपट बना है उसमें रंग सर्वथा पृथक् पृथक् नहीं हो सकते। इसका कारण यह है कि
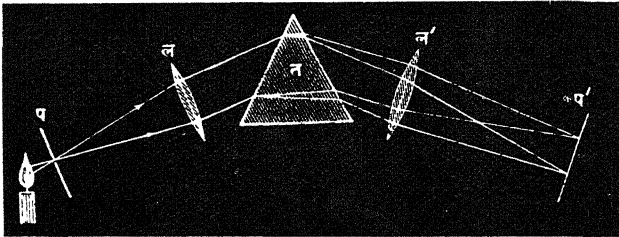
चित्र १७५

प्रत्येक रंग का प्रकाश दीवार पर पड़ कर जिस क्षेत्र को प्रकाशित करता है उसकी कुछ लम्बाई-चौड़ाई होती है । अतः पास पास के रंगीन प्रकाशों का कुछ न कुछ भाग एक दूसरे पर पड़ जाता है और वहाँ दोनों रंग मिल जाते हैं । इस दोष से मुक्त वर्णपट को शुद्ध वर्णपट कहते हैं । उसे उत्पन्न करने का उपाय चित्र १७५ में बताया गया है ।

एक परदे प में एक खड़ी स्लिट या झिरी काट दी गई है। यह प्रायः एक इंच लम्बा और बहुत ही पतला छिद्र होता है। यह स्लिट एक उन्नतोदर लैंस ल की नाभि पर रख दी जाती है। ताकि उसमें से दीपक की जो किरणें लैंस पर पड़ें वे सब समानान्तर हो जावें। अब ये किरणें त्रिपार्श्व त पर पड़ कर मुड़ जाती हैं। दूसरा उन्नतोदर लैंस ल′ उन्हें एकत्रित करके अपनी नाभि पर स्थित पर्दे प′ पर स्लिट का वास्तविक प्रतिबिम्ब बना देता है। यह प्रतिबिम्ब भी स्लिट के समान ही
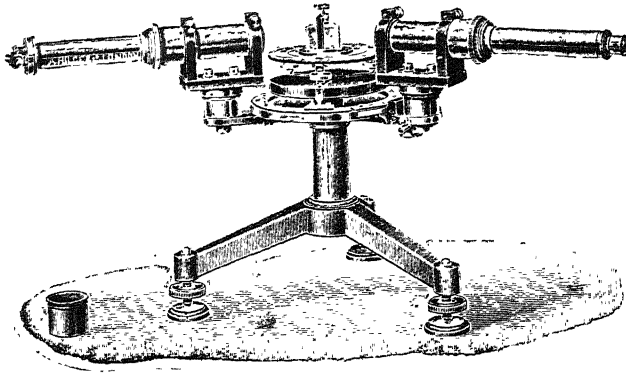
चित्र १७६

बहुत पतला होता है। भिन्न भिन्न रंगों के प्रकाशों के द्वारा बने हुए ये पतले पतले प्रतिबिम्ब पर्दे पर बराबर बराबर पड़ते हैं किन्तु एक दूसरे से मिल नहीं जाते। यह शुद्ध वर्णपट वास्तविक है। ल′ और प′ के स्थान में एक दूरबीन रखने से उसमें भी स्लिट के ये रंगीन प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखलाई देंगे। इस अवस्था में भी नेत्र शुद्ध वर्णपट देखेगा किन्तु प्रकट ही है कि यह वर्णपट काल्पनिक होगा। इस प्रकार शुद्ध वर्णपट देखने के यन्त्र को वर्णपट-दर्शक कहते हैं (चित्र १७६)। जिस वर्णपट-दर्शक में प्रत्येक

रंग के प्रकाश का विचलन नापने का प्रबन्ध हो उसे वर्णपट-मापक कहते हैं।

२३४—अविच्छिन्न और रेखामय वर्णपट। मोमबत्ती अथवा अन्य साधारण दीपकों के प्रकाश से जो वर्णपट बनता है वह एक छोर से दूसरे छोर तक अविच्छिन्न होता है। उसमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं होता जहाँ किसी न किसी रंग का प्रकाश न पड़ता हो। ठोस या द्रव वस्तु का तापक्रम बढ़ाने से जो प्रकाश उत्पन्न होता है वह सदा अविच्छिन्न वर्णपट ही बनाता है। मोमबत्ती आदि की लौ में भी कार्बन के छोटे-छोटे ठोस कण ही गरम होकर प्रकाशित होते हैं। किन्तु यदि बुन्सन ज्वालक की प्रकाशहीन ज्वाला में ताँबे, सोडियम, कैलशियम आदि के लवण जलाये जाँय तो इन तत्त्वों का वाष्प बन जाता है और उनके प्रकाश का वर्णपट अविच्छिन्न नहीं होता। उनमें केवल थोड़ी सी रंगीन रेखायें जहाँ तहाँ बिखरी हुई दिखलाई देती हैं। ऐसे वर्णपट को **रेखामय** वर्णपट कहते हैं। गैस या वाष्प से ऐसा ही वर्णपट बनता है। प्रत्येक तत्त्व के लिए वर्णपट में इन रेखाओं की संख्या और स्थान भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः रेखाओं को देखकर हम यह बता सकते हैं कि प्रकाश अमुक तत्व से उत्पन्न हो रहा है। यह बात बड़ी उपयोगी है क्योंकि इसकी सहायता से हम पदार्थों का विश्लेषण कर सकते हैं और यह बता सकते हैं कि उसमें अमुक अमुक तत्त्व विद्यमान हैं। जो बात रासायनिक विश्लेषण के द्वारा बड़ी कठिनता से ज्ञात होती है वह पदार्थ को बुन्सन ज्वालक की ज्वाला में जलाने-मात्र से ज्ञात हो जाती है। साधारण खाने के नमक के वर्णपट में केवल दो पीली रेखायें होती हैं जो इतनी निकट होती हैं कि वे साधारणतया प्रायः एक ही में मिली हुई दिखलाई देती हैं। यह सोडियम की रेखा है। इसी से ज्वाला पीली हो जाती है। जिस किसी वस्तु से यह रेखा बने उसमें सोडियम की उपस्थिति निश्चित है। इसी प्रकार अन्य तत्त्वों की परिचायक भी ख़ास ख़ास रेखायें होती हैं।

२३५—शोषण रेखायें। यह पहिले बताया जा चुका है कि कई पारदर्शक पदार्थ ऐसे होते हैं जो सब रंगों के प्रकाश को पार नहीं निकलने देते और कुछ रंगों का शोषण कर लेते हैं। अतः इनमें होकर आया हुआ प्रकाश पूरा वर्णपट नहीं बना सकता। उसका कुछ भाग ग़ायब हो जाता है। ठोस या द्रव पदार्थों के द्वारा शोषित भाग तो काफ़ी लम्बा होता है किन्तु गैसों या वाष्पों के शोषण से पतली पतली रेखायें बनती हैं। ये उसी प्रकाश का शोषण कर सकते हैं जिसे वे स्वयं उत्पन्न कर सकें। अतः जो श्वेत प्रकाश इनमें होकर जाता है उसके वर्णपट में काली रेखायें नज़र आती हैं और इन शोषण रेखाओं का स्थान ठीक वही होता है जो उनके प्रकाश के वर्णपट की रेखाओं का होता है। यथा सोडियम वाष्प ठीक अपनी पीली रेखा के स्थान में काली रेखा बना देता है। अतः इन काली रेखाओं के द्वारा भी तत्त्वों को पहिचान सकते हैं। सूर्य्य तथा बहुधा तारों के वर्णपटों में ऐसी अनेक काली रेखायें नज़र आती हैं। इन्हें फ्रानहोफ़र ने ही सबसे पहिले देखा था। इसलिए ये फ्रानहोफ़र-रेखायें कहलाती हैं। इन्हीं के द्वारा हमें यह पता लगता है कि सूर्य तथा तारे किन किन तत्त्वों से बने हुए हैं।

२३६—प्रकाशहीन वस्तुओं का रंग। परिच्छेद १७ में लिखा गया था कि जो वस्तु लाल मालूम होती है वह श्वेत प्रकाश में से केवल लाल भाग को विकीर्णित करके हमारे नेत्रों में भेजती है और अन्य सबका शोषण कर लेती है। अब हम इस बात की परीक्षा वर्णपट के द्वारा कर सकते हैं। चित्र १७९ के समान ही वास्तविक वर्णपट दीवार पर बना लो। तब लाल रंग की वस्तु को क्रमशः इस वर्णपट के लाल, पीले, नीले आदि भागों में रखो। आप देखेंगे कि वह अन्य सब भागों में तो काली दिखलाई देती है किन्तु लाल भाग में लाल देख पड़ती है। पीली वस्तु पीले के अतिरिक्त सर्वत्र काली नज़र आवेगी। बहुत सी वस्तुओं का रंग वर्णपट के कई रंगों का मिश्रण होता है। अतः वे

वर्णपट के भिन्न-भिन्न भागों में काली नज़र न आकर भिन्न-भिन्न रंगों की दिखलाई देंगी।

२३७—इन्द्रधनुष। ऐसा कोई मनुष्य न होगा जिसने कभी न कभी इन्द्रधनुष न देखा हो। यह सुन्दर वृत्ताकार प्राकृतिक वर्णपट बहुधा प्रातःकाल अथवा सन्ध्या के समय जब सूर्य क्षितिज के निकट ही हो तब दिखलाई देता है। यह वर्षा की बूँदों पर सूर्य की किरणों के पड़ने से बनता है। छोटी छोटी गोल गोल जल की बूँदें ही इसके लिए त्रिपार्श्व का काम करती हैं। चित्र १७७ में ऐसी एक बूँद और इन्द्रधनुष बनानेवाली किरणों के मार्ग दिखलाये गये हैं। सूर्य की किरण बूँद में प्रवेश करके वर्त्तित मार्ग चल का अनुसरण करती है। ल पर इसका पूर्ण परावर्तन होता है और परावर्तित किरण ल ल ल बूँद से बाहर निकल कर हमारे नेत्र में पहुँचती हैं। पानी में इस प्रकार चलने के कारण श्वेत किरण का विश्लेषण हो जाता है और भिन्न-भिन्न रंग की किरणें बूँद में से पृथक् होकर निकलती हैं। च ल ल ल लाल किरण है और च ब ब ब बैंजनी। अन्य रंगों की किरणें इन दोनों के बीच में हैं चित्र १७८ में पूरा इन्द्रधनुष दिखलाया गया है। इस चित्र से ज्ञात हो जायगा कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न बूँदों से परावर्तित प्रकाश धनुष के भिन्न-भिन्न रंगों की रचना करता है। यह वृत्ताकार क्यों होता है, वृत्त का व्यास क्यों सदैव एक ही परिमाण का देख पड़ता है, इसके ऊपर और नीचे
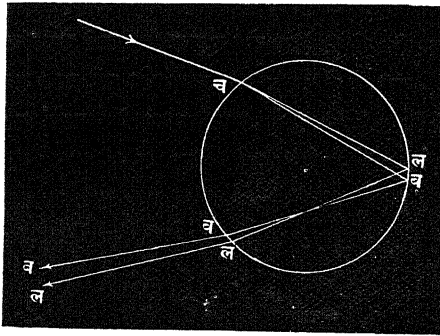
चित्र १७७

क्यों कभी कभी और दूसरे धनुष और रंग देख पड़ते हैं इत्यादि अनेक रोचक प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर इस प्रारम्भिक पुस्तक में नहीं दिया जा सकता।
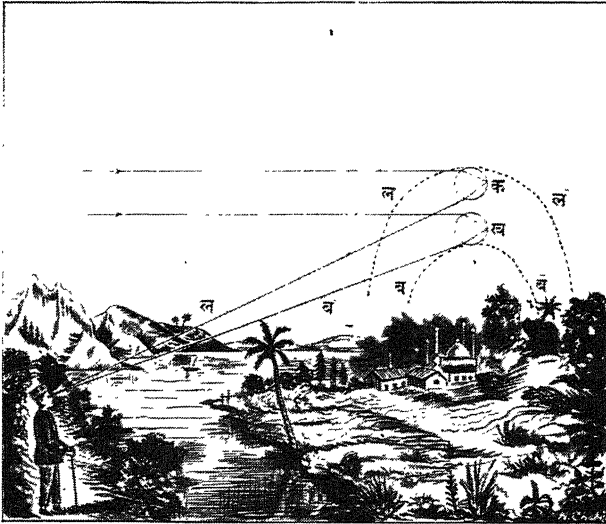
चित्र १७८

२३८—वर्णपट के अदृश्य भाग। सूर्य के श्वेत प्रकाश के वर्णपट में लाल से लेकर बैंजनी पर्यन्त अनेक रंग दिखलाई देते हैं। इसी से हम कहते हैं कि श्वेत प्रकाश उन सब रंगों के प्रकाश का समुदाय है। किन्तु यह न समझना चाहिए कि उसमें इन वर्णपट के रंगों के प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। यह तो सभी जानते हैं कि सूर्य से ताप की किरणें भी पृथ्वी पर आती हैं और यह भी बतलाया जा चुका है कि ताप की किरणों और प्रकाश की किरणों में बड़ी समानता है। वे एक ही

वेग से चलती हैं। परावर्तन आदि के नियम भी दोनों के लिए एक ही हैं। वास्तव में ताप-किरणें भी एक प्रकार की प्रकाश-किरणें ही हैं। अन्तर केवल यह है कि ताप-किरणों की तरंगों की लम्बाई प्रकाश-तरंगों की अपेक्षा अधिक होती है। हमारे नेत्रों में इतनी अधिक लम्बाई की तरंगों को देखने की शक्ति नहीं होती। अतः वर्णपट में हमें उनके अस्तित्व का पता नहीं चलता। किन्तु वे उसमें होती अवश्य हैं। वर्णपट में तरंगों की लम्बाई नीले छोर से लाल छोर की तरफ़ क्रमशः बढ़ती जाती है। अतः यह ताप-तरंगें लाल से भी परे रहती हैं। वर्णपट के इस भाग में अत्यन्त सूक्ष्मग्राही तापमापक के द्वारा इनका अस्तित्व प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। वर्णपट में उनके स्थान की दृष्टि से इन्हें उपरक्त किरणें कहते हैं। ठीक इसी प्रकार वर्णपट के दूसरे छोर पर बैंजनी या नील लोहित रंग से परे भी एक प्रकार का अदृश्य प्रकाश होता है। इसे नील-लोहितोत्तर प्रकाश कहते हैं। इसकी तरंगों की लम्बाई बजनी तरंगों से भी कम होती है। इन्हें भी हमारे नेत्र नहीं देख सकते। न इनमें ताप ही होता है। किन्तु इनमें रासायनिक क्रिया करने की शक्ति खूब होती है। फ़ोटो के प्लेट पर इन्हीं किरणों का सबसे अधिक असर होता है। ये अनेक रोगों के जीवाणुओं को नष्ट कर डालने की भी शक्ति रखती हैं। इस काम के लिए आज-कल इनका बहुत प्रयोग होता है। मनुष्य-शरीर की वृद्धि में भी ये लाभदायक पाई गई हैं। इसी से आजकल यूरोप जैसे शीत देश में भी लोग कपड़े उतार कर सूर्य की धूप में कुछ देर शरीर को खुला रखने की आवश्यकता बोध करने लगे हैं। और जिन स्थानों में बादल धुँआ आदि अधिक रहने के कारण सूर्य की धूप बहुत कम प्राप्त होती है वहाँ अब अनेक प्रकार के बिजली के लम्प काम में आते हैं जिनमें अधिकतर पारे का वाष्प स्फटिक की नली में भरा रहता है और जो यथेष्ट मात्रा में नील-लोहितोत्तर प्रकाश उत्पन्न करते हैं। सौभाग्य से भारतवर्ष में इन कृत्रिम उपायों की इतनी आवश्यकता नहीं है क्योंकि यहाँ सूर्य सदा ही अपनी प्रखर किरणों से यह नील-लोहितोत्तर प्रकाश हमें प्रदान करता रहता है।

प्रश्न

(१) सूर्य का प्रकाश एक प्रकार का मिश्रण है यह किन प्रयोगों से सिद्ध करोगे ?

(२) यदि श्वेत प्रकाश के वर्णपट के भिन्न-भिन्न भागों में एक लाल फूल अथवा हरा पत्ता रखा जावे तो वह कैसा दिखलाई देगा ?

(३) पर्दे पर शुद्ध वर्णपट कैसे बनाया जाता है ?

(४) रसायन-विज्ञान में वर्णपट का व्यवहार किस काम के लिए होता है ?

(५) निम्न प्रकार के दीपकों के प्रकाश का वर्णपट कैसा होगा ?

(१) मोमबत्ती, (२) सूर्य, (३) ज्वालक की नमकदार ज्वाला और (४) लाल काँच का बिजली का लम्प।

(६) वर्ण-विश्लेषण का भौतिक कारण क्या है ?

(७) लाल काँच से परावर्तित प्रकाश तो श्वेत होता है किन्तु उसके भीतर होकर जानेवाला प्रकाश लाल होता है इसका क्या कारण है ?

(८) अदृश्य प्रकाश कैसा होता है और उसके अस्तित्व का पता कैसे चल सकता है ?

शब्द

परिच्छेद २५

शब्द की उत्पत्ति

२३९—शब्द । कान से जो कुछ हमें सुनाई देता है उसी का नाम शब्द है । वस्तुओं के गिरने, टूटने इत्यादि की आवाज़, जानवरों और मनुष्यों की बोली, अनेक प्रकार के बाजों से निकलनेवाला मधुर संगीत इत्यादि सब भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द ही हैं । शब्द और उसको ग्रहण करने-वाली इंद्रिय कान हमारे जीवन के लिए कितने उपयोगी हैं यह बात सभी को विदित है । शब्द ही के द्वारा हम अपने मन की बात दूसरों को समझा सकते हैं और कान ही की सहायता से हम दूसरों के भाव समझते हैं । सड़क पर गाड़ी मोटर आदि से हम अपने प्राण की रक्षा भी इसी की मदद से करते हैं । यह सच है कि ज्ञानप्राप्ति में कान नेत्र की बराबरी नहीं कर सकते तथापि इसमें भी सन्देह नहीं कि नेत्र के अतिरिक्त कान से अधिक उपयोगी हमारे पास दूसरी इंद्रिय नहीं है । यद्यपि नेत्र के समान करोड़ों मील दूर के सूर्य और तारों की बात हमें कान नहीं बता सकता तथापि स्पर्श आदि के समान ही उसे वस्तु के निकट जाने की आवश्यकता भी नहीं होती । वह भी अपना कार्य दूर ही से कर लेता है । और जिस प्रकार नेत्र अनेक रंगों

F. 24

और आकृतियों का भेद तुरन्त पहिचान लेता है उसी प्रकार कान भी शब्द के बारीक से बारीक भेद को बड़ी सफ़ाई से समझ लेता है । इस गुण का व्यवहार हम नित्यप्रति करते हैं । हमने सैकड़ों मनुष्यों की बोली सुनी होगी । यद्यपि यह बताना कठिन है कि उनकी आवाज़ में क्या भेद है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हमारे कान हमें तुरन्त यह बतला देंगे कि हम अमुक मनुष्य की आवाज़ सुन रहे हैं । शायद ही कभी ऐसे दो मनुष्य आपको मिले हों जिनकी आवाज़ में आपके कान फ़र्क न बतला सकें ।

२४०—शब्द की उत्पत्ति । शब्द कई प्रकार से उत्पन्न किया जा सकता है । हथौड़े से लोहे को पीटने से, सितार के तार को उँगली से खींच कर छोड़ देने से, ढोल पर डंके की चोट मारने से, घंटी को हिलाने से, सीटी में फूँक मारने से, बन्दूक़ चलाने से, वायु के द्वारा पत्तों के हिलने से, पक्षियों के पर फड़फड़ाने से और मनुष्य के कंठ, मुख और जिह्वा के प्रयत्न से इत्यादि । यद्यपि ये सब उपाय भिन्न-भिन्न प्रकार के जान पड़ते हैं किन्तु वास्तव में सबके मूल में एक ही बात है । वह है वस्तु का हिलना । शब्द उत्पन्न करने के लिए आवश्यक बात यह है कि जिस वस्तु में शब्द उत्पन्न हो वह निश्चल न रहे । चाहे किसी भी उपाय से हो किन्तु उसमें कुछ गति अथवा कम्पन पैदा हो जाय । उपर्युक्त सभी उदाहरणों में कुछ न कुछ कम्पन पैदा किया जाता है और तभी शब्द की उत्पत्ति होती है ।

किन्तु वस्तु की जो गति हम साधारणतया अपने नेत्रों से देखते हैं वह शब्द उत्पन्न नहीं कर सकती । यद्यपि हथौड़ा ऊपर उठाने और फिर नीचे गिराने में प्रत्यक्ष ही हिलता हुआ दिखलाई देता है किन्तु जब तक वह लोहे पर चोट नहीं मारता तब तक शब्द पैदा नहीं होता । घंटी के लटकन को पकड़ कर चाहे जितना हिलाइए कोई भी आवाज़ नहीं निकलती । वास्तव में बात यह है कि इस प्रकार की स्थूल गति जिसमें पूरी की पूरी वस्तु एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर चली जावे शब्द उत्पन्न करने में असमर्थ है । शब्द उत्पन्न करनेवाली गति दूसरे ही प्रकार की होती है । इसमें वस्तु

के भिन्न-भिन्न भाग अत्यन्त शीघ्रता से इधर उधर हिलते हैं—कम्पन करते हैं किन्तु पूरी वस्तु अपने ही स्थान पर स्थित रहती है। झूले की गति या घड़ी के दोलक की गति भी इसी प्रकार की होती है। किन्तु शब्दोत्पादक गति दोलक की गति से बहुत अधिक वेगवाली होती है और सूक्ष्म भी इतनी होती है कि प्रायः उसे हम नेत्र से नहीं देख सकते। इस प्रकार की गति को हम कम्पन कह सकते हैं।

यदि हम सितार, वीणा आदि के तार को ग़ौर से देखें तो मालूम हो जायगा कि जिस समय उसमें से शब्द निकलता है उस समय उसका आकार सीधी रेखा के समान नहीं होता। वह चित्र १७९ के समान बीच में से फैला हुआ जान पड़ता है। ज्यों ज्यों आवाज़ कम होती जाती है त्यों त्यों इसका फैलाव भी घटता जाता है। यद्यपि तार के कम्पनों को हम पृथक् पृथक् नहीं देख सकते किन्तु इस फैलाव से हम अवश्य यह कह सकते हैं कि वह बड़े वेग से इधर-उधर हिल रहा है।
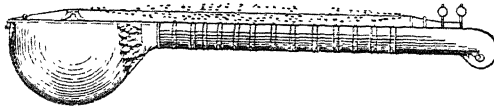
चित्र १७९

ढोल या तबले पर चोट मारो। और उसके चमड़े पर थोड़ी सी बालू डाल दो। आप देखेंगे कि बालू के कण उछल रहे हैं। चमड़े पर हथेली रख दो। शब्द तुरन्त बन्द हो जायगा क्योंकि आपका हाथ उसे हिलने न देगा।

पीतल के गिलास की कोर को पेंसिल से मारिए। उसमें से ख़ूब अच्छी आवाज़ निकलेगी। उँगली से उस बर्तन को धीरे से स्पर्श करिए। आपको उसके कम्पन का प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा। किन्तु यदि उँगली ज़रा भी ज़ोर से उसे छू दे तो ये कम्पन बन्द हो जायँगे और शब्द का भी अन्त हो जायगा।

कांच के प्याले को पानी से आधा भर दीजिए। उसकी कोर पर पेंसिल से चोट मारिए। आवाज़ के साथ ही पानी में लहरें भी नज़र आवेंगी। अथवा यदि काग के एक छोटे से टुकड़े को धागे से लटका कर प्याले से छुआ दें तो वह बराबर प्याले से टकराता हुआ दिखलाई देगा।
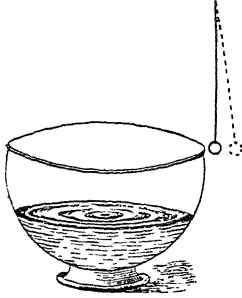
चित्र १८०

चित्र १८१ में फ़ौलाद का बना चीमटे के आकार का एक यंत्र है। इसे द्विभुज कहते हैं। इसकी भुजा को काग या रबड़ पर ठोंक कर जल्दी से हटा लेने पर उसमें से मधुर शब्द निकलता है। ग़ौर से देखने पर यह भुजा भी सितार के तार के समान ही फैली हुई मालूम होती है। इस भुजा में छोटा सा तार बाँध कर द्विभुज में से शब्द उत्पन्न करिये तब इस तार की नोक को पानी में डुबाने से पानी में कम्पन अच्छी तरह देख पड़ेगा। यदि काँच पर दीपक का धुँआ लगाकर इस तार की नोक से धीरे से स्पर्श करा दें और काँच को शीघ्रता से खिसका दें तो काँच पर चित्र १८२ के समान एक वक्र बन जायगा जिससे स्पष्ट हो जायगा कि द्विभुज की भुजा अत्यन्त वेग से इधर-उधर हिल रही है। गानेवाले मनुष्य के कंठ पर हाथ रखने से भी स्पष्ट अनुभव हो जायगा कि उसमें से भी शब्द कम्पन ही के कारण निकलता है।
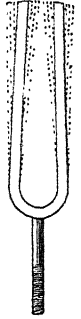
चित्र १८१

चित्र १८२

२४१—दोलक । हम ऊपर कह आये हैं कि कम्पन में वस्तु की गति झूले या घड़ी के समान होती है । चित्र १८३ में एक भारी गोला पतले धागे से लटक रहा है । यही सबसे सरल प्रकार का दोलक है । गतिहीन दशा में इसका गोला क पर स्थित रहता है । क इसका प्रकृत स्थान अथवा मध्य स्थान कहलाता है । यह सभी जानते हैं कि यदि गोले को ख तक हटा कर छोड़ दें तो वह गुरुत्व के कारण क की ओर लौट आवेगा । किन्तु क पर पहुँचने पर उसमें इतना वेग हो जायगा कि वह वहाँ न ठहर सकेगा और दूसरी ओर ग तक चला जायगा । यहां से वह पुनः क की ओर लौटेगा और फिर ख तक जा पहुँचेगा । इसी प्रकार बहुत देर तक वह बराबर इधर से उधर हिलता रहेगा । इस प्रकार की गति को आवर्त्त गति कहते हैं क्योंकि इसमें गति की दिशा और वेग का परिवर्त्तन होता ही रहता है और नियत काल के पश्चात् पुनः पुनः उस वस्तु की गति-सम्बन्धी दशा पूर्ववत् हो जाती है । कख या कग इसका कम्प-विस्तार कहलाता है । यही गोले का अधिकतम स्थानान्तर है । और जितने समय में गोला क से चलकर ख और ग तक जाकर क पर लौट आता है और पुनः ख की ओर चलने को प्रस्तुत होता है उसे आवृत्ति-काल कहते हैं । क्योंकि इतने समय में दोलक का एक पूर्ण आवर्त्तन समाप्त होता है । दोलक का आवृत्ति-काल सर्वथा स्थिर रहता है । जब तक पृथ्वी के आकर्षण में अथवा धागे की लम्बाई में कोई अन्तर नहीं होता यह आवृत्ति-काल न घटता है और न बढ़ता है । यही कारण है कि घड़ी में ऐसा दोलक लगाया जाता है और वास्तव में घड़ी समय का नाप दोलक के इसी गुण के द्वारा करती है ।
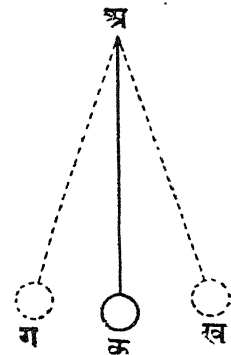
चित्र १८३

२४२—कम्पन । शब्दोत्पादक वस्तु की गति भी ठीक इसी प्रकार की आवर्त्त गति होती है । भेद केवल यह है कि इसका कम्प-विस्तार तथा

आवृत्ति-काल दोलक की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। और उस गति का कारण भी दूसरा होता है। दोलक पृथ्वी के आकर्षण के कारण हिलता है। किन्तु शब्दोत्पादक वस्तुओं के कम्पन स्थिति-स्थापकत्व के कारण होते हैं।

चित्र १८४ में एक फ़ौलाद की कमानी है। वह अ पर मज़बूती से पकड़ी हुई है। उसका प्रकृत स्थान अक ही है। अब यदि क को दाहिनी ओर खींच दें तो वह मुड़कर अ ख आकृति धारण कर लेगी। उसके अणुओं का पारस्परिक आकर्षण इस विकार का विरोध करता है और उसे अपनी प्रकृत स्थिति में ले आने की चेष्टा करता है। इसी गुण को स्थिति-स्थापकत्व कहते हैं। परिणाम यह होगा कि कमानी वेग से अ क पर पहुँच जावेगी। किन्तु अब उसका वेग उसे वहाँ स्थिर न रहने देगा और दोलक ही की भांति वह आगे बढ़कर अ ग तक जा पहुँचेगी और दोलक की ही भांति इधर से उधर कम्पन करती रहेगी। जितना ही अधिक स्थिति-स्थापकत्व किसी वस्तु में होगा उतने ही अधिक बल से वह अपनी प्रकृत अवस्था को प्राप्त करने की चेष्टा करेगी, उतना ही अधिक उसमें वेग होगा और उतना ही कम उसका आवृत्ति-काल भी होगा।
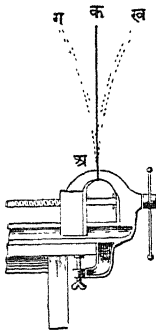
चित्र १८४

२४३—आवृत्ति। एक सैकंड में जितने पूर्ण आवर्त्तन समाप्त हो सकते हैं उस संख्या को आवृत्ति अथवा कम्पन-संख्या कहते हैं। यह प्रत्यक्ष ही है कि यदि आवृत्ति-काल क हो और कम्पन-संख्या स हो, तो

$$स = \frac{१}{क}$$

अर्थात् $स \times क = १$

२४४—आकृति। यह आवर्त्त-गति कई प्रकार की हो सकती है। भिन्न-भिन्न आवर्त्त-गतियों का भेद समझने का सबसे अच्छा साधन उनका

स्थानान्तर वक्र है। इस वक्र के द्वारा यह प्रकट होता है कि कम्पन करने-वाली वस्तु अपने मध्यस्थान से किस समय कितनी दूर होगी। चित्र १८५ में एक वस्तु प फ के बीच में कम्पन कर रही है और अ उसका मध्य-बिन्दु है। अक को समय की अक्ष और अख को स्थानान्तर की अक्ष मान लीजिए। यह भी मान लीजिए कि हम काल की गणना उस समय संप्रारम्भ करते हैं जब कि वस्तु कम्पन करती हुई अपने मध्यस्थान अ
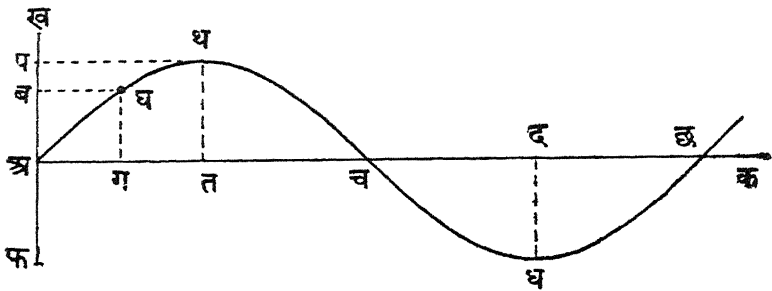
चित्र १८५

पर पहुँच कर प की ओर चलना प्रारम्भ करती है। अब यदि इस क्षण के कुछ समय स के पश्चात् वह ब पर पहुँच जाय तो उसका स्थान लेखा-चित्र में बिन्दु घ के द्वारा व्यक्त किया जायगा जहाँ अग = स और गघ = अब। इसी प्रकार यदि प्रत्येक क्षण पर वस्तु का स्थानान्तर अंकित कर दिया जाय तो हमें एक वक्र प्राप्त हो जायगा। इसमें तथ, दध आदि तो कम्प-विस्तार हैं और अछ आवृत्ति-काल।

चित्र १८६ में ऐसे ही कई स्थानान्तर वक्र दिये गये हैं। इनको देखते ही समझ में आ जायगा कि यद्यपि प्रत्येक वक्र आवर्त्त-गति का चित्र है और कम्प-विस्तार तथा आवृत्ति-काल भी सबके बराबर हैं तो भी इन सबमें बड़ा भेद है। किसी में कम्पन करनेवाली वस्तु को अपने विस्तार के अन्त तक पहुँचने में बहुत थोड़ा समय लगता है। और किसी में बहुत अधिक। प्रतिक्षण इन सबमें गति की अवस्था भिन्न भिन्न प्रकार से बदलती

है। यद्यपि इन सभी वक्रों में कम्पन का आरम्भ एक साथ होता है और एक पूर्ण कम्पन की समाप्ति भी एक ही साथ होती है तथापि इस बीच में प्रत्येक का स्थानान्तर, वेग, वेग-वृद्धि आदि सब पृथक् पृथक् प्रकार से बदलती हैं। इस भेद को **आकृति-भेद** कहते हैं और इसी आकृति-भेद की अपेक्षा चित्र १८६ (i) वाला कम्पन **सरल आवर्त्तन** कहलाता है।
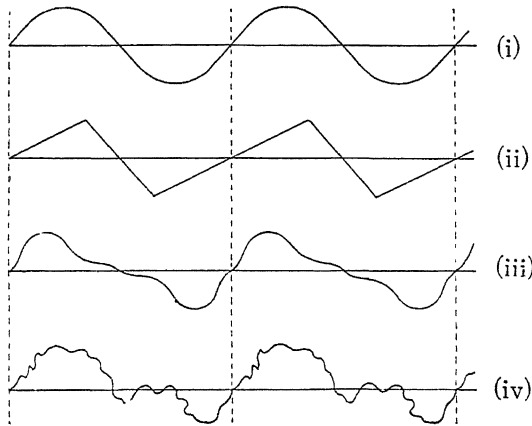
चित्र १८६

२४५—शब्द के लक्षण। जिस प्रकार प्रत्येक आवर्त्तन में तीन मुख्य लक्षण कम्प-विस्तार, आवृत्ति और आकृति होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक शब्द में भी तीन लक्षण होते हैं। इनके नाम तीव्रता, सुर और रूप हैं।

२४६—तीव्रता। तीव्र और मन्द शब्दों का भेद सभी जानते हैं। घड़ी की टिक-टिक इतनी मन्द होती है कि उसे सुनने के लिए घड़ी को कान के बहुत ही निकट लाना पड़ता है। किन्तु तोप चलने का शब्द मीलों से सुनाई दे सकता है। ढोल पर धीरे से चोट लगाने से मन्द शब्द उत्पन्न होता है किन्तु यदि अधिक तीव्र शब्द पैदा करना हो तो बहुत ज़ोर से आघात करना

होता है। हम अपने गले से भी तीव्र शब्द तभी निकाल सकते हैं जब खूब गला फाड़ कर बड़ी शक्ति के साथ चिल्लावें। इससे प्रकट है कि शब्द की तीव्रता का सम्बन्ध शब्दोत्पादक वस्तु के कम्प-विस्तार से है। जितना ही अधिक यह कम्प-विस्तार होगा, उतनी ही अधिक उन कम्पनों में शक्ति होगी और उतनी ही अधिक दूर तक वह शब्द सुन पड़ेगा।

२४७—सुर । यह उस भेद का नाम है जिसके कारण हम किसी शब्द को मोटा और किसी को बारीक कहते हैं। स्त्रियों की आवाज़ प्रायः पुरुषों की अपेक्षा बारीक होती है। हारमोनियम के प्रत्येक परदे से भिन्न-भिन्न प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है। बाईं ओर के परदों से मोटी आवाज़ निकलती है और दाहिनी ओर के परदों से बारीक। मोटी आवाज़ को नीचे सुरवाली कहते हैं और बारीक आवाज़ को ऊँचे सुर की। इस भेद का कारण शब्दोत्पादक वस्तु की कम्पन-संख्या है। जितनी ही कम यह संख्या होगी उतना ही शब्द नीचे सुर का मालूम होगा और जितनी ही यह संख्या अधिक होगी उतना ही ऊँचे सुर का शब्द भी उत्पन्न होगा। निम्न-लिखित प्रयोग के द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायगी :—

चित्र १८७

चित्र १८७ में च एक पीतल का पहिया है जिसमें छोटे छोटे प्रायः १०० दांत हैं। यह दूसरे पहिये के दस्ते द के द्वारा जिस वेग से चाहें घुमाया जा सकता है। क मोटे गत्ते या कार्डबोर्ड का एक टुकड़ा है। इसे हाथ में पकड़कर पहिये के दाँतों में दबाइए। पहिये के घूमने से जब दाँत ठीक इसके नीचे आयगा तब तो यह गत्ता ऊँचा उठेगा और जब दाँत आगे खिसक जायगा तब यह भी नीचे गिर पड़ेगा। इस प्रकार पहिये के एक चक्कर में वह प्रायः १०० बार ऊपर नीचे
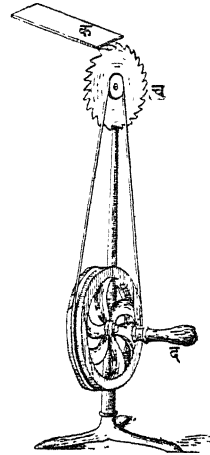
कम्पन करेगा। यदि पहिया जल्दी जल्दी घुमाया जावे तो प्रतिसैकंड इसके कम्पनों की संख्या बढ़ जायगी और यदि धीरे धीरे घुमाया जावे तो यह संख्या भी घट जायगी। इन कम्पनों से जो शब्द उत्पन्न होगा उसका सुर भी इसी क्रम से बदलता हुआ मालूम होगा। जल्दी जल्दी घुमाने पर ऊँचे सुर की बारीक आवाज़ सुनाई देगी और धीरे धीरे घुमाने पर नीचे सुर की मोटी आवाज़।

इसी प्रकार चित्र १८८ में प एक पहिया है जिसमें कई छोटे छोटे छिद्र हैं। एक नली की नासाग्र में से वायु वेग से आकर ठीक एक छिद्र पर पड़ती है। जब यह पहिया घुमाया जाता है तो इस वायु की धारा के सम्मुख उत्तरोत्तर यह सब छिद्र आते जाते हैं जिससे कभी वायु छिद्र में से पहिये के दूसरी ओर निकल जाती है और कभी रुक जाती है। अर्थात्
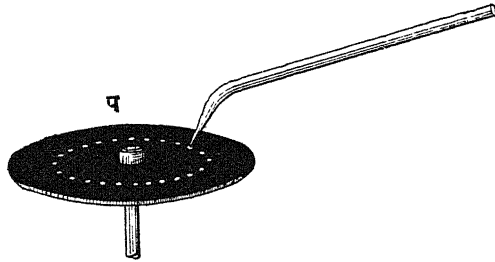
चित्र १८८

वायु का कम्पन होने लगता है। इससे भी शब्द पैदा होता है। इस यन्त्र को सायरन कहते हैं। पहिये को अधिक वेग से घुमाने से इन कम्पनों की संख्या बढ़ जाती है और हमें ऊँचे सुर का शब्द सुनाई देता है। वेग कम करने पर सुर भी उतर जाता है।

२४८—रूप। जब कभी कई मनुष्य एक ही साथ गाते हैं अथवा कई प्रकार के बाजे एक ही साथ बजते हैं तो यद्यपि सबका सुर एक ही होता है तथापि भिन्न भिन्न मनुष्यों की आवाज़ और सितार, सारङ्गी, हारमोनियम,

बांसुरी इत्यादि के शब्द हमें साफ़ पृथक् पृथक् मालूम होते हैं। केवल आवाज़ सुनकर हम तुरन्त बता सकते हैं कि अमुक मनुष्य बोल रहा है। यह स्पष्ट ही है कि इस भेद का कारण शब्द का सुर या उसकी तीव्रता नहीं है। चित्र १८६ में भिन्न भिन्न आवर्त्तनों के जो स्थानान्तर वक्र दिये गये हैं उनसे इस भेद का कारण स्पष्ट हो जायगा। कम्प-विस्तार तथा कम्पन-संख्या उन सबमें बराबर हैं। किन्तु वक्रों की आकृति में बहुत भेद हैं। इन आवर्त्तनों के द्वारा जो शब्द उत्पन्न होंगे उनके भी तीव्रता और सुरों में कोई भेद न होगा किन्तु तब भी शब्द सर्वथा एक ही प्रकार के नहीं हो सकते। वक्र की आकृति के अनुसार ही शब्द में कुछ न कुछ भेद अवश्य होगा। इस भेद को रूप-भेद कहते हैं और इसी के कारण हमें किसी गवैये की आवाज़ बहुत मीठी मालूम होती है और किसी की नहीं।

२४९—कोलाहल। इसी स्थान पर यह भी बताना आवश्यक है कि कुछ शब्द तो ऐसे होते हैं जो हमें मधुर जान पड़ते हैं और जिनका संगीत में प्रयोग किया जाता है और कुछ ऐसे होते हैं जो हमारे कानों को बहुत बुरे मालूम होते हैं। इन्हें हम शोर या कोलाहल कहते हैं। पहिले प्रकार के शब्दों के कम्पन नियमित होते हैं उनकी गति वास्तव में आवर्त्त-गति होती है। उनकी कुछ निश्चित आवृत्ति होती है। किन्तु शोर पैदा करनेवाली वस्तु के कम्पन अनियमित होते हैं उनकी गति प्रतिक्षण बदलती जाती है किन्तु उसका आवर्त्तन नहीं होता। हम उनकी कोई निश्चित आवृत्ति भी नहीं बता सकते।

२५०—भिन्न-भिन्न शब्दों की आवृत्ति। निम्न सारिणी में यह बतलाया गया है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों की आवृत्ति कितनी होती है।

शब्द	आवृत्ति प्रति सैकंड
साधारण मनुष्य की बोली	८०—१५०
” स्त्री ” ”	२००—४००
हारमोनियम बाजे के सुर	६०—६००
पियानों का सबसे ऊँचा सुर	३५००
चिड़ियों की बोली	२०००—५०००

२५१—कान की क्षमता । हमारा कान प्रायः ३० से कम या ४,००० से अधिक आवृत्तिवाले कम्पनों को सुनने में असमर्थ है । यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि प्रायः १५ आवर्त्तन प्रति सैकंड का शब्द भी सुना जा सकता है किन्तु यह निश्चित है कि संगीत के लिए ३० या ४० ही अल्पतम आवृत्ति है । दूसरी ओर संगीत में प्रायः ४००० से अधिक की आवृत्ति का उपयोग नहीं होता ।

फ़ौलाद की एक लम्बी पत्ती को वाइस में पकड़ा दीजिए । इसके ऊपर के छोर को एक ओर खींचकर हिला देने से वह कम्पन करती हुई देख पड़ेगी । किन्तु कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ेगा । पत्ती को थोड़ा नीचे खिसकाकर पकड़ने पर वह अधिक शीघ्रता से कम्पन करने लगती है और ज्यों ज्यों उसके कम्पन करनेवाले भाग की लम्बाई घटाई जाती है त्यों त्यों उसकी आवृत्ति भी बढ़ती जाती है और जब यह काफ़ी बढ़ जाती है तब थोड़ा थोड़ा शब्द सुनाई देने लगता है । लम्बाई और भी कम करने पर शब्द का सुर ऊँचा होता जाता है । इस सरल से प्रयोग के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि एक निश्चित संख्या से कम कम्पन-संख्या होने पर हम शब्द नहीं सुन सकते । इसी प्रकार एक प्रकार की सीटी बनाई जाती है जिसमें वायु के कम्पनों से शब्द उत्पन्न होता है । इसमें पेंच को घुमाने से कम्पन करनेवाले वायु-कोष्ठ की लम्बाई ज्यों ज्यों घटाई जाती है त्यों त्यों शब्द का सुर चढ़ता जाता है । इससे प्रमाणित है कि आवृत्ति भी बढ़ती जाती है । जब यह बहुत बढ़ जाती है तो शब्द सुनना कठिन होता जाता है और अन्त में वह बिलकुल भी नहीं सुनाई पड़ता । अतः यह भी प्रकट है कि एक निश्चित सीमा से अधिक आवृत्तिवाले कम्पनों का शब्द कान को सुनाई नहीं देता ।

प्रश्न

(१) यह कैसे प्रमाणित करोगे कि शब्द सदा कम्पन के कारण उत्पन्न होता है ?

(२) क्या कारण है कि पंखी को इधर-उधर हिलाने से शब्द नहीं उत्पन्न होता किन्तु मच्छर के परों के हिलने से शब्द उत्पन्न हो जाता है ?

(३) शब्द की तीव्रता और उसके सुर में क्या भेद है ? इनका भौतिक कारण क्या है ?

(४) यद्यपि दो गवैये एक ही सुर में गा रहे हों तो भी हम उनकी आवाज को पहिचान सकते हैं । इसका क्या कारण है ?

(५) स्थानान्तर वक्र किसे कहते हैं ? संगीतोपयोगी शब्द तथा कोलाहल का भेद स्थानान्तर वक्र के द्वारा समझाओ ।

(६) दोलक के दोलन किस बल के कारण होते हैं ? और शब्दायमान वस्तुओं के कम्पनों का कारण क्या है ?

(७) यदि किसी द्विभुज की आवृत्ति २०० है तो उसका कम्पनकाल कितना है ? यदि इसकी भुजाओं को काट कर छोटा कर दें तो आवृत्ति में क्या अन्तर हो जायगा ?

(८) यदि सायरन के चक्के में ३२ छिद्र हों और वह एक मिनट में ९६० चक्कर करता हो तो उससे उत्पन्न होनेवाले शब्द की आवृत्ति कितनी होगी ?

—— ——
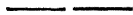
परिच्छेद २६

शब्द का गमन

२५२—माध्यम की आवश्यकता। शब्दोत्पादक कम्पित वस्तु से शब्द हमारे कान में कैसे पहुँचता है ? साधारणतया जब कभी हम शब्द सुनते हैं तब शब्दोत्पादक वस्तु के और हमारे कान के बीच में सर्वत्र हवा रहती है। अब प्रश्न यह है कि क्या शब्द इस वायु ही के द्वारा हमारे पास तक पहुँचता है या बिना वायु की सहायता के वह स्वयं ही चल सकता है। यद्यपि प्रकाश और ताप भी हमारे पास वायु में होकर आते हैं किन्तु यह सभी जानते हैं कि उन्हें वायु की कोई आवश्यकता नहीं। वस्तुतः सूर्य और तारों का प्रकाश करोड़ों मील वायु-विहीन सर्वथा शून्य स्थान में से आता ही है। क्या शब्द भी इसी प्रकार शून्य स्थान में से चल सकता है?
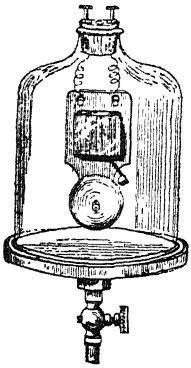
चित्र १८९

इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित प्रयोगों के द्वारा अत्यन्त सरलता से मिल सकता है।

काँच के एक जार में बिजली की घंटी लटका दो और वायुपम्प के द्वारा उस जार की हवा धीरे धीरे निकाल दो। पहिले तो घंटी का शब्द साफ़ सुनाई देगा किन्तु धीरे धीरे वह कम होता जायगा और अन्त में यद्यपि घंटी पर चोट लगती हुई पहिले ही की भाँति नज़र आवेगी तथापि शब्द तनिक भी सुनाई न देगा (चित्र १८९)।

वायुपम्प की अनुपस्थिति में यह प्रयोग एक और रीति से भी किया जा सकता है। गोल पेंदे के एक फ़्लास्क में कुछ पानी भर दो और एक घंटी लटका कर रबड़ के काग से उसका मुँह बन्द कर दो। इस काग में से एक नली भी बाहर निकली रहनी चाहिए और उस नली का मुँह बन्द करने के लिए रबड़ की नली का टुकड़ा और क्लिप भी लगा रहना चाहिए (चित्र १६०)। अब पानी को उबाल दो और जब ख़ूब भाप निकलने लगे और फ़्लास्क के अन्दर की सब वायु निकल चुकी हो तब उसके नीचे से ज्वालक हटा कर तुरन्त क्लिप बन्द कर दो। ठण्डी होने पर फ़्लास्क में की भाप पुनः जल का रूप धारण कर लेगी और घण्टी के चारों ओर शून्य स्थान हो जायगा। अब यदि फ़्लास्क को हिला कर घण्टी बजाने का प्रयत्न करें तो लटकन की टक्करें स्पष्ट दिखलाई देंगी। किन्तु आवाज़ बहुत ही कम सुनाई देगी। क्लिप खोल देने पर आवाज़ पुनः अच्छी तरह आने लगेगी।
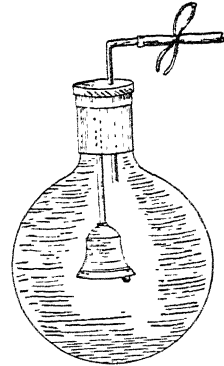
चित्र १६०

अतः स्पष्ट है कि हवा शब्द के गमन में सहायता करती है। हवा ही के द्वारा शब्दोत्पादक वस्तु के कम्पन हमारे कान तक पहुँचते हैं। शब्द कोई जड़ पदार्थ नहीं है जो स्वयं ही बन्दूक़ की गोली की भाँति चल सकता हो। वह तो केवल जड़ पदार्थ का कम्पन-मात्र है। शब्दोत्पादक वस्तु का कम्पन उसके समीप की वायु को कम्पित कर देता है और फिर यही कम्पन वायु के द्वारा हमारे कान तक पहुँच जाता है।

वायु के अतिरिक्त अन्य जड़ पदार्थ भी शब्दकम्पनों को स्थानान्तरित कर सकते हैं। पानी में डुबकी लगाने पर भी मनुष्य बाहर की आवाज़ सुन लेता है। सीटी बजाने से पालतू मछलियाँ एकत्रित हो जाती हैं। इसी प्रकार ठोस पदार्थ भी शब्द के लिए अच्छे माध्यम हैं। यदि किसी बहुत लम्बी मेज़ के एक सिरे पर सुई से खुरचें तो दूसरे सिरे पर कान लगाने

से शब्द बहुत अच्छी तरह सुनाई देता है। मेज़ पर रखी हुई घड़ी की टिक-टिक भी लकड़ी से कान सटा देने पर साफ़ सुन पड़ती है। रेल की पटरी पर कान लगा कर चार पांच सौ गज़ दूर से ही बहुत धीरे धीरे पटरी के खटखटाने की आवाज़ भी हम सुन सकते हैं।

किन्तु कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं कि जिनमें शब्द प्रायः चल ही नहीं सकता। यदि लकड़ी के सन्दूक़ के भीतर की तरफ़ ऊन या रुई की मोटी तह लगा दी जाय और तब उसमें एक छोटा चाबी से बजनेवाला बाजा रख कर सन्दूक़ को बन्द कर दें तो बाजे की आवाज़ बाहर कुछ भी सुनाई न देगी। किन्तु यदि सन्दूक़ के ढक्कन में एक छेद करके लकड़ी की छड़ी उसमें से घुसा कर बाजे पर रख दें तो उसकी आवाज़ अच्छी तरह सुनाई देगी। ऐसे ही बालू, लकड़ी का बुरादा इत्यादि वस्तुएँ भी शब्द को स्थानान्तरित करने में असमर्थ हैं। ये सब ऐसे पदार्थ हैं कि जिनके रेशे या कण बिलकुल पृथक् पृथक् होते हैं। अतः इनमें स्थितिस्थापकत्व का अभाव होता है और इसी कारण इनमें किसी प्रकार के कम्पन नहीं हो सकते।

२५३—शब्द का वेग। यह साधारण अनुभव की बात है कि शब्द को हमारे कान तक पहुँचने में समय लगता है। क्रिकेट के खेल में गेंद बल्ले से टकराती हुई पहिले दिखलाई देती है और उसका शब्द थोड़ी देर बाद सुनाई देता है। यदि दूर से तोप को चलती हुई देखें तो बारूद की चमक के कुछ देर बाद उसकी आवाज़ हमारे कानों में पहुँचती है। गहरे कुएँ में पत्थर फेंकने पर भी उसे जल में डूबता हुआ देख लेने के कुछ देर बाद ही उसका शब्द हम सुन सकते हैं। आकाश में बिजली की चमक से आँखें बन्द हो जाने के कई सैकंड पीछे हमें उसकी घड़घड़ाहट सुनाई देती है।

इन सब उदाहरणों में प्रकाश और शब्द की दौड़ होती है। ये दोनों घटनास्थल से एक ही साथ रवाना होते हैं। किन्तु प्रकाश बहुत तेज़ दौड़नेवाला है। वह एक सैकंड में प्रायः १,८६,००० मील चल लेता है। अतः जितनी दूर से हम शब्द सुन सकते हैं उतनी दूर चलने में उसे इतना

कम समय लगता है कि हम उसका अनुभव नहीं कर सकते। इस कारण हम कह सकते हैं कि जिस समय हमें बिजली की चमक दिखलाई देती है ठीक उसी समय शब्द बादलों में से रवाना होता है। देखने और सुनने के समय का जितना अन्तर हमें बोध होता है उतना सभी समय शब्द को हमारे पास तक पहुँचने में लग जाता है। इसलिए यदि शब्द की उत्पत्ति और उसके श्रवण के स्थानों की दूरी ज्ञात हो और हम शब्द को उत्पन्न होता हुआ देखने के उपरान्त उसके सुनने में जितना समय लगे उसे ठीक ठीक नाप लें तो स्पष्ट ही है कि हमें शब्द का वेग ज्ञात हो जायगा।

वायु में शब्द का वेग नापने के लिए सबसे पहिले इसी उपाय का अवलम्बन किया गया था। एक स्थान पर तोप चलाई गई और उससे कई मील दूर पर एक मनुष्य ने घड़ी के द्वारा उसकी चमक देखने और शब्द सुनने का समयान्तर नाप लिया। यदि दूरी द सम० थी और समयान्तर स सैकंड निकला तो स्पष्ट है कि शब्द का वेग $\frac{द}{स}$ सम० प्रतिसैकंड हुआ।

यद्यपि शब्द का वेग नापने की यह विधि अत्यन्त सरल है किन्तु इसमें एक बहुत बड़ा दोष है। हवा सर्वथा स्थिर तो रहती नहीं और उसके वेग तथा दिशा का शब्द के वेग पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि हवा तोप से श्रोता की ओर चल रही हो तो शब्द का वेग अधिक हो जाता है क्योंकि अब उसके अपने वेग में हवा का वेग भी मिल जाता है। यदि हवा की दिशा विपरीत हो तो शब्द का वेग उतना ही घट जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए यह उपाय किया गया कि श्रोता के पास भी एक तोप रखी गई और इसके द्वारा विपरीत दिशा में भी शब्द का वेग नाप लिया गया। यदि पहिली बार वायु ने शब्द के वेग को बढ़ा दिया था तो इस बार वह उतना ही घटा देगी अतः इन दोनों का औसत अवश्य ही शब्द का वास्तविक वेग होगा। इस प्रकार के अनेकों प्रयोगों का परिणाम यह निकला है कि वायु में शब्द का वेग प्रायः ३३१·७ मीटर प्रतिसैकंड अथवा १,०८८ फ़ुट प्रतिसैकंड है।

२५४—जल में शब्द का वेग । इसके नापने के लिए एक विस्तीर्ण जलाशय में नौका पर से एक घण्टी लटकाई गई और जलपृष्ठ से प्रायः दो गज़ की गहराई पर उसे बजाने का ऐसा प्रबन्ध किया गया कि जिस समय घण्टी पर चोट लगे ठीक उसी समय नौका पर कुछ बारूद में आग लग कर चमक पैदा हो । प्रायः १० मील दूर स्थित दूसरी नौका पर से एक नली पानी में लटका कर उसका चौड़ा मुँह तनी हुई झिल्ली से बन्द कर दिया गया (चित्र १९१) । घण्टी के शब्द ने पानी में चल कर इस झिल्ली को कम्पित कर दिया और नली की वायु के द्वारा यह कम्पन नौका में बैठे हुए श्रोता के कान में जा पहुँचा । उसने चमक दिखलाई देने और शब्द के सुने जाने का समयान्तर घड़ी के द्वारा नाप
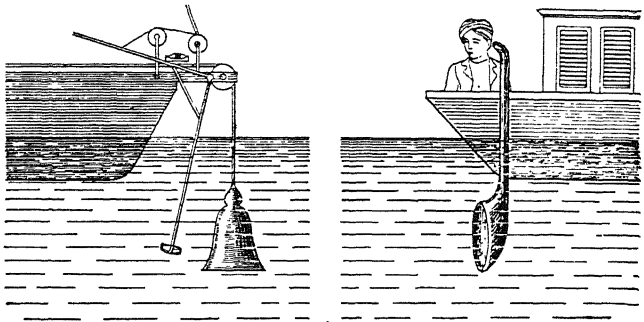
चित्र १९१

लिया । इस विधि से जल में शब्द का वेग प्रायः १,४३५ मीटर अथवा ४,७०० फ़ुट प्रतिसैकंड निकला । अर्थात् वायु की अपेक्षा जल में शब्द चार गुणे से भी अधिक वेग से चलता है ।

२५५—ठोस पदार्थों में शब्द का वेग । ठोस पदार्थों में शब्द का वेग इतनी सीधी रीति से नहीं नापा जा सकता क्योंकि इतना विस्तीर्ण ठोस माध्यम हमारे प्रयोग के लिए प्राप्त नहीं हो सकता । तथापि बिओ नामक

विद्वान् ने लोहे में शब्द का वेग नापा था। प्रायः ३,००० फुट लम्बी लोहे की नली के एक सिरे पर हथौड़े से चोट मारने पर दूसरे सिरे पर स्थित श्रोता को दो शब्द सुनाई दिये। पहिले वह शब्द जो नली के लोहे में से आया और पीछे वह जो नली की वायु में होकर आया। इन दोनों शब्दों के बीच का समय ठीक ठीक नाप लिया गया और यह प्रायः २·५ सैकंड निकला। यह तो ज्ञात ही था कि वायु में से आनेवाले शब्द को $\frac{३०००}{१०९०}$ = २·७५ सैकंड लगेंगे। अतः स्पष्ट हो गया कि लोहे में से आने के लिए शब्द को केवल ·२५ सैकंड ही लगा। इस हिसाब से लोहे में शब्द का वेग हुआ $\frac{३०००}{·२५}$ = १२,००० फुट प्रति सैकंड। अर्थात् वायु की अपेक्षा प्रायः ११ गुणा।

अब ठोस द्रव और गैस सभी प्रकार के पदार्थों में शब्द का वेग नापने की अनेक रीतियां ज्ञात हो गई हैं जिनमें न तो इतने विस्तीर्ण माध्यम की आवश्यकता है और न ऐसी त्रुटियां रह गई हैं कि जिनके कारण शब्द के वेग में कोई अनिश्चितता बाकी रह गई हो।

शब्द का वेग

पदार्थ	वेग प्रति सैकंड	पदार्थ	वेग प्रति सैकंड
वायु (०° श)	३३१ मीटर	पीतल	३६५० मीटर
हाइड्रोजन	१२८६ ,,	सीसा	१२३० ,,
कार्बन डायोक्साइड	२५७ ,,	काँच	५५०० ,,
जल (२५°)	१४५७ ,,	लकड़ी	३०००-५००० ,,
लोहा	५००० ,,	रबड़	४५ ,,

२५६—शब्द की तीव्रता। यह साधारण अनुभव की बात है कि शब्दोत्पादक वस्तु से हम जितनी ही अधिक दूरी पर होते हैं उतना ही शब्द धीमा सुनाई देता है। इससे ज्ञात होता है कि ज्यों ज्यों शब्द अपने

उत्पत्तिस्थान से हटता जाता है त्यों त्यों उसकी तीव्रता भी घटती जाती है । इसका कारण भी प्रत्यक्ष ही है । शब्द किसी एक ही दिशा में गमन नहीं करता । वह चारों ओर समान रूप से फैलता है इससे उसके कम्पनों की शक्ति भी उत्तरोत्तर अधिक अधिक आकाश में फैलती जाती है । और जितनी शक्ति हमारे कान में प्रवेश कर सकती है उसका परिमाण भी घटता जाता है ।
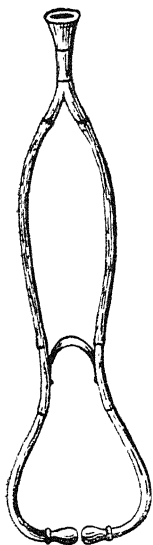
किन्तु यदि किसी उपाय से शब्द को चारों ओर फैलने न दें, और वह एक ही दिशा में गमन करे तो अवश्य ही उसकी तीव्रता न घट सकेगी । ऐसी अवस्था में शब्द बहुत अधिक दूर तक सुना जा सकेगा । यही कारण है कि कई बड़े बड़े मकानों में बातचीत करने के लिए लोहे के नल लगा दिये जाते हैं जिनके द्वारा बिना कठिनाई के दूर दूर के कमरों से और भिन्न भिन्न मंज़िलों में बातचीत की जा सकती है । जो शब्द नली की वायु में प्रवेश करता है वह दूसरे सिरे तक पहुँच जाने से पहले कहीं भी इधर-उधर नहीं फैल सकता । डाक्टर भी जब रोगी के हृदय या फेफड़े की परीक्षा करता है तो उसके शब्द को रबड़ की नली की सहायता से सुनता है। इस नली को स्टेथोस्कोप कहते हैं (चित्र १६२)। इसी प्रकार जब मनुष्यों के बड़े समारोह को कुछ विज्ञप्ति सुनाना होता है तो बहुधा चित्र १६३ के समान एक चोंगे का प्रयोग किया जाता है। इसके सँकड़े मुँह में बोलने से शब्द चारों ओर नहीं फैलता । वह कख और गघ रेखाओं के बीच ही में फैल सकता है। इसलिए बहुत दूर के लोगों को भी सुनाई दे जाता है । ग्रामोफ़ोन में भी ऐसे ही चोंगे का उपयोग होता है ।

चित्र १६२

ऐसे ही कान में पहुँचनेवाले शब्द की तीव्रता भी बढ़ाई जा सकती है। यदि उपर्युक्त चोंगे का सँकड़ा मुँह कान में लगा लें तो स्पष्ट ही है कि

शब्द की जितनी शक्ति उसके चौड़े मुँह में प्रवेश करेगी वह सभी एकत्रित होकर कान में पहुँच जायगी और शब्द हमें अधिक तीव्र सुनाई देने लगेगा (चित्र १६४)। बहिरे मनुष्य बहुधा ऐसे ही चोंगे की सहायता से साधारण बात-चीत सुन लेते हैं। वास्तव में हमारा कान भी इसी प्रकार का छोटा सा चोंगा है और कभी कभी जब हमें बहुत धीमे शब्द सुनने होते हैं तो कान के पास हाथ लगा कर हम लोग इस चोंगे को कुछ बड़ा कर लेते हैं।
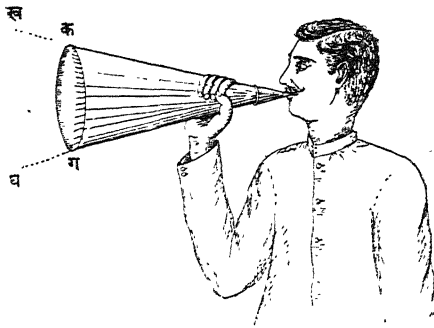
चित्र १६२

२५७—प्रतिध्वनि। किसी पहाड़ी या बड़ी दीवार से १०० या १५० गज़ दूर खड़े होकर ताली बजाइए। थोड़ी ही देर बाद ऐसा मालूम होगा कि उस पहाड़ी या दीवार में से कोई आपकी ताली का जवाब दे रहा है। इसे प्रतिध्वनि कहते हैं। इसका कारण यह है कि आपकी ताली का शब्द दीवार पर पहुँच कर वहाँ से वापस लौट आता है। जिस प्रकार दर्पण पर पड़ने से प्रकाश का परावर्तन होता है उसी प्रकार दीवार से शब्द का भी परावर्तन होता है। इसकी सत्यता तो इसी बात से प्रकट है कि जितना समय शब्द को दीवार तक जाकर वापस लौट आने में १०८८ फ़ुट प्रति सैकंड के हिसाब
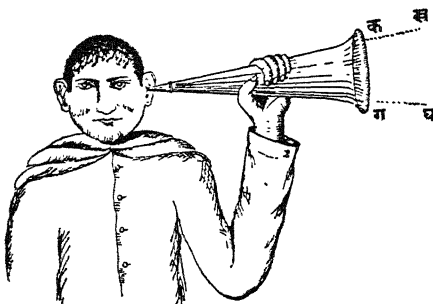
चित्र १६४

से लगना चाहिए ठीक उतने ही समय के बाद आपको प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

२५८—परावर्तन। शब्द का परावर्तन भी ठीक उन्हीं नियमों के अनुसार होता है जो प्रकाश के परावर्तन के लिए बतलाये गये थे। इसमें भी आपतन कोण, परावर्तन कोण के बराबर होता है। अन्तर है तो केवल इतना कि शब्द के परावर्तन के लिए दर्पण के समान सुचिक्कण धरातल की आवश्यकता नहीं होती। साधारण लकड़ी या दीवार का पृष्ठ ही बहुत अच्छे दर्पण का काम दे देता है।

चित्र १६५ में द द′ दीवार या लकड़ी का तख्ता है। न न′ दो मोटे कागज़ की नलियां हैं। प मोटे कपड़े का परदा है। यदि एक जेब-घड़ी नली न के पास रख दी जाय तो न′ पर कान लगाने से उसकी टिक-

चित्र १६५
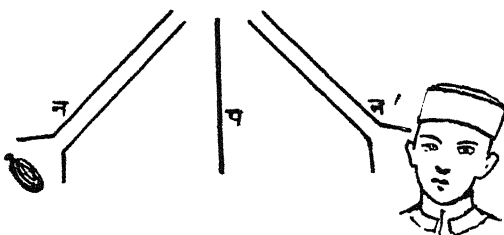
टिक सुनाई देगी। किन्तु तभी जब कि कोण नकप कोण न′कप के बराबर हो। यदि नली न′ किसी दूसरे कोण पर झुकी हुई रखी हो तो शब्द न सुनाई देगा। परदा प घड़ी की आवाज़ को सीधा कान में नहीं पहुँचने देता।

उपर्युक्त स्टेथोस्कोप, चोंगे इत्यादि की नलियों में भी वास्तव में परावर्तन ही के द्वारा शब्द की शक्ति स्थानान्तरित होती है (चित्र १६६)।

शब्द-परावर्तन का एक और अत्यन्त मनोरंजक उदाहरण है। बड़े बड़े मन्दिरों या गिरजाघरों में बहुधा गोल गुम्बज होते हैं। यदि ऐसे गुम्बज के समीप धीरे से भी कुछ बोलें तो गुम्बज के नज़दीक चारों ओर वह शब्द सुनाई दे जाता है मानों वह गुम्बज की दीवार के सहारे सहारे ही चल रहा हो। ऐसे स्थानों को उपांशुवादी गुम्बज कहते हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात यह भी स्मरण रखने के योग्य है कि कड़े पदार्थ जैसे लकड़ी, दीवार, लोहा इत्यादि तो शब्द के लिए बहुत अच्छे परावर्तक हैं किन्तु नरम चीज़ें जैसे रबड़, कपड़ा, फ़ैल्ट, काग, भूसा इत्यादि वस्तुएँ परावर्तन नहीं कर सकतीं। इन पर पड़नेवाला शब्द प्रायः पूर्णरूप से नष्ट हो जाता है। ये वस्तुएँ उसका शोषण कर लेती हैं। बड़े बड़े व्याख्यान-गृहों में बहुधा व्याख्याता के शब्द की अनेक प्रतिध्वनियाँ भिन्न
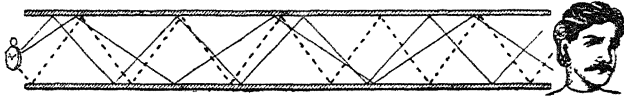
चित्र १६६

भिन्न दीवारों से उत्पन्न होती हैं। इन सबके मेल से व्याख्यान का एक भी शब्द साफ़ साफ़ सुनाई नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था में चारों ओर कुछ कपड़े के परदे टाँग देने से इन प्रतिध्वनियों का बल बहुत कुछ घटाया जा सकता है।

प्रश्न

(१) क्या तुम समझते हो कि शब्द सूर्य से पृथ्वी पर आ सकता है? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए कोई प्रयोग बताओ?

(२) पदार्थ में कौन सा गुण सबसे अधिक आवश्यक है कि जिससे उसमें होकर शब्द गमन कर सके। ऐसे पदार्थों के नाम बताओ जिनमें शब्द नहीं गमन कर सकता।

(३) पहाड़ में दूर से रेल के इंजन से सीटी देते समय जो भाप निकलती है उसके नजर आने के ४ सैकंड़ के बाद सीटी का शब्द सुनाई दिया। इसका कारण बताओ और इंजन की दूरी बताओ।

(४) बिजली आकाश में कितनी दूर पर चमक रही है यह जानने के लिए क्या करोगे ?

(५) यदि कोई रेल की पटरी को हथौड़े से पीट रहा हो और उससे ५०० गज़ पर तुम अपना कान पटरी से लगाओ तो दो शब्द सुनाई देंगे। इसका क्या कारण है और दोनों शब्दों के बीच कितने समय का अन्तर होगा ?

(६) बादल की गड़गड़ाहट का क्या कारण है ?

(७) एक मनुष्य किसी सीधी पहाड़ी से २०० गज़ दूर खड़ा है। वह लोहे की छड़ पर चोट मारता है। बताओ उसकी प्रतिध्वनि कितनी देर में सुनाई देगी ?

(८) शब्द नली में बहुत दूर तक क्यों सुनाई देता है ?

(९) बहुत बड़े कमरे या हाल में जब तक कुर्सियाँ इत्यादि न रखी जावें और परदे, तसवीरें आदि न लटकाई जावें तब तक उसमें बातचीत करना बड़ा कठिन होता है। इसका कारण समझाओ।

परिच्छेद २७

शब्द की तरंगें

२५९—**शब्द के गमन की विधि।** पिछले परिच्छेद में यह प्रमाणित किया गया है कि शब्द के गमन के लिए किसी न किसी जड़ माध्यम की उपस्थिति के बिना काम नहीं चल सकता। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि शब्द के साथ ही साथ उस माध्यम के परमाणु भी १०८८ फ़ुट प्रतिसैकंड के वेग से दौड़ते हैं। ठोस पदार्थों में तो इसकी सम्भावना हो ही नहीं सकती किन्तु वायु का भी कोई भाग शब्द के साथ साथ अपने स्थान से बहुत दूर नहीं हटता। जब तोप चलाई जाती है तो यद्यपि उसका शब्द मीलों तक पहुँच जाता है किन्तु उसमें से निकलनेवाला धुँआ क़रीब क़रीब वहीं स्थिर रहता है। यदि शब्दोत्पादक वस्तु और हमारे कान के बीच में काग़ज़ जला कर कुछ धुँआ उत्पन्न कर दिया जाय तो प्रत्यक्ष मालूम हो जायगा कि यद्यपि धुएँ में से शब्द बराबर चला आता है तथापि धुँआ अपने स्थान से नहीं हटता। बात यह है कि शब्दोत्पादक वस्तु के कम्पन समीप की वायु को कम्पित कर देते हैं। इस वायु का प्रत्येक भाग अपने स्थान से थोड़ा सा हटता है, फिर तुरन्त लौट कर दूसरी ओर हट जाता है। अपने प्रकृत स्थान के इधर-उधर ही वह थोड़ा सा हिलता रहता है किन्तु उस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र नहीं चला जाता। हाँ स्थिति-स्थापकत्व के गुण के कारण वह अपना कम्पन अपने समीपवर्त्ती परमाणु-वृन्दों को अवश्य दे देता है जिससे वे भी उसी की भांति कम्पन करने लगते हैं। कम्पनों के इस प्रकार उत्तरोत्तर फैलने को तरंग या लहर कहते हैं और शब्द तरंगों ही के रूप में गमन करता है।

२६०—जल की तरंगें । पानी के कुंड में छोटा सा कंकर गिरा देने से जो वृत्ताकार तरंगें पैदा होती हैं उन्हें सभी जानते हैं (चित्र १९७)। जिस स्थान पर पत्थर ने गिर कर जल-पृष्ठ को कुछ दबाया था वहीं इन तरंगों का केन्द्र होता है। इस केन्द्र के चारों ओर का जल कंकर के दबाव के कारण कुछ ऊपर उठ जाता है और यही उठाव चारों ओर समान वेग से फैल कर उत्तरोत्तर समस्त जल-पृष्ठ के कणों को ऊपर की ओर उठा देता है। किन्तु कंकर के डूब जाने पर केन्द्र के जल-कण पुनः उठते हैं और तब उसके चारों ओर का जल कुछ नीचा दब जाता है। यह निम्नता भी उत्तरोत्तर वृत्ताकार
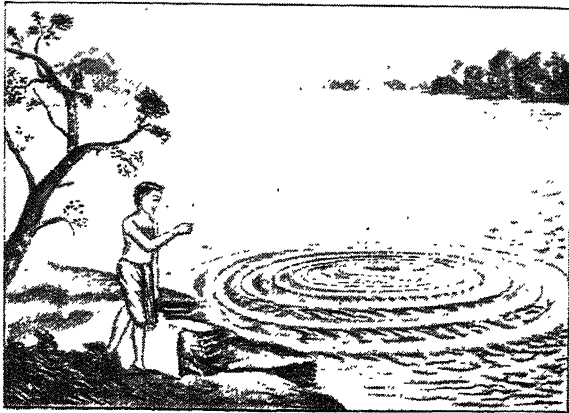
चित्र १९७

तरंग के रूप में समस्त जल-पृष्ठ पर फैल जाती है। इसी प्रकार जब तक केन्द्र के जल-कण ऊपर नीचे कम्पन करते रहते हैं तब तक वहाँ से उठाव के पीछे निम्नता और निम्नता के पीछे उठाव के वृत्त बन बन कर फैलते चले जाते हैं। तरंगों के उठाव और निम्नता को क्रमशः तरंग-शीर्ष और तरंग-पाद भी कहते हैं।

यदि पानी पर कुछ तिनके, पत्ते, काग़ज़ या लकड़ी के टुकड़े तैर रहे हों तो आप देखेंगे कि ये तरंगें उन्हें अपने साथ बहा कर नहीं ले जातीं। उनकी गति केवल ऊपर नीचे की ओर होती है किन्तु जिस दिशा में तरंगें चलती हैं उस दिशा में वे प्रायः अपने स्थान से हटती ही नहीं। यही बात समुद्र की तरंगों में देखी जा सकती है। वहां तैरती हुई नौका तरंगों के कारण कभी ऊपर उठती हैं और कभी नीचे बैठ जाती है। तरंगें उसके नीचे से निकल जाती हैं किन्तु उसे अपने साथ नहीं ले जातीं।

२६१—रस्सी की तरंगें। लम्बी रस्सी का एक सिरा दीवार में एक कील से बांध दीजिए। दूसरे सिरे को हाथ में लेकर रस्सी को तान लीजिए। अब यदि हाथ को झट से थोड़ा सा ऊपर उठा कर थोड़ा सा वापस लौटा लें तो रस्सी में एक मोड़ पड़ जायगा और वह मोड़ दीवार की ओर चलता हुआ दिखलाई देगा (चित्र १९८)। यदि हाथ को जल्दी जल्दी ऊपर नीचे चार
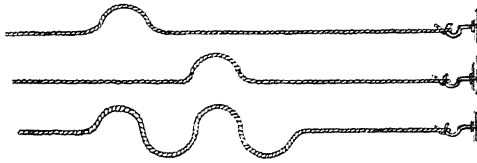
चित्र १९८

पांच बार हटावें तो पानी की तरंगों के उठाव और निम्नता की भांति रस्सी में भी शीर्ष के पीछे पाद और पाद के पीछे शीर्ष दीवार की ओर चलते नज़र आवेंगे। यह तो स्पष्ट ही है कि रस्सी का कोई भी भाग वास्तव में दीवार की ओर नहीं चल सकता। वह तो केवल ऊपर नीचे कम्पन करता है किन्तु तरंग दीवार की ओर चलती है।

२६२—रेलगाड़ी की तरंग। मान लीजिए कि स्टेशन पर इंजन से जुड़ी हुई बहुत सी रेल की गाड़ियां खड़ी हैं। अब यदि सहसा इंजन एक .फुट पीछे की ओर हट जाय तो क्या सब गाड़ियां भी एक ही साथ एक एक

फुट हट जावेंगी ? कदापि नहीं। पहिले इंजन के पासवाली गाड़ी हटेगी तब वह दूसरी को धक्का लगावेगी और इसी तरह उत्तरोत्तर यह धक्का अन्य गाड़ियों को भी लगेगा। दूसरी प्रकार इसे यों कह सकते हैं कि सबसे पहिले इंजन और प्रथम गाड़ी के बीच की दूरी घट जायगी और वहाँ की कमानी दब जायगी (चित्र १९९)। तब यह कमानी प्रथम गाड़ी को हटा देगी

चित्र १९९
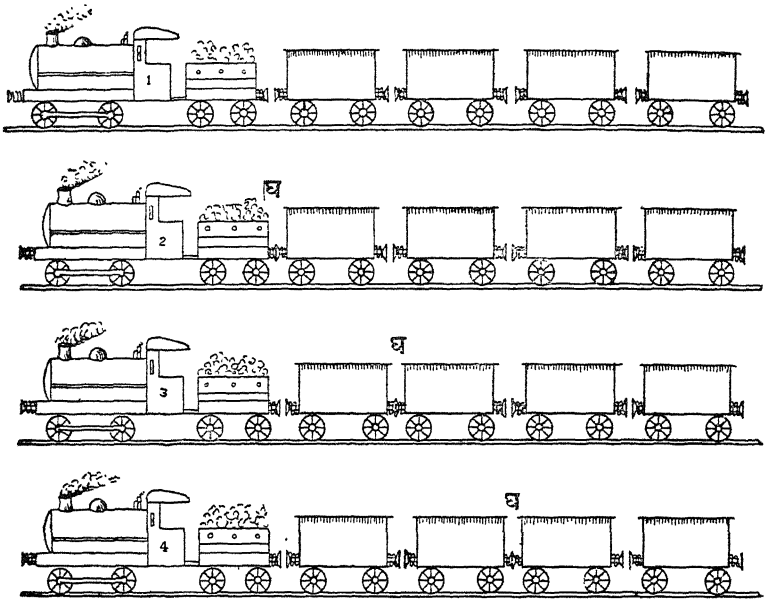
जिससे पहिली तथा दूसरी गाड़ी के बीच की कमानी दब जायगी। ऐसे ही एक के बाद दूसरी कमानियाँ दबती जायँगी और गाड़ियाँ भी क्रमशः हटती जायँगी। यदि इंजन आगे की ओर हटता तो कमानियाँ फैल जातीं और उनका यह असर भी उत्तरोत्तर अन्तिम गाड़ी तक पहुँच जाता। स्पष्ट है

कि इंजन के आगे या पीछे हटने से रेलगाड़ियों में ठीक उसी भाँति उत्तरोत्तर गति उत्पन्न होती है जिस भाँति जल में कंकर डालने से अथवा रस्सी का सिरा हिलाने से उसके कणों में होती है। अतः हम कह सकते हैं कि इंजन के हटने से रेलगाड़ी में भी तरंग उत्पन्न होती है।

२६३—अनुप्रस्थ और अनुदैर्घ्य तरंगें। किन्तु जल अथवा रस्सी की तरंग में और रेलगाड़ी की तरंग में एक बड़ा भेद है। जल या रस्सी के कण तरंग उत्पन्न होने पर सीधी रेखा में स्थित नहीं रहते। उनकी श्रेणी आंखों को स्पष्ट मुड़ी हुई दिखलाई देती है। क्योंकि इनके कण तरंग के चलने की दिशा में नहीं हटते किन्तु उसके लम्बरूप दिशा में कम्पन करते हैं। अतः इन तरंगों को अनुप्रस्थ तरंगें कहते हैं। ऐसी तरंगें ठोस पदार्थों में या द्रवों के पृष्ठ पर चल सकती हैं। वायु अथवा अन्य गैसों में आकार-स्थापकत्व होता ही नहीं इसलिए उनमें ऐसी तरंगें नहीं चल सकतीं।

रेलगाड़ियां उसी दिशा में इधर-उधर हटती हैं जिसमें कि तरंग चलती है। इससे गाड़ियों के बीच का अन्तर घट या बढ़ जाता है किन्तु उनकी श्रेणी टेढ़ी नहीं होती। ऐसी तरंगों को अनुदैर्घ्य तरंगें कहते हैं। इनमें माध्यम के कणों की पारस्परिक दूरी घटती या बढ़ती है। जहाँ कणों की दूरी घट जाती है वहाँ घनत्व भी बढ़ जाता है और जहाँ यह दूरी बढ़ जाती है वहाँ का घनत्व भी घट जाता है। अतः इन तरंगों में अनुप्रस्थ तरंगों के उठाव और निम्नता के स्थान में सघनता और विरलता उत्पन्न होती है। इनके लिए जिस स्थिति-स्थापकत्व की आवश्यकता है वह आयतन-स्थापकत्व है, आकार-स्थापकत्व नहीं। और यह गुण ठोस, द्रव तथा गैस सभी पदार्थों में होता है। शब्द सदा ऐसी ही अनुदैर्घ्य तरंगों के द्वारा चलता है।

२६४—तरंगों का निर्माण—अनुप्रस्थ तरंग। मान लीजिए कि चित्र २०० की पहली पंक्ति में जल या रस्सी के कण एक रेखा पर समान अन्तर पर स्थित हैं। अब यदि किसी प्रकार कण १ को ऊपर नीचे आवर्तन

करावें तो क्या होगा ? थोड़ा सा ऊपर की ओर खिसकते ही वह अपने समीपवर्त्ती कण २ को भी ऊपर की ओर खींचने लगेगा और ज्यों ज्यों उसका स्थानान्तर बढ़ता जायगा त्यों त्यों कण २ भी अधिक अधिक ऊपर हटता
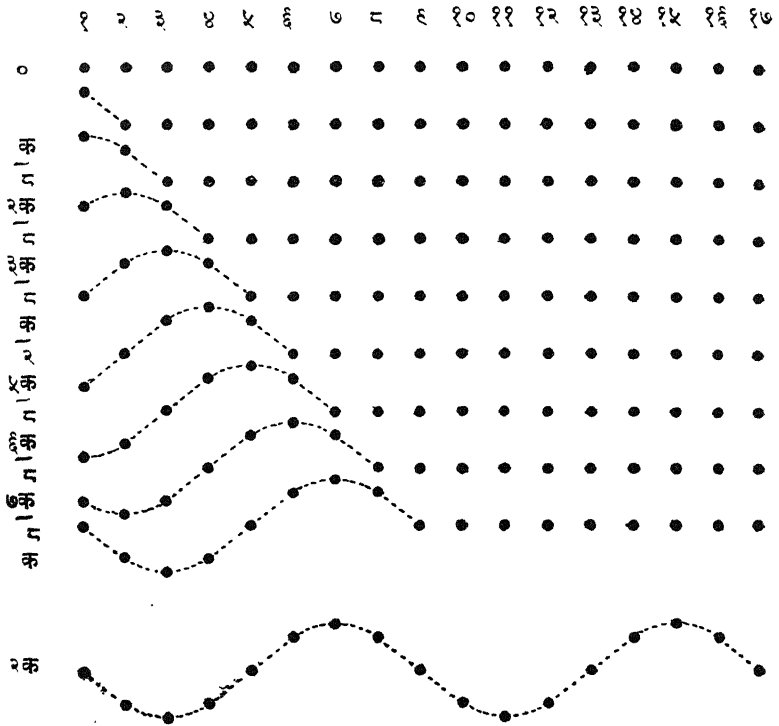
चित्र २००

जायगा। यह तीसरे कण को खींचेगा और इसी प्रकार उत्तरोत्तर यह गति समस्त कणों को प्राप्त हो जायगी। दूसरी पंक्ति में कण २ हटना प्रारम्भ करनेवाला है। तीसरी पंक्ति में कण १ अपने कम्प विस्तार के अन्त तक पहुँच गया

हैं। अर्थात् यदि आवृत्तिकाल क सेकंड हो तो यह चित्र प्रारम्भ से $\frac{क}{8}$ सैकंड के बाद का है। इसमें कण ३ अपने स्थान से हटना प्रारम्भ करनेवाला है। पहिला कण अब नीचे की ओर लौटना प्रारम्भ करेगा किन्तु दूसरा अभी कम्प विस्तार के अन्त तक नहीं पहुँचा है इसलिए वह ऊपर की ओर ही चलता रहेगा। पांचवीं पंक्ति का चित्र क/२ सैकंड के बाद का है। पहिला कण नीचे की ओर चलते चलते अपने पूर्व स्थान पर पहुँच गया है, दूसरा भी अपना कम्प-विस्तार समाप्त करके कुछ नीचे लौट आया है। तीसरा विस्तार के अन्त तक अभी ही पहुँचा है और पांचवां अब ऊपर की ओर हटना ही चाहता है। नवीं पंक्ति का चित्र क सैकंड के बाद का है। इसमें तरंग ९ वें कण तक पहुँच गई है और अब इसमें एक शीर्ष और एक पाद पूरा बन चुका है। पहिला कण एक आवर्त्तन पूरा कर चुका है। २ क सैकंड के बाद की अवस्था अंतिम पंक्ति में दिखाई गई है। तरंग १७ वें कण तक पहुँच गई है और अब दो शीर्ष और दो पाद नज़र आते हैं। इसी प्रकार जब तक पहिला कण कम्पन करता रहेगा तब तक वह नये नये शीर्ष और पाद उत्पन्न करता ही रहेगा।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि जो शीर्ष पांचवीं पंक्ति में बन गया था वह बिना किसी विकार के बराबर आगे बढ़ता ही जाता है और इसी प्रकार उसके पीछेवाले पाद और शीर्ष भी। यदि कण १ आवर्त्तन करना बन्द कर दे तो नये शीर्ष और पाद बनना तो अवश्य बन्द हो जायगा किन्तु जो बन चुके हैं वे आगे बढ़ते ही जायँगे।

एक पूरे शीर्ष और एक पूरे पाद की लम्बाई को एक तरंग कहते हैं। ९ वीं पंक्ति में पूरी एक तरंग और १० वीं पंक्ति में पूरी दो तरंगें बन चुकी हैं।

२६५—अनुदैर्घ्य तरंग। इसी प्रकार चित्र २०१ में जो बिन्दु हैं उन्हें वायु के कण समझिए। कण १ के दाहने बांये आवर्त्तन करने पर उत्तरोत्तर इन कणों की जो स्थिति होगी वह ठीक पहिले ही की भांति दिखलाई गई है।

इस चित्र में और चित्र २०० में केवल तीन बातों का अन्तर है:—

(क)—इसके कण पंक्ति की दिशा में ही आवर्त्तन करते हैं।

(ख)—कणों की पंक्ति मुड़कर वक्र रूप नहीं होती। वह सदा सीधी ही रहती है।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७

०
क/८
२क/८
३क/८
क/२
५क/८
६क/८
७क/८
क

२क
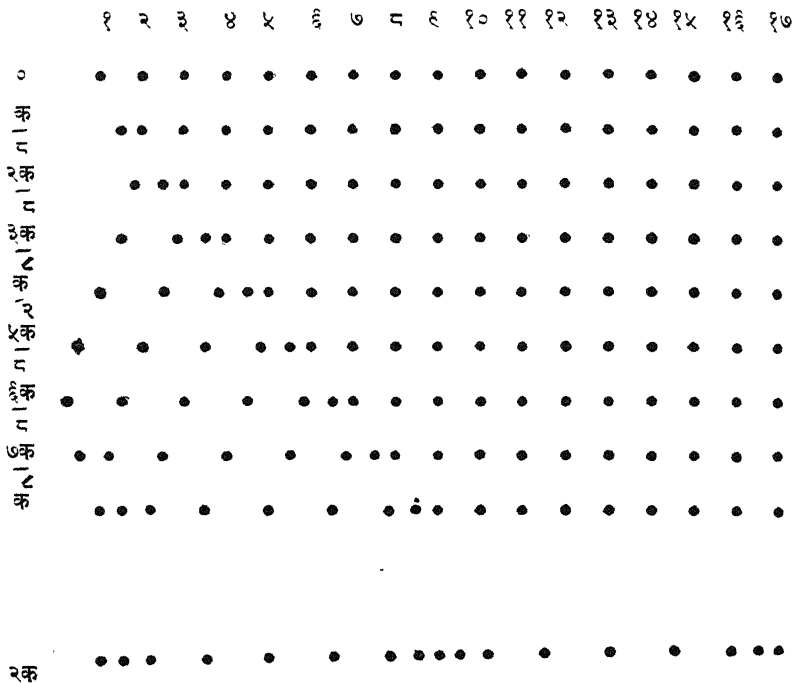
चित्र २०१

(ग)—जहाँ चित्र २०० में उठाव था वहाँ अब कणों की सघनता है और जहाँ निम्नता थी वहाँ अब विरलता है। पूरी तरंग में एक सघनता और एक विरलता दोनों सम्मिलित हैं।

चित्र २०२ में शब्द तरंगों की सघनता तथा विरलता दिखाई गई हैं। यही कान में पहुँच कर कान के पर्दे में कम्पन उत्पन्न करती हैं।

२६६—तरंग के विस्तार, आवृत्ति और आकृति। ऊपर के चित्रों से यह भी स्पष्ट है कि तरंगों के निर्माण में कणों का आवर्त्तन ही
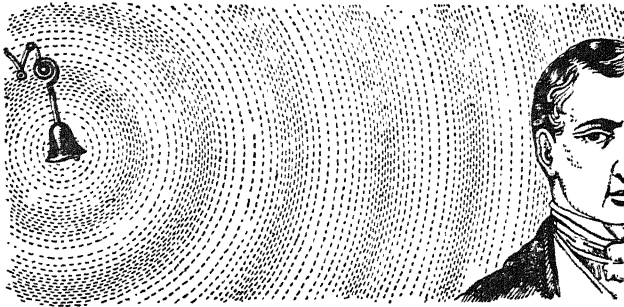
चित्र २०२

सबसे मुख्य बात है। शीर्ष या पाद अथवा सघनता या विरलता का परिमाण कणों के कम्प-विस्तार पर निर्भर हैं। अतः यह कम्प-विस्तार ही तरंग का भी विस्तार कहलाता है। ऐसे ही एक सैकंड में उत्पन्न होनेवाली अथवा किसी नियत स्थान पर एक सैकंड में पहुँचनेवाली तरंगों की संख्या भी कणों की आवृत्ति के बराबर होती है। इसी संख्या को तरंग की आवृत्ति कहते हैं। और इसी प्रकार कण के कम्पन की जो आकृति होती है उसी के अनुरूप कण-पंक्ति की भी आकृति हो जाती है। इसी को तरंग की आकृति कहते हैं।

२६७—तरंग का वेग। चित्र २०० तथा २०१ से यह भी प्रकट है कि जितने समय क में प्रथम कण एक आवर्त्तन पूरा कर लेता है उतने ही समय में तरंग भी कण १ से कण ६ तक चल लेती है। अथवा यों कहिए कि वह

एक तरंग-दैर्ध्य के बराबर दूरी (त सम०) तय कर लेती है। अतः उसका वेग व = त/क हुआ। यदि कण की कम्पन-संख्या स हो तो स = १/क

$$\therefore \text{व} = \text{स} \times \text{त}$$

२६८—तरंग-वेग पर स्थिति-स्थापकत्व का प्रभाव। अब यह समझना कठिन नहीं कि तरंग-वेग पर स्थिति-स्थापकत्व का क्या प्रभाव होता है। यदि किसी पदार्थ में यह गुण अधिक मात्रा में हो तो उसके कणों पर समीपवर्त्ती कण की गति का प्रभाव अधिक शीघ्रता से होता है। अतः कण के एक आवृत्तिकाल में अधिक कण आन्दोलित हो जाते हैं। अर्थात् तरंग का वेग अधिक होता है। गणित के द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि यदि माध्यम का आयतन-स्थापकत्व 'स्थ' हो और उसका घनत्व 'घ' हो तो अनुदैर्ध्य तरंगों का वेग

$$\text{व} = \sqrt{\frac{\text{स्थ}}{\text{घ}}}$$

वायु का आयतन-स्थापकत्व = १·४१ × द (जहाँ द = वायुदाब)

$$\text{अतः वायु में शब्द-तरंगों का वेग} = \sqrt{\frac{१·४१ \times \text{द}}{\text{घ}}}$$

यदि किसी स्थान पर बैरोमीटर की ऊँचाई ऊ सम० हो तो वायु का दाब द = ऊ × प × ग डाइन प्रतिवर्ग सम० है जहाँ प = पारद का घनत्व = १३·६ और ग = गुरुत्व-वेग-वृद्धि = ९८१ सम०/सैकंड^2। और प्रमाण दाब (७६ सम०) तथा तापक्रम (०°श) पर सूखी वायु का घनत्व घ = ·००१२९३ ग्राम प्रति घन सम० होता है। अतः उक्त दाब तथा तापक्रम पर शब्द का वेग

$$\text{व}_0 = \sqrt{\frac{१·४१ \times ७६ \times १३·६ \times ९८१}{·००१२९३}}$$

= ३३२·६ मीटर/सैकंड हुआ।

२६९—शब्द के वेग पर दाब, तापक्रम और आर्द्रता का प्रभाव—दाब। जब तक तापक्रम न बदले तब तक केवल दाब के परिवर्तन से शब्द का वेग नहीं बदलता क्योंकि वायु का घनत्व भी दाब ही के अनुरूप घटता या बढ़ता है और बायल के नियम के अनुसार $\frac{द}{घ}$ का मूल्य स्थिर ही रहता है।

तापक्रम। तापक्रम के परिवर्तन से वायु का घनत्व बदल जाता है। यदि तापक्रम १° श बढ़े तो घनत्व $\frac{१}{२७३}$ घट जाता है। अर्थात्

$$घ_{१} = घ_{०} \left(१ - \frac{१}{२७३}\right)$$

$$अतः\ व_{१} = व_{०} \sqrt{\frac{१}{१ - \frac{१}{२७३}}} = व_{०} \left(१ + \frac{१}{५४६}\right)$$

$$किन्तु\ व_{०} = ३३२\ मीटर$$

$$अतः\ व_{१} - व_{०} = \frac{३३२}{५४६}\ मीटर = ६१\ सम०$$

अर्थात् शब्द का वेग तापक्रम-वृद्धि से ६१ सम० प्रति सैकंड प्रति डिगरी बढ़ जाता है।

आर्द्रता। जल-वाष्प का घनत्व वायु से कम होता है। अतः जब वायु आर्द्र होती है तब उसका घनत्व सूखी वायु से कम होता है। इसलिए उसमें शब्द का वेग भी अधिक होता है।

२७०—साधारण शब्दों का तरंग-दैर्घ्य। पहिले लिखा जा चुका है कि साधारण शब्दों की आवृत्ति कितनी होती है। अब उपर्युक्त समीकरण

$$व = स \times त$$

$$अथवा\quad त = \frac{व}{स} = \frac{३३,२००}{स}$$

के द्वारा उन शब्दों का तरंग-दैर्घ्य भी मालूम हो सकता है। निम्न सारिणी में यही तरंग-दैर्घ्य दिये गये हैं :—

शब्द	तरंग-दैर्घ्य	
साधारण मनुष्य की बोली।	८—१२ फुट	
" स्त्री " " ।	२—५ "	
हारमोनियम बाजा।	१½—१६ "	
पियानो का सबसे ऊँचा सुर।	४ इंच	
चिड़ियों की बोली।	२ — ६ "	

प्रश्न

(१) यदि गैस में तरंग चल रही हो तो गैस के अणुओं के कम्पन की दिशा और तरंग की गति की दिशा में क्या सम्बन्ध होता है? इसका क्या कारण है?

(२) अनुदैर्घ्य और अनुप्रस्थ तरंगों में क्या भेद है? दोनों के उदाहरण दो।

(३) अनुदैर्घ्य तरंगों में माध्यम का घनत्व क्यों घटता बढ़ता है।

(४) यदि द्विभुज से उत्पन्न तरंगें ३०० मीटर प्रति सैकंड के वेग से चलें और द्विभुज की आवृत्ति १०० हो तो तरंगों की लम्बाई बताओ।

(५) यदि दो शब्दों की आवृत्ति २५६ और ३८४ हो तो उनके तरंग-दैर्घ्य बताओ।

(६) यदि सरदी और गरमी में हवा का तापक्रम क्रमशः ६०° फ और ११०°फ हो तो बताओ कि शब्द के वेग में कितना अन्तर होगा।

(७) सिद्ध करो कि वायु के दबाव के बदलने से शब्द का वेग नहीं बदलता।

(८) यह कैसे प्रमाणित करोगे कि शब्द के साथ वायु गमन नहीं करती?

परिच्छेद २८

कान तथा बाजे

२७१—मनुष्य के कान की बनावट। चित्र २०३ में मनुष्य के कान के वे भाग दिखलाये गये हैं जो शब्द सुनने के लिए काम में आते हैं। क कान का बाहिरी भाग है जो सब को दिखलाई देता है। शब्द की
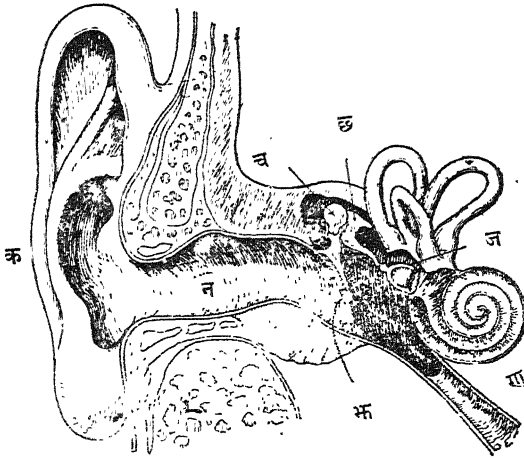
चित्र २०३

तरंगें इसी में प्रवेश करके नली न के द्वारा जाकर एक पतली झिल्ली झ को कम्पित कर देती हैं। इस झिल्ली से लगी हुई तीन हड्डियां च छ ज कान के मध्य भाग में हैं। झिल्ली के कम्पनों को ये कान के अन्तिम भाग में पहुँचा देती हैं। यहां एक कुण्डलाकार नली ग में भिन्न भिन्न लम्बाई के

अनेक तारों की श्रेणी लगी है। शब्द-तरंगों का अन्तिम परिणाम इन्हीं तारों में से कुछ को कम्पित कर देना है। इन तारों से ज्ञान तन्तु के द्वारा मस्तिष्क का सम्बन्ध है जिससे हम यह जान लेते हैं कि कौन कौन से तार कम्पित हुए हैं। यदि लम्बे तार कम्पित हुए हों तो हम समझते हैं कि शब्द का सुर मोटा था और यदि छोटे तार कम्पित हुए हों तो हमें बारीक शब्द का अनुभव होता है। भिन्न भिन्न शब्द भिन्न भिन्न तारों को कम्पित करते हैं और इसी बात से कान शब्द के बारीक से बारीक भेद को पहिचान लेता है।

२७२—अनुनाद। शब्द कान के अनेक तारों में से कुछ विशेष तारों ही को कम्पित क्यों करता है, और भिन्न भिन्न शब्द भिन्न भिन्न तारों में कम्पन क्यों पैदा करते हैं? इस बात का उत्तर एक अत्यन्त साधारण उदाहरण से समझ में आ जायगा। जब बालक झूले पर झूलते हैं तो झूले के आवर्त्तन का विस्तार बढ़ाने के लिए उस पर धक्का ठीक उस समय लगाना पड़ता है जब कि झूला अपने विस्तार की सीमा पर पहुँच कर वापिस लौटने लगता हो क्योंकि इस समय धक्का उसी दिशा में लगता है जिस दिशा में कि झूला चल रहा है। यदि धक्का इससे कुछ पहिले लगाया जाय तो स्पष्ट है कि वह झूले की गति के विपरीत होगा और उसका विस्तार बढ़ाने के स्थान में वह उसे घटा देगा। इसलिए यह भी आवश्यक हुआ कि एक धक्का लगाने के बाद दूसरा धक्का ठीक इतने समय के पश्चात् लगाना होगा जितने में झूला एक आवर्त्तन पूरा कर ले। और इसके बाद भी प्रत्येक धक्का इतने ही अन्तर के बाद लगाना होगा। इसी प्रकार जब शब्द की तरंगें तार के समीप पहुँचती हैं तो उनकी सघनता के कारण तार पर धक्का लगता है और वह कम्पन करना प्रारम्भ कर देता है। मान लीजिये कि उसका आवृत्ति-काल क सैकंड है। उपर्युक्त झूले के उदाहरण से स्पष्ट है कि यदि उस पर दूसरा धक्का ठीक क सैकंड के बाद लगे और इसके बाद भी प्रत्येक धक्का इतने ही अन्तर से लगे तो तार का कम्पन खूब ज़ोर से होने लगेगा। इसका अर्थ यह है कि तरंग की सघनतायें भी ठीक क सैकंड

ही के अन्तर से तार पर पहुँचनी चाहिए। अथवा संक्षेप में तरंग का आवृत्ति-काल भी क होना चाहिए। यदि यह क से कुछ भी कम या ज़्यादा हुआ तो धक्के ठीक समय पर न लग सकेंगे और थोड़े से कम्पनों के बाद ही तार रुक जायगा। अतः स्पष्ट है कि कान के तारों में से शब्द तरंगें केवल उसी तार को अच्छी तरह कम्पित कर सकेंगी जिसका आवृत्ति-काल तरंग के आवृत्ति काल के बराबर हो। अन्य सब तार प्रायः स्थिर ही रहेंगे। इस प्रकार शब्द-तरंगों के द्वारा उसी आवृत्ति-कालवाली वस्तु के कम्पित होने को **अनुनाद** कहते हैं।

अनुनाद के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। कांच के प्रायः दो फ़ुट लम्बे एक जार के मुख के पास द्विभुज को बजा कर रखो। सम्भवतः कोई भी शब्द न सुनाई देगा। जार में पानी डाल कर धीरे धीरे जार के वायुस्तम्भ की लम्बाई कम करते जाओ, और द्विभुज को बजा बजा कर जार के समीप लाते जाओ। उपयुक्त लम्बाई प्राप्त होने पर जार में से शब्द निकलने लगेगा। अब और भी सावधानी से पानी डालो। आवाज़ धीरे धीरे बढ़ती जायगी और अन्त में बहुत ही तीव्र हो जायगी। यही अनुनाद है। इस समय वायु-स्तम्भ का आवृत्ति-काल द्विभुज के आवृत्ति-काल के बिलकुल बराबर है। अब यदि कुछ और पानी डाल कर वायु-स्तम्भ की लम्बाई और भी घटाई जाय तो आवाज़ भी घटने लगेगी और अन्त में वह सर्वथा लुप्त हो जायगी।
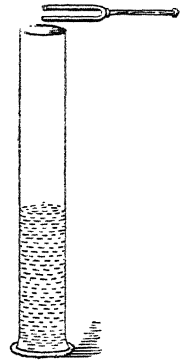
चित्र २०४

इसी प्रकार यदि दो द्विभुज बिलकुल बराबर आवृत्ति-कालवाले हों और उन्हें पास पास दो बक्सों पर लगा कर एक को बजा दें तो हम देखेंगे कि दूसरा भी आप ही आप बजने लगेगा। पहिले के आवर्त्तनों को रोक देने पर भी थोड़ी देर तक दूसरा बजता ही रहेगा। किन्तु यदि इन द्विभुजों के आवृत्तिकाल में थोड़ा भी अन्तर हो तो यह प्रयोग सफल न होगा।

२७३—प्रेरित कम्पन। ऊपर के दो उदाहरणों में अनुनाद के अतिरिक्त एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। एक द्विभुज को बजाने से दूसरा तब ही बजेगा जब दोनों के सुरों में बहुत ही थोड़ा अन्तर हो। किन्तु वायु-स्तम्भ में सुरों के इतने अधिक मेल की आवश्यकता नहीं। जार में
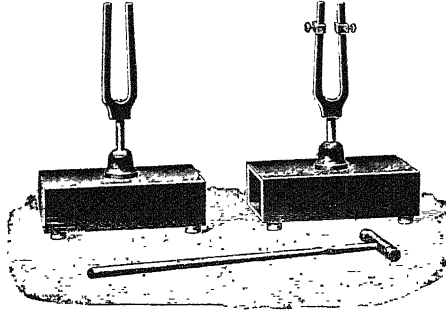
चित्र २०५

पानी की ऊँचाई अनुनाद के उपयुक्त ऊँचाई से कुछ कम या ज़्यादा होने पर भी उसमें से शब्द निकलता है। और इस शब्द का सुर द्विभुज के सुर से भिन्न नहीं होता। द्विभुज वायु-स्तम्भ में कम्पन तो उत्पन्न कर देता है किन्तु ये कम्पन स्वतन्त्र नहीं हैं। यदि ये आवर्त्तन स्वतन्त्र होते तो सुर भी दूसरा निकलता। ऐसे आवर्त्तनों को **प्रेरित कम्पन** कहते हैं। क्योंकि ये वायु-स्तम्भ के अपने स्वाभाविक कम्पन नहीं हैं। उनसे भिन्न दूसरे ही प्रकार के कम्पन द्विभुज ने ज़बर-दस्ती से उसमें उत्पन्न कर दिये हैं।

एक बार कम्पित कर देने पर जो वस्तु बहुत अधिक देर तक कम्पन करती ही रहे उसमें प्रेरित कम्पन उत्पन्न करना बहुत कठिन है। द्विभुज ऐसी ही वस्तु है। यही कारण है कि चित्र २०५ का द्विभुज थोड़ा भी सुर भेद होने पर नहीं बोलता। किन्तु वायु-स्तम्भ के कम्पन बहुत ही जल्दी नष्ट हो जाते हैं इसलिए उसमें अधिक सुर भेद होने पर भी प्रेरित कम्पन उत्पन्न

हो जाते हैं। कई वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि जिनके आवर्त्तन वायु-स्तम्भ से भी अधिक शीघ्रता से नष्ट हो जाते हैं। उनमें प्रायः किसी भी सुर के कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे किसी भी द्विभुज की डंडी को मेज़ पर टिकाने से मेज़ के तख़्ते में से उस द्विभुज के सुर का शब्द निकलने लगता है। चित्र २०५ में द्विभुज जिस बक्स पर लगा है यद्यपि उसका नाम अनुनादी बक्स है किन्तु उसका भी यही हाल है। इस प्रकार के प्रेरित कम्पन का बाजों में बहुत उपयोग होता है।

२७४—बाजे। संगीत के लिए उपयोगी बाजे अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु शब्दोत्पादन की दृष्टि से हम उन्हें तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) तार वादित्र—तार के बाजे।
(२) वायु वादित्र—वायु के बाजे।
(३) आघात वादित्र—चमड़े इत्यादि के बाजे।

२७५—तार के बाजे। इस विभाग में सितार, सारंगी, इसराज, वीणा, पियानो आदि बाजे हैं। इन सब में पीतल, फ़ौलाद या तांत के तारों में कम्पन पैदा किया जाता है। सितार में उँगली से, पियानो में हलकी लकड़ी की हथौड़ी से और सारंगी, बिहाला आदि में घोड़े के बालों के गज़ के द्वारा यह कार्य किया जाता है। प्रत्येक बाजे में तार के पीछे एक वायु-कोष्ट होता है। यह भिन्न भिन्न बाजों में भिन्न भिन्न आकार का होता है और प्रायः बहुत पतली लकड़ी का बना होता है। तारों के कम्पन इस कोष्ट की लकड़ी और वायु में प्रेरित कम्पन उत्पन्न कर देते हैं। यही कम्पन हमें सुनाई देते हैं।

इन बाजों का सुर तार की लम्बाई और उसके तनाव पर निर्भर है। तार जितना ही अधिक तना होगा अथवा जितना ही लम्बाई में कम होगा उतना ही ऊँचा सुर उसमें से निकलेगा। इसलिए प्रत्येक बाजे में तार को कम या अधिक तानने का तथा तार के कम्पन करनेवाले भाग की लम्बाई

घटाने या बढ़ाने का प्रबन्ध रहता है। पियानो में तो भिन्न भिन्न सुर के लिए भिन्न भिन्न तार लगे होते हैं और प्रत्येक तार के लिए एक एक परदा रहता है जिस पर उँगली रखते ही तार पर हथौड़े की चोट लगती है। इसमें से केवल वे ही सुर निकल सकते हैं जिनके लिए उपयुक्त तार उसमें लगे हों। किन्तु अन्य बाजों में प्रायः एक ही दो तारों से सब प्रकार के सुर निकल सकते हैं क्योंकि उनकी लम्बाई ठीक स्थान पर उँगली से दबा कर जितनी चाहें घटा या बढ़ा सकते हैं। संगीत-विद्या को जाननेवाले लोग इन्हीं बाजों को अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि इनमें जब जिस आवृत्ति का सुर निकालना चाहें तुरन्त ही निकल सकता है।

२७६—वायु के बाजे। बाँसुरी, शहनाई, आदि मुँह से बजनेवाले बाजे इस विभाग में सम्मिलित हैं। इन सब में लकड़ी या पीतल की एक नली होती है जिसके एक सिरे में मुँह से फूँक मारना होता है। इस फूँक से एक पतली पत्ती में कम्पन पैदा होते हैं जिसे उस नली का **ओष्ठ**

चित्र २०६

कहते हैं। इन कम्पनों से नली की वायु में भी कम्पन पैदा हो जाते हैं। जिस प्रकार तार की लम्बाई को घटाने बढ़ाने से सुर ऊँचा नीचा हो जाता है ठीक उसी प्रकार इस नली की लम्बाई को घटाने बढ़ाने से सुर ऊँचा या नीचा हो जाता है। इस कार्य के लिए नली में कई छिद्र रहते हैं जिन्हें बजानेवाला अपनी उँगलियाँ रख कर बन्द कर लेता है। जब सब छिद्र बन्द रहते हैं तब तो नली के कम्पन करनेवाले वायुस्तम्भ की लम्बाई पूरी नली की लम्बाई के बराबर होती है। किन्तु यदि किसी उँगली को उठा कर वहाँ का छिद्र खोल दें तो वहाँ नली के अन्दर की वायु का सम्बन्ध बाहिर की वायु से हो जाता है और वायुस्तम्भ की लम्बाई घट जाती है।

इस प्रकार भिन्न भिन्न छिद्रों को खोल कर भिन्न भिन्न सुर निकाले जा सकते हैं।

हारमोनियम भी वायु-वाद्य है। किन्तु इसमें कोई अनुनादी वायुस्तम्भ नहीं होता। प्रत्येक सुर के लिए एक एक पीतल की पत्ती लगी होती है जिसे रीड कहते हैं। मोटे सुरों की रीड लम्बी होती है और बारीक सुरों की छोटी। प्रत्येक रीड चित्र २०७ के अनुसार एक एक छिद्र पर लगी
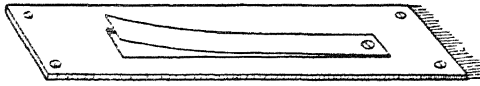
चित्र २०७

रहती है। रीड के कम्पन से कभी यह छिद्र बन्द हो जाता है और कभी खुल जाता है। इसलिए इस छिद्र में से धौंकनी की हवा रुक रुक कर निकलती है। जितनी बार रीड एक सैकंड में कम्पन कर सकती है उतनी ही बार हवा भी उसमें से निकलती है। इसलिए चित्र १८८ के सायरन की भांति यह वायु भी रीड की कम्पन-संख्या का शब्द उत्पन्न कर देती है। बाजे पर जो सफेद और काले परदे होते हैं उनका एक एक रीड से सम्बन्ध होता है। जिस परदे को दबाया जाता है उसी से सम्बन्धित रीड में से हवा निकलती है और उसी के अनुसार सुर भी बाजे में से निकलता है।
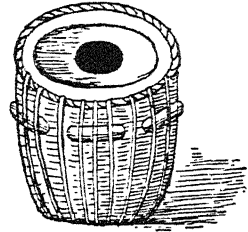
चित्र २०८

२७७—आघात वादित्र। ढोल, मृदंग, तबला आदि बाजों में चमड़ा तना रहता है। इस पर हाथ से या लकड़ी से चोट मार कर शब्द उत्पन्न किया जाता है। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के बाजे ऐसे नहीं बनाये जाते जिनसे संगीतोपयोगी शब्द पैदा हो सके। वे केवल ताल का बोध कराते हैं। किन्तु भारतवर्ष में यह बाजे इस चतुराई से बनाये जाते हैं

कि वे भी संगीत की मधुरता में सहायता करते हैं। यहां चमड़े के बीच में काली स्याही लगा कर मृदंग और तबले का सुर भी अन्य बाजों के समान ही मधुर बना लिया जाता है।

२७८—ग्रामोफ़ोन। यह बाजा अब इतना प्रचलित हो गया है कि प्रायः सब ही ने किसी न किसी समय इसे सुना होगा। इसमें चाहे जिस गवैये का गाना एक बार भर लिया जाता है और तब जब और जितनी बार चाहें उसे सुन सकते हैं। इसका कार्य चित्र २०६ से समझ
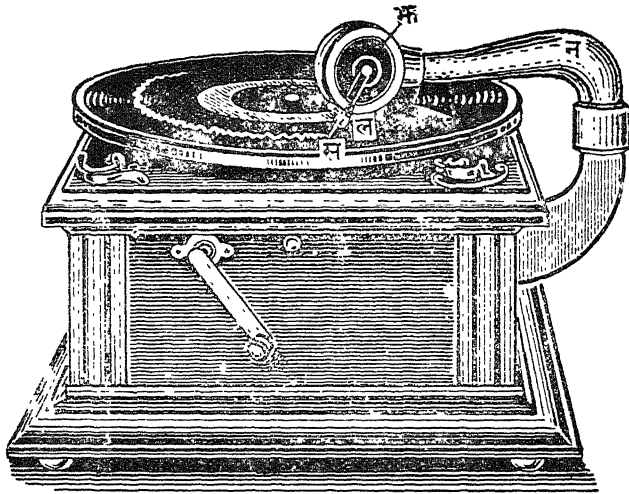
चित्र २०६

में आ जायगा। जो शब्द नली न में प्रवेश करता है वह अभ्रक की एक पतली झिल्ली झ को कम्पित कर देता है। इसके बीच में एक लीवर ल लगा है जिसके दूसरे सिरे पर एक छोटी सी सुई स लगा दी जाती है।

झिल्ली के कम्पनों के अनुसार ही इस सुई में कम्पन होते हैं। यह सुई मोम की एक चूड़ी पर रखी होती है और यह चूड़ी घड़ी के समान मशीन से चाबी भर कर घुमाई जाती है। इससे सुई के कम्पन मोम पर अंकित हो जाते हैं। मोम की इस चूड़ी से एक सांचा बना लिया जाता है और तब इस सांचे पर लाख आदि पदार्थों की बनी काले रंग की चूड़ी गरम करके दबाने से उस पर भी उन कम्पनों की आकृति अंकित हो जाती है। ये चूड़ियां सख़्त होती हैं और इन पर बनी हुई आकृतियां जल्दी बिगड़ नहीं सकतीं। यही हम लोग बाज़ार से ख़रीदते हैं।

ग्रामोफ़ोन से जब हम गाना सुनते हैं तब उपर्युक्त रीति से ठीक उलटा कार्य होता है। चूड़ी के घूमने से सुई को उस पर अंकित वक्र के अनुसार इधर उधर कम्पन करना पड़ता है। लीवर के द्वारा ये कम्पन अभ्रक की झिल्ली को कम्पित करते हैं और इससे नली की वायु में शब्द-तरंगें उत्पन्न होकर हमारे कान में पहुँचती हैं। यह स्पष्ट ही है कि अब सुई और अभ्रक के कम्पन ठीक उसी प्रकार के होंगे जिस प्रकार के कम्पन पहिले चूड़ी बनाते समय गवैये के गाने ने उनमें उत्पन्न किये थे। इसलिए हम आवाज़ भी ठीक वैसी ही सुनेंगे मानों गवैया ही हमारे सामने गा रहा हो। आवाज़ को तीव्र करने के लिये बहुधा नली न के साथ एक चोंगा लगा रहता है। चित्र २०९ में यह चोंगा बक्स के भीतर ही लगा है।

प्रश्न

(१) अनुनाद किसे कहते हैं? इसके लिए क्या बात आवश्यक है? उदाहरण दो।

(२) आवृत्ति में थोड़ा अन्तर होने पर भी नली में की वायु तो द्विभुज के साथ अनुनाद करती है किन्तु द्विभुज ऐसा नहीं कर सकता? इसका कारण समझाओ।

(३) कान की बनावट से यह समझाओ कि हम भिन्न भिन्न सुरों के शब्दों का भेद कैसे जान जाते हैं।

(४) हारमोनियम की बनावट का वर्णन करो। सितार से जिस प्रकार इच्छानुसार जिस आवृत्ति का चाहें शब्द उत्पन्न कर सकते हैं वैसे ही हारमोनियम में क्यों नहीं कर सकते ?

(५) ग्रामोफ़ोन के मुख्य भागों का वर्णन करो और उसकी कार्य-प्रणाली समझाओ।

(६) बाँसुरी में छिद्रों से क्या लाभ है ?

चुम्बक और विद्युत्

परिच्छेद २६

चुम्बक

२७९—**चुम्बक पत्थर**। चुम्बक का नाम बहुत प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। यह एक प्रकार का काला पत्थर होता है जो कहीं कहीं लोहे की खान में से निकलता है। उसमें विशेष गुण यह होता है कि यह लोहे की चीज़ों को अपनी ओर खींच लेता है। यदि इसका एक लम्बा सा टुकड़ा ले कर लोहे के बुरादे में बोर दें तो हम देखेंगे कि बहुत सा बुरादा उस पर चिपक जायगा। लोहे की कीलें, सुइयाँ, चाबियां इत्यादि को भी यह अपने आकर्षण से उठा लेता है। लोहे के अतिरिक्त निकल तथा कोबल्ट नामक धातुओं को भी यह कुछ थोड़ा सा खींच सकता है। किन्तु अन्य सब वस्तुओं पर इसका आकर्षण बिलकुल काम नहीं करता। इसलिए इसका आकर्षण लोहे की बड़ी सरल पहिचान है। जिस वस्तु को चुम्बक अपनी ओर खींच ले उसे हम निस्सन्देह लोहे की बनी हुई समझ सकते हैं।

२८०—**ध्रुव**। चित्र २१० में चुम्बक पत्थर से चिपका हुआ लोहे का बुरादा दिखाया गया है। इसमें विशेष ध्यान से देखने की बात यह है कि चुम्बक पर बुरादा सर्वत्र नहीं चिपका है। दोनों सिरों पर बहुत अधिक चिपक गया है किन्तु मध्य भाग पर प्रायः कुछ भी नहीं लगा है। इससे जान पड़ता है कि चुम्बक का आकर्षण-बल दोनों सिरों पर ही अधिक होता है। इन दोनों सिरों को चुम्बक के ध्रुव कहते हैं।

चित्र २१०

२८१—कृत्रिम चुम्बक। इस प्राकृतिक चुम्बक के अतिरिक्त आज-कल कृत्रिम चुम्बक भी बहुत बनाये जाते हैं। ये बहुत कड़ी फ़ौलाद के बने होते हैं। उनमें जिस उपाय से चुम्बकत्व उत्पन्न किया जाता है वह आगे मालूम होगा। किन्तु इनमें लोहे को आकर्षित करने का गुण ठीक वैसा ही होता है जैसा कि प्राकृतिक चुम्बक पत्थर में। ये मामूली तौर से दो प्रकार के होते हैं। एक सीधे और दूसरे घोड़े की नाल के आकार के (चित्र २११)। नाल चुम्बक के दोनों ध्रुव पास पास होते हैं। अतः आकर्षित वस्तु पर इनका बल एक ही साथ लगता है। इसलिए ये अधिक बोझवाली वस्तु को भी खींच कर उठा सकते हैं।
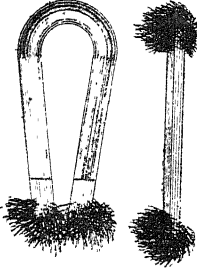
चित्र २११

२८२—चुम्बक का दिशा-सूचक गुण। इस आकर्षण से भी अधिक महत्त्व का चुम्बक में एक और गुण होता है। यदि एक पतले डोरे से बांध कर चुम्बक को लटका दें तो हम देखेंगे कि वह इधर उधर घूम कर अन्त में इस प्रकार ठहरेगा कि उसका एक सिरा उत्तर की ओर और दूसरा दक्षिण की ओर रहेगा। यदि हम हाथ से घुमा कर उसे किसी अन्य दिशा में ठहरा दें तो भी हाथ हटाते ही तुरन्त वह उत्तर दक्षिण होने का प्रयत्न करेगा और जिस प्रकार दोलक अपने मध्य स्थान के इधर उधर आवर्त्तन करता है ठीक उसी प्रकार चुम्बक भी उत्तर दक्षिण दिशा के इधर उधर आवर्त्तन करके अन्त में उत्तर दक्षिण दिशा ही में ठहरेगा। और इस दिशा में भी जो ध्रुव उत्तर की ओर है उसे हम दक्षिण की ओर करके नहीं ठहरा सकते। वह सदा उत्तर ही की ओर रहेगा। अतः इसका नाम उत्तर ध्रुव रख दिया गया है। दूसरा ध्रुव जो सदा दक्षिण की ओर रहता है दक्षिण ध्रुव कहलाता है।
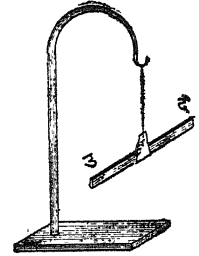
चित्र २१२

२८३—चुम्बक बनाने की विधि। किसी फ़ौलाद की वस्तु में चुम्बकत्व उत्पन्न करने का तरीक़ा बहुत आसान है। कपड़े सीने की सुई या पेंसिल बनाने का चाक़ू अथवा अन्य कोई फ़ौलाद का लम्बा टुकड़ा लो। मेज़ पर रख कर इस पर प्राकृतिक अथवा कृत्रिम चुम्बक का एक ध्रुव एक सिरे से दूसरे सिरे तक हलके से रगड़ दो। चुम्बक को उठा कर फिर पहिले सिरे पर ले जाओ और फिर पहिले ही की भांति रगड़ते रगड़ते दूसरे सिरे तक ले जाओ। इसी प्रकार कई बार करो। अब परीक्षा करके देख लो
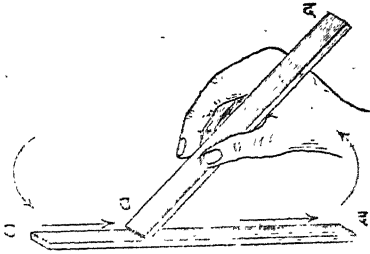
चित्र २१२

कि यह भी लोहे के बुरादे और हलकी हलकी लोहे की वस्तुओं को आकर्षित कर लेता है और बारीक डोरे से लटकाने पर यह भी उत्तर दक्षिण दिशा ही में ठहरता है। इसके भी एक उत्तर ध्रुव है तथा एक दक्षिण ध्रुव। अर्थात् चुम्बक में जो जो गुण होने चाहिए वे सब इसमें भी उत्पन्न हो गये हैं।

थोड़ा ही ध्यान देने पर यह भी ज्ञात हो जायगा कि इस प्रकार चुम्बक बनाने से फ़ौलाद का कौन सा सिरा उत्तर ध्रुव बनता है और कौन सा दक्षिण। चित्र २१२ में यह स्पष्ट दिखलाया गया है। यदि फ़ौलाद को उत्तर ध्रुव से रगड़ें तो फ़ौलाद का वह सिरा जहाँ से रगड़ना प्रारम्भ किया जाता है उत्तर ध्रुव बनेगा और जहां पहुँच कर रगड़नेवाले चुम्बक को उठा लेते हैं वह दक्षिण ध्रुव बनेगा। यदि दक्षिण ध्रुव से रगड़ते तो परिणाम उलटा होता।

जो कृत्रिम चुम्बक अकसर बाज़ार में बिकते हैं उनमें प्राकृतिक चुम्बक पत्थर से बहुत अधिक आकर्षण-बल होता है। वे उपर्युक्त रीति से नहीं बनाये जाते। उनके बनाने में विद्युत् की सहायता ली जाती है। इस रीति का वर्णन आगे किया जायगा।

इस सम्बन्ध में एक बात यह भी ध्यान रखने के योग्य है कि एक ही चुम्बक से हम जितने चाहें उतने कृत्रिम चुम्बक बना सकते हैं। नया चुम्बक बनाने में उसका चुम्बकत्व तनिक भी घटता नहीं मालूम होता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चुम्बक बनाने के कार्य में पुराने चुम्बक में से निकल कर कोई वस्तु नवीन चुम्बक में प्रवेश नहीं करती। जिस प्रकार गरम वस्तु के समीप रखने से ठंडी वस्तु भी गरम हो जाती है उसी प्रकार चुम्बक के स्पर्श से फ़ौलाद भी चुम्बक बन जाता है। किन्तु ताप के उदाहरण में ठंडी वस्तु गरम तब ही हो सकती है जब गरम वस्तु की गरमी कुछ कम हो क्योंकि उसी में से निकल कर ताप ठंडी वस्तु में प्रवेश करता है। चुम्बकत्व में यह बात नहीं। नया चुम्बक बन जाने पर भी पुराने चुम्बक का चुम्बकत्व ज्यों का त्यों रहता है। इसका कारण भी आगे चल कर मालूम होगा।

२८४—दिक्-सूचक या कुतुबनुमा। कृत्रिम चुम्बकों का सबसे बड़ा उपयोग दिक्-सूचक बनाने में होता है। इसमें हलका सा नोकदार चुम्बक एक कील पर इस प्रकार लगाया जाता है कि आसानी से इधर उधर घूम सके। यह चुम्बक की सुई एक डिबिया में बन्द रहती है जिसमें काँच का ढक्कन लगा रहता है। इससे वह हवा के झोकों से बची रहती है। डिबिया के पैंदे पर रेखाओं के द्वारा उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम आदि दिशायें और विदिशायें अंकित रहती हैं। इस चुम्बकीय सुई के उत्तर ध्रुव का आकार दक्षिण ध्रुव से भिन्न होता है। जिधर यह ध्रुव हो उधर ही डिबिया को घुमाकर पैंदे पर अंकित उत्तर कर देने से शेष सब दिशाओं को
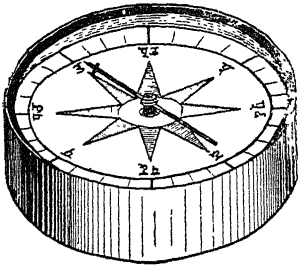
चित्र २१४

भी उस पर लिखे हुए अक्षर ठीक ठीक बतला देते हैं। कभी कभी यह दिशाओं का कार्ड चुम्बक ही से चिपका दिया जाता है और उसी के साथ साथ घूमता भी है। इससे डिबिया घुमा कर उसका उत्तर चुम्बक के उत्तर ध्रुव की ओर करने की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयमेव ही घूम जाता है। समुद्र में अथवा आकाश में जहाज़ ऐसे दिक्-सूचक ही के सहारे चलते हैं।

२८५—ध्रुवों का आकर्षण तथा प्रतिसारण। एक दिक्-सूचक ले लीजिये या किसी लम्ब-चुम्बक को डोरे से लटका दीजिये। अब एक दूसरे लम्ब-चुम्बक का उत्तर ध्रुव दिक्-सूचक या लटके हुए चुम्बक के ध्रुवों के समीप क्रम से ले जाइये। आप देखेंगे कि इसका दक्षिण ध्रुव तो
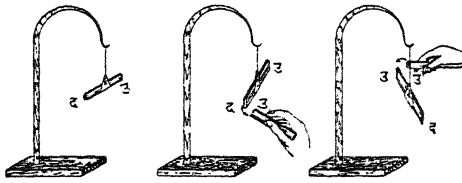
चित्र २१५

आकर्षित होकर लम्ब-चुम्बक के उत्तर ध्रुव के निकट आने का प्रयत्न करेगा किन्तु उत्तर ध्रुव दूर हट जावेगा। आप कितनी ही कोशिश कीजिये दोनों चुम्बकों के उत्तर ध्रुव निकट नहीं रह सकेंगे। इसका अर्थ यह है कि उत्तर ध्रुव दक्षिण ध्रुव को तो आकर्षित कर लेता है किन्तु उत्तर ध्रुव को दूर भगा देता है। इसी प्रकार दूसरे चुम्बक का दक्षिण ध्रुव लटके हुए चुम्बक के उत्तर ध्रुव को तो निकट खींच लेगा। किन्तु दक्षिण ध्रुव को दूर हटा देगा। संक्षेप में इस बात को यों कह सकते हैं कि

"समान ध्रुवों में प्रतिसारण होता है और असमान ध्रुवों में आकर्षण।"

चुम्बक को बिना लटकाये भी यह बात देखी जा सकती है। एक चुम्बक को मेज़ पर रख दीजिये। दूसरे चुम्बक के उत्तर ध्रुव को इसके दक्षिण ध्रुव से

स्पर्श करा दीजिये। दोनों चुम्बक चिपक जायँगे। और यदि मेज़ पर रखा हुआ चुम्बक बहुत भारी न हो तो वह दूसरे चुम्बक के साथ ही मेज़ पर से उठ आवेगा। किन्तु यदि हम उसी उत्तर ध्रुव को मेज़ पर के चुम्बक के उत्तर ध्रुव से स्पर्श करावें तो उनमें चिपकने के कोई लक्षण नहीं नज़र आवेंगे।

यदि चुम्बक के स्थान में कोई चुम्बकित न किया हुआ लोहा लिया जाय तो हम देखेंगे कि इसके दोनों ही सिरे प्रत्येक ध्रुव से आकर्षित हो जाते हैं। इसमें किसी भी ध्रुव को प्रतिसारित करने की क्षमता नहीं है। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि प्रतिसारण ही चुम्बक का विशेष लक्षण है। यदि हम यह जानना चाहें कि किसी फ़ौलाद के टुकड़े में चुम्बकत्व है या नहीं तो उसके समीप एक चुम्बक ले जाकर हमें यही देखना चाहिए कि उसका कोई सिरा चुम्बक के किसी ध्रुव से प्रतिसारित भी होता है या नहीं। यदि प्रतिसारित होता है तब तो अवश्य ही उसमें चुम्बकत्व विद्यमान है, अन्यथा नहीं।

इस आकर्षण और प्रतिसारण के द्वारा हम चुम्बक के ध्रुवों को भी पहिचान सकते हैं। दिक्-सूचक के उत्तर ध्रुव को जो ध्रुव प्रतिसारित करेगा वह स्वयं भी उत्तर ध्रुव ही होगा और जो उसे आकर्षित कर लेगा वह दक्षिण ध्रुव होगा।

२८६—उत्क्रम-वर्ग नियम। दिक्-सूचक से बहुत दूर पर रखे हुए चुम्बक का प्रायः उस पर कोई प्रभाव पड़ता हुआ नहीं मालूम होता। किन्तु ज्यों ज्यों चुम्बक निकट लाया जाता है त्यों त्यों उस पर आकर्षण या प्रतिसारण बढ़ता जाता है। यदि चुम्बक का उत्तर ध्रुव सामने हो तो सूची का दक्षिण ध्रुव चुम्बक की ओर अधिक अधिक घूमता जाता है। इससे मालूम होता है कि आकर्षण या प्रतिसारण का बल ध्रुवों की दूरी पर निर्भर है। नीचे लिखी विधि से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि गुरुत्वाकर्षण-बल के समान ही यह बल भी दूरी के कारण उत्क्रम-वर्ग के नियम से घटता है। अर्थात् यदि दूरी दुगुनी कर दी जावे तो बल घट कर

पहिले की अपेक्षा $\frac{१}{२^२} = \frac{१}{४}$ ही रह जाता है। यदि दूरी तीन गुणी कर दें तो बल भी $\frac{१}{३^२} = \frac{१}{९}$ रह जायगा।

तौलने के कमानीदार कांटे से एक चुम्बक उ द ऊर्ध्वाधर लटका दीजिये। यह चुम्बक प्रायः ८ या १० इंच लम्बा होना चाहिए। और इसका आकार भी ठीक वैसा ही होना चाहिए जैसा कि चित्र में दिया गया है। अर्थात् उसके दोनों सिरों पर दो गोलियां होनी चाहिए। इससे लाभ यह होता है कि ध्रुव का स्थान ठीक ठीक ज्ञात हो जाता है। साधारण चुम्बकों में ध्रुव सिरे से कुछ हट कर अन्दर की तरफ़ होता है। अतः हम नहीं कह सकते कि वह वास्तव में सिरे से कितनी दूर है। किन्तु गोलीदार चुम्बक में ध्रुव ठीक गोली के केन्द्र पर होता है।

अब ठीक ऐसे ही दूसरे चुम्बक का उत्तर ध्रुव लटके हुए दक्षिण ध्रुव के नीचे लाकर उसे भी किसी उपस्तम्भ में पकड़ दीजिये। कांटे का पाठ बदल जायगा और ऐसा जान पड़ेगा कि चुम्बक का वज़न बढ़ गया है। दोनों ध्रुवों के बीच की दूरी $ल_१$ नाप लीजिये। और भार वृद्धि $भ_१$ भी देख लीजिये। यही दोनों ध्रुवों का आकर्षण बल है। अब दूसरे चुम्बक को कुछ नीचे की ओर हटा दीजिये। अब दूरी $ल_२$ पहिले से अधिक हो जायगी और आकर्षण बल भी कम हो कर $भ_२$ हो जायगा। किन्तु हम देखेंगे कि

$$\frac{भ_२}{भ_१} = \frac{ल_१^२}{ल_२^२}$$

उ
द
उ
द

चित्र २१८

इस प्रयोग में यह स्मरण रखना चाहिए कि चुम्बक इतने लम्बे लिए जावें कि ऊपर वाले चुम्बक के ध्रुव द या उ पर नीचे वाले चुम्बक के ध्रुव द या उ का प्रतिसारण बहुत ही कम हो। अन्यथा इन बलों का भी हिसाब लगाना होगा।

२८७—ध्रुव का एकांक । ध्रुवों के बीच का चुम्बकीय बल एक और बात पर भी निर्भर है। वह है ध्रुव के चुम्बकत्व का परिमाण। सब चुम्बकों की आकर्षण क्षमता बराबर नहीं होती। कोई छोटी सी सुई को भी पृथ्वी पर से उठा लेने में समर्थ नहीं होता और कोई १ सेर लोहे को भी आसानी से उठा सकता है। इसका कारण यह है कि किसी के ध्रुवों में चुम्बकत्व अधिक होता है और किसी के ध्रुवों में कम। अथवा संक्षेप में किसी में ध्रुव की प्रबलता अधिक होती है और किसी में कम।

ध्रुवों की प्रबलता को नापने के लिए भी एक एकांक नियत कर लिया गया है जिसे एकांक ध्रुव कहते हैं। इसका परिमाण ऐसा होता है कि यदि दो एकांक ध्रुव एक सेंटीमीटर के अन्तर पर रखे जावें तो उनके बीच का चुम्बकीय बल एक डाइन होगा। यदि एक ध्रुव की प्रबलता $ध_1$ एकांक ध्रुव हो और दूसरे की $ध_2$ और दोनों के बीच की दूरी द सम० हो तो उनके बीच का चुम्बकीय बल

$$ब = \frac{ध_1 \times ध_2}{द^2}$$

इस नियम की और गुरुत्वाकर्षण के नियम की समानता तो प्रत्यक्ष ही है क्योंकि

$$गुरुत्वबल = \frac{म_1 \times म_2}{द^2}$$
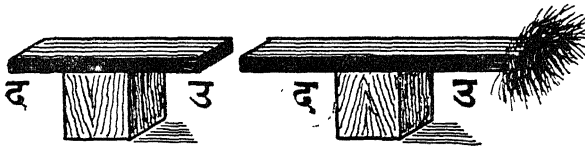
चित्र २१६

२८८—उपपादन । एक चुम्बक के समीप लोहे की छड़ का प्रायः ६ इंच लम्बा चुम्बकत्वहीन टुकड़ा इस प्रकार रख दीजिए (चित्र २१६) कि

उसका एक सिरा उत्तर ध्रुव के बहुत ही नज़दीक हो। अब दूसरे सिरे पर लोहे का बुरादा लगाने से वह वहाँ चिपक जायगा। चुम्बक को ज़रा दूर हटा दीजिए। तुरन्त बुरादा गिर पड़ेगा। पुनः चुम्बक को नज़दीक खिसका दीजिए। बुरादा फिर चिपक सकेगा। इससे ज्ञात होता है कि चुम्बक के निकट होने ही से लोहे में चुम्बकत्व उत्पन्न हो जाता है। किन्तु यह चुम्बकत्व स्थायी नहीं होता। चुम्बक को दूर हटाते ही वह नष्ट हो जाता है। इस अस्थायी चुम्बकत्व को उपपादित चुम्बकत्व कहते हैं और इस क्रिया का नाम उपपादन है। दिक्-सूचक के द्वारा परीक्षा करने पर ज्ञात होगा कि लोहे का जो सिरा चुम्बक से दूर है वह उत्तर ध्रुव है। अतः जो उसके निकट है वह दक्षिण ध्रुव है। यदि चुम्बक को उलट कर उसका दक्षिण ध्रुव लोहे की तरफ़ कर दें तो उपपादित चुम्बकत्व के ध्रुव भी उलट जावेंगे। चुम्बक की तरफ़वाला ध्रुव सदा चुम्बक के ध्रुव से उलटा होगा।

एक चुम्बक को हाथ में पकड़ कर उससे लोहे की एक कील चिपका दीजिए। इस कील से एक और कील चिपक जायगी। और इसी प्रकार उत्तरोत्तर ४-५ कीलें लटक जावेंगी (चित्र २२०)। यह भी उपपादन ही का फल है।

चित्र २२०

अब यह भी समझ में आ जायगा कि जब चुम्बक का कोई ध्रुव लोहे को अपनी ओर खींचता है तब वास्तव में वह पहिले उसमें चुम्बकत्व उपपादित करके विपरीत ध्रुव पैदा कर लेता है। और जो आकर्षण हम देखते हैं वह सदा विपरीत ध्रुवों ही का आकर्षण है।
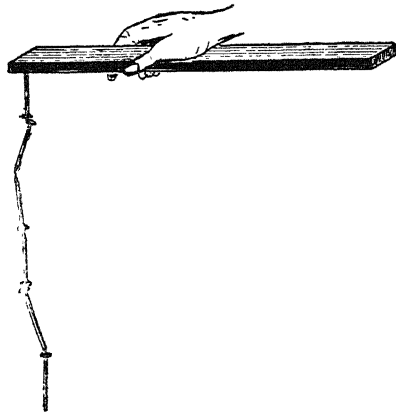
२८९—प्रवृत्ति तथा निग्रह। यह उपपादन सब प्रकार के लोहे में एक सा नहीं होता। यदि उपपादन के उपर्युक्त प्रयोग में नरम लोहे की छड़ के स्थान में फ़ौलाद की छड़ हो तो उसमें उपपादित ध्रुव इतने बलशाली नहीं बनेंगे। इससे मालूम होता है कि फ़ौलाद में चुम्बकित हो जाने का गुण या चुम्बकीय प्रवृत्ति कम होती है और नरम लोहे में अधिक। किन्तु उपपादक चुम्बक को हटा लेने पर आप देखेंगे कि फ़ौलाद में जो चुम्बकत्व पैदा हुआ था वह प्रायः ज्यों का त्यों बना रहेगा। बहुत ठोंकने पीटने से भी उसमें विशेष कमी न होगी। किन्तु नरम लोहे का चुम्बकत्व ऐसा करने से बहुत ही घट जायगा। इससे यह परिणाम निकलता है कि चुम्बकत्व को सुरक्षित रखने का गुण लोहे की अपेक्षा फ़ौलाद में अधिक है। लोहे में चुम्बकत्व उपपादित जल्दी होता है तो वह नष्ट भी जल्दी होता है। फ़ौलाद को चुम्बकित करना कठिन है किन्तु एक बार जो चुम्बकत्व उत्पन्न हो गया वह अधिक चिरस्थायी होता है। अतः चुम्बकत्व को ग्रहण करने का तथा उसको सुरक्षित रखने का ये दो परस्परविरोधी गुण हैं। पहिले को प्रवृत्ति और दूसरे को निग्रह कहते हैं। फ़ौलाद में प्रवृत्ति कम होती है किन्तु निग्रह अधिक होता है। जितना अधिक कड़ा फ़ौलाद होगा उतना ही निग्रह भी अधिक होगा। यही कारण है कि कृत्रिम चुम्बक सदा फ़ौलाद के बनाये जाते हैं। और फ़ौलाद भी क्रोमियम, टंगस्टन आदि मिला कर इतना कड़ा कर दिया जाता है कि काँच को हीरे की भाँति आसानी से काट सके।

२९०—उपपादन का सिद्धान्त। यदि हम यह मान लें कि लोहे का प्रत्येक अणु चुम्बक होता है और उसके भी एक उत्तर और एक दक्षिण
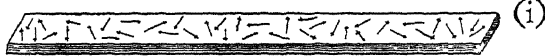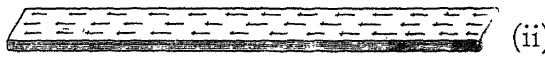
चित्र २२१

ध्रुव होता है तो उपपादन की क्रिया स्पष्ट हो जाती है। चुम्बक का एक

ध्रुव नज़दीक लाने से प्रत्येक अणु का विपरीत ध्रुव घूम कर चुम्बक की तरफ़ होने का प्रयत्न करता है। जब बहुत से अणु घूम जाते हैं और उन सबके उत्तर ध्रुव एक ओर हो जाते हैं तथा दक्षिण ध्रुव दूसरी ओर तब वह लोहा या फ़ौलाद चुम्बकित मालूम होने लगता है। अणुओं पर बल लगा कर घुमानेवाले चुम्बक को हटा लेने पर बहुत से अणु पुनः इधर-उधर घूम जाते हैं और लोहे का चुम्बकत्व बहुत कुछ घट जाता है। बहुत ठोकने पीटने से या गरम करके लाल कर देने से भी लोहे के अणु इधर-उधर घूम जाते हैं। इस कारण इन बातों से भी चुम्बकत्व नष्ट हो जाता है। नरम लोहे के अणु आसानी से इधर-उधर घूम सकते हैं इसी से उसमें प्रवृत्ति अधिक होती है और निग्रह कम। फ़ौलाद इतना कड़ा होता है कि उसके अणु बड़ी कठिनाई से घूमते हैं। इसलिए उसमें उपपादन कम होता है। किन्तु जो अणु एक बार घूम गये वे फिर जल्दी इधर-उधर भी नहीं होते। अतः उसमें निग्रह अधिक होता है। कृत्रिम चुम्बक बनाते समय फ़ौलाद को चुम्बक से कई बार रगड़ने का भी यही मतलब है कि उसके अणु अधिक संख्या में घूम जावें। चित्र २२१-i में चुम्बकत्वहीन लोहे के अणु दिखलाये गये हैं। चित्र २२१-ii में चुम्बकित हो जाने पर इन अणुओं की जो स्थिति हो जाती है वह दिखलाई गई है।

अब हम यह भी समझ सकते हैं कि चुम्बक का आकर्षणबल ध्रुवों पर ही क्यों होता है। बीच के किसी भी स्थान पर यदि एक अणु का उत्तर ध्रुव है तो उससे लगा हुआ ही दूसरे अणु का दक्षिण ध्रुव है और ये विपरीत ध्रुव एक दूसरे के बल का निराकरण कर देते हैं। किन्तु चुम्बक के सिरे पर इन अणुओं के केवल एक ही प्रकार के ध्रुव रहते हैं। अतः उनके बल का निराकरण नहीं होता।

एक बात और भी इस सिद्धान्त से स्पष्ट हो जाती है। हम उत्तर और दक्षिण ध्रुव को पृथक् नहीं कर सकते। यदि चुम्बक को बीच में से तोड़ डालें तो हम यह नहीं पा सकते कि उत्तर ध्रुव एक टुकड़े में रह गया और दक्षिण ध्रुव दूसरे में। प्रत्येक टुकड़े में दोनों ध्रुव विद्यमान होंगे। जितनी

बार तोड़-तोड़ कर चुम्बकके छोटे छोटे टुकड़े किये जावें उतनी ही बार नये नये ध्रुव भी प्रकट होते जावेंगे। जब प्रत्येक अणु में दोनों ध्रुव विद्यमान हैं तो उन्हें अलग कर ही कैसे सकते हैं ;
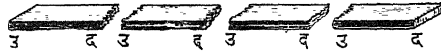
चित्र २२२

कृत्रिम चुम्बक बनाने की विधि बतलाते समय यह भी कहा गया था कि एक ही चुम्बक से जितने चाहें नये चुम्बक बनाये जा सकते हैं और तब भी उसका चुम्बकत्व घटता नहीं। उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार इसका कारण भी प्रकट ही है। चुम्बक लोहे या फ़ौलाद को चुम्बकत्व देता नहीं है। वह केवल उसके अणुओं को घुमा देता है। चुम्बकत्व इन अणुओं में पहिले ही से विद्यमान रहता है। अणुओं को घुमाने में शक्ति की आवश्यकता होती है किन्तु यह भी चुम्बक से लोहा रगड़ते समय जो मेहनत हम करते हैं उसी से प्राप्त होती है। चुम्बक में से यह शक्ति नहीं निकलती।

प्रश्न

(१) कृत्रिम चुम्बक बनाने की क्या विधि है ?

(२) दो लोहे की छड़ें हैं जिनमें एक तो चुम्बकित है और दूसरी नहीं। दिक्-सूचक की सहायता से और उसके बिना ही कैसे बताओगे कि उन में से अमुक चुम्बकित है ?

(३) निम्नलिखित ध्रुवों में आकर्षण अथवा प्रतिसारण बल का परिमाण बताओ:—

(१) उत्तर ध्रुव १० एकांक और उत्तर ध्रुव २० एकांक।
दोनों के बीच की दूरी ३ सम॰।

(२) उत्तर ध्रुव ५० एकांक और दक्षिण ध्रुव १० एकांक।
दोनों के बीच की दूरी ४ सम॰।

(४) दो उत्तर ध्रुव एक दूसरे को ३ डाइन के बल से प्रतिसारित करते हैं जब उनका फ़ासला २ सम॰ है। यदि उनका प्रतिसारण बल ४·५ डाइन हो तो उनका अन्तर बताओ।

(५) यह कैसे दिखला सकते हैं कि नरम लोहे में प्रवृत्ति अधिक होती है किन्तु निग्रह फ़ौलाद में अधिक होता है ?

(६) दो एक ही सी छड़ें हैं—एक नरम लोहे की और एक फ़ौलाद की। चुम्बक और दिक्-सूचक की सहायता से यह कैसे पता लगाओगे कि कौन सी फ़ौलाद की है ?

(७) चुम्बकत्व का अणु-सिद्धान्त क्या है ? चुम्बक के मध्य-भाग में आकर्षण शक्ति क्यों नहीं होती ?

(८) दक्षिण ध्रुव से पृथक् हम उत्तर ध्रुव क्यों नहीं पाते ?

(९) एक ही चुम्बक से विना उसका चुम्बकत्व कम किये ही अनेक नये चुम्बक कैसे बन जाते हैं ? इसमें जितनी शक्ति की आवश्यकता है वह कहाँ से आती है ?

(१०) चुम्बक बनाने के लिए किस प्रकार का लोहा अच्छा होता है ?

(११) कमजोर चुम्बक का एक ध्रुव प्रबल चुम्बक के उत्तरी ध्रुव से प्रतिसारित होता है। किन्तु अधिक निकट लाने पर उसी ध्रुव से वह आकर्षित हो जाता है। इसका क्या कारण है ?

(१२) ख़ूब गरम कर देने से या अधिक ठोकने पीटने से चुम्बक का चुम्बकत्व क्यों नष्ट हो जाता है ?

परिच्छेद ३०

चुम्बकीय क्षेत्र

२९१—चुम्बकीय क्षेत्र । जिस प्रकार हम यह नहीं कह सकते कि गुरुत्वाकर्षण दूर ही से वस्तुओं को किस प्रकार खींच लेता है उसी प्रकार हमें अभी तक यह भी मालूम नहीं कि एक चुम्बकीय ध्रुव दूसरे ध्रुव पर दूर ही से बल कैसे लगा देता है। गुरुत्व के समान ही चुम्बकत्व का रहस्य भी अभी तक मनुष्य को ठीक ठीक ज्ञात नहीं हुआ है। किन्तु यह
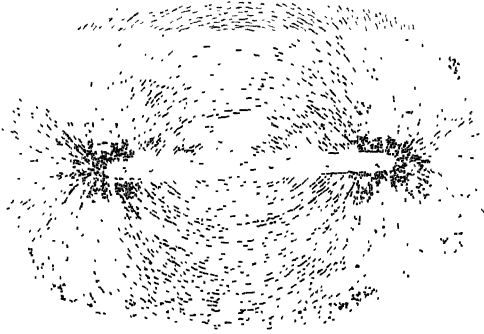
चित्र २२३

हम जानते हैं कि दोनों ध्रुवों के बीच में वायु के स्थान में लकड़ी, पारा, जस्ता, जल इत्यादि कोई भी पदार्थ हो उनके आकर्षण या प्रतिसारण बल में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। और यदि सब पदार्थों को हटा कर उनके बीच में सर्वथा शून्य आकाश के अतिरिक्त और कुछ भी न रखा जाय तब भी यह बल ज्यों का त्यों रहता है। हाँ लोहा आदि चुम्बकीय पदार्थ बीच में रखने से अवश्य ही बल में अन्तर हो जाता है क्योंकि इसमें भी उपपादन के द्वारा स्वतंत्र ध्रुव उत्पन्न हो जाते हैं। इन बातों से मालूम

होता है कि चुम्बकीय बल जड़ पदार्थों के द्वारा कार्य नहीं करता और न उनके अस्तित्व से उस पर कोई असर पड़ता है।

किन्तु यद्यपि चुम्बकीय बल को एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक पहुँचानेवाला कोई भी पदार्थ हमें दिखलाई नहीं देता तथापि इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ध्रुवों के बीच के आकाश में कुछ न कुछ विलक्षणता अवश्य है। चुम्बकीय ध्रुव से बहुत दूर के आकाश में और चुम्बक के निकटवर्त्ती आकाश में अवश्य ही कुछ न कुछ भेद है। इस भेद को हम दो प्रकार से दिखला सकते हैं।

(१) मेज़ पर एक सीधा चुम्बक रख दीजिए। प्रायः १०-१२ इंच लम्बा चौड़ा काँच का प्लेट उस पर रख दीजिए और इस काँच पर लोहे का बुरादा बुरका दीजिए। कांच पर उँगली से कई बार हलकी हलकी चोट मारिए। आप देखेंगे कि बुरादा चित्र २२३ के समान सुन्दर आकृति बना लेगा। यदि कांच के नीचे नाल-चुम्बक रखा हो तो बुरादे की आकृति चित्र २२४ के समान होगी। किन्तु यदि बुरादे के समीप कोई चुम्बक न हो तो बुरादे के कण यों ही पड़े रहेंगे। उनसे कोई विशेष आकृति न बनेगी।

चित्र २२४

(२) एक छोटा सा दिक्सूचक चुम्बक के ध्रुव के निकट रखिए। वह बड़ी शीघ्रता से इधर से उधर आवर्त्तन करेगा और ज्यों ज्यों हम उसे चुम्बक से दूर हटाते जावेंगे त्यों त्यों उसका आवृत्ति-काल भी बढ़ता जायगा। जब दिक्-सूचक के आवर्त्तन रुक जावेंगे तो वह जिस दिशा में रुकेगा वह भी चुम्बक के निकट भिन्न भिन्न बिन्दुओं पर भिन्न भिन्न होगी। आलेख्य-पट्ट पर कागज़ बिछा कर उस पर चुम्बक
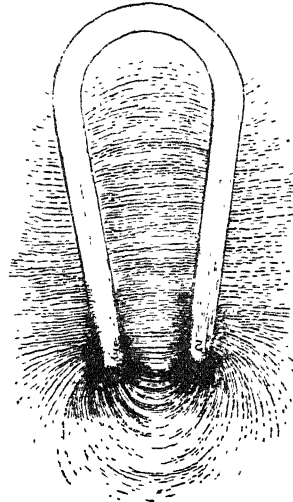
रख दीजिए और तब इस दिक्-सूचक को उसी कागज़ पर चुम्बक के निकट रख कर पेंसिल से उसके दोनों सिरों के स्थान पर निशान क ख लगा दीजिए। अब दिक्-सूचक को हटा कर इस प्रकार
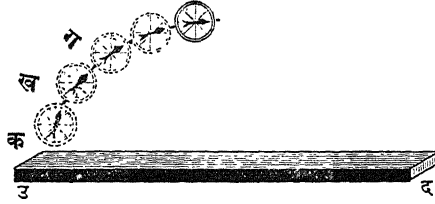
चित्र २२५

रखिए कि उसका एक सिरा ख पर हो और दूसरे सिरे का निशान ग लगा दीजिए। इसी प्रकार क्रमशः दिक्-सूचक को हटा हटा कर निशान लगाते चलिए। इन बिन्दुओं के द्वारा चित्र २२६ के समान ही वक्र बन जावेंगे। चुम्बक को हटा कर इसी प्रकार करने से उत्तर-दक्षिण दिशा में केवल सीधी रेखायें ही बनेंगी।
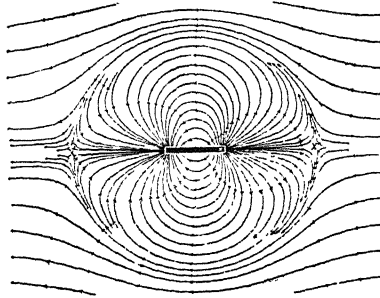
चित्र २२६

जिस आकाश में चुम्बकीय बल कार्य करे उसकी इस विलक्षणता को बतलाने के लिए उसे हम **"चुम्बकीय क्षेत्र"** कहते हैं।

२९२—बलरेखायें। चित्र २२६ में जो वक्र बने हैं उन्हें **चुम्बकीय बलरेखायें** कहते हैं। इन वक्रों के निर्माण की विधि से ही प्रकट है कि प्रत्येक स्थान पर यह उस दिशा को सूचित करते हैं जिसमें दिक्सूचक ठहरती है। यह दिशा वही होगी जिसमें चुम्बक के दोनों ध्रुवों का सम्मिलित बल कार्य करेगा। अतः हम कह सकते हैं कि बलरेखा चुम्बकीय बल की दिशा को सूचित करती है। चित्र २२३ में लोहे के बुरादे से जो वक्र बने हैं वे भी बलरेखायें ही हैं क्योंकि उनमें भी बुरादे का प्रत्येक कण उपपादन के कारण चुम्बकित होकर एक छोटी दिक्-सूचक ही बन गया है।

मान लीजिए कि चित्र २२७ में प पर एक उत्तर ध्रुव रखा है और उ द एक चुम्बक है। अब उस उत्तर ध्रुव पर उ का बल प फ होगा और द का प ब तथा उत्क्रम वर्ग के नियम के अनुसार

$$\frac{\text{पफ}}{\text{पब}} = \frac{\text{दप}^2}{\text{उप}^2}$$

समानान्तर चतुर्भुज पफबभ को पूर्ण कर लीजिए। तब प्रकट ही है कि पभ सम्मिलित बल होगा। दिशासूची इसी दिशा में ठहरेगी। यही प पर बल-रेखा की दिशा है। यदि प पर स्थित उत्तर-ध्रुव वहाँ से हटने के लिए स्वतंत्र हो तो वह पभ की दिशा ही में गमन करेगा। दक्षिण-ध्रुव ठीक इससे उल्टी दिशा में गमन करेगा। अतः हम बलरेखा को ध्रुव के गमन का मार्ग भी समझ सकते हैं। जिस दिशा में उत्तर ध्रुव गमन करे वही बलरेखा की धन-दिशा कहलाती है। ये रेखाएँ चुम्बक के उत्तर ध्रुव में से निकलती हैं और दक्षिण-ध्रुव में प्रवेश करती हैं।
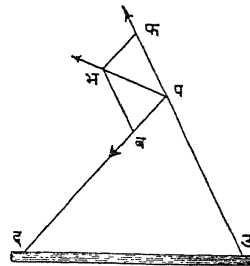
चित्र २२७

यदि हम यह मान लें कि ये बलरेखायें तने हुए रबड़ के पतले धागों के समान हैं और उनमें यह गुण है कि वे अपनी लम्बाई को जितनी हो सके घटाने का प्रयत्न करती हैं तो असमान चुम्बकीय ध्रुवों के आकर्षण का कार्य कुछ कुछ समझ में आ सकता है। और साथ ही साथ यदि यह भी मान लिया जाय कि प्रत्येक रेखा अपने पार्श्ववर्त्ती रेखा को दूर हटाने का भी प्रयत्न करती है तब तो प्रतिसारण का भी कुछ रहस्य खुल जाता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह केवल हमारे मस्तिष्क को समझने में सहायता देने के लिए उपाय-मात्र हैं। इस उपमा का यह अर्थ नहीं है कि सचमुच ही बलरेखायें किसी स्थितिस्थापक पदार्थ की बनी हुई हैं।

२९३—चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता। चुम्बकीय क्षेत्र में किसी स्थान पर यदि एकांक ध्रुव रख दिया जाय तो उस पर जो चुम्बकीय बल लगता है उसे क्षेत्र की तीव्रता कहते हैं। इससे यह भी स्पष्ट ही है कि यदि किसी स्थान पर क्षेत्र की तीव्रता च हो और वहाँ कोई ध्रुव रख दिया जाय जिसकी प्रबलता ध हो तो उस पर जो चुम्बकीय बल लगेगा वह च $\times$ ध होगा।

ऊपर हम देख चुके हैं कि बलरेखा चुम्बकीय बल की दिशा को तो अवश्य सूचित करती है किन्तु उससे यह नहीं मालूम हो सकता कि उस बल का परिमाण कितना है। किन्तु चित्र २२३ को देखने से तुरन्त यह ज्ञात हो जायगा कि ध्रुवों के निकट बलरेखाओं की अधिक भीड़ हो जाती है। वे बहुत पास पास आ जाती हैं। और यहीं चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता भी अधिक होती है। अतः बलरेखाओं की भीड़ से भी हमें क्षेत्र की तीव्रता का ज्ञान होता है। बहुधा तीव्रता को अंकित करने के लिए इसी उपाय का अवलम्बन किया जाता है।

२९४—पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र। जब कोई भी चुम्बक दिक्-सूचक के निकट नहीं होता तब भी हम उसे चाहे जिस दिशा में नहीं ठहरा सकते। वह सदा उत्तर-दक्षिण दिशा में ही ठहरता है। इससे यह मालूम होता है कि पृथ्वी पर सर्वत्र ही चुम्बकीय क्षेत्र विद्यमान

है। यह क्षेत्र किसी ऐसे चुम्बक या चुम्बक-समूह के कारण नहीं है जिसे हम प्रत्यक्ष देख सकें। स्वयं पृथ्वी ही में एक बड़े विशाल चुम्बक के गुण विद्यमान हैं। यद्यपि इसका कारण अभी तक ठीक ठीक ज्ञात नहीं है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र बिलकुल ऐसा है मानों पृथ्वी के पेट में एक बड़ा चुम्बक वास्तव में विद्यमान हो। इस भू-चुम्बक का दक्षिण-ध्रुव भौगोलिक उत्तर-ध्रुव के समीप ही कहीं स्थित है और उत्तर-ध्रुव भौगोलिक दक्षिण-ध्रुव के समीप है। किन्तु ये चुम्बकीय ध्रुव ठीक भौगोलिक ध्रुवों पर स्थित नहीं हैं। दिक्-सूचक इस चुम्बक की बलरेखा की दिशा में ही रह सकता है। वह अन्य दिशा में नहीं ठहर सकता। यह दिशा याम्योत्तर से भिन्न होती है और इस कारण दिक्-सूचक का उत्तर ध्रुव कहीं याम्योत्तर वृत्त से कुछ पश्चिम की ओर तथा कहीं कुछ पूर्व की ओर रहता है। दिक्-सूचक की दिशा और याम्योत्तर वृत्त के बीच के कोण को चुम्बकीय दिक्-पात कहते हैं। यह दिक्-पात भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न परिमाण का होता है और प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा बदलता भी रहता है। जहाज़ों के लाभ के लिए ऐसे नक़शे तैयार कर लिये गये हैं कि जिनसे किसी भी स्थान का दिक्-पात तुरन्त ही मालूम हो जाता है।

चित्र २२८

इस भू-चुम्बक की रेखाओं पर विचार करने से यह भी मालूम हो जायगा कि स्वतंत्रता से लटकती हुई चुम्बकीय सूची पृथ्वी पर सर्वत्र क्षैतिज भी नहीं रह सकती। चित्र २२८ में उ द′ प उ′ द एक बलरेखा है। प पर कोई भी चुम्बक उ′ द′
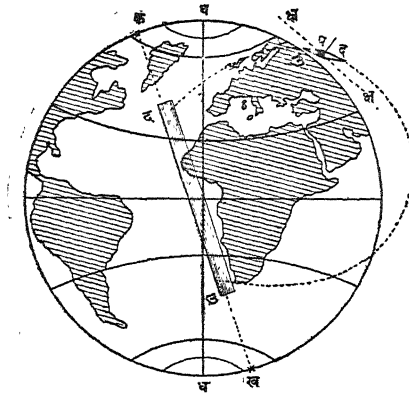
दिशा में ठहरेगा। प पर क्षितिज की दिशा बिन्दुमय रेखा के द्वारा दिखलाई गई है। चुम्बक का उत्तर-ध्रुव उ′ क्षितिज तल से कुछ नीचे झुका है। चुम्बक तथा क्षितिज तल के बीच के कोण को चुम्बकीय अवपात कहते हैं। भूमध्यरेखा पर यह अवपात ०° का होता है। किन्तु पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुवों पर यह ९०° का होता है। चित्र २२८ में क और ख पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव हैं। भौगोलिक उत्तर-ध्रुव क के समीप है और दक्षिण-ध्रुव ख के समीप।

अवपात को नापने के लिए चुम्बकीय सुई को इस प्रकार लटकाना पड़ता है कि वह उस ऊर्ध्वाधर तल में घूम सके जिसमें पृथ्वी के दोनों चुम्बकीय ध्रुव भी स्थित हों। चित्र २२९ में अवपातमापक दिखलाया गया है।
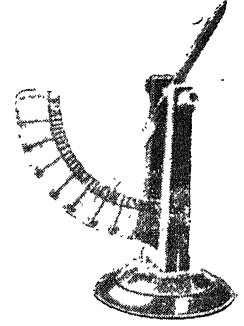
चित्र २२९

२९५—पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता। दिक्पात और अवपात जान कर हम किसी भी स्थान पर पृथ्वी की चुम्बकीय बलरेखा की दिशा को जान सकते हैं। यदि वहाँ क्षेत्र की तीव्रता च हो तो उसे हम ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज दिशाओं में वियोजित कर सकते हैं। चित्र २३० में खपक अवपात कोण है।

चित्र २३०

पख = च का क्षैतिज अवयव = क्ष

पग = च का ऊर्ध्वाधर अवयव = ऊ

तथा $च^2 = क्ष^2 + ऊ^2$
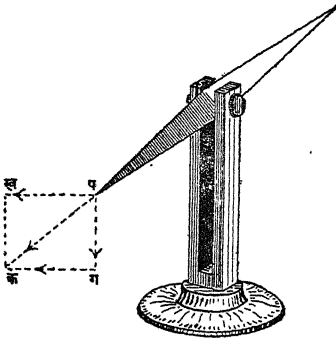
वैज्ञानिक नाप-तौल में बहुधा ऐसे चुम्बक भी काम में लाये जाते हैं जो क्षैतिज तल में ही घूम सकें। अतः उन पर ऊर्ध्वाधर अवयव ऊ का कोई

असर नहीं होता। केवल क्षैतिज अवयव ज्ञ ही काम करता है। इसलिए इसका मूल्य ठीक ठीक जानना अत्यन्त आवश्यक है। काशी में ज्ञ का मूल्य ·३६ है।

प्रश्न

(१) किसी स्थान पर चुम्बकीय बल मालूम करने की प्रायोगिक विधि क्या है ?

(२) चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता का क्या अर्थ है ? यदि किसी क्षेत्र की तीव्रता ५ एकांक हो तो २० एकांकवाले उत्तर-ध्रुव पर कितना बल लगेगा ?

(३) यदि किसी चुम्बकीय सुई को उसके गुरुत्व-केन्द्र से लटका दें और उसके निकट किसी भी प्रकार का चुम्बकीय पदार्थ न हो तो वह किस दिशा में ठहरेगी और क्यों ?

(४) तीसरे प्रश्न की चुम्बकीय सुई पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव पर तथा चुम्बकीय निरक्ष पर कैसे ठहरेगी ?

(५) यदि किसी स्थान पर पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता का क्षैतिज अवयव ·३६ हो और अवपात ५०° हो तो ऊर्ध्वाधर अवयव कितना है और सम्पूर्ण तीव्रता का मान कितना है ?

(६) यदि कोई चुम्बकीय सुई इस प्रकार लटकाई गई हो कि वह ऊर्ध्वाधर समतल में घूम सके तो बताओ कि यदि यह समतल चुम्बकीय याम्योत्तर से समकोण बनाता हो तो सुई किस प्रकार ठहरेगी ?

परिच्छेद ३१

विद्युत्

२९६—विद्युत् की उत्पत्ति । यह बहुत पुराने ज़माने से लोगों को मालूम है कि अम्बर, रुद्राक्ष आदि कुछ पदार्थ ऐसे हैं कि जिनमें रेशम या ऊन से रगड़ने पर हलकी हलकी वस्तुओं को आकर्षित करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है । छोटे छोटे तिनके, काग़ज़ के टुकड़े इत्यादि इनसे ठीक उसी भाँति चिपक जाते हैं जैसे कि चुम्बक से लोहे का बुरादा चिपक जाता है । काँच की छड़ या नली को रेशम से रगड़ने पर भी यही गुण पैदा हो जाता है । एबोनाइट, वलकैनाइट, गट्टापारचा, लाख इत्यादि अनेक पदार्थ भी इसी प्रकार ऊन से रगड़ने पर इस गुण को प्राप्त कर लेते हैं । जब किसी वस्तु में ऐसी हलकी चीज़ों को आकर्षित करने का गुण उत्पन्न हो जाता है तब वह विद्युन्मय अथवा विद्युत् से आविष्ट कहलाती है और यह समझा जाता है कि विद्युत् बिजली या इलैक्ट्रिसिटी नामक किसी वस्तु का आवेश उसमें हो गया है ।

जिस प्रकार विद्युन्मय वस्तु विद्युत्-रहित वस्तु को आकर्षित करती है उसी प्रकार वह विद्युन्मय वस्तु को भी आकर्षित कर सकती है ।

२९७—आकर्षण और प्रतिसारण । एक काँच की छड़ को रेशम से रगड़ कर विद्युन्मय कर लीजिए और रेशम के डोरे से बाँध कर चित्र २३१ की भाँति लटका दीजिए । अब एक लाख या एबोनाइट की छड़ को ऊन से रगड़ कर विद्युन्मय करके इस लटकती हुई काँच की छड़

के पास लाइए। यह तुरन्त उसे अपनी ओर खींच लेगी। अर्थात् इन छड़ों में आकर्षण होगा। किन्तु यदि एक दूसरी काँच की छड़ का विद्युन्मय सिरा इसके निकट लावें तो आप देखेंगे कि लटकती हुई छड़ दूर हटने का प्रयत्न करेगी। दोनों छड़ों में आकर्षण के स्थान में प्रतिसारण होगा। इसी प्रकार यदि लाख की छड़ को विद्युन्मय करके लटका दें तो आप देखेंगे कि काँच की विद्युन्मय छड़ उसे आकर्षित कर लेगी किन्तु लाख की छड़ प्रतिसारित करेगी। ये आकर्षण और प्रतिसारण ठीक उसी तरह के मालूम होते हैं जैसे कि चुम्बकीय ध्रुव के होते हैं। जैसे दो समान ध्रुवों में परस्पर प्रतिसारण होता है और विपरीत ध्रुवों में आकर्षण, ठीक वैसे ही दो एक ही प्रकार की छड़ों में परस्पर प्रतिसारण होता है तथा भिन्न प्रकार की छड़ों में आकर्षण। इससे ज्ञात होता है कि उत्तर और दक्षिण ध्रुव के समान ही विद्युत् भी दो प्रकार की होती हैं। रेशम से रगड़ने पर कांच में जो विद्युत् उत्पन्न होती है उसे धन-विद्युत् कहते हैं, और ऊन के द्वारा लाख में जो विद्युत् पैदा होती है उसे ऋण-विद्युत् कहते हैं। समान विद्युत् परस्पर प्रतिसारण करती हैं और असमान विद्युत् आकर्षण करती हैं।
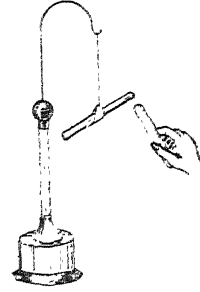
चित्र २३१

२९८—विद्युद्दर्शक। यद्यपि उपर्युक्त रीति से कांच की छड़ को रेशम के डोरे से लटका कर हम विद्युत् की परीक्षा कर सकते हैं किन्तु उक्त छड़ में इतना भार होता है कि जब तक काफ़ी बल न लगे तब तक वह घूम नहीं सकती। इसलिए जब कम परिमाण की विद्युत् की परीक्षा करनी होती है तब दूसरा ही उपाय किया जाता है। सूखे सरकंडे का गूदा निकाल कर एक गोली बनाई जाती है और उस पर चाँदी, सोने या टिन का पतला वरक़ चिपका दिया जाता है। रेशम के पतले डोरे से यह सरकंडे की गोली लटका दी जाती है। जब कोई विद्युन्मय काँच की छड़ इसके समीप लाई जाती है तो यह हलकी होने के कारण तुरन्त उससे जा चिपकती है।

किन्तु कुछ ही देर में वह छड़ से दूर हट जाती है। अब यदि आप काँच की छड़ को उससे छुआने की कोशिश भी करें तो न छुआ सकेंगे क्योंकि ज्यों ज्यों छड़ निकट आयेगी त्यों त्यों वह गोली भी उससे अधिक दूर भागती जायगी। बात यह है कि अब गोली भी विद्युन्मय हो गई है और काँच ही की सी धन-विद्युत् का आवेश उसमें आ गया है। ऋण-विद्युत्-युक्त कोई वस्तु इसके निकट लाने से यह तुरन्त आकर्षित हो जायगी। यदि इस गोली को विद्युन्मय लाख की छड़ से छू देते तो उसमें ऋण-विद्युत् आ जाती और वह धन-विद्युत्-युक्त वस्तुओं से आकर्षित हो जाती तथा ऋण-विद्युत्-युक्त वस्तुओं से प्रतिसारित। इस उपकरण का नाम विद्युद्दर्शक है।
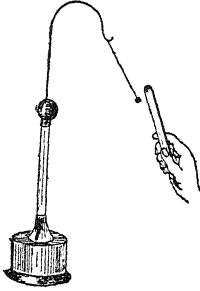
चित्र २३२

२९९—चालक तथा अचालक। काँच, लाख, या एबोनाइट के समान हम धातु की छड़ को विद्युन्मय नहीं कर सकते। चाहे किसी भी पदार्थ से उसे कितना ही रगड़ें किन्तु उसमें विद्युत् के कोई भी लक्षण नज़र नहीं आते। न वह काग़ज़ के टुकड़ों को आकर्षित करती है और न विद्युन्मय सरकंडे की गोली को प्रतिसारित। इसका कारण यह नहीं है कि धातुओं में विद्युत् का आवेश ही नहीं हो सकता। यदि धातु की छड़ के काँच या एबोनाइट का दस्ता लगा दें तो धातु में भी विद्युत् के आवेश के लक्षण स्पष्ट मालूम होने लगते हैं। इससे जान पड़ता है कि धातु को हाथ से स्पर्श करने से उसकी सब विद्युत् निकल भागती है। किन्तु काँच का दस्ता उसका मार्ग रोक लेता है। काँच में होकर विद्युत् नहीं चल सकती। लाख, एबोनाइट, रेशम, गंधक, चीनी मिट्टी आदि में भी यही गुण है और इसी के कारण इन पदार्थों पर जो कुछ बिजली पैदा होती है वह जहाँ की तहाँ बनी रहती है। ऐसे पदार्थों को अचालक कहते हैं। धातुओं में बिजली बड़ी आसानी से इधर से उधर आ जा सकती है अतः उन्हें चालक कहते

हैं। जल और मनुष्य का शरीर भी चालक हैं। यही कारण है कि यदि कांच की छड़ के आविष्ट पृष्ठ को हम सर्वत्र हाथ से छू दें तो उसकी समस्त विद्युत् नष्ट हो जाती है। वह हमारे शरीर में होकर पृथ्वी में चली जाती है। यदि कांच की छड़ पर कुछ धूल जमी हो अथवा आर्द्र वायु में रखी होने से उस पर कुछ जल-कण लग गये हों तब वह भी धातु की छड़ के समान ही विद्युन्मय होने में असमर्थ हो जाती है।

किन्तु सब वस्तुओं की चालकता अथवा अचालकता एक ही प्रकार की नहीं होती। किसी किसी वस्तु में चालकता का गुण बहुत अधिक मात्रा में होता है उसे हम सुचालक कह सकते हैं। कई वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि जिनमें होकर बिजली चल तो सकती है किन्तु बड़ी कठिनाई से। इन्हें कुचालक कहते हैं। सूत, काग़ज़, लकड़ी आदि कुचालक पदार्थ हैं।

जब किसी आविष्ट वस्तु की बिजली को सुरक्षित रखना होता है तब अचालक पदार्थों की सहायता लेनी पड़ती है। इसी से धातु की छड़ के काँच का दस्ता लगाया गया था। सरकंडे की गोली को भी रेशम के डोरे से इसी वास्ते लटकाया था। अचालक पदार्थ विद्युन्मय वस्तु को अन्य चालक पदार्थों से पृथक् रखते हैं। अतः उन्हें पृथग्-न्यासक भी कहते हैं।

३००—दोनों प्रकार के वैद्युत आवेश की एक ही साथ उत्पत्ति। यद्यपि चुम्बकीय ध्रुवों के समान ही विद्युत् भी दो प्रकार की होती हैं और उनके समान ही आकर्षण तथा प्रतिसारण के नियम भी ये दोनों प्रकार की विद्युत् पालन करती हैं तथापि यह न समझना चाहिए कि चुम्बक ही के समान विद्युन्मय छड़ों में भी एक सिरे पर धन-विद्युत् और दूसरे पर ऋण-विद्युत् होती है। काँच या लाख की छड़ का केवल वही भाग विद्युन्मय होता है जो रगड़ा गया हो और उस भाग पर भी सर्वत्र एक ही प्रकार का आवेश रहता है। इस बात की जाँच सरकंडे की गोली-वाले विद्युद्दर्शक से आसानी से हो सकती है।

किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जब एक प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होती है तब साथ ही साथ दूसरे प्रकार की भी अवश्य ही उत्पन्न होती है। जिस

प्रकार चुम्बकीय ध्रुव केवल एक प्रकार का उत्पन्न नहीं हो सकता ठीक उसी प्रकार विद्युत् भी केवल एक प्रकार की उत्पन्न नहीं हो सकती। दोनों प्रकार की विद्युत् सदैव एक ही साथ तथा समान परिमाण में ही उत्पन्न होती हैं। भेद केवल यह है कि चुम्बक में दोनों ध्रुव एक ही लोहदंड पर रहते हैं। किन्तु विद्युत् के लिए यह आवश्यक नहीं कि दोनों एक ही वस्तु में रहें। वे भिन्न भिन्न वस्तु में भी रह सकती हैं। जब काँच की छड़ को रेशम से रगड़ते हैं तब काँच पर धन-विद्युत् का आवेश होता है किन्तु साथ ही साथ रेशम पर ऋण-विद्युत् का आवेश भी उतने ही परिमाण में पैदा होता है। रेशम की यह विद्युत् साधारणतया हमारे हाथ के स्पर्श के कारण पृथ्वी में चली जाती है। इससे हमें उसके अस्तित्व का पता नहीं चलता। किन्तु यदि रेशम को किसी पृथग्न्यासक पदार्थ के द्वारा पकड़ कर तब उससे काँच को रगड़ें तो आसानी से रेशम के ऋण-आवेश का पता लग जायगा।

काँच के प्लेट के एक टुकड़े के काँच की छड़ का दस्ता लगा दीजिए। इसी प्रकार कार्डबोर्ड पर रेशम की गद्दी चिपका कर उसके भी काँच का दस्ता लगा दीजिए। इन दस्तों से पकड़ कर रेशम और काँच को रगड़िए। धन-विद्युन्मय सरकंडे की गोलीवाले विद्युद्दर्शक के द्वारा परीक्षा करिए। काँच पर धन-आवेश मिलेगा और रेशम पर ऋण-आवेश। यदि दोनों को
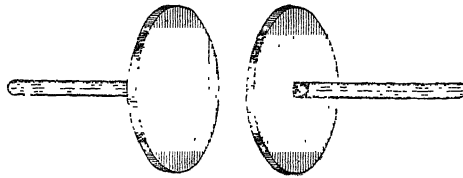
चित्र २३३

परस्पर मिला कर एक ही साथ गोली के पास लावेंगे तो वह न आकर्षित होगी और न प्रतिसारित। इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि काँच की धन-विद्युत् का परिमाण भी ठीक रेशम की ऋण-विद्युत् के बराबर है क्योंकि

तब ही तो धन-विद्युत् का प्रतिसारण ऋण-विद्युत् के आकर्षण के बराबर हो गया, और विद्युद्दर्शक की गोली ज्यों की त्यों रही।

३०१—विद्युत् की उत्पत्ति का सिद्धान्त। विद्युत् की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार के सिद्धान्त बनाये गये थे। यह तो बहुत प्राचीन समय से ही ज्ञात हो गया था कि विद्युत् साधारण भारयुक्त पदार्थों के समान कोई जड़ वस्तु नहीं है क्योंकि आविष्ट वस्तु का भार विद्युत्-रहित वस्तु की अपेक्षा तनिक भी अधिक नहीं होता। इसलिए ताप ही के समान विद्युत् को भी विद्वानों ने एक प्रकार का भारहीन तरल समझा था। उस समय यह भी मत था कि विद्युत-तरल वास्तव में दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक वस्तु में दोनों तरल समान मात्रा में भरे रहते हैं किन्तु दो भिन्न वस्तुओं के परस्पर स्पर्श करने पर इन तरलों का इधर से उधर प्रवाह होता है। अतः एक वस्तु में धन-विद्युत्-तरल अधिक हो जाता है और दूसरी में ऋण-विद्युत्-तरल। किन्तु अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् बैंजमिन फ्रैंकलिन ने सन् १७५० ई० के लगभग यह मत प्रकाशित किया कि विद्युत् वास्तव में दो प्रकार की नहीं होती। विद्युत् का तरल केवल एक ही प्रकार का है। जिस वस्तु में इसकी अधिकता हो जाती है उसे हम धन-विद्युन्मय कहते हैं और जिसमें इसकी कमी हो जाती है उसे ऋण-विद्युन्मय। धन-विद्युत् और ऋण-विद्युत् नाम फ्रैंकलिन ही के चलाये हुए हैं।

प्रायः १९ वीं शताब्दी के अन्त तक इस मत में कुछ अधिक हेर-फेर नहीं हुआ। यद्यपि लोगों का विश्वास विद्युत् नामक किसी तरल के अस्तित्व से उठता जाता था किन्तु इसका वास्तविक रहस्य किसी की समझ में न आ सका। अन्त में सन् १८९७ ई० में इँगलेंड के सर जे० जे० टामसन ने इस रहस्य के उद्घाटन में सफलता प्राप्त की। इन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि ऋण-विद्युत् के भी अत्यन्त सूक्ष्म कण होते हैं। इन कणों का नाम सब देशों के विद्वानों ने मिलकर इलैक्ट्रन रख दिया है। विस्तार तथा भार में ये हाइड्रोजन के परमाणु से भी बहुत छोटे होते हैं। इनका व्यास हाइड्रोजन के परमाणु से प्रायः २५,००० गुणा कम होता है और भार भी प्रायः २,००० गुणा कम।

इस आविष्कार के साथ साथ यह भी प्रमाणित हो गया कि रसायन-वेत्ता जिस परमाणु को अब तक अभेद्य समझते थे वह भी वास्तव में इन इलैक्ट्रनों का ही बना होता है। भिन्न-भिन्न तत्त्वों के परमाणुओं में इन इलैक्ट्रनों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है और उनमें से कुछ इलैक्ट्रन पृथक् भी किये जा सकते हैं। जब किसी परमाणु में से एक या अधिक इलैक्ट्रन निकल जाते हैं तब वह धन-विद्युन्मय हो जाता है। और यदि किसी परमाणु में अधिक इलैक्ट्रन जा चिपकते हैं तब वह ऋण-विद्युन्मय हो जाता है; इस दृष्टि से किसी वस्तु में इलैक्ट्रनों की अधिकता हो जाने से वह ऋण-विद्युन्मय होती है और इनकी कमी होने पर धन-विद्युन्मय। फ्रैंकलिन के एक-तरल-सिद्धान्त में और इस इलैक्ट्रन-सिद्धान्त में बहुत समानता है। यदि फ्रैंकलिन अपने तरल की अधिकता को धन-विद्युत् का कारण न मान कर ऋण-विद्युत् का कारण मानता तो इन सिद्धान्तों में प्रायः कुछ भी अन्तर न रहता।

३०२—परमाणु की बनावट। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि आज भी हम धन-विद्युत् का पृथक् अस्तित्व नहीं मानते। और उसे केवल इलैक्ट्रनों की कमी ही का नाम समझते हैं। पिछले २० वर्षों में धन-विद्युत् के कण का भी पता चल गया है। इसका नाम प्रोटन रखा गया है। विस्तार में यह इलैक्ट्रनों से भी छोटा प्रमाणित हुआ है, किन्तु भार इसका हाइड्रोजन के परमाणु के बराबर होता है। यह भारी होने के कारण इलैक्ट्रनों की भाँति जल्दी से इधर-उधर आ जा नहीं सकता। अतः अब भी हमें विद्युत् की उत्पत्ति केवल इलैक्ट्रनों ही के इधर-उधर जाने के कारण मानना पड़ता है। वास्तव में परमाणु केवल प्रोटनों और इलैक्ट्रनों ही के द्वारा बने हुए हैं। भिन्न-भिन्न तत्त्वों के परमाणुओं में इन दोनों प्रकार की विद्युत् के कणों की संख्या ही का अन्तर है। इस दृष्टि से जिसे हम द्रव्य या जड़ पदार्थ कहते हैं वह वास्तव में इन दो प्रकार की विद्युत् का समुदाय-मात्र है। वह इनसे भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है। और द्रव्य के परमाणु ठोस नहीं हैं। जिस प्रकार सौर जगत् में सूर्य के चारों ओर अनेक ग्रह

परिक्रमा करते रहते हैं सम्भवतः उसी प्रकार परमाणु में भी धन-विद्युन्मय केन्द्र के चारों ओर अनेक इलैक्ट्रन परिक्रमा करते हैं। इस केन्द्र का संगठन अभी तक ठीक ठीक ज्ञात नहीं हुआ है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह भी प्रोटनों और इलैक्ट्रनों का ही समुदाय है। और जिस प्रकार यद्यपि सौर जगत् का विस्तार सूर्य से चारों ओर करोड़ों
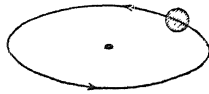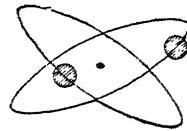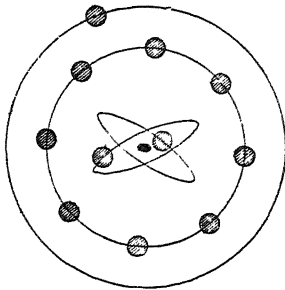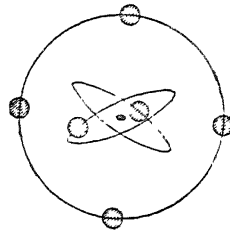
चित्र २३४

मील दूर तक है किन्तु उसका अधिक भाग केवल शून्य आकाश ही है उसी प्रकार परमाणु में भो अधिकतर भाग शून्य आकाश ही का है। इलैक्ट्रनों और प्रोटनों के द्वारा तो बहुत ही थोड़ा स्थान रुका हुआ है। हाइड्रोजन हीलियम कार्बन और सोडियम के परमाणुओं की रचना सम्भवतः चित्र २३४ के समान है।

३०३—विद्युत्-धारा । प्रत्येक परमाणु के इलैक्ट्रन केन्द्र के आकर्षण के द्वारा बँधे रहते हैं। इसलिए वे परमाणु को छोड़कर आसानी से इधर-उधर नहीं जा सकते। किन्तु रगड़ के कारण, आपस की टक्करों के कारण, किसी विद्युन्मय वस्तु के आकर्षण अथवा प्रतिसारण के कारण अथवा अन्य किसी कारण से पृथक् होकर बहुत से इलैक्ट्रन ठोस से ठोस पदार्थ में भी गैस के अणुओं की भाँति इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। जिस पदार्थ में इनकी संख्या अधिक होती है वही अच्छा चालक होता है और जिसमें कम, वही कुचालक। अचालक पदार्थों में स्वतंत्र इलैक्ट्रन प्रायः होते ही नहीं। जहाँ थोड़ा भी विद्युत्-बल इन पर लगा कि इनका झुंड उस बल की दिशा में गमन करने लगता है। इस गति को ही विद्युत्-धारा कहते हैं। इन्हें हम मक्खियों की उपमा दे सकते हैं। जिस प्रकार सहस्रों मक्खियों का झुंड कभी कभी उड़ता नज़र आता है और उसमें प्रत्येक मक्खी स्वतंत्रतापूर्वक जिस दिशा में चाहे उड़ती है किन्तु झुंड को छोड़कर बाहर नहीं जाती उसी प्रकार चालक पदार्थ की सीमा के अन्दर इलैक्ट्रन भी जिस दिशा में चाहें दौड़ते रहते हैं। और जिस प्रकार हवा का झोंका इन सब मक्खियों को एक ही साथ किसी दिशाविशेष में उड़ा ले जाता है ठीक उसी प्रकार से विद्युत्-बल भी इलैक्ट्रनों के झुंड को किसी दिशा-विशेष में चला देता है। ये इलैक्ट्रन प्रायः ११×१०^{६} सम० या ७० मील प्रतिसैकंड के वेग से दौड़ते रहते हैं।

३०४—उपपादन । अब यह समझ में आना कठिन नहीं कि यदि किसी चालक पदार्थ की बनी हुई पृथग्न्यस्त वस्तु के समीप कोई धन-विद्युत् से आविष्ट वस्तु लाई जाय तो चालक वस्तु के स्वतंत्र इलैक्ट्रनों को यह तुरन्त अपनी ओर आकर्षित कर लेगी। इसका परिणाम यह होगा कि उक्त चालक वस्तु का आविष्ट वस्तु के निकटवाला भाग ऋण-विद्युन्मय हो जायगा और दूरवाला भाग धन-विद्युन्मय। जिस प्रकार लोहे के निकट चुम्बकीय ध्रुव लाने से लोहे का एक सिरा उत्तर ध्रुव और दूसरा दक्षिण ध्रुव बन जाता है

ठीक वैसे ही यहाँ भी चालक के दो सिरों पर दो प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होती है। इसलिए इस क्रिया को भी उपपादन कहते हैं। आविष्ट छड़ को हटाते ही ये उपपादित विद्युत् पुनः लुप्त हो जाती हैं क्योंकि तुरन्त ही इलैक्ट्रन पुनः पूर्ववत् सर्वत्र फैल जाते हैं।
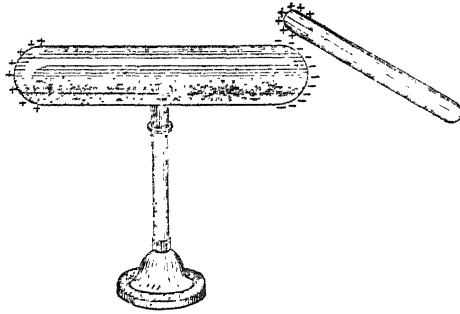
चित्र २३५

पृथग्न्यासक दस्ता लगे हुए छोटे से धातु के मण्डल के द्वारा इस उपपादित विद्युत् की परीक्षा हो सकती है। इस उपकरण का नाम परीक्षा-मंडल है। परीक्षा-मंडल को चित्र २३५ के चालक के दाहिने सिरे से स्पर्श कराकर विद्युद्दर्शक के पास ले जाइए। तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि उस पर ऋण-विद्युत् का आवेश है। इसी प्रकार बाएँ सिरे से स्पर्श कराने पर आप परीक्षा-मंडल में धन-विद्युत् पावेंगे।

अब यह भी प्रकट है कि आविष्ट वस्तु विद्युत्-रहित वस्तुओं को उपपादन के द्वारा ही आकर्षित करती है। उपपादन के द्वारा समीप भाग में असमान विद्युत् उपपादित हो जाती है और इस उपपादित आवेश पर ही विद्युन्मय वस्तु का आकर्षण होता है।

३०५—उपपादन के द्वारा विद्युन्मय करने की विधि। जिस समय विद्युन्मय छड़ किसी चालक में उपपादन कर रही हो यदि

उसी समय हम चालक को स्पर्श कर दें तो क्या होगा ? यदि छड़ की विद्युत् धन है तो चालक में उपपादित ऋण-विद्युत् तो आकर्षण के कारण ज्यों की त्यों बनी रहेगी। किन्तु धन-विद्युत् का नाश हो जायगा क्योंकि पृथ्वी में से हमारे शरीर में होकर ऋण-विद्युन्मय इलैक्ट्रन छड़ के धन-विद्युत् से आकर्षित होकर चालक में पहुँच जावेंगे। अब यदि हम अपना हाथ हटाकर चालक को फिर पृथग्न्यस्त कर दें और तब विद्युन्मय छड़ को भी हटा लें तो स्पष्ट ही है कि चालक पर ऋण-विद्युत् रह जायगी। इस रीति से धन-विद्युन्मय छड़ के द्वारा चालक ऋण-विद्युन्मय कर दिया जा सकता है। यदि छड़ से चालक को स्पर्श कर देते तो चालक के इलैक्ट्रन खिंच कर छड़ में चले जाते और चालक पर धन-विद्युत् ही रह जाती। किन्तु इस तरीके में काँच की विद्युन्मय छड़ को घुमा फिरा कर उसका सारा पृष्ठ चालक से छुआना पड़ता है, नहीं तो काँच की अचालकता के कारण चालक पर बहुत ही थोड़ा आवेश उत्पन्न होगा। और इस क्रिया में छड़ की विद्युत् भी नष्ट हो जाती है। किन्तु उपपादन के द्वारा विद्युन्मय करने में छड़ को विद्युत् ज्यों की त्यों रहती है।

चित्र २३६

३०६—सुवर्णपत्र विद्युद्दर्शक।

जिस सरकंडे की गोले के विद्युद्दर्शक का ऊपर वर्णन किया गया है उसके द्वारा बहुत थोड़े परिमाण की विद्युत् की परीक्षा नहीं हो सकती। इस काम के लिए अधिक सूक्ष्मग्राही विद्युद्दर्शक की आवश्यकता होती है। यह निम्न प्रकार से बनाया जाता है :—

एक काँच की चौड़े मुँह की बोतल में रबड़ या एबोनाइट की डाट लगाई जाती है। इस डाट में पीतल की एक छड़ लगी रहती है जिस पर ऊपर की ओर एक पीतल का चक्का होता है और नीचे के सिरे पर दो सोने के वरक़ चिपके रहते हैं। जब इन वरक़ों पर किसी प्रकार की विद्युत् विद्यमान हो तब वे एक दूसरे को

प्रतिसारित करके पृथक् पृथक् हो जाते हैं (चित्र २३६) । इसको काम में लाने की विधि यह है कि पहले सुवर्ण-पत्र आविष्ट कर लिये जाते हैं । इसके लिए उपपादन ही की विधि का उपयोग अच्छा है। धन-विद्युन्मय छड़ को चक्के के समीप लाकर (चित्र २३७-i) चक्के को उँगली से स्पर्श कर दिया जाता है (चित्र २३७-ii) और तब उँगली हटाकर छड़ भी हटा ली जाती है । इससे वरक़ों पर ऋण-विद्युत् रह जाती है और वे फैल जाते हैं (चित्र २३७-iii)।

चित्र २३७

यदि चक्के के समीप कोई धन-विद्युत्वाली वस्तु लाई जाय तो वरक़ों की ऋण-विद्युत् खिंच कर चक्के की तरफ़ चली जाती है और वरक़ों का फैलाव कम हो जाता है (चित्र २३७-iv)। किन्तु यदि वस्तु ऋण-विद्युत्-युक्त हो तो चक्के की ऋण-विद्युत् भी प्रतिसारित होकर वरक़ों पर पहुँच जाती है और उनका फैलाव और भी बढ़ जाता है (चित्र २३७-v)। इस प्रकार बहुत ही थोड़े आवेश के अस्तित्व और उसके प्रकार का ज्ञान इस विद्युद्दर्शक के द्वारा तुरन्त ही हो जाता है। इसकी सूक्ष्मग्राहिता का मुख्य कारण यह है कि इन वरक़ों का भार बहुत ही कम होता है और बहुत ही थोड़ा बल इन्हें फैलाने के लिए यथेष्ट हो जाता है। यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि सोना तो भारी धातु है । यदि किसी हलकी धातु का प्रयोग किया जाता तो और भी अच्छा होता । यह सच है किन्तु हलकी धातुओं के वरक़ इतने पतले नहीं बनाये जा सकते। कुछ वर्षों से अल्यूमिनियम के वरक़ भी बनने लगे हैं। वे सोने के वरक़ों के समान
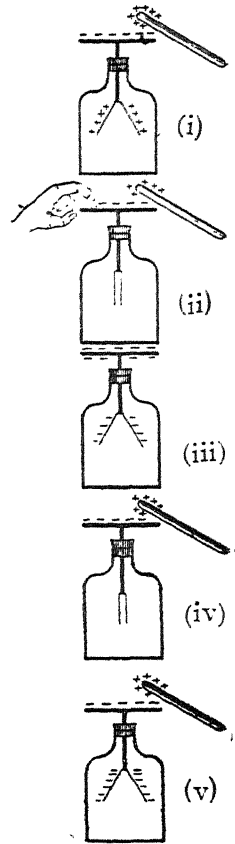
पतले तो नहीं होते किन्तु अल्यूमिनियम इतनी हलकी धातु है कि मोटे होने पर भी साधारण काम इन वरक़ों से चल जाता है।

प्रश्न

(१) लाख का डंडा ऊन से रगड़ने पर काग़ज़ के छोटे छोटे टुकड़ों को आकर्षित क्यों करने लगता है ?

(२) विद्युद्दर्शक बनाने की विधि का वर्णन करो। रेशम से रगड़ी हुई काँच की छड़ के द्वारा उसे तुम (१) ऋण-विद्युत् से और (२) धन-विद्युत् से आविष्ट कैसे कर सकते हो ?

(३) किसी वस्तु में आवेश ऋण है या धन इसकी परीक्षा कैसे करोगे ?

(४) एक चालक में धन आवेश है। क्या उपाय किया जाय कि उसका पृथ्वी से सम्बन्ध करने से उसका यह आवेश और भी बढ़ जाय।

(५) इलैक्ट्रन क्या होता है ? स्वतन्त्र तथा आबद्ध इलैक्ट्रनों का भेद समझाओ।

(६) इलैक्ट्रन-दृष्टिकोण से चालकों और अचालकों में क्या भेद होता है ?

(७) इलैक्ट्रन-सिद्धान्त से कैसे प्रमाणित करोगे कि धन-आवेश की उत्पत्ति तब तक होना असम्भव है जब तक कि ठीक उतने ही परिमाण का ऋण-आवेश भी साथ ही साथ न उत्पन्न हो ? इस बात को प्रदर्शित करनेवाले किसी प्रयोग का वर्णन करो।

परिच्छेद ३२

वैद्युत क्षेत्र

इंडक और विद्युत्-यन्त्र

३०७—**वैद्युत क्षेत्र**। जिस प्रकार चुम्बकीय ध्रुवों के चारों ओर के आकाश में कुछ विलक्षणता होती है और वह क्षेत्र बल-रेखाओं से परिपूर्ण रहता है ठीक उसी प्रकार हमें विद्युत् के आवेश के चारों ओर के आकाश में भी बल-रेखाओं का अस्तित्व मानना होगा। इस आकाश को वैद्युत क्षेत्र कहते हैं। यद्यपि इस क्षेत्र की बल-रेखाओं का पता हम चुम्बकीय रेखाओं के समान आसानी से नहीं लगा सकते और उनके लिए विशेष प्रकार के आयोजन की आवश्यकता होती है तथापि चुम्बकीय आकर्षण तथा प्रतिसारण की वैद्युत आकर्षण तथा प्रतिसारण से तुलना करने पर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ठीक चुम्बकीय रेखाओं के समान ही धन-विद्युत् से निकल कर वैद्युत बल-रेखायें भी ऋण-विद्युत् की ओर जाती हैं। इन रेखाओं में भी हम तनाव और पार्श्वीय प्रतिसारण के गुण समझ सकते हैं और चित्रों में भी हम इन रेखाओं की संख्या के द्वारा वैद्युत क्षेत्र की तीव्रता को प्रदर्शित कर सकते हैं।

३०८—**उत्क्रम-वर्ग नियम**। चुम्बकीय और वैद्युत क्षेत्रों की समानता इतनी ही नहीं है। वह और भी गहरी है। वैद्युत आकर्षण और प्रतिसारण पर भी दूरी का वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा चुम्बकीय बलों पर। उन्हीं के समान दो वैद्युत आवेशों के बीच का बल भी दूरी के साथ

उत्क्रम-वर्ग नियम के अनुसार घटता है। अर्थात् दूरी को द्विगुण कर देने से बल घट कर चौथाई और तीन गुणी कर देने से १/९ रह जाता है।

३०९—वैद्युत आवेश का एकांक। इन सब बातों के कारण वैद्युत आवेश का एकांक भी ठीक उसी प्रकार नियत किया गया है जिस प्रकार चुम्बकीय ध्रुव का एकांक नियत किया गया था। अर्थात् एकांक आवेश वह है जो उसी प्रकार के दूसरे एकांक आवेश से एक सेंटीमीटर दूरी पर रखे जाने से उसे एक डाइन के बल से प्रतिसारित करे। यदि एक आवेश का परिमाण $म_1$ एकांक हो और दूसरे का $म_2$ एकांक और दोनों के बीच की दूरी द सम० हो तो उनके बीच का वैद्युत बल

$$ब = \frac{म_1 \times म_2}{द^2} \text{ डाइन}$$

३१०—वैद्युत क्षेत्र की तीव्रता। यदि वैद्युत क्षेत्र में किसी स्थान पर एकांक आवेश रख दिया जाय तो उस पर जो बल लगता है उसे क्षेत्र की तीव्रता कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि यदि कहीं क्षेत्र की तीव्रता च हो और वहाँ कोई वैद्युत आवेश म रख दिया जाय तो उस पर जो वैद्युत बल लगेगा उसका परिमाण च × म डाइन के बराबर होगा।

३११—वैद्युत विभव। मान लीजिए कि चित्र २३८ में अ एक गोला है जिस पर धन-विद्युत् का आवेश म है। और उससे कुछ दूर क पर धन-विद्युत् की एकांक मात्रा ए रक्खी है। क से अ की दूरी $द_1$ है। अतः क पर अ का प्रतिसारण बल बाणांकित दिशा में लग रहा है। अब यदि हम ए को हटा कर ख पर लाना चाहें तो हमें इस बल के विरुद्ध कुछ काम करना पड़ेगा अर्थात् हमें कुछ शक्ति का व्यय करना होगा। यह शक्ति ए की स्थितिजशक्ति के रूप में परिणत हो जायगी। जिस प्रकार किसी वस्तु को नीचे से ऊँचा उठाने में हमें गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध काम

चित्र २३८

करना पड़ता है और ऊँचे उठाने से वस्तु की स्थितिजशक्ति बढ़ जाती है ठीक उसी प्रकार ए की स्थितिजशक्ति भी ख पर पहुँचने से बढ़ जायगी। ए ज्यों ज्यों अ के निकट खिसकेगा त्यों त्यों उसकी स्थितिजशक्ति भी बढ़ती जायगी। और जिस प्रकार गुरुत्व के कारण वस्तुएँ ऊँचे स्थान से नीचे गिर पड़ती हैं ठीक वैसे ही यदि ए को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो वह अ से अधिक अधिक दूर हटता जायगा। यह साधारण नियम है कि स्थितिजशक्ति न्यूनतम मूल्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है और प्रत्येक वस्तु जिस स्थान पर स्थितिजशक्ति अधिक हो वहाँ से कम स्थितिजशक्तिवाले स्थान की ओर गमन करती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि अ के निकट प्रत्येक स्थान पर ए की जो स्थितिजशक्ति होगी वह अ से ए की दूरी पर निर्भर है। ए यदि अ से अनन्त दूरी पर हो तो उसमें स्थितिजशक्ति कुछ भी नहीं होती। अतः अनन्त दूरी से ए को क तक लाने में जितनी शक्ति हमें व्यय करनी पड़े वही क पर ए की स्थितिजशक्ति होगी। गणना करने पर इसका परिमाण $\frac{म}{द_१}$ निकलता है। इस संख्या का नाम वैद्युत विभव रख दिया गया है। ख पर यह विभव $\frac{म}{द_२}$ है। यह क के विभव की अपेक्षा अधिक है क्योंकि $द_२ < द_१$। अतः क से ख तक ए को लाने में जो काम करना पड़ता है उसका परिमाण $\frac{म}{द_१} - \frac{म}{द_२}$ है। यह क और ख के विभवों का अन्तर कहलाता है। जैसे गुरुत्व के कारण वस्तुएँ ऊँचे से नीचे की ओर गिरती हैं ठीक वैसे ही हम कह सकते हैं कि धन-विद्युत् भी उच्च विभव से निम्न विभव की ओर गमन करती है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विभव विद्युन्मय वस्तु की विद्युत् की मात्रा पर भी निर्भर है। जितनी ही अधिक यह मात्रा होगी उतना ही विभव भी अधिक होगा। इसके अतिरिक्त यदि अ पर धन-विद्युत् के स्थान

में ऋण-विद्युत् हो तो विभव भी ऋण-चिह्नीय होगा। इस अवस्था में विभव क की अपेक्षा ख पर कम होगा क्योंकि

$$-\frac{म}{द_२} < -\frac{म}{द_१}$$

स्वयं अ पर विभव सबसे नीचा होगा।

दूसरी बात यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऋण-विद्युत् धन-विद्युत् से विपरीत दिशा में गमन करेगी। वह निम्न विभव से उच्च विभव की ओर चलेगी। जब हम किसी धन-विद्युन्मय वस्तु को किसी चालक पदार्थ के द्वारा पृथ्वी से सम्बन्धित कर देते हैं तब उसकी धन-विद्युत् चल कर शून्य विभव वाली पृथ्वी में पहुँच जाती है। और वह वस्तु विद्युत्-रहित हो जाती है। इसी प्रकार ऋण-विद्युत्-युक्त वस्तु भी पृथ्वी से सम्बन्धित होने पर विद्युत्-रहित हो जाती है। इस वस्तु का विभव ऋण-चिह्नीय होता है और पृथ्वी का विभव शून्य होता है अतः ऋण-विद्युत् वस्तु में से निकल कर अधिक ऊँचे विभववाली पृथ्वी में चली जाती है। वास्तव में विद्युत् की धारा में अधिकतर ऋण-विद्युत्-युक्त इलैक्ट्रनों ही का गमन होता है और यह नीचे विभव से ऊँचे विभव की ओर धावित होते हैं। धन-विद्युन्मय वस्तु को पृथ्वी से सम्बन्धित करने पर भी वास्तव में पृथ्वी से कुछ इलैक्ट्रन ही उसमें पहुँच कर उसे विद्युत्-रहित कर देते हैं। किन्तु चाहे हम धन-विद्युत् को पृथ्वी की ओर जाती समझें या ऋण-विद्युत् को पृथ्वी में से आती समझें परिणाम दोनों का एक ही है।

विद्युत्-रहित वस्तुओं के चारों ओर वैद्युत-क्षेत्र नहीं होता और वे वैद्युत बल को उत्पन्न नहीं करतीं। अतः उनके विभव को हम शून्य विभव कह सकते हैं। पृथ्वी को भी हम विद्युत्-रहित समझ सकते हैं। अतः उसका विभव भी साधारणतया शून्य ही समझा जाता है। किन्तु यह बहुत कुछ हमारी इच्छा पर निर्भर है। क्योंकि वास्तव में जिस बात पर वैद्युत बल और शक्ति निर्भर हैं वह है विभव का अन्तर। और यह इस बात पर निर्भर नहीं

है कि विभव नापने का प्रारम्भ कहाँ से किया जाय। जिस प्रकार ऊँचाई नापने के लिए समुद्र-पृष्ठ की ऊँचाई शून्य मानी जाती है किन्तु दो स्थानों की ऊँचाई का अन्तर नापने के लिए यह बात आवश्यक नहीं है। यदि समुद्र-पृष्ठ की ऊँचाई १,००० फ़ुट मान ली जाती तो बनारस की ऊँचाई १,४६० फ़ुट हो जाती और शिमला की ८,००० फ़ुट। किन्तु तब भी इन दोनों स्थानों की ऊँचाई का अन्तर ६,५४० फ़ुट ही रहता।

चालक वस्तु पर सर्वत्र एक ही विभव रहता है। यह सम्भव नहीं कि उसके एक भाग का विभव ऊँचा हो और दूसरे का नीचा क्योंकि यदि ऐसा हो तो तुरन्त ही ऋण-विद्युत्-युक्त इलैक्ट्रन नीचे विभव से ऊँचे विभव की ओर दौड़ कर विभव को बराबर कर देंगे।

३१२—विद्युत् का पृष्ठ-घनत्व। यद्यपि चालक वस्तु का विभव सर्वत्र एक ही होता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उस पर विद्युत् समान भाव से
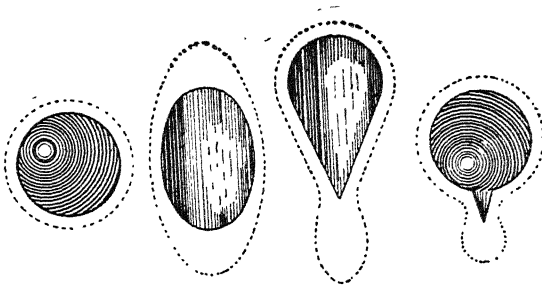
चित्र २३६

फैली हुई रहती है। उसके पृष्ठ के एक वर्ग सम० पर जितनी विद्युत् की मात्रा हो उसे वैद्युत-आवेश का पृष्ठ-घनत्व कहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि यह घनत्व चालक वस्तु के प्रत्येक भाग पर बराबर ही हो। उसकी आकृति के अनुसार घनत्व भी कम या ज़्यादा होता है। मोटी दृष्टि से यों कह सकते हैं कि जहाँ पृष्ठ अधिक मुड़ा हुआ हो, कोना निकला हुआ हो वहीं घनत्व

अधिक होता है। चित्र २३९ में कई आकार के चालक हैं। इन पर विन्दुमय रेखा के द्वारा पृष्ठ घनत्व दिखलाया गया है। गोले पर यह घनत्व सब जगह एक सा है। अण्डाकार वस्तु पर लम्बे व्यास की ओर बहुत अधिक घनत्व है। शंकु की नोक पर इसका परिमाण बहुत बढ़ गया है। नोकदार गोले की नोक पर तो यह घनत्व इतना अधिक हो जाता है कि विद्युत् का वहाँ रहना कठिन है। यही कारण है कि जिस किसी वस्तु में नोक निकली हुई हो उसकी विद्युत् शीघ्र ही उसमें से निकल जाती है।

इस बात की जाँच भी हम परीक्षा-मण्डल के द्वारा कर सकते हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि यह बहुत छोटा सा पीतल का पत्र होता है जिसमें पृथग्न्यासक काँच का दस्ता लगा रहता है। इस परीक्षा-मण्डल को विद्युन्मय चालक पृष्ठ के भिन्न भिन्न भाग से स्पर्श कराके सुवर्ण-पत्र विद्युद्दर्शक के निकट ले जाने से तुरन्त ही वहाँ के विद्युत्-घनत्व का पता लग सकता है क्योंकि जहाँ घनत्व अधिक होगा वहीं से परीक्षा-मण्डल भी अधिक विद्युत् ग्रहण कर सकेगा।

३१३—खोखले चालकों के भीतरी पृष्ठ पर वैद्युत आवेश की अनुपस्थिति। यदि कोई खोखला गोला या चाय का टिन अथवा साधारण कलारीमापक पृथग्न्यस्त करके आविष्ट कर दिया जाय और ऊपर लिखी हुई रीति से ही परीक्षा-मण्डल के द्वारा उसके भीतरी पृष्ठ की जाँच की जाय तो ज्ञात हो जायगा कि वहाँ आवेश का घनत्व कुछ भी नहीं है। अर्थात् उस चालक पर जितनी भी विद्युत् विद्यमान है वह सबकी सब बाहरी पृष्ठ पर ही है। भीतर के पृष्ठ पर उसका थोड़ा सा भी भाग नहीं है। यह वास्तव में विद्युत् का एक विलक्षण स्वभाव है कि वह सदा चालक वस्तुओं के बाहरी पृष्ठ पर ही रहती है। इसका एक परिणाम यह भी है कि खोखले चालकों के भीतरी आकाश में कहीं भी कोई विद्युत्-बल नहीं होता। वहाँ बल-रेखाओं का अस्तित्व ही नहीं। वह स्थान वैद्युत क्षेत्र ही नहीं। अतः यदि हमें किसी वस्तु या यंत्र को वैद्युत-बल से बचाना हो तो उसका सरल उपाय यह है कि उसके चारों ओर किसी चालक पदार्थ का आवरण

रख देना चाहिए। साधारण तार की जाली का आवरण ही बहुधा पर्याप्त होता है। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि भीतरी पृष्ठ पर विद्युत् की अनुपस्थिति वास्तव में उत्क्रम-वर्ग नियम का ही परिणाम है। सच पूछिए तो उत्क्रम-वर्ग नियम का इससे सरल कोई प्रमाण है ही नहीं।

इसी बात को प्रमाणित करनेवाला एक बड़ा मनोरंजक प्रयोग है। चित्र २४० में एक तार का छल्ला पृथग्न्यस्त है। इस छल्ले पर सूती कपड़े की शंकु के आकार की एक टोपी सिली हुई है और उसके शीर्ष से दो रेशम के डोरे बांध दिये गये हैं। चित्र में दाहिनी ओर का डोरा खिँचा हुआ है। बाईं ओर का डोरा खींच लेने से टोपी उलट जायगी और उसका भीतर का पृष्ठ बाहर की ओर आ जायगा। इस टोपी को विद्युन्मय कर दीजिए। परीक्षा-मंडल से देख लीजिए कि विद्युत् बाहर की ओर है। डोरा खींच कर टोपी को उलट दीजिए। तुरन्त विद्युत् भी अपना पूर्व स्थान छोड़ कर पुनः बाहर के पृष्ठ पर चली आवेगी।
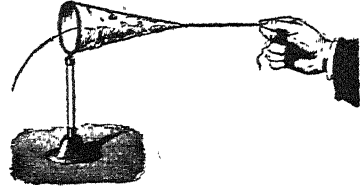
चित्र २४०

३१४—समावेशन। यह ऊपर बताया जा चुका है कि विद्युन्मय वस्तु के वैद्युत क्षेत्र के प्रत्येक विन्दु पर कुछ न कुछ विभव होता है। इस विभव का उच्चतम अथवा निम्नतम मूल्य स्वयं विद्युन्मय वस्तु पर होता है। यही विद्युन्मय वस्तु का विभव कहलाता है। धन-विद्युत् की एकांक मात्रा को अनन्त दूरी से लाकर विद्युन्मय वस्तु पर पहुँचाने में जितनी शक्ति का व्यय होता है वही इस विभव का मूल्य है। विद्युत् की जितनी ही अधिक मात्रा विद्युन्मय वस्तु पर हो उतना ही ऊँचा यह विभव भी होता है। अर्थात् ज्यों ज्यों इस पर विद्युत् की मात्रा बढ़ाई जाय त्यों त्यों उसका विभव भी बढ़ता जाता है।

विद्युत् की जितनी मात्रा के द्वारा वस्तु का विभव ० से बढ़ कर १ हो

जाय वह उस वस्तु का वैद्युत समावेशन कहलाता है। यह प्रत्यक्ष ही है कि इससे द्विगुण मात्रा को उस वस्तु पर पहुँचाने में दुगुना काम भी करना होगा अतः तब विभव भी २ हो जायगा। अतः यदि उस वस्तु का विभव प हो तो उसमें विद्युत् की मात्रा म उपर्युक्त मात्रा से प गुणी अधिक होगी। अर्थात्

$$म = प \times समावेशन$$

$$या \qquad समावेशन = \frac{म}{प}$$

वैद्युत समावेशन का मतलब प्रायः वैसा ही है जैसा जल इत्यादि के लिए बरतनों के समावेशन का होता है। जिस प्रकार छोटे समावेशन-वाले बरतन में थोड़ा भी जल भरने से उसका पृष्ठ ख़ूब ऊँचा उठ जाता है किन्तु अधिक समावेशनवाले बरतन में जल का पृष्ठ उतना ऊँचा नहीं उठ सकता, इसी प्रकार छोटे समावेशनवाली वस्तु का विभव थोड़ी विद्युत् ही से ख़ूब बढ़ जाता है। किन्तु अधिक समावेशनवाली वस्तु का विभव थोड़ा भी बढ़ाने के लिए बहुत विद्युत् की आवश्यकता होती है।

३१५—संहक। मान लीजिए कि क पीतल की एक पट्टिका है (चित्र २४१)। यह किसी पृथग्न्यासक पर रखी है और उस पर कुछ धन-विद्युत् विद्यमान है। इस विद्युत् के कारण उसका कुछ विभव भी है। यह विभव धनचिह्नीय है। अब इसके निकट एक विद्युत्-रहित पट्टिका ख लाइए जो पृथ्वी से सम्बन्धित हो। तुरन्त ही ख पर ऋण-विद्युत् उपपादित हो जायगी। क्योंकि पृथ्वी में से अनेक इलैक्ट्रन आकर्षित होकर ख पर जा पहुँचेंगे। इस ऋण-विद्युत् के कारण भी क पर कुछ
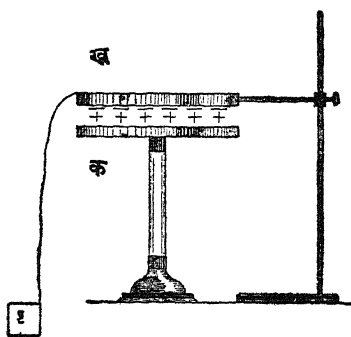
चित्र २४१

ऋणचिह्नीय विभव हो जायगा। अतः अब क का विभव घट जायगा। अब

क पर विभव दो कारणों से है—एक स्वयं अपने धन-विद्युत् के कारण और दूसरे उपपादित ऋण-विद्युत् के कारण। इसलिए अब क का विभव उतना नहीं रह सकता जितना कि ख को उसके निकट लाने से पहले था। वह बहुत घट जायगा। और जितना ही ख अधिक निकट रखा जायगा उतना ही अधिक क का विभव भी घट जायगा। क और ख के बीच में वायु के अतिरिक्त कोई दूसरा पृथग्न्यासक पदार्थ रखने से भी यही दशा होगी।

ख की उपस्थिति में यदि हम चाहें कि क का विभव पहले ही जितना हो जाय तो हमें उसे और भी अधिक विद्युत् देना होगा। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अब क का समावेशन बढ़ गया। समावेशन बढ़ाने के ऐसे आयोजन को ढंहक कहते हैं। और विद्युन्मय पट्टिका का यह वर्धित समावेशन ही ढंहक का समावेशन कहलाता है। इसमें मुख्य बात यह है कि एक धन-विद्युन्मय चालक और एक ऋण-विद्युन्मय चालक पास पास स्थित होने चाहिए और उनके बीच में कोई पृथग्न्यासक होना चाहिए।

व्यवहार में ढंहक कई आकृतियों के बनाये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से लीडन-जार नामक ढंहक बहुत प्रख्यात है और अब भी कभी कभी काम में आता है। इसमें एक चौड़े मुँह की कांच की बोतल या गिलास तो पृथग्न्यासक का काम करती है। उसके बाहर और भीतर टीन के पत्र
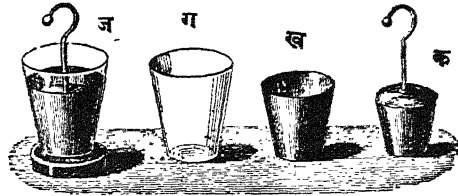
चित्र २४२

चिपका दिये जाते हैं। ये ही दोनों चालक हैं। एक पीतल की गोली भीतर के टीन से सम्बन्धित रहती है। इसे ज़मीन पर रखने या हाथ में पकड़ने से बाहर का टीन पृथ्वी से सम्बन्धित हो जाता है। पीतल की गोली के-

द्वारा भीतर के टीन पर विद्युत् पहुँचा दी जाती है। चित्र २४२ में एक प्रकार का लीडन-जार ज और उसके पृथक् पृथक् अवयव दिखाये गये हैं। ग काँच का गिलास है जो टीन के गिलास ख में रक्खा जाता है और ग के अन्दर क रख दिया जाता है।

जब अधिक समावेशनवाले इंहक की आवश्यकता होती है तो चित्र २४३ में दिखलाये हुए उपाय का प्रयोग किया जाता है। टीन-पत्र के कई बराबर टुकड़ काट लिये जाते हैं और इसी प्रकार पाराफ़िन मोम से आलिप्त कागज़ के टुकड़े भी काट लिये जाते हैं। फिर टीन और कागज़ों को
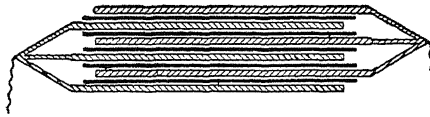
चित्र २४३

एकान्तरतः एक के ऊपर एक रख कर बाँध देते हैं। एक एक छोड़कर टीन के पत्र आपस में जोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार टीन के पत्रों के दो समुदाय बन जाते हैं। इंहक के यही दो चालक हैं और कागज़ पृथग्न्यासक है। इस प्रकार कई टीन के पत्रों को जोड़ने से चालक का क्षेत्रफल बढ़ जाता है और ये चालक परस्पर निकट भी बहुत आ जाते हैं। इस कारण इस इंहक का समावेशन बहुत बढ़ जाता है। पाराफ़िन से आलिप्त कागज़ के स्थान में अभ्रक के पतले पतले स्तर देने से और भी अच्छा इंहक बनता है।

कभी कभी ऐसे इंहक की भी आवश्यकता होती है जिसका समावेशन आसानी से बदला जा सके। इन्हें परिवर्त्तनीय इंहक कहते हैं। बहुधा इनमें पृथग्न्यासक का कार्य केवल वायु ही करती है। इनके चालक भी टीन-पत्र के न बनाकर पीतल के बनाये जाते हैं ताकि वे मुड़ न जावें। चित्र २४४ में ऐसा ही इंहक दिखलाया गया है। ऊपर के दस्ते को पकड़ कर घुमाने से एक पत्रसमूह घूम जाता है और दोनों चालकों के बीच

का अन्तर घट या बढ़ सकता है। बेतार के टेलीफ़ोन अथवा रेडियो में ऐसे द्दंहक बहुत काम आते हैं।

चित्र २४४

३१६—घर्षण विद्युत्-यंत्र।

जिस यंत्र से बहुत सी विद्युत् उत्पन्न हो सके उसे विद्युत्-यंत्र कहते हैं। यह मूलतः दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनमें विद्युत् घर्षण के द्वारा उत्पन्न होती है और दूसरे वे जिनमें उपपादन का प्रयोग किया जाता है। चित्र २४५ में घर्षण यंत्र दिखलाया गया है। इसमें कांच का चक्र रेशम के बीच में दबा है। इस चक्र को घुमाने से कांच पर धन-विद्युत् उत्पन्न होती है। जब चक्र का यह विद्युन्मय भाग क और ख पर स्थित कई नोकवाले चालकों के सामने पहुँचता है तो उनमें से ऋण-विद्युत् आकर्षित होकर इसके आवेश को नष्ट कर देता है और उन चालकों में धन-विद्युत् रह जाती है। इस प्रकार इन नोकदार चालकों पर विद्युत् का परिमाण बढ़ता जाता है और उनका विभव भी बढ़ता जाता है।
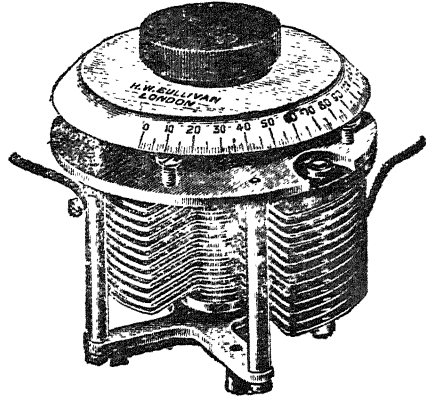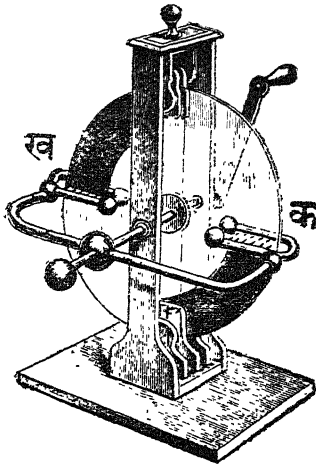
चित्र २४५

३१७—इलैक्ट्रोफ़ोरस। उपपादन विद्युत्-यंत्र की क्रिया को समझना ज़रा कठिन है। किन्तु निम्नलिखित प्रयोग के द्वारा यह ज्ञात हो जायगा कि यह यंत्र कैसे विद्युत् पैदा करते हैं। मान लीजिए कि एबोनाइट या रबड़ का एक चक्र क पृथ्वी से सम्बन्धित किसी चालक ख पर रखा है (चित्र २४६-i)। फ़लालैन से रगड़ कर एबोनाइट पर ऋण-विद्युत् उत्पन्न कर लीजिए। यह चालक ख में धन-विद्युत् उपपादित कर देगा। और परस्पर आकर्षण के कारण ये दोनों विद्युत् बँध जावेंगी। इनमें से किसी को भी
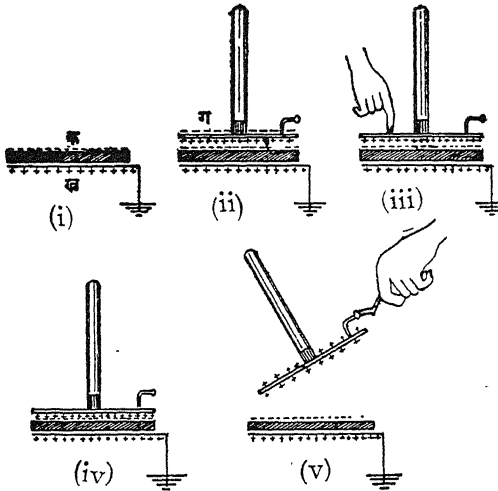
चित्र २४६

हम आसानी से वहाँ से नहीं हटा सकते। अब यदि कोई पीतल की पट्टिका ग एबोनाइट पर रख दी जाय तो उपपादन के कारण उस पर धन तथा ऋण-विद्युत् उत्पन्न हो जायगी। यदि उँगली से स्पर्श करके उसे पृथ्वी से सम्बन्धित कर दें (चित्र २४६-iii) तो स्पष्ट ही है कि इस पट्टिका की ऋण-विद्युत् पृथ्वी में चली जायगी। धन-विद्युत् पट्टिका पर रह जायगी। एबोनाइट की

ऋण-विद्युत् ज्यों की त्यों बनी रहेगी (चित्र २४६-iv)। अब पृथग्न्यासक दस्ते के द्वारा पीतल की पट्टिका को उठा लीजिए। और चाहें तो किसी दूसरे चालक से स्पर्श करा के इसकी धन-विद्युत् उस पर पहुँचा दीजिए। इसी प्रकार उसे एत्रोनाइट क पर धर के पुनः धन-विद्युन्मय कर लीजिए और पुनः यह विद्युत् भी उक्त चालक पर पहुँचा दीजिए। यह क्रिया जितनी बार चाहें पुनः पुनः की जा सकती है क्योंकि इसमें क का आवेश घटता नहीं। इस प्रकार बार बार ग को आविष्ट करके और उसका धन आवेश किसी चालक में एकत्रित करके उस चालक का विभव जितना चाहें बढ़ाया जा सकता है। इस यंत्र का नाम इलैक्ट्रोफ़ोरस है। चित्र २४६-v में ग के निकट हाथ लाने से चिनगारी निकलती हुई दिखलाई गई है।

३१८—उपपादन विद्युत्-यंत्र। उपपादन विद्युत्-यंत्र में यही क्रिया जल्दी जल्दी अपने आप होती जाती है। आपको केवल एक दस्ता
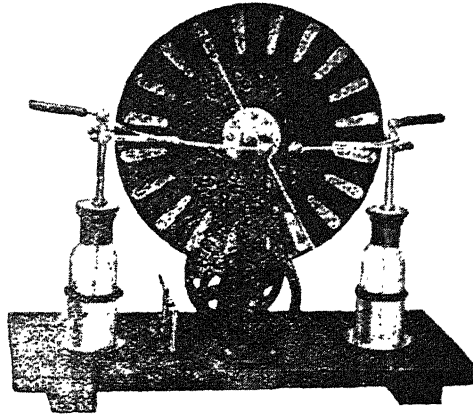
चित्र २४७

पकड़ कर घुमाना पड़ता है। चित्र २४७ ऐसी ही मशीन का चित्र है। एक ओर के चालक और उसकी गोली में धन-विद्युत् एकत्रित होती है और दूसरी

ओर के चालक और उसकी गोली में ऋण-विद्युत्। इन चालकों को एक एक लीडन जार इंडक के साथ सम्बन्धित कर दिया जाता है जिससे इनका समावेशन बढ़ जाता है और उन पर एकत्रित विद्युत् की मात्रा और भी बढ़ जाती है।

ऐसे यंत्रों में दोनों ओर की गोलियों को समीप लाने से बहुधा बड़ी कड़ाके की आवाज़ होती है और एक स्फुल्लिंग भी इधर से उधर जाता हुआ दिखलाई देता है। इसकी कड़क और चमक तुरन्त ही आपको आकाश की बिजली का स्मरण कराती है। इस कड़क और चमक का कारण यह है कि दोनों गोलियों की असमान विद्युत् अधिक विभवान्तर के कारण बड़े ज़ोर से आकर्षित होती है। जब वायु का पृथग्न्यासकत्व इस बल को नहीं सह सकता तब मानों वायु फट जाती है और इसके छिद्र में से ऋण-विद्युत् जाकर धन-विद्युत् से मिल जाती है। वायु के इस प्रकार विदीर्ण होने में प्रकाश भी उत्पन्न हो जाता है और शब्द भी।

३१९—आकाश की बिजली। वास्तव में वर्षा-ऋतु के मेघाच्छन्न आकाश में जो बिजली चमकती है उसमें तथा घर्षण के द्वारा उत्पन्न विद्युत् में कोई अन्तर नहीं है। इस बात को सबसे पहले बैंजेमिन फ्रैंकलिन ने प्रमाणित किया था। उन्होंने पतला पीतल का तार बाँध कर पतंग को आकाश में उड़ाया। जब यह पतंग बादल के निकट पहुँचा तो चालक तार के सहारे आकाश की बिजली फ्रैंकलिन के पास पहुँच गई। विद्युद्दर्शक आदि से परीक्षा करके उन्होंने इसकी और घर्षण-विद्युत् की एकता तुरन्त सिद्ध कर दी। जब समुद्र से जल-वाष्प उड़कर वायु में जाता है तब इस वाष्प के अणु विद्युन्मय हो जाते हैं। और यही विद्युत् मेघ के साथ साथ सैकड़ों मील दूर चली जाती है। कभी कभी यह पृथ्वी पर के मकानों, दरख़्तों इत्यादि के इतना निकट पहुँच जाती है कि उनके ऊपरी भाग में बहुत अधिक असमान विद्युत् उपपादित करके मध्यवर्ती वायु को विदीर्ण करती हुई उससे जा मिलती है। इस धक्के में मकान फट जाता है और

दरख़्त टूट जाते हैं। इसी को बिजली का गिरना कहते हैं। स्पष्ट ही है कि यह प्रचलित वाक्य सत्य घटना का द्योतक नहीं क्योंकि वास्तव में गिरता कुछ भी नहीं है।

मकानों की इस उपद्रव से रक्षा करने का एक बहुत सरल उपाय है। जो कोई युक्ति मकान के ऊपरी भाग पर मेघ के द्वारा उपपादित विद्युत् को एकत्र न होने दे और धीरे से उसे वहाँ से हटा दे वही इस दुर्घटना से मकान को बचा सकेगी। यह युक्ति यह है कि धातु की एक छड़ पृथ्वी से लेकर मकान की छत से आठ दस फ़ुट ऊँचे तक लगा दी जाती है। नीचे यह ज़मीन में गहरी गाड़ दी जाती है और पृथ्वी से भली भाँति सम्बद्ध करने के लिए इसके साथ ख़ूब लम्बे चौड़े तांबे के पट्ट लगा दिये जाते हैं। ऊपर की ओर इस छड़ में कई नोकदार मुँह बना दिये जाते हैं। इन नोकों पर उपपादित विद्युत् का घनत्व बहुत अधिक हो जाता है और इस कारण वह धीरे धीरे निकल कर वायु के अणुओं में मिलती जाती है। इससे वहाँ न तो अधिक विद्युत् कभी एकत्रित ही रह सकती है और न वह कड़ाके के साथ वायु को विदीर्ण कर मकान को नष्ट कर सकती है। इस छड़ को तड़िच्चालक कहते हैं (चित्र २४८)।
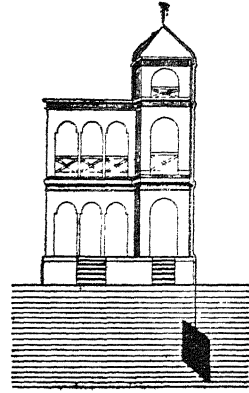
चित्र २४८

प्रश्न

(१) विभव किसे कहते हैं ?

(२) निम्न स्थानों पर विभव का मान बताओ:—

(१) ५० एकांक धन-आवेश से ५ सम० दूरी पर।

(२) ४० एकांक ऋण-आवेश से १० सम० दूरी पर।

(३) किस प्रयोग से सिद्ध करोगे कि वैद्युत आवेश सदा आविष्ट चालक के बाह्य पृष्ठ पर ही रहता है ?

(४) पीतल की एक लम्बी नली और उसके आधे व्यास की एक गोली दोनों आविष्ट हैं और उनका विभव क्रमशः +४० एकांक और +४ एकांक है। इन्हें किस प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित किया जाय कि (१) गोली का सारा आवेश नली में चला जाय (२) गोली का आवेश अधिक हो जाय ?

(५) तड़िच्चालक क्या होता है और उसमें नोकें क्यों निकली रहती हैं ?

(६) एक पृथग्न्यस्त पीतल की पट्टिका का आवेश के द्वारा +५० एकांक विभव कर दिया गया। इसके विभव में क्या परिवर्तन होगा यदि

(१) एक और पृथग्न्यस्त पट्टिका उससे समानान्तर तथा $\frac{1}{4}''$ की दूरी पर रख दी जाय ?

(२) इस दूसरी पट्टिका को जमीन पर खड़ा हुआ मनुष्य अँगुली से छू दे ?

(३) दूसरी पट्टिका को छूने से पहले दोनों के बीच में काँच घुसा दिया जाय ?

(७) एक चालक का विभव ३०० एकांक से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता और इस कार्य के लिए ५०० एकांक के आवेश की आवश्यकता होती है। इसमें १,००० एकांक का आवेश संचित करने का क्या उपाय है ?

(८) तड़ित् और मेघ के गरजने का कारण समझाओ। वर्षा होने से बिजली गिरने का डर क्यों कम हो जाता है और खुले मैदान में बिजली चमकते समय सीधे खड़े रहने में और विशेष कर छाता ऊँचा करके लगाने में क्या डर है ?

परिच्छेद ३३

विद्युत्-धारा

३२०—विद्युत्-धारा । हम पिछले परिच्छेद में कह आये हैं कि धन-विद्युत् ऊँचे विभव से नीचे विभव की ओर गमन करती है अथवा इलैक्ट्रन इससे विपरीत दिशा में गमन करते हैं। मान लीजिए कि हमारे पास क और ख दो चालक गोले हैं। क का विभव ख से अधिक है और
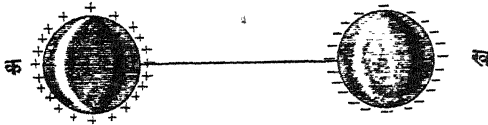
चित्र २४६

दोनों को हमने पतले तांबे के तार के द्वारा सम्बन्धित कर दिया है । स्पष्ट ही है कि तुरन्त इलैक्ट्रन ख से क की ओर दौड़ेंगे क्योंकि तार सुचालक पदार्थ का बना है। जिस प्रकार जल ऊँचे तल से नीचे तल की ओर बहता है और उस बहाव को धारा कहते हैं ठीक इसी प्रकार इलैक्ट्रनों के दौड़ने को भी विद्युत्-धारा कहते हैं। यद्यपि इस धारा की वास्तविक दिशा ख से क की ओर है किन्तु इलैक्ट्रन के आविष्कार के पहले किसी को इस दिशा का ज्ञान न था। इसलिए उस समय धन-विद्युत् ही क से ख की ओर जाती हुई समझी जाती थी और विद्युत्-धारा की दिशा भी उच्च विभव से निम्न विभव की ओर ही समझी जाती थी। अब तक भी यही रिवाज प्रचलित है और इलैक्ट्रनों के गमन की दिशा से विपरीत दिशा ही विद्युत्-धारा की दिशा कहलाती है।

३२१—वोल्टा की सैल । अब तक हमने किसी वस्तु को विद्युन्मय करने के अथवा उसका विभव बढ़ाने या घटाने के केवल एक ही उपाय का वर्णन किया है। वह है घर्षण। किन्तु सन् १७९४ ई० में इटली के वोल्टा नामक विद्वान् ने विद्युत् उत्पन्न करने की एक और युक्ति का आविष्कार किया था। यह युक्ति रासायनिक है। एक चीनी या काँच के पात्र में गन्धकाम्ल का तनु विलयन भर दीजिए। और उसमें एक ताँबे की पट्टिका त और एक शुद्ध यशद की पट्टिका ज डाल दीजिए। इस उपकरण को सैल कहते हैं। यदि इस सैल की दोनों पट्टिकाओं की परीक्षा स्वर्ण-पत्र विद्युद्दर्शक के द्वारा की जाय तो यह प्रमाणित किया जा सकता है कि ताँबे की पट्टिका का विभव यशद की पट्टिका के विभव से अधिक है। यह परीक्षा कुछ कठिन अवश्य है क्योंकि यह विभवान्तर बहुत थोड़ा होता है। किन्तु यदि नीचे लिखे दो उपायों का अनुसरण किया जाय तो इस परीक्षा में अधिक कठिनाई नहीं होगी।
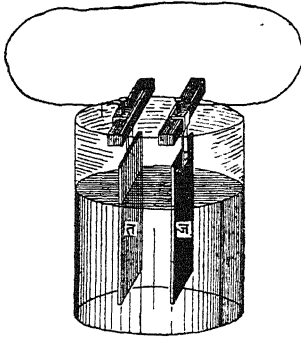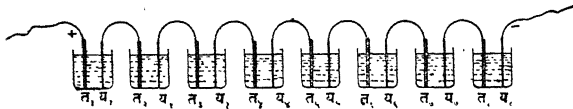
चित्र २५०

चित्र २५१

पहला उपाय तो यह है कि ऐसी बहुत सी सैलें लेकर उन्हें परस्पर इस प्रकार सम्बन्धित किया जाय कि एक की ताम्रपट्टिका दूसरे की यशद-पट्टिका से जुड़ी रहे (चित्र २५१)। ऐसा करने से परस्पर सम्बन्धित ताम्र और यशद की पट्टिकाओं के विभव में तो इनकी सुचालकता के कारण

कुछ भी अन्तर नहीं रह सकता। अर्थात् जो विभव $य_1$ का है वही $त_2$ का होगा, जो $य_2$ का होगा वही $त_3$ का होगा इत्यादि। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ये सब पात्र एक ही प्रकार के बने होने के कारण जो विभवान्तर $त_1$ और $य_1$ में है, वही $त_2$ और $य_2$ में और $त_3$ और $य_3$ में भी होगा। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि इस सार्वअन्तर को "व" कहें तो $त_1$ और $य_2$ के विभवों का अन्तर २ व, और $त_1$ और $य_3$ के विभवों का अन्तर ३ व इत्यादि हो जायगा और यदि हमारे पास १०० सैल हों तो प्रथम पात्र की ताम्रपट्टिका $त_1$ और अन्तिम पात्र की यशदपट्टिका $य_{100}$ का विभवान्तर भी १०० व हो जायगा। पात्रों के इस प्रकार के सम्बन्ध को श्रेणिबन्धन कहते हैं और इसके द्वारा हमें अधिक विभवान्तर प्राप्त हो सकता है।

दूसरा उपाय हम यह कर सकते हैं कि स्वर्णपत्र-विद्युद्दर्शक के निकट एक और चालक रख कर हम उसका समावेशन बढ़ा दें जिससे वह अधिक मात्रा में विद्युत् को ग्रहण कर सके। चित्र २५२ में ४ श्रेणिबद्ध सैलों की ताम्रपट्टिका त विद्युद्दर्शक के पट्ट प से जोड़ दी गई है। इस पट्ट पर पतला सा अभ्रक का टुकड़ा रख कर एक दूसरा धातु पट्ट क रख दिया गया है। क को यशदपट्टिका य से जोड़ दिया है और यहीं से पृथ्वी को भी स्पर्श करा दिया है। अतः क का विभव तो ० है और प का ४व। अब प को त से पृथक् कर दीजिए और क को भी विद्युद्दर्शक पर से उठा लीजिए। क के हटते ही प का समावेशन घट जायगा और जो विद्युत् उसमें विद्यमान थी वही अब उसका

चित्र २५२

विभव ४ व से बहुत अधिक बढ़ा देगी। सम्भवतः वह अब १००० व
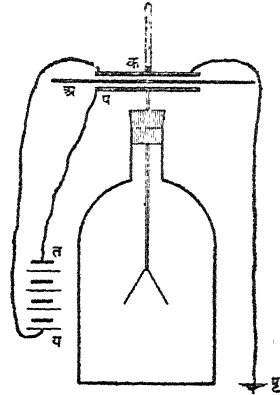
या इससे भी अधिक हो जाय। अतः यद्यपि केवल एक सैल की पट्टिकाओं का विभवान्तर यह विद्युद्दर्शक प्रदर्शित करने में असमर्थ था किन्तु इस १,००० व को उसके पत्र प्रतिसारित होकर तुरन्त ही दिखा देंगे।

यह प्रयोग देख लेने पर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जायगा कि वोल्टा की सैल की पट्टिकाओं पर कुछ न कुछ विद्युत् अवश्य ही विद्यमान रहती है और इस विद्युत् में तथा घर्षण के द्वारा उत्पन्न विद्युत् में अन्तर केवल यह होता है कि इसकी मात्रा बहुत थोड़ी होती है। और इसी कारण उनके विभव का प्रदर्शन भी कठिन होता है।

एक और भी विशेषता उल्लेखनीय है। यदि किसी चालक पर घर्षणज विद्युत् का आवेश हो और हम उसे उँगली से स्पर्श कर दें तो वह तुरन्त विद्युत्-रहित हो जाता है। उसकी विद्युत् बह कर पृथ्वी में चली जाती है। सैल की पट्टिका को स्पर्श करने पर भी अवश्य ही उसकी विद्युत् पृथ्वी में जाती होगी किन्तु आश्चर्य यह है कि उँगली हटाते ही उसका विभव पुनः ज्यों का त्यों हो जाता है। इसका कारण यह है कि यह विद्युत् यशद-पट्टिका पर गंधकाम्ल की रासायनिक क्रिया का परिणाम है और ज्यों ज्यों हम इस विद्युत् को वहाँ से हटाते जाते हैं त्यों त्यों नवीन विद्युत् उत्पन्न होती जाती है।

यदि हम किसी चालक तार के द्वारा सैल की ताम्रपट्टिका को यशद-पट्टिका से जोड़ दें तो दोनों के मध्यवर्ती विभवान्तर के कारण अवश्य ही इलैक्ट्रन यशद से ताम्र की ओर दौड़ेंगे। अर्थात् विद्युत् की धारा तांबे से यशद की ओर बहेगी। और यह प्रवाह जब तक रासायनिक क्रिया बन्द न हो जायगी तब तक बराबर जारी रहेगा। इसी दृष्टि से ताम्रपट्टिका को विद्युत्-पात्र का धन-पट्ट कहते हैं और यशद को ऋण-पट्ट और चित्र में इन्हें + और − चिह्नों से सूचित करते हैं। घर्षणज विद्युत् से भी धारा उत्पन्न होती है किन्तु वह क्षणिक ही होती है क्योंकि वहाँ रासायनिक क्रिया के समान विद्युत् को लगातार उत्पन्न करने का कोई साधन नहीं होता।

३२२—विद्युत्-धारा का चुम्बकीय प्रभाव। चित्र २९३ में उ द एक चुम्बकीय सूची है जो अपने स्वभावानुसार उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थित है। ठीक इसके ऊपर और इससे समानान्तर तांबे का एक तार है जिसका एक सिरा धनपट्ट से जोड़ दिया गया है और दूसरा सिरा ऋण-पट्ट से। ऊपर लिखे अनुसार इस दूसरे सिरे को ऋण-पट्ट से जोड़ते ही तार में विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगेगी। यद्यपि कोई भी चुम्बक या चुम्बकीय वस्तु उपस्थित नहीं है तथापि हम देखेंगे कि विद्युत् का प्रवाह प्रारम्भ होते ही चुम्बकीय सूची घूम जायगी।
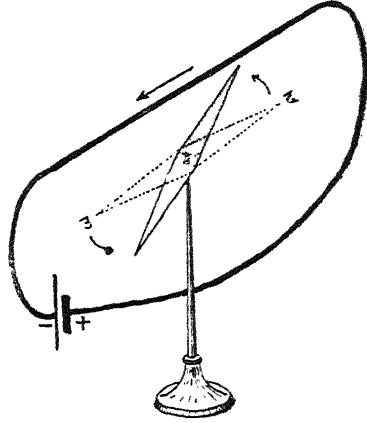
चित्र २९३

चित्र में उसका उत्तरी ध्रुव पीछे की ओर हट जायगा और दक्षिणी ध्रुव आगे की ओर। इससे स्पष्ट है कि तार में बहनेवाली विद्युत्-धारा में चुम्बकत्व का गुण है। यद्यपि तार तांबे का बना है किन्तु इस धारा की उपस्थिति के कारण वह ठीक इस प्रकार कार्य करता है मानों उसमें चुम्बकत्व हो। यह बात पहले-पहल डेनमार्क के ओर्स्टेड नामक विद्वान् ने सन् १८२० ई० में मालूम की थी।

किन्तु वह चुम्बकत्व ठीक साधारण लोहे के चुम्बकत्व के समान नहीं है। प्रथम तो यह तार हलके से हलके लोहे को भी आकर्षित नहीं कर सकता। चुम्बकीय सूची के ध्रुवों में से किसी को भी अपनी ओर नहीं खींच सकता। दोनों ही ध्रुवों को वह दूर हटाता मालूम होता है। किन्तु यह भी वास्तव में प्रतिसारण नहीं है। उपर्युक्त प्रयोग में तार के ठीक नीचे रखे हुए किसी भी ध्रुव पर यदि प्रतिसारक बल लगता तो वह अवश्य ही नीचे की ओर

हटता। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। उत्तर ध्रुव पीछे की ओर हटता है और दक्षिण ध्रुव आगे की ओर।
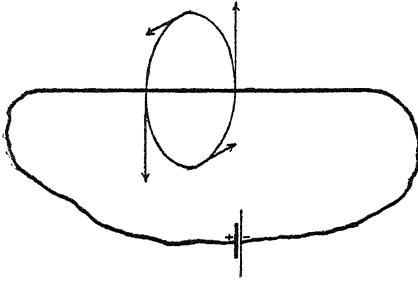
चित्र २५४

चित्र २५५

यदि चुम्बकीय सूची तार के ऊपर रखी जावे तो वह विपरीत दिशा में घूमेगी। अर्थात् अब तार का चुम्बकीय बल उत्तर ध्रुव को आगे की ओर हटा देगा और दक्षिण ध्रुव को पीछे की ओर। यदि सूची को तार के नीचे या ऊपर न रख कर तार के बराबर में रखें तो वह तनिक भी न घूमेगी। किन्तु ग़ौर से देखने पर ज्ञात होगा कि अब उसके ध्रुव ऊपर नीचे की ओर हटते हैं।

इन बातों से जान पड़ता है कि विद्युत्-धारा चुम्बकीय क्षेत्र और बल-रेखायें तो अवश्य उत्पन्न करती है किन्तु ये रेखायें तार में से नहीं निकलतीं। इन्हें तार के चारों ओर वृत्ताकार समझना चाहिए (चित्र २५४)। तब ही तार के ठीक नीचे रखा हुआ उतर ध्रुव पीछे की ओर हटेगा। ठीक ऊपर रखने से वह आगे की ओर हटेगा और बराबर में रखने से ऊपर या नीचे की ओर हटता दिखलाई देगा। दक्षिण ध्रुव का व्यवहार ठीक इससे
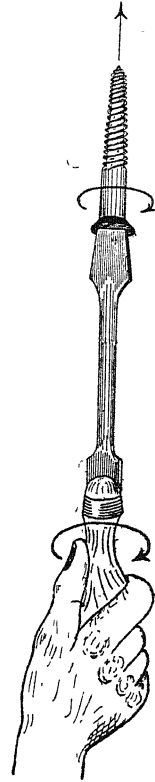
उलटा होगा । यदि तार के सिरों का सम्बन्ध सैल के पट्टों से बदल कर इसमें विद्युत्-धारा की दिशा बदल दी जाय तो भी सूची के ध्रुवों की गति-दिशा बदल जायगी ।

विद्युत्-धारा और तज्जन्य चुम्बकीय बल-रेखाओं की दिशाओं का सम्बन्ध बड़े महत्त्व का है क्योंकि यह चुम्बकीय प्रभाव न केवल धारा के अस्तित्व को जानने का सबसे सुगम उपाय है किन्तु इसी की सहायता से हमें धारा की दिशा का भी ज्ञान हो सकता है । इस सम्बन्ध को याद रखने के लिए निम्नलिखित दो युक्तियाँ बहुत अच्छी हैं:—

(१) जब हम पेंच को (चित्र २५५) बाणांकित दिशा में घुमाते हैं तब वह लकड़ी में अन्दर घुसता है । यदि उसे उलटी ओर घुमावें तो वह बाहिर निकल आता है । विद्युत्-धारा और चुम्बकीय बल-रेखाओं में वही सम्बन्ध है जो पेंच की अनुदैर्ध्य गति और उसके घुमाव में है । यह चित्र २५४ और २५६ से स्पष्ट है ।
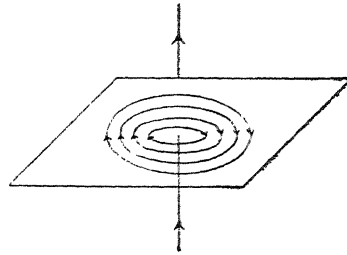
चित्र २५६
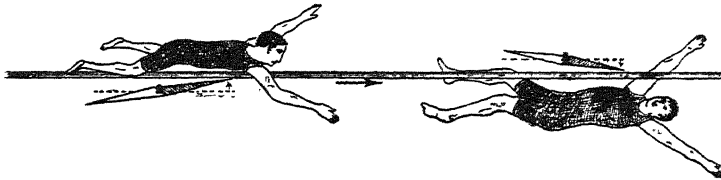
चित्र २५७

(२) यदि ऐसा समझा जाय कि कोई मनुष्य विद्युत्-धारा के साथ इस प्रकार बह रहा है कि उसका सिर आगे की ओर है और मुख चुम्बक

के उत्तर ध्रुव की ओर तो विद्युत्-धारा के कारण यह ध्रुव उक्त मनुष्य के बायें हाथ की ओर हट जावेगा। यह अम्पीयर का नियम कहलाता है।

चुम्बकीय सूची के उत्तर ध्रुव पर धारा का प्रभाव देखकर इन दोनों में से किसी भी एक युक्ति के द्वारा हम तुरन्त उसकी दिशा बतला सकते हैं।

३२३—विद्युद्वाहक बल। विद्युत् को एक स्थान से हटा कर अन्य स्थान पर ले जाने के लिए कुछ बल की आवश्यकता होती है। यह हम पिछले परिच्छेद में देख चुके हैं। सैल के ताम्र और यशद पट्टों को तार के द्वारा सम्बद्ध करने से इस तार में निरन्तर विद्युत् स्थानान्तरित होती रहती है। यद्यपि इस प्रवाह का स्पष्ट कारण यह है कि ताम्रपट्ट का विभव यशद पट्ट के विभव से अधिक है किन्तु वास्तविक कारण तो वह बल है जो इस अन्तर को बराबर सुरक्षित रख कर धारा को चलाता है। यह बल यशद पर गन्धकाम्ल की रासायनिक क्रिया का परिणाम है और इसे विद्युद्वाहक बल कहते हैं। जितना ही अधिक यह बल होगा उतना ही अधिक सैल के पट्टों के विभवों का अन्तर भी होगा। अतः इस बल का नाप भी इन पट्टों के विभवान्तर के द्वारा ही होता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि विद्युद्वाहक बल और विभवान्तर एक ही वस्तु नहीं हैं। पट्टों का विभवान्तर विद्युद्वाहक बल का परिणाम है।

जिस एकांक के द्वारा यह विद्युद्वाहक बल नापा जाता है उसका नाम सैल के आविष्कर्त्ता के स्मरणार्थ वोल्ट रखा गया है। उपर्युक्त वोल्टीय सैल का विद्युद्वाहक बल प्रायः १ वोल्ट का होता है।

३२४—वोल्टीय सैल की रासायनिक क्रिया। यद्यपि हम ऊपर लिख आये हैं कि यशद-पट्ट पर गन्धकाम्ल की रासायनिक क्रिया के कारण ही सैल में विद्युद्वाहक बल उत्पन्न होता है किन्तु यह आवश्यक है कि

हम इस क्रिया को अधिक अच्छी तरह समझ लें। साधारणतया शुद्ध यशद पर या ताम्र पर गन्धकाम्ल का कोई असर नहीं होता। सैल में भी दोनों पट्ट गन्धकाम्ल के घोल में पड़े रहते हैं तो भी उन पर कोई क्रिया नहीं होती। किन्तु तार के द्वारा दोनों पट्टों को जोड़ते ही रासायनिक क्रिया का प्रारम्भ होता है और ताम्रपट्ट पर से गैस के बुलबुले निकलते नज़र आते हैं। यह गैस हाइड्रोजन होती है। यद्यपि यह ताम्र-पट्ट पर से निकलती है किन्तु ताम्रपट्ट ज्यों का त्यों रहता है। उसका भार कम नहीं होता। यशद पट्ट घुलता जाता है। इससे जान पड़ता है कि वास्तव में यशद ही के घुलने से हाइड्रोजन उत्पन्न होती है किन्तु वह किसी न किसी प्रकार गन्धकाम्ल में ही ताम्र-पट्ट की ओर चली जाती है और वहां पहुँच कर ही बाहिर निकलती है। इस रासायनिक क्रिया का विद्युत् से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि बिना इस क्रिया के विद्युत्-धारा नहीं प्रवाहित होती और बिना विद्युत्-धारा के यह क्रिया नहीं हो सकती। किन्तु अशुद्ध यशद पर गन्धकाम्ल की क्रिया बिना ताम्रपट्ट से जोड़े ही प्रारम्भ हो जाती है। इसका कारण यह है कि अशुद्ध यशद में जो ताम्र आदि अन्य धातुयें मिली रहती हैं वे ही ताम्रपट्ट का कार्य्य कर देती हैं और वही यशद पट्ट के एक भाग से दूसरे भाग तक विद्युत् की धारा प्रवाहित करके रासायनिक क्रिया करा देती हैं। इसे स्थानीय क्रिया कहते हैं। इसी कारण सैल में शुद्ध यशद का प्रयोग किया जाता है क्योंकि यह व्यर्थ घुल घुल कर नष्ट नहीं हो जाता। जब हमें धारा की आवश्यकता होती है तभी हम दोनों पट्टों का सम्बन्ध करते हैं और तभी यशद ख़र्च होता है।

३२५—पारदरंजन। शुद्ध यशद बहुत महँगा होता है। अतः एक युक्ति ऐसी निकाल ली गई है कि जिससे अशुद्ध यशद भी अच्छी तरह काम में आ सकता है। पहले इसे गन्धकाम्ल में डुबा दिया जाता है और तब उसके पृष्ठ पर कुछ पारा डाल कर कपड़े से रगड़ देते हैं। इससे उस पर पारा चढ़ जाता है। अब इस पारद-रंजित यशद पर गन्धकाम्ल का कोई असर नहीं होता और सैल में यह ठीक शुद्ध यशद के समान काम करता है।

३२६—वोल्टीय सैल में त्रुटि। इस सैल में एक बड़ी त्रुटि है। ताम्रपट्ट पर जो हाइड्रोजन के बुलबुले निकलते हैं उनमें से अधिकतर उसी पर चिपक जाते हैं और धीरे धीरे ताम्रपट्ट इनसे आच्छादित हो जाता है। अब गन्धकाम्ल ताम्र को स्पर्श नहीं कर सकता और यह हाइड्रोजन भी एक नया विद्युद्वाहक बल विपरीत दिशा में उत्पन्न कर देता है। इन दोनों कारणों से सैल का विद्युद्वाहक बल घटता जाता है। और अन्त में यह विद्युत्-धारा प्रवाहित करने में सर्वथा असमर्थ हो जाती है। इस घटना को पट्टाच्छादन कहते हैं। यदि ब्रुश इत्यादि से इन बुलबुलों को पोंछ दिया जाय तो सैल पुनः अपना पूर्व विद्युद्वाहक बल प्राप्त कर लेती है। इस दोष को बिना कठिनाई के दूर करने के लिए अनेक उपायों का आविष्कार हुआ है जिन सबका उद्देश्य यही है कि रासायनिक क्रिया के द्वारा इस हाइड्रोजन को या तो ताम्रपट्ट पर से हटा दिया जाय अथवा उसे वहाँ पहुँचने ही न दिया जाय। इस पट्टाच्छादन को दूर करने के भिन्न भिन्न उपायों के अनुसार सैल भी कई प्रकार की बन गई हैं।
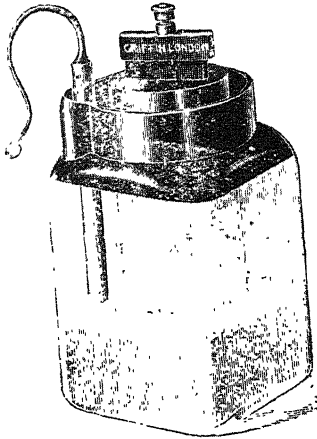
चित्र २५८

३२७—लैकलांश सैल। इस सैल में यशद-दण्ड नौसादर के विलयन में रख दिया जाता है। इसी विलयन में एक मिट्टी का सुषिर पात्र होता है जिसमें एक कार्बनपट्ट रखा होता है। इस कार्बनपट्ट के चारों ओर सुषिर पात्र में कार्बन के छोटे छोटे टुकड़ों में मैंगनीज़ डाई-ऑक्साइड का चूर्ण मिला कर भरा रहता है। हाइड्रोजन छिद्रों में से मिट्टी के पात्र में प्रवेश कर जब इस चूर्ण के पास पहुँचता है तो इस चूर्ण का आक्सिजन उस पर आक्रमण करता है और उसे

जल के रूप में परिणत कर देता है। किन्तु यह कार्य बहुत धीरे धीरे होता है। इसलिए इस सैल से लगातार बहुत देर तक विद्युत्-धारा नहीं प्राप्त हो सकती। किन्तु थोड़ा विश्राम मिलने से यह स्वयं ही दुरुस्त हो जाती है। अतः जहाँ विद्युत्-धारा की कभी कभी थोड़ी देर के लिए ही आवश्यकता होती है वहाँ ही इस सैल का उपयोग होता है। इसमें सुविधा यह है कि बहुत देख-रेख की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसका विद्युद्वाहक बल प्रायः १·४ वोल्ट होता है।

३२८—सूखी सैल। इसमें और लैकलांश सैल में वास्तव में कोई अन्तर नहीं है। केवल नौसादर के विलयन के स्थान में गाढ़ी पिष्टी भर दी जाती है ताकि इसे उलटने पलटने से विलयन पात्र में से निकल न जाय। इस पिष्टी में कुछ ज़िंकक्लोराइड भी मिला दिया जाता है। इसकी बनावट चित्र २५९ में दिखलाई गई है। बाहिर का बरतन यशद का बना है और यही ऋणपट्ट का काम देता है। सुपिर पात्र का काम सोख़्ते से लिया जाता है और सैल का मुँह राल से बन्द कर दिया जाता है। जब पिष्टी बहुत सूख जाती है तब यह सैल काम नहीं देती। इसलिए बहुधा इसके यशद पात्र में बहुत से छोटे छोटे सूराख़ करके इसे जल में डुबा कर थोड़ी देर रख देने से वह पुनः ठीक हो जाती है। इन सूराख़ों को मोम आदि से बन्द कर देना चाहिए नहीं तो पानी फिर जल्दी ही सूख जायगा।
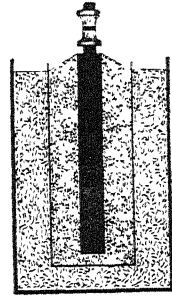
चित्र २५९

३२९—डैनियल सैल। इसमें हाइड्रोजन ताम्रपट्ट पर पहुँचने ही नहीं पाती। अतः इससे लगातार विद्युत्-धारा लेने पर भी इसके विद्युद्वाहक बल में कुछ भी कमी नहीं होती। इसका निर्माण चित्र २६० में दिखाया गया है। काँच या चीनी के बरतन में नीले तूतिये का घोल भरा है और इसमें ताम्रपट्ट रखा है। इसके बीच में मिट्टी के सुपिर पात्र में गन्ध-

काम्ल का तनु विलयन है और उसमें पारद-रंजित यशद पट्ट है। हाइड्रोजन सुषिर पात्र से निकल कर तूतिये के घोल में जाती है और वहाँ वह तूतिये के ताम्र का स्थान ग्रहण कर ताम्र को मुक्त कर देती है। यही ताम्र जाकर ताम्रपट्ट पर जम जाता है। इससे इस पट्ट में कुछ भी विकार उत्पन्न नहीं होता। इसका वि० वा० ब० (विद्युद्वाहक बल) १·०७ वोल्ट होता है।

चित्र २६०
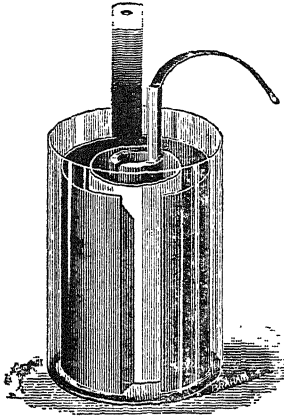
इनके अतिरिक्त अन्य भी कई प्रकार की सैलें होती हैं। किन्तु यहाँ उन सबका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। सभी में यशद किसी अम्ल में घुल कर हाइड्रोजन पैदा करता है और यह हाइड्रोजन किसी न किसी आक्साइडकारक पदार्थ के द्वारा नष्ट कर दी जाती है।

३३०—संचायक सैल। आगे चलकर हम देखेंगे कि विद्युत्-धारा को उत्पन्न करने का एक और उपाय है जो उपर्युक्त सैलों की अपेक्षा बहुत सस्ता है। सभी सैलों में यशद ख़र्च होता है किन्तु इस दूसरे उपाय में इंजन से डायनमो नामक मशीन चलाई जाती है और इस कार्य में केवल कोयला ख़र्च होता है। आजकल सब कल-कारख़ाने इसी प्रकार विद्युत् उत्पन्न करके चलाये जाते हैं। किन्तु बहुत से कामों के लिए यह उपाय सम्भव नहीं है। यथा मोटरगाड़ी। जब यह इधर-उधर दौड़ती रहती है तब उसका सम्बन्ध कारख़ाने से रखना सम्भव नहीं। अतः ऐसे उपाय की आवश्यकता है जो विद्युत्-शक्ति को कारख़ाने के इंजन तथा डायनमो से ले कर संचय कर ले और तब हम इच्छानुसार उसमें से विद्युत्-धारा प्राप्त कर

सकें। इस उपाय का नाम संचायक सैल है। इसके निर्माण तथा कार्य का वर्णन परिच्छेद ३८ में दिया गया है।

प्रश्न

(१) तनु गन्धकाम्ल में ताँबे और जस्ते की पट्टिका डुबाने से क्या होता है? दोनों पट्टिकाओं को ताँबे के तार के द्वारा जोड़ देने का क्या परिणाम होता है?

(२) स्थानीय क्रिया किसे कहते हैं और उसे रोकने का क्या उपाय है?

(३) वोल्टीय सैल से थोड़ी देर विद्युत्-धारा लेने पर उसका विद्युद्वाहक बल क्यों घट जाता है? इस कमी को न होने देने का क्या उपाय है?

(४) डेनियल सैल का वर्णन करो। अन्य प्रकार की सैलों से इसकी उत्तमता का क्या कारण है?

(५) वोल्टीय सैल में विद्युत्-धारा किस दिशा में प्रवाहित होती है? यह धारा सदा पूर्ण चक्र में ही क्यों चलती है?

(६) किसी छुपी हुई सैल के ध्रुवों से जुड़े हुए दो तार तुम्हारे सामने हैं। यह कैसे पता लगाओगे कि धन ध्रुव से कौन सा तार जुड़ा है?

(७) विद्युद्वाहक बल किसे कहते हैं? इसमें तथा विभवान्तर में क्या भेद है? वोल्टीय सैल में विद्युद्वाहक बल का स्थान कहाँ है?

(८) एक तार में प्रबल विद्युत्-धारा बह रही है। एक छोटे से लोहे के तार को इसके द्वारा चुम्बकित करना है। उसे कहाँ रखना चाहिए और उसका कौन सा सिरा उत्तर ध्रुव बनेगा यह चित्र में दिखलाओ।

परिच्छेद ३४

विद्युत्-धारा के चुम्बकीय गुण के उपयोग

३३१—वृत्ताकार धारा—पिछले परिच्छेद में सीधे तार में विद्युत्-धारा प्रवाहित होने पर जो चुम्बकीय बल-रेखायें उत्पन्न होती हैं उनका वर्णन किया गया है और वे चित्र २५६ में दिखलाई गई हैं। यदि यह तार मोड़ कर वृत्ताकार कर लिया जाय तो स्पष्ट ही है कि चुम्बकीय रेखायें चित्र २६१ के समान रूप धारण कर लेंगी। इन बल-रेखाओं को देखते ही समझ में आ जायगा कि यदि हम उस वृत्त के पीछे की ओर किसी चुम्बक का उत्तर ध्रुव रख दें तो वह वृत्त की ओर
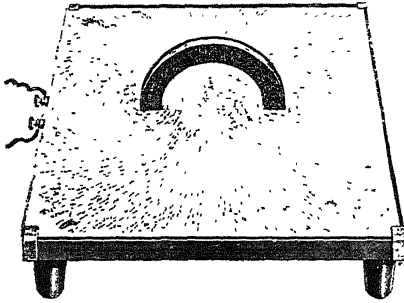
चित्र २६१

आकर्षित हो जायगा और यदि उसे सामने की ओर रखें तो वह प्रतिसारित हो जायगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यह वृत्ताकार विद्युत्-धारा भी एक प्रकार का चुम्बक है जिसका दक्षिण ध्रुव पीछे की ओर है और उत्तर ध्रुव सामने की ओर। यदि इस धारा की दिशा बदल दी जाय तो इस चुम्बक के ध्रुव भी बदल जायँगे।

विद्युत्-धारा की दिशा और चुम्बकीय ध्रुवों का सम्बन्ध भी याद रखना आवश्यक है। यों तो चित्र २५५ और २५७ में चुम्बकीय बल-रेखाओं की दिशा जानने का उपाय लिखा है। उससे ही यह सम्बन्ध भी तुरन्त ज्ञात हो सकता है। किन्तु उससे भी सुगम उपाय यह है कि वृत्त के एक पार्श्व को अपने सम्मुख रख के देखो कि उसमें विद्युत्-धारा किस दिशा में प्रवाहित हो रही है। उत्तर का उ अक्षर लिखने में क़लम जिस दिशा में चलती है यदि उसी दिशा में धारा भी प्रवाहित हो रही हो तो आपकी ओर का पार्श्व
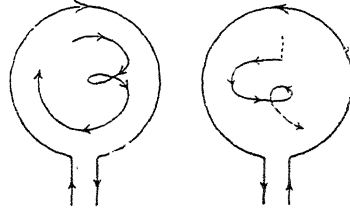
चित्र २६२

दक्षिण ध्रुव होगा। यदि दक्षिण का द अक्षर लिखने में क़लम की गति की दिशा में धारा चल रही हो तो समझना होगा कि आपकी ओर का पार्श्व उत्तर ध्रुव है। अर्थात् उ या द जिस अक्षर के अनुरूप धारा का प्रवाह हो ठीक उससे उलटा ही ध्रुव आपके सम्मुख होगा।

३३२—सर्पिल वेष्टन। यदि धारा-प्रवाहक तार एक रील पर लपेट दिया जाय तो स्पष्ट ही है कि जितने फेरे लिपटे हुए होंगे तार के उतने ही वृत्त बन जावेंगे। प्रत्येक वृत्त उपर्युक्त रीति से चुम्बक बन जावेगा और इन सब चुम्बकों के ध्रुव भी एक ही प्रकार अवस्थित होंगे। अतः परिणाम यह होगा कि सबका

चित्र २६३

चुम्बकीय बल एकत्रित होकर ख़ूब बढ़ जायगा। अर्थात् इस सर्पिल वेष्टन से एक प्रकार का लम्बा चुम्बक बन जायगा। यह लोहे को साधारण चुम्बकों की ही भाँति आकर्षित करेगा और उन्हीं की भाँति स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाने से उत्तर-दक्षिण दिशा ही में ठहरेगा। इसका भी एक सिरा उत्तर ध्रुव होगा और दूसरा दक्षिण ध्रुव।

३३३—विद्युत्-चुम्बक। उपर्युक्त सर्पिल वेष्टन के बीच में नरम लोहे की छड़ या नरम लोहे के तारों का मुट्ठा बांध कर रख देने से इस चुम्बक की प्रबलता और भी अधिक बढ़ जाती है क्योंकि अब लोहा भी इस वेष्टन की बल-रेखाओं के कारण चुम्बकित हो जाता है। ऐसे उपकरण को विद्युत्-चुम्बक कहते हैं। यह भी आवश्यकतानुसार लम्बे अथवा नाल के आकार के बनाये जाते हैं। इनमें दो विशेषतायें होती हैं जिनके कारण ये अन्य प्रकार के चुम्बकों की अपेक्षा बहुत अधिक उपयोगी प्रमाणित हुए हैं।

चित्र २६४

(१) प्रथम तो यह चुम्बक तभी चुम्बक का काम करता है जब कि उसके तार में विद्युत्-धारा प्रवाहित हो रही हो। इस कारण इसे मनुष्य अपनी इच्छानुसार चुम्बकत्वयुक्त अथवा चुम्बकत्वहीन बना सकता है।
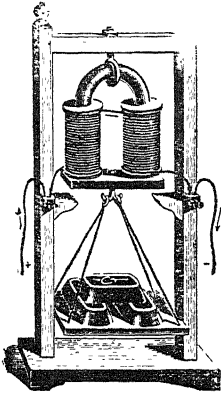
(२) दूसरे इसकी प्रबलता विद्युत्-धारा की प्रबलता तथा तार के फेरों की संख्या पर निर्भर है। अतः वेष्टन में तार के बहुत से फेरे लगा देने से तथा उसमें से बड़ी प्रबल धारा प्रवाहित करने से इस प्रकार के चुम्बक की प्रबलता बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है। अन्य प्रकार के कृत्रिम अथवा प्राकृतिक चुम्बक इतने प्रबल नहीं होते।

जिन कारखानों में सैकड़ों मन लोहा इधर से उधर ले जाना पड़ता है वहाँ उस लोहे को लादने उतारने की मेहनत विद्युत्-चुम्बक की सहायता से बिलकुल ही कम हो जाती है। बोझ उठानेवाले क्रेन की ज़ंजीर पर प्रबल विद्युत्-चुम्बक लटका दिया जाता है। उसे लोहे के ढेर से स्पर्श कराकर उसमें विद्युत्-धारा प्रवाहित कर दी जाती है। कई मन लोहा तुरन्त इसके चिपक जाता है और क्रेन ज़ंजीर को खींचकर उसे उठा लेता है और जहाँ चाहे ले

जाकर धारा का प्रवाह बन्द करते ही यह सब लोहा चुम्बक से अलग हो जाता है।

बहुधा लोहे का बुरादा अन्य वस्तुओं में मिल जाता है। इसे पृथक् करने के लिए भी विद्युत्-चुम्बक ही काम में लाये जाते हैं। ये एक पहिये में लगे रहते हैं और यह पहिया घूमता रहता है। प्रबन्ध ऐसा होता है कि जब इनके ध्रुव उस मिश्रण को स्पर्श करें उसी समय इनमें विद्युद्धारा प्रवाहित होती है और लोहे का बुरादा इनसे चिपक जाता है। जब ये घूम कर दूसरी ओर पहुँचते हैं तो धारा रुक जाती है और बुरादा भी इनसे अलग होकर गिर पड़ता है।

इनके अतिरिक्त विद्युत्-चुम्बक के उपयोग अनेक हैं। प्रायः बिजली का जितना प्रयोग कल-कारखानों में अथवा मनुष्य के आराम के लिए होता है वह सब इस प्रकार के चुम्बक ही के द्वारा होता है। इन उपयोगों में से मुख्य मुख्य यथास्थान इस पुस्तक में बतलाये जावेंगे। यहां पर केवल तार-द्वारा समाचार भेजने की रीति, टेलीफ़ोन, तथा बिजली की घण्टी ही का वर्णन किया जायगा।

३३४—विद्युत्-धारा से कृत्रिम चुम्बक बनाने की रीति।

अब यह समझ में आ गया होगा कि विद्युत्-धारा से कृत्रिम चुम्बक कैसे बनाये जाते हैं। फ़ौलाद की जिस छड़ का चुम्बक बनाना होता है उसे एक वेष्टन में रख देते हैं और उस वेष्टन में प्रबल धारा थोड़े समय के लिए चला देते हैं। इससे उपर्युक्त विद्युत्-चुम्बक के नरम लोहे की भांति ही यह फ़ौलाद भी चुम्बकित हो जाता है। यह चुम्बकत्व स्थायी होता है और धारा के बन्द होने पर इसका लोप नहीं होता क्योंकि हम पहले ही देख चुके हैं कि फ़ौलाद में निग्रहत्व बहुत अधिक होता है।

३३५—तार-प्रेषण। इसकी युक्ति चित्र २६९ में समझाई गई है। क वह स्थान है जहां से समाचार भेजना है और ख जहां पहुँचाना है। क से एक लोहे का तार लोहे के खंभों के सहारे ख तक लगा हुआ है।

यह चीनी के पृथग्न्यासकों के द्वारा खम्भों से पृथग्न्यस्त रहता है। ख पर यह तार एक विद्युत्-चुम्बक के वेष्टन से जुड़ा है। इस वेष्टन का दूसरा सिरा तार द्वारा एक धातुपट्ट से बँधा है जो पृथ्वी में कुछ गहरा गाड़ दिया जाता है। प्रेषक स्थान क पर भी इसी प्रकार का एक धातुपट्ट पृथ्वी में गड़ा है और इसका तार श्रेणीबद्ध डेनियलसैलों की बैटरी के एक ध्रुव से जुड़ा है। बैटरी का दूसरा ध्रुव एक कुंजी से लगा है। इस कुंजी का बटन ब दबाते
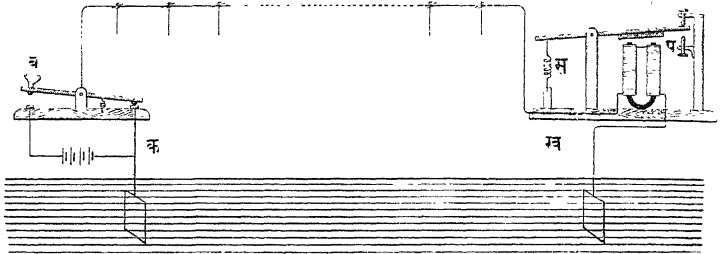
चित्र २६५

ही इस ध्रुव का खम्भेवाले तार से सम्बन्ध हो जाता है और बैटरी की विद्युत्-धारा खम्भेवाले तार में से जाकर ख के विद्युत्-चुम्बक में प्रवाहित हो जाती है। इस कुंजी को डेमी कहते हैं (चित्र २६६)। यहां यह स्मरण रखने की बात है कि धारा को ख से पुनः क की बैटरी तक पहुँचाने के लिए धातु का तार न लगा कर पृथ्वी ही से काम लिया जाता है। इससे लाभ यह है कि क से ख तक दो तारों के स्थान में एक ही तार से काम चल जाता है और खर्चा आधा रह जाता है।
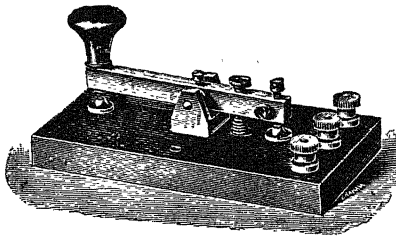
चित्र २६६

विद्युत्-चुम्बक में धारा प्रवाहित होते ही वह उसके समीप स्थित लोहपट्ट को खींच लेता है और यह ज़ोर से जाकर पेंच प से

टकराता है जिससे 'कट्' आवाज़ निकलती है। जितनी देर क पर डेमी का बटन दबा रहेगा उतनी ही देर यह लोहा भी चुम्बक से चिपका रहेगा। ज्यांही बटन पर का दाब हलका हुआ त्यों ही विद्युत्-धारा बन्द हुई और चुम्बक पर से लोहा हट कर पुनः अपने पूर्व स्थान पर जा पहुँचता है क्योंकि उसे एक सर्पिल कमानी से तुरन्त खींच लेती है। इस प्रकार जितनी बार क पर डेमी का बटन दबाया जायगा उतनी ही बार ख पर भी 'कट्' शब्द उत्पन्न होगा। यदि डेमी को जल्दी जल्दी दबाया जाय तो वहां भी जल्दी जल्दी कट्कट् होने लगेगी। कट्कट् शब्द उत्पन्न करनेवाले इस विद्युत्-चुम्बक के यन्त्र को शब्दजनक कहते हैं (चित्र २६७)।

चित्र २६७

अब समाचार भेजने के लिए केवल यह और आवश्यक है कि इस कट्-कट् का कुछ संकेत नियत कर लिया जाय। जिस संकेत का आज-कल समस्त संसार में प्रयोग किया जाता है उसका नाम मार्स संकेत है। नीचे के चित्र में भिन्न भिन्न अँगरेज़ी के अक्षरों के संकेत दिये गये हैं। इस चित्र में रेखा का अर्थ है डेमी को देर तक दबाये रहना और बिन्दु का अर्थ है तुरन्त दबा कर छोड़ देना। जो शब्द तारद्वारा भेजने हों उनके एक एक अक्षर के लिये इस संकेत-प्रणाली के अनुसार डेमी का बटन दबा दबा कर ख स्थान पर कट्-कट् शब्द उत्पन्न कर दिया जाता है जिसे सुनकर अभ्यस्त व्यक्ति मतलब समझ लेता है।
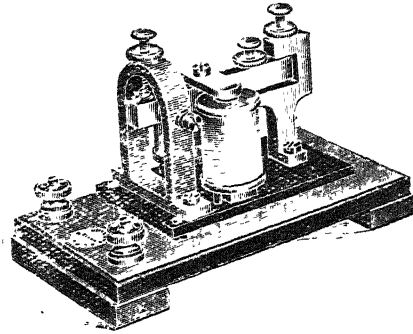
दोनों स्थानों के बीच की दूरी कितनी ही क्यों न हो इस विधि से समाचार सरलतापूर्वक भेजा जा सकता है। हां, दूरी अधिक होने पर बैटरी में सैलों की संख्या अधिक करना पड़ता है ताकि विद्युद्वाहक बल

अधिक हो जावे। विद्युत्-धारा इतने अधिक वेग से चलती है और डेमी को दबाने और दूसरे स्थान पर कट् शब्द निकलने के बीच का समय इतना

मार्स संकेत					
E	.	T	—		
I	. .	M	— —		
S	. . .	O	— — —		
H	. . . .	CH	— — — —	1	. — — — —
				2	. . — — —
				3	. . . — —
A	. —	N	— .	4	. . . . —
U	. . —	G	— — .	5	. . . . .
V	. . . —			6	— . . . .
W	. — —	D	— . .	7	— — . . .
J	. — — —	B	— . . .	8	— — — . .
Y	— . — —	L	. — . .	9	— — — — .
F	. . — .	Q	— — . —	0	— — — — —
P	. — — .	X	— . . —		
R	. — .	K	— . —		
C	— . — .				
Z	— — . .				

चित्र २६८

छोटा होता है कि उसे नापना भी कठिन है। साधारणतया हम यों ही समझ सकते हैं कि इधर बटन दबा कि उधर कट् हुआ।

ऊपर जो विधि दी गई है उसके द्वारा समाचार केवल क से ख की ओर भेजा जा सकता है। यदि ख स्थानवाला मनुष्य क को कुछ कहना चाहे तब क्या करे? क्या उसके लिए भी ठीक इसी प्रकार के दूसरे यन्त्र और दूसरे तार की आवश्यकता होगी? इसमें तो सन्देह नहीं कि ख पर एक डेमी और क पर एक विद्युच्चुम्बक अवश्य ही और रखना होगा। किन्तु दूसरे तार या दूसरी बैटरी की आवश्यकता नहीं होगी। ऐसी युक्तियाँ निकाल

ली गई हैं कि एक ही तार में से ५-६ समाचार क से ख की ओर और इतने ही ख से क की ओर एक ही साथ भेजे जा सकते हैं।

यही नहीं, अब इसकी भी आवश्यकता नहीं होती कि कोई मनुष्य बैठ कर कट्कट् को सुनता रहे। यद्यपि छोटे छोटे तार-घरों में अभी बाबू ही को यह काम करना पड़ता है किन्तु बड़े तारघरों में अब विद्युत्-धारा स्वयं ही समाचार को काग़ज़ पर छाप देती है।

जिन स्थानों के बीच में समुद्र पड़ता है वहाँ खम्भे गाड़ कर तार नहीं लटकाया जा सकता। ऐसी अवस्था में तार पर रबड़ का आवरण चढ़ा कर बड़े मज़बूत रस्से तैयार कर लिये जाते हैं जिन्हें केबल कहते हैं। इनका आवरण ऐसा होता है कि ये वर्षों समुद्र के पेंदे में पड़े रहते हैं किन्तु जल इनमें प्रवेश नहीं कर सकता।

३३६—टेलीफ़ोन। टेलीफ़ोन उस युक्ति का नाम है जिसके द्वारा मनुष्य सैकड़ों मील दूर से भी बातचीत कर सकता है। इसमें तार के समान संकेतों के द्वारा समाचार नहीं भेजा जाता किन्तु जिस प्रकार पास बैठे हुए मनुष्य से हम बातचीत करते हैं ठीक वैसे ही हम अपने मुख से शब्द उच्चारण करते हैं और दूसरा मनुष्य वही शब्द अपने कान से सुन लेता है। पहले इसमें शब्द विद्युत्-धारा का रूप धारण करता है, तब यह धारा तार में होकर दूरस्थ मनुष्य के पास पहुँच जाती है और वहाँ यह पुनः वही शब्द उत्पन्न कर देती है।

इस कार्य में दो भिन्न भिन्न यन्त्रों का प्रयोग होता है। एक प्रेषक और दूसरा ग्राहक। प्रेषक का मर्म चित्र २६९ में दिखलाया गया है। यह एक प्रकार का सूक्ष्म-शब्द-ग्राही है। ड एक डिबिया है जिसमें कार्बन के छोटे छोटे कण भरे हैं। इस डिबिया का ढक्कन कार्बन के ख़ूब पतले पटल का बना है। यह कार्बन-पटल डिबिया की धातु से पृथग्न्यस्त है किन्तु कार्बन-कणों को स्पर्श करता है। इसके ऊपर एबोनाइट की एक टोपी लगी है जिसके बीच में प्रायः एक डेढ़ इंच व्यास का एक छिद्र है। कार्बन-पटल से एक तार लगा

हैं और डिबिया के पेंदे से दूसरा। जब बैटरी से ये तार जोड़े जाते हैं तब कार्बन-कणों में होकर धारा बहती है।
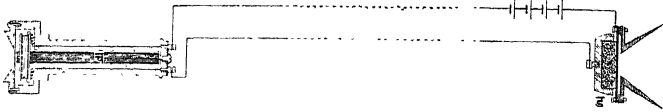
चित्र २६६

ग्राहक भी चित्र २६६ में दिखलाया गया है। च एक चुम्बक है जिसके ध्रुव पर तार का वेष्टन लिपटा है। इस ध्रुव के समक्ष पतला लोहे का पटल इस प्रकार रखा है कि केवल उसके किनारे ही दबे हैं। इस पर भी एबोनाइट की टोपी लगी है जिसके बीच में छेद है।

प्रेषक के तार ग्राहक के वेष्टन से जोड़ दिये जाते हैं। जब कोई प्रेषक के सम्मुख कुछ बोलता है तो शब्द-तरंगें जाकर कार्बन-पटल पर पड़ती हैं और उसमें कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं। इससे कार्बन-कण पर दबाव कभी घटता है और कभी बढ़ जाता है। अतः उनके प्रतिरोध में भी कमी बेशी होती है। परिणाम यह होता है कि विद्युत्-धारा का प्राबल्य भी शब्द-तरंगों के अनुरूप ही बदलता रहता है। यही शब्दानुरूप धारा ग्राहक के वेष्टन में प्रवाहित होकर उसके चुम्बकत्व को बदल बदल कर उसके लोह-पटल को कभी अधिक ज़ोर से खींच लेती है और कभी कम। इससे इस पटल में भी कम्पन उत्पन्न हो जाता है और यही कम्पन वायु में शब्द-तरंगें उत्पन्न कर देता है जिसे हम कान से सुन लेते हैं।
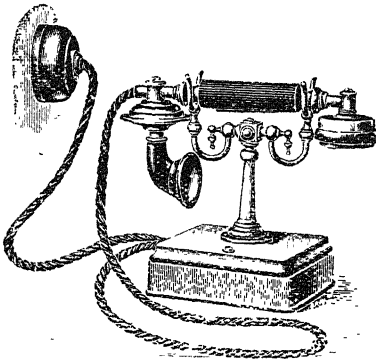
चित्र २७०

व्यवहार में प्रेषक और ग्राहक दोनों को मिलाकर बहुधा एक ही यंत्र बना दिया जाता है (चित्र २७०) और प्रत्येक स्थान पर ऐसा ही संयुक्त यंत्र रहता है और ऐसा प्रबन्ध रहता है कि दोनों ओर के मनुष्य बिना कठिनाई के बातचीत कर लेते हैं। बड़े बड़े शहरों में प्रायः प्रत्येक मकान तथा दूकान में ऐसा ही यंत्र लगा रहता है। एक बड़ा दफ़्र होता है जिसे टेलीफ़ोन-विनिमय-गृह कहते हैं। इसी दफ़्र से प्रत्येक यंत्र का सम्बन्ध रहता है। जब बात करना होता है तब इस दफ़्र के बाबू से कहकर अपना सम्बन्ध इच्छित मनुष्य से करा लेना होता है। कहीं कहीं यह सम्बन्ध भी स्वयमेव कर लिया जाता है। इसके लिए प्रत्येक प्रेषक-ग्राहक के साथ ही इसका भी प्रबन्ध होता है। ऐसी पद्धति को आत्म-प्रचालित टेलीफ़ोन कहते हैं।

३३७—बिजली की घंटी। तार-प्रेषण की विधि से यह तो आसानी से समझ में आ सकता है कि विद्युत्-चुम्बक जिस लोहे को खींचकर कट् कट् शब्द उत्पन्न करता है यदि उसी लोहे से एक मोटे तार में पीतल की छोटी सी गोली लगा दी जाय और उस गोली के निकट घण्टी इस प्रकार रख दी जाय कि ज्यों ही चुम्बक लोहे को खींचे यह गोली घंटी पर चोट मारे तो डेमी का बटन दबा कर हम जब चाहें तब ही घण्टी बजा सकते हैं। किन्तु इससे हमारा काम नहीं चल सकता क्योंकि एक बार बटन दबाने से केवल एक ही बार टन् शब्द उत्पन्न होगा इसलिए घंटी बजाने के लिए ऐसी युक्ति का प्रयोग किया जाता है कि जब तक बटन दबा रहे तब तक बराबर टन् टन् टन् शब्द होता ही रहे। चित्र २७१ से यह समझ में आ जायगा। विद्युत्-चुम्बक में धारा के प्रवाहित होने का मार्ग यह है। सैल से क में प्रवेश करके धारा विद्युत्-चुम्बक में जाती है। वहाँ से निकल कर ख और ग में पहुँचती है। ग पर की कमानी एक
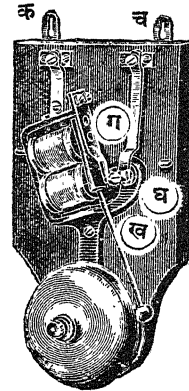
चित्र २७१

पेंच घ की नोक को स्पर्श करती है। अतः धारा व में प्रवेश कर च में होकर पुनः सैल में पहुँच जाती है। ख लोहे का बना है। अतः धारा प्रवाहित होते ही चुम्बक इसे खींच लेता है और घंटी पर गोली की चोट लगती है। किन्तु ख के खींचते ही ग घ से अलग हो जाता है और धारा का प्रवाह भी बन्द हो जाता है इसलिए ख पुनः अपने पूर्व स्थान पर लौट आता है। और ग घ से छू जाता है। धारा फिर बहने लगती है और चुम्बक भी पुनः ख को खींचकर घंटी पर चोट लगा देता है। पुनः ग घ से अलग हो जाता है। इसी प्रकार बराबर धारा चलती है और रुकती है और घंटी पर भी बराबर चोट लगती ही रहती है।

३३८—विद्युत्-धारा-मापक। विद्युत्-धारा के चुम्बकीय गुण के इन साधारण उपयोगों के अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक महत्त्व का एक और उपयोग है। यह तो विदित ही है कि जितनी अधिक प्रबल विद्युत्-धारा बहेगी उतना ही अधिक चुम्बकत्व भी उत्पन्न होगा। अतः यही चुम्बकत्व धारा की प्रबलता को नापने के काम में भी आ सकता है। चित्र २५३ के प्रयोग में चुम्बकीय सूची के विक्षेप कोण की नाप के द्वारा विद्युत्-धारा की प्रबलता की नाप हो सकती है। किन्तु उस प्रयोग में यह विक्षेप बहुत थोड़ा है और उसको नापना भी कठिन काम है। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यवस्था ऐसी हो कि चुम्बकीय सूची का विक्षेप अधिक हो सके। इसका सबसे सुगम उपाय चित्र २७२ में दिखलाया गया है। जिस तार में से विद्युत्
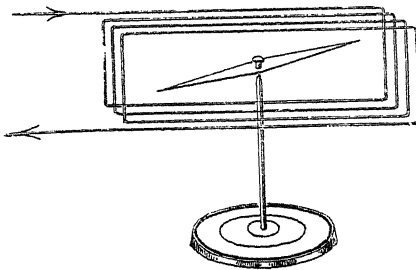
चित्र २७२

प्रवाहित हो रही है उस तार के कई फेरे देकर एक वेष्टन बना लिया गया है और चुम्बकीय सूची इसके बीच में रख दी गई है। विद्युत्-धारा बाणांकित

दिशा में चलती है और अम्पीयर की युक्ति के अनुसार चुम्बक से ऊपर चलनेवाली धारा और उससे नीचे चलनेवाली धारा दोनों चुम्बक को एक ही दिशा में घुमाती हैं तथा इस वेष्टन का प्रत्येक फेरा अपना बल चुम्बक पर समान भाव से लगाता है। अतः इन फेरों की संख्या बढ़ाने से विक्षेपक बल भी बहुत बढ़ सकता है और अत्यन्त निर्बल धारा के द्वारा भी चुम्बक का विक्षेप अधिक हो सकता है।

यह विक्षेप वास्तव में चुम्बकीय सूची को घुमा कर वेष्टन से लम्बरूप बनाने का प्रयत्न करता है क्योंकि सब तारों के संयुक्त बल की रेखाओं की दिशा चित्र २६१ के अनुसार वेष्टन-तल से लम्बरूप है। किन्तु पृथ्वी का चुम्बकत्व इस सूची को उत्तर-दक्षिण ही रखने की कोशिश करता है। अतः विक्षेप वहीं तक होता है जहाँ कि इन दोनों बलों का साम्य हो जाय। ऐसे उपकरण को विद्युत्-धारा-दर्शक या गैलवनोस्कोप कहते हैं। यह नाम बोलोन नगर के गालवनी नामक विद्वान् की स्मृति के लिए रखा गया है जिन्होंने सन् १७९० ई० में सबसे प्रथम रासायनिक क्रिया से उत्पन्न विद्युत् की घटना का निरीक्षण किया था।

चित्र २७२

यद्यपि इस विद्युत्-धारा-दर्शक के द्वारा विद्युत्-धारा के अस्तित्व का पता आसानी से चल जाता है और उसकी प्रबलता का भी कुछ आपेक्षिक अन्दाज़ा लग सकता है किन्तु यदि हमें विद्युत्-धारा की प्रबलता का संख्यात्मक माप करना हो तो अन्य मापों की भाँति ही हमें धारा का एकांक भी नियत करना होगा। इस काम के उपकरण को विद्युत्-धारा-मापक अथवा संक्षेप
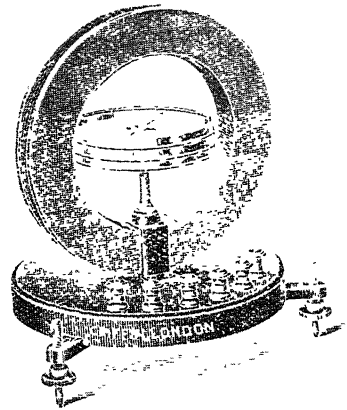
में धारा-मापक कहते हैं। इसका यूरोप-देशीय नाम गैल्वनोमीटर है।

चित्र २७३ में ऐसा ही एक गैल्वनोमीटर दिखलाया गया है। इसका वेष्टन वृत्ताकार है और चुम्बक ठीक इसके केन्द्र पर अवस्थित है। यह चुम्बक जान-बूझ कर बहुत ही छोटा रखा गया है ताकि इसके ध्रुवों पर जो बल विद्युत्-धारा के चुम्बकत्व का लगे वह ऐसा हो मानो ध्रुव ठीक केन्द्र पर ही अवस्थित है। इस बात का रहस्य चित्र २६१ की बल-रेखाओं पर दृष्टि डालने ही से समझ में आ जायगा। धारा का चुम्बकीय बल सर्वत्र एक सा नहीं है। अतः एकांक निश्चित करने के लिए केन्द्र पर के बल का उपयोग किया गया है और यहीं चुम्बक का ध्रुव वास्तव में रखना चाहिए। चुम्बक पर एक हलका और लम्बा निर्देशक चिपका दिया गया है जिससे विक्षेप अच्छी तरह नापा जा सके। इस धारा-मापक को काम में लाने के लिए पहले इसके वेष्टन का धरातल ऊर्ध्वाधर कर लेना चाहिए और उसे ठीक उत्तर-दक्षिण भी रख देना चाहिए। इस दशा में चुम्बक भी वेष्टनतल से समानान्तर हो जायगा। इस वेष्टन में धारा प्रवाहित होते ही चुम्बक घूम जायगा। चित्र २७४ में उ द धारामापक का चुम्बक है। इसका ध्रुव-प्राबल्य म है और विक्षेपकोण अ है। मान लो कि विद्युत्-धारा के तथा पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता क्रमशः फ और ह है। अब उसके दोनों ध्रुवों पर विद्युत्-धारा-बल तो पूर्व-पश्चिम की ओर लग रहा है और इसका परिमाण फ × म है। पृथ्वी का बल उत्तर-दक्षिण की ओर लग रहा है और उसका परिमाण ह × म है। पहला बल चुम्बक को दक्षिणावर्त्त घुमाता है और दूसरा विपरीत दिशा
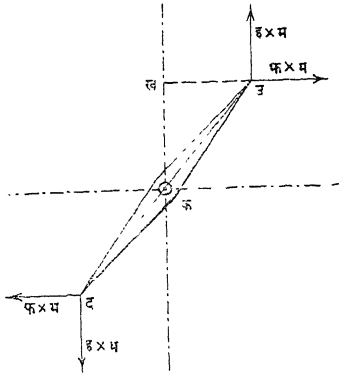
चित्र २७४

में। साम्य के लिए आवश्यक है कि दोनों बलों का घूर्ण बराबर हो। अतः

$$ह \times म \times उख = फ \times म \times कख$$

$$\therefore \frac{फ}{ह} = \frac{उख}{कख}$$

निष्पत्ति $\frac{उख}{कख}$ विक्षेपकोण अ की स्पर्शज्या कहलाती है।

$$अतः \; \frac{फ}{ह} = स्प० \; अ$$

$$\therefore फ = ह \times स्प० \; अ$$

इसलिए धारा की प्रबलता $ध \propto फ$

$$या \; ध \propto स्प० \; अ$$

$$या \; ध = क \times स्प० \; अ$$

यही कारण है कि इस धारा-मापक को स्पर्शज्या धारा-मापक कहते हैं।

उपर्युक्त सूत्र से यह भी परिणाम निकलता है कि धारामापक के चुम्बक की प्रबलता पर उसका विक्षेप निर्भर नहीं है। यह विक्षेप केवल फ और ह की निष्पत्ति पर ही निर्भर है क्योंकि यद्यपि चुम्बक की प्रबलता कम होने से धारा का विक्षेपक बल कम होता है किन्तु साथ ही साथ पृथ्वी का प्रत्यानयन बल भी उसी अनुपात से कम हो जाता है।

३३९—धारा का एकांक। उपर्युक्त समीकरण से सिद्ध है कि स्प० अ के द्वारा फ बड़ी सरलता से नापा जा सकता है। और इस युक्ति से यह भी प्रत्यक्ष प्रमाणित हो सकता है कि

(१) फ वेष्टन के फेरों की संख्या स का अनुक्रमानुपाती होता है।

(२) फ वेष्टन के फेरों की त्रिज्या त्र का उत्क्रमानुपाती होता है।

फ, स, त्र और ध के इस सम्बन्ध के द्वारा ही धारा का एकांक नियत किया गया है। वह इस प्रकार कि यदि फेरों की संख्या १ हो और वेष्टन की

त्रिज्या भी १ सम० हो तो धारा का एकांक वह है जो फ को २ π डाइन बना दे। यह एकांक परम एकांक कहलाता है। साधारण व्यवहार के लिए इसका दशमांश ही काम में आता है और उसे अम्पीयर कहते हैं। अम्पीयर फ्रांस देश के एक वैज्ञानिक का नाम है जिसने विद्युत्-धारा-सम्बन्धी कई नियमों का आविष्कार किया था।

३४०—प्रतिरोध। सुचालक और कुचालक पदार्थों का वर्णन पहले किया जा चुका है। सुचालक पदार्थ वे हैं जिनमें विद्युत् आसानी से प्रवाहित हो सकती है और कुचालक वे हैं जिनमें विद्युत् की धारा कठिनाई से चलती है। किन्तु यह प्रत्यक्ष ही है कि ये नाम आपेक्षिक हैं। प्रत्येक पदार्थ धारा के प्रवाह का प्रतिरोध करता है। यदि प्रतिरोध अधिक हुआ तो पदार्थ कुचालक कहलाता है और यदि कम हुआ तो सुचालक। चाँदी और ताँबा सबसे उत्कृष्ट सुचालक हैं। अन्य शुद्ध धातुएँ भी सुचालक हैं किन्तु इतनी अच्छी नहीं। मिश्रधातुओं की चालकता कम होती है। अतः जहां कहीं प्रतिरोध की आवश्यकता होती है वहां मिश्रधातुओं के तारों का ही प्रयोग होता है। जर्मनसिलवर, प्लेटिनायड, यूरिका, मैंगनिन, नाइक्रोम इत्यादि अनेक प्रकार के मिश्रधातु इसी कार्य के लिए बनाये गये हैं। इनमें से अन्तिम दो बड़े महत्त्व के हैं। मैंगनिन तो उन सब प्रतिरोधों के बनाने के काम में आता है जो वैज्ञानिक नाप तथा खोज में प्रयुक्त किये जाते हैं। इसका कारण यह है कि इसके प्रतिरोध का मान तापक्रम के परिवर्त्तन से अधिक नहीं बदलता। अन्य सब वस्तुओं के प्रतिरोध पर तापक्रम का बहुत असर होता है। नाइक्रोम बिजली के चूल्हे इत्यादि के लिए बड़ा उपयोगी है।

लकड़ी, मनुष्य-शरीर आदि कुचालक हैं। और रबड़, एबोनाइट, गंधक आदि इतने अधिक कुचालक हैं कि उन्हें प्रायः अचालक ही कह सकते हैं।

३४१—ओह्म का नियम। जिस प्रकार जल का प्रवाह उच्च तल से निम्नतल की ओर होता है और दो स्थानों के बीच की धारा का वेग उन

स्थानों के तलान्तर पर निर्भर है ठीक उसी प्रकार दो स्थानों के बीच में विद्युत्-धारा का प्राबल्य भी उन स्थानों के विभवान्तर का अनुपाती है। अर्थात् यदि विभवान्तर द्विगुण कर दिया जाय तो धारा का प्राबल्य भी द्विगुण हो जाता है। और यदि विभवान्तर घटा कर आधा कर दिया जाय तो धारा भी आधी ही हो जाती है। संक्षेप में यदि विभवान्तर व हो और धारा ध हो तो व और ध की निष्पत्ति स्थिर रहती है।

$$\frac{\text{व}}{\text{ध}} = \text{स्थिर} = \text{प्र}$$

यही ओह्म का नियम है। ओह्म नामक वैज्ञानिक ने ही सबसे पहिले इस नियम का आविष्कार किया था। इस निष्पत्ति का मूल्य उन दो स्थानों के मध्यवर्त्ती पदार्थ और उसके आकार पर निर्भर है और इसका नाम प्रतिरोध रखा गया है।

यह स्पष्ट है कि ओह्म के नियमानुसार व = ध × प्र तथा ध = $\frac{\text{व}}{\text{प्र}}$। अर्थात् व, ध और प्र इन तीनों में से कोई भी दो ज्ञात होने पर तीसरा तुरन्त ज्ञात हो सकता है।

जिस वस्तु के दो सिरों का विभवान्तर एक वोल्ट हो और उसमें बहने-वाली विद्युत्-धारा का मान एक अम्पीयर हो तो उसका प्रतिरोध एक एकांक होगा। इस प्रतिरोध के एकांक का नाम ओह्म रख दिया गया है। यदि इतने ही विभवान्तर से धारा का मान दो अम्पीयर हो तो प्रतिरोध $\frac{1}{2}$ ओह्म होगा।

३४२—विशिष्ट प्रतिरोध। प्रतिरोध चालक पदार्थ के आकार पर ही निर्भर है। जिस प्रकार चौड़ी नली में से अधिक पानी बह सकता है और तंग में से कम, उसी प्रकार यदि चालक पदार्थ का अनुप्रस्थ परिच्छेद अधिक हुआ तो उसका प्रतिरोध कम होता है और यदि यह परिच्छेद कम हुआ तो प्रतिरोध भी अधिक होता है। ऐसे ही लम्बाई का भी असर

समझना चाहिए। जितनी ही अधिक लम्बाई होगी उतना ही प्रतिरोध भी अधिक होगा। इसको सूत्ररूप में यों कह सकते हैं कि यदि चालक की लम्बाई ल हो, उसके अनुप्रस्थ परिच्छेद का क्षेत्रफल च हो तो प्रतिरोध

$$प्र = स \times \frac{ल}{च}$$

इस सूत्र में स का मूल्य चालक द्रव्य पर निर्भर है। इसे विशिष्ट प्रतिरोध कहते हैं। सुचालक पदार्थों के लिए स का मूल्य बहुत कम होता है यथा तांबे का स = $\frac{१.७७}{१०,००,०००}$ ओ० किन्तु रबड़, एबोनाइट, आदि कुचालक पदार्थों के लिए इसका मूल्य बहुत ही बढ़ जाता है।

इस सूत्र से स्पष्ट है कि धारावाहक तार की लम्बाई को द्विगुण कर देने से प्रतिरोध भी द्विगुण हो जाता है। किन्तु गोल तार का व्यास द्विगुण कर देने से उसके परिच्छेद का क्षेत्रफल चौगुना हो जाता है अतः प्रतिरोध घट कर चतुर्थांश-मात्र रह जाता है।

३४३—श्रेणी तथा पार्श्वबन्धन। यदि कई चालक इस प्रकार जोड़े जावें कि धारा एक से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में, और इसी
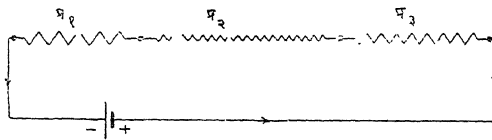
चित्र २७५

प्रकार उत्तरोत्तर प्रवाहित हो और यदि इनके प्रतिरोध क्रमशः $प्र_१$, $प्र_२$, $प्र_३$ इत्यादि हों तो स्पष्ट है कि इन चालकों के सिरों में विभवान्तर क्रमशः $व_१ = ध \times प्र_१$; $व_२ = ध \times प्र_२$ और $व_३ = ध \times प्र_३$ होगा। यदि सैल के पट्टों का विभवान्तर व हो तो यह भी स्पष्ट है कि

$$व = व_१ + व_२ + व_३$$

यदि तीनों चालकों का संयुक्त प्रतिरोध प्र हो तो व = ध × प्र। अतः प्र = $प्र_1 + प्र_2 + प्र_3$। ऐसे बन्धन को प्रतिरोधों का **श्रेणीबन्धन** कहते हैं (चित्र २७५)।

किन्तु यदि चालक इस प्रकार अवस्थित हों कि धारा विभाजित हो जाय और प्रत्येक चालक में से उसका एक एक अंश ही प्रवाहित हो तो यह बन्धन **पार्श्वबन्धन** कहलाता है। इसमें सबका संयुक्त प्रतिरोध घट जाता है। क्योंकि धारा को चलने के लिए अब अधिक रास्ते मिल जाते हैं। (चित्र २७६)। यदि सैल के धन ध्रुव से क तक धारा का मान ध है तो प्रत्यक्ष ही है कि क के पश्चात् इस धारा के तीन भाग हो जायँगे जिन्हें हम $ध_1$, $ध_2$, और $ध_3$ लिख सकते हैं अर्थात् ध = $ध_1 + ध_2 + ध_3$। अब यदि क और ख का विभवान्तर व हो तो

चित्र २७६

$$ध_1 = \frac{व}{प्र_1};\quad ध_2 = \frac{व}{प्र_2};\quad ध_3 = \frac{व}{प्र_3}$$

और यदि संयुक्त प्रतिरोध प्र हो तो $ध = \frac{व}{प्र}$

$$\text{अतः}\quad \frac{व}{प्र} = \frac{व}{प्र_1} + \frac{व}{प्र_2} + \frac{व}{प्र_3}$$
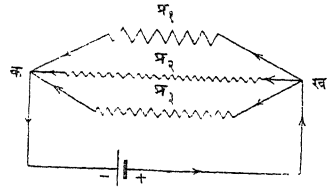
$$\text{या}\quad \frac{1}{प्र} = \frac{1}{प्र_1} + \frac{1}{प्र_2} + \frac{1}{प्र_3}$$

इस सूत्र के अनुसार यदि दो बराबर प्रतिरोध पार्श्वबन्धन में स्थित हों तो उनका संयुक्त प्रतिरोध प्रत्येक चालक के प्रतिरोध से आधा होगा और यदि तीन बराबर प्रतिरोध वाले चालक इसी प्रकार स्थित हों तो संयुक्त प्रतिरोध तृतीयांश मात्र रह जायगा।

३४४—प्रतिरोध-बक्स। चित्र २७७ के उपकरण का नाम प्रतिरोध-बक्स है। इसमें भिन्न भिन्न प्रतिरोध के कई वेष्टन श्रेणीबद्ध लगे रहते हैं। इच्छानुसार इनमें से किसी भी वेष्टन के दोनों सिरों से लगे हुए
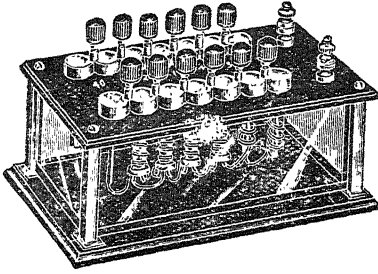
चित्र २७७

चित्र २७८

पीतल के टुकड़ों के बीच में पीतल की डाट लगा कर उसे क्षुद्र-कुंडलित किया जा सकता है (चित्र २७८)। इस प्रकार इस बक्स का प्रतिरोध ० से किसी महत्तम सीमा तक इच्छानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। प्रत्येक वेष्टन यूरिका अथवा मैंगनिन नामक मिश्र-धातु के तार का बना होता है और उसका प्रतिरोध बड़ी सावधानी से नापा हुआ होता है। यह बक्स प्रतिरोध नापने के लिए काम में आता है।
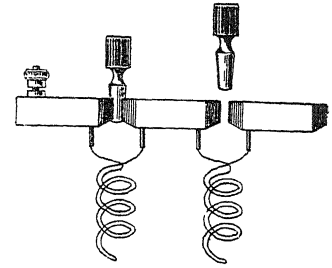
३४५—विसर्पी-प्रतिरोध। जब किसी वैद्युत-कुंडली में धारा को किसी नियत परिमाण का रखना आवश्यक होता है तब उस कुंडली का प्रतिरोध भी घटा बढ़ा कर इतना कर देना पड़ता है जितना कि ओह्म के नियमानुसार आवश्यक हो। इस कार्य के लिए चित्र २७९ के समान विसर्पी-प्रतिरोध काम में आता
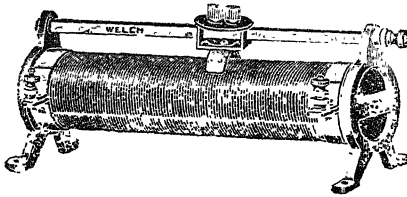
चित्र २७९

है। इसमें किसी अचालक वस्तु यथा स्लेट या चीनी मिट्टी की नली पर

प्रतिरोधी तार लपेटा रहता है और एक पीतल की पत्ती को इधर-उधर हटा कर इस वेष्टन के किसी भी स्थान से स्पर्श करा सकते हैं जिससे कुंडली-गत प्रतिरोधी तार की लम्बाई इच्छानुसार घटाई-बढ़ाई जा सकती है।

प्रश्न

(१) विद्युच्चुम्बक की प्रबलता किन किन बातों से बढ़ाई जा सकती है ?

(२) तार-द्वारा समाचार कैसे भेजे जाते हैं ? इसमें दोनों स्थानों के बीच में दो तारों की आवश्यकता क्यों नहीं होती ?

(३) बिजली की घंटी का मर्म-चित्र खींचो और उससे उसकी क्रिया समझाओ।

(४) स्पर्शज्या धारामापक बनाने की और उसके व्यवहार की विधि बतलाओ। इसके वेष्टन को चुम्बकीय याम्योत्तर में क्यों रखना पड़ता है? अम्पीयर की परिभाषा दो।

(५) सूक्ष्म-शब्दग्राही प्रेपक की क्रिया समझाओ।

(६) स्पर्शज्या धारामापक की चुम्बकीय सुई के विक्षेप पर उसके ध्रुव-प्राबल्य का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता ?

(७) वैद्युत चक्र में विद्युद्वाहक बल तथा धारा के प्राबल्य मे क्या सम्बन्ध है ?

(८) एक बिजली का लम्प २२० वोल्ट की ·२ अम्पीयर धारा से जलता है। उसका प्रतिरोध बताओ ?

(९) २ वोल्ट विभवत्व और ·५ ओह्म प्रतिरोधवाली एक सैल, १, २ और ३ ओह्म के प्रतिरोधों से श्रेणीबद्ध है। धारा का प्राबल्य तथा प्रत्येक प्रतिरोध के सिरों का विभवान्तर बताओ।

(१०) जब चक्र पूरा नहीं किया गया तब तो एक बैटरी का विभवत्व १२ वोल्ट है किन्तु जब उससे ६ अम्पीयर की धारा प्रवाहित की जाती है तब विभवत्व १० ही वोल्ट पाया जाता है। इसका कारण समझाओ और बैटरी का आन्तरिक प्रतिरोध मालूम करो।

(११) १०० ओह्म प्रतिरोधवाले धारामापक का १० ओह्म के तार से पार्श्व-बन्धन है और इसमें २ वोल्ट विभवत्व तथा ·१ ओह्म प्रतिरोधवाली सैल के द्वारा धारा चलाई जाती है। धारामापक में बहनेवाली धारा का प्राबल्य बताओ।

(१२) किसी तार का प्रतिरोध २०·५ ओह्म है। इससे कितने प्रतिरोध के तार का पार्श्वबन्धन करें कि संयुक्त प्रतिरोध २० ओह्म रह जाय ?

(१३) ५ सम० व्यासवाले १ मील लम्बे ताँबे के तार का प्रतिरोध बताओ यदि ताँबे का विशिष्ट प्रतिरोध १·७७ माइक्रो-ओह्म है। (माइक्रो$=\frac{१}{१,०००,०००}$)।

परिच्छेद ३५

विद्युत्-धारा पर चुम्बक का बल

३४६ चुम्बकीय क्षेत्र में धारामय तार की गति। पिछले परिच्छेद में हम देख आये हैं कि जब किसी तार में विद्युत्-धारा प्रवाहित होती है तब उसमें चुम्बकत्व का गुण उत्पन्न हो जाता है और ऐसे तार का वेष्टन चुम्बक के ध्रुवों को आकर्षित अथवा प्रतिसारित करता है। यद्यपि उस परिच्छेद में इस आकर्षण से चुम्बक का ध्रुव ही खिंच कर वेष्टन की ओर गमन करता हुआ देखा गया था तथापि यह समझना कठिन नहीं कि यदि चुम्बक स्थिर रखा जावे और वेष्टन के चलने में रुकावट न हो तो यह वेष्टन भी चुम्बक की ओर खिंच जावेगा। इसका कारण यह है कि आकर्षण या प्रतिसारण सदा पारस्परिक होता है। नीचे दिये हुए प्रयोगों से धारा की यह गति भली भाँति देखी जा सकती है।

चित्र २८०

काच की एक नली के दोनों सिरे काग से बन्द हैं (चित्र २८०)। नीचे के काग में छिद्र करके लम्ब-चुम्बक का एक ध्रुव अन्दर घुसा दिया गया और उसके चारों ओर पारा भरा है। इस पारे से बैटरी का ऋण-पट्ट जुड़ा है। ऊपर के काग के बीच में से ताँबे का मोटा तार लटक रहा है जिसका नीचे का सिरा पारे में डूबा हुआ है। इस तार को बैटरी के धन-पट्ट से जोड़ते ही उसमें होकर विद्युत्-धारा प्रवाहित होगी और वह चुम्बक के चारों ओर परिक्रमा करने लगेगा।
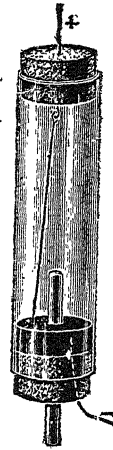
चित्र २८१ में इसी बात को दूसरे प्रकार से दिखलाने का उपकरण चित्रित है। इसको बारलो का चक्र कहते हैं। इसमें लकड़ी के एक तख्ते में छोटी सी खाँच कटी है और उसमें थोड़ा पारा भरा है। इस पारे में एक ताँबे के चक्र च की नोक डूबी है और एक नाल-चुम्बक इस प्रकार रख दिया गया है कि पारे में निमज्जित चक्र की नोक उसके दोनों ध्रुवों के बीच में रहे। ज्यों ही बैटरी के तार पारे और चक्र के आलम्बन से जोड़े जावेंगे
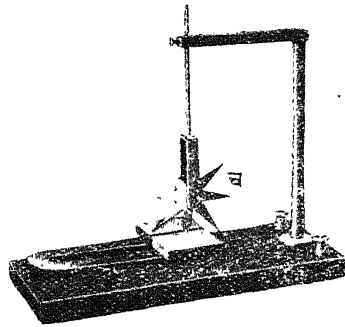
चित्र २८१

त्यों ही चक्र की नोक में से विद्युत्-धारा बहेगी और चुम्बक के बल के कारण तुरन्त यह नोक दाहिनी या बाईं ओर हट कर पारे से बाहर निकल जावेगी। किन्तु इसी समय दूसरी नोक पारे को स्पर्श कर लेगी और चुम्बक का बल इसे भी पहिली ही की नाईं हटा देगा। इस प्रकार यह पहिया बराबर घूमता रहेगा।

यद्यपि ये दोनों प्रयोग बहुत सरल हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हैं ये बड़े महत्व के। इन प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि यदि विद्युत्-धारा के इस गुण का हम भली भाँति प्रयोग करें तो हम ऐसा यन्त्र बना सकते हैं कि जिसके द्वारा बड़े बड़े कल-कारखाने भी बिजली से चलाये जा सकते हैं।

३४७—गति की दिशा। किन्तु ऐसे यन्त्र का वर्णन करने के पहिले एक बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक प्रतीत होता है। जिस प्रकार चित्र २५५-७ में विद्युत्-धारा की दिशा और उसके समीप स्थित चुम्बकीय ध्रुव की गति की दिशा दिखलाई गई है ठीक उसी प्रकार चुम्बकीय बल-रेखाओं की ओर विद्युत्-धारा मय चालक की गति की दिशाओं में भी परस्पर सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को स्मरण रखने का उपाय यह है कि अपने बायें हाथ के अँगूठे को तथा प्रथम दो अँगुलियों को (तर्जनी और मध्यमा को) इस प्रकार मोड़ कर रखो कि ये तीनों परस्पर समकोण बनावें (चित्र २८२)। अब मान लो कि तर्जनी चुम्बकीय बलरेखा की दिशा को सूचित करती है और मध्यमा धारा की दिशा को। तब अँगूठा धारावाही तार की गति की दिशा का द्योतक होगा। इसे वामहस्तनियम कहते हैं। इससे यह भी स्पष्ट ही है कि यदि चुम्बकीय बलरेखा अथवा विद्युत्-धारा इन दोनों में से किसी एक की भी दिशा उलट दी जाय तो गति की दिशा भी उलट जाती है। (चित्र २८०-२८१) के प्रयोगों में धारा की दिशा बदल कर अथवा चुम्बक के ध्रुवों को उलट कर यह बात आसानी से देख सकते हैं।
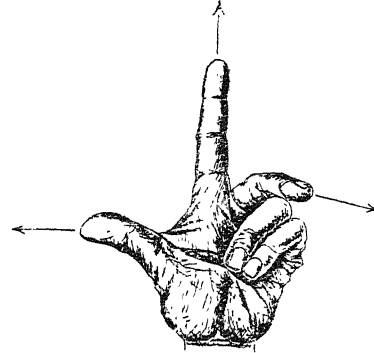
चित्र २८२

३४८—चल-वेष्टन विद्युत्-धारा-मापक। जिस प्रकार धारा-वाहक वेष्टन के द्वारा चुम्बक का विक्षेप धारा को नापने के लिए काम में आता है ठीक उसी प्रकार धारावाहक तार अथवा वेष्टन की उपर्युक्त चुम्बकोत्पादित गति से भी धारा की नाप हो सकती है। इस विधि का प्रयोग करनेवाले धारामापक को चल-वेष्टन विद्युत्-धारा-मापक कहते हैं

(चित्र २८३) । इसमें एक नाल चुम्बक के ध्रुवों के मध्य में तार का वेष्टन फास्फर ब्रांज़ चाँदी, आदि किसी धातु के अत्यन्त पतले तार के द्वारा लटकता रहता है । इसी तार के द्वारा विद्युत्-धारा वेष्टन में प्रविष्ट होती है और वेष्टन में प्रवाहित होकर नीचे की ओर लगी हुई ऐसे ही पतले तार की सर्पिल के द्वारा यह धारा बाहर निकल जाती है । इससे उपर्युक्त
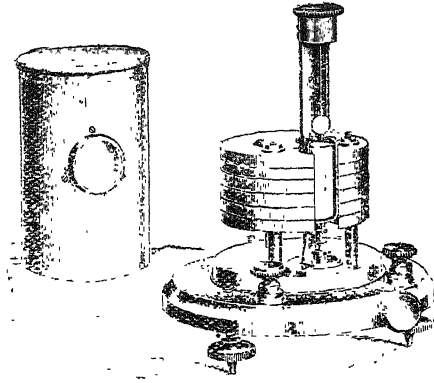
चित्र २८३

नियमानुसार वेष्टन का एक पार्श्व हमारी ओर हट जायगा और दूसरा पार्श्व दूसरी ओर अर्थात् वेष्टन आलम्बन की अक्ष के चारों ओर घूम जाता है । इसका परिभ्रमणकोण निर्देशक के द्वारा नाप लिया जाता है अथवा वेष्टन पर एक दर्पण चिपका कर उससे प्रकाश को परावर्त्तित करके भी यह विक्षेप नापा जा सकता है । इसी विक्षेप के द्वारा धारा के प्राबल्य का माप होता है ।

इस प्रकार के धारामापक में एक बड़ा गुण यह है कि इसे किसी दिशा-विशेष में रखने की आवश्यकता नहीं होती । क्योंकि इसमें पृथ्वी के चुम्बकत्व से कुछ सम्बन्ध नहीं है । नालचुम्बक वेष्टन को घुमा कर बलरेखाओं से लम्बरूप बनाने का प्रयत्न करता है । और आलम्बन-तार की ऐंठन इसका

विरोध करती है। जहाँ इन दोनों बलों का साम्य होता है वहीं वेष्टन ठहर जाता है।

३४९—अम्पीयर-मापक । साधारण व्यवहार के लिए उपर्युक्त धारामापक बहुत नाजुक है। एक तो इसका आलम्बन इतना पतला होता है कि थोड़ी ही असावधानी से वह टूट जाता है। दूसरे इसके व्यवहार में झंझट भी बहुत है। इन दिक़तों को दूर करने के लिए वेष्टन घड़ी के दोलन-चक्र की भाँति चूल पर लगा देते हैं और बाल-कमानी के द्वारा उसका विक्षेप नियंत्रित कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में इस धारामापक को उलटा सीधा चाहे जिस प्रकार रख कर काम में ला सकते हैं और वह आसानी से इधर-उधर ले जाया जा सकता है। इसके डायल पर भी कोण के अंशों को न लिख कर धारा के एकांक अर्थात् अम्पीयर अंकित कर दिये जाते हैं। इसे अम्पीयरमापक कहते हैं (चित्र २८४)। इसका प्रतिरोध बहुत ही कम रखा जाता है ताकि धारा के मार्ग में इस अम्पीयरमापक को रख देने से धारा के प्रवाह में अन्तर न पड़ने पावे।
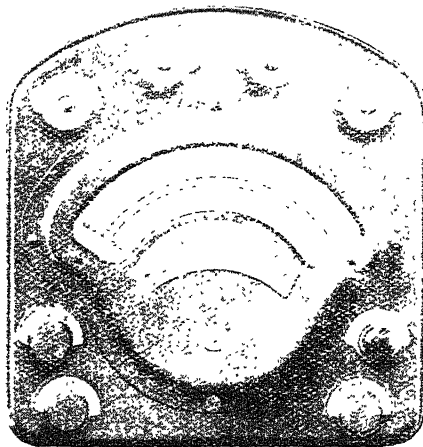
चित्र २८४

यदि ऐसे ही धारामापक से बहुत बड़ा प्रतिरोध एक श्रेणीबद्ध कर दिया जाय तो वह विभवत्व नापने के काम में आ सकता है। तब उसको वोल्ट-मापक कहते हैं। जिन दो बिन्दुओं के बीच का विभवान्तर नापना हो उन्हीं से इसके दोनों सिरे जोड़ दिये जाते हैं।

३५०—मोटर। चलवेष्टन-धारामापक का वेष्टन चुम्बकीय क्षेत्र में घूम तो जाता है किन्तु थोड़ा विक्षेप हो जाने पर उसकी गति रुक जाती है। इसका एक कारण तो अवलम्बन की ऐंठन या बालकमानी का तनाव है ही किन्तु एक और भी कारण है। यदि विक्षेप इतना हो जाय कि वेष्टन का दाहिना पार्श्व बाईं ओर तथा बायाँ पार्श्व दाहिनी ओर आ जाय तो स्पष्ट ही है कि वामहस्तनियम के अनुसार वेष्टन की गति भी उलट जायगी। इससे प्रकट है कि ज्यों ज्यों विक्षेप बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसे
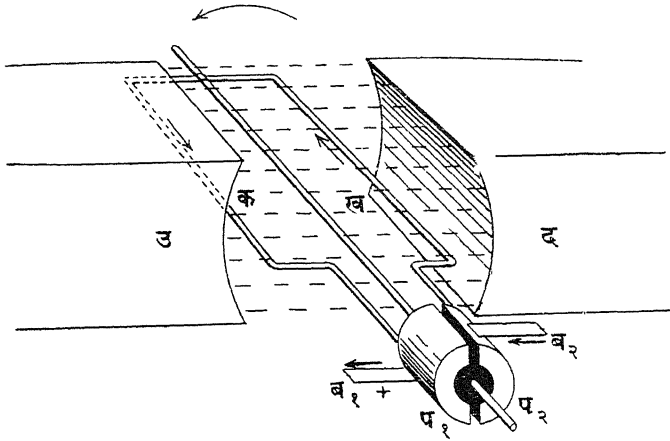
चित्र २८५

घुमानेवाला बल भी घटता जाता है। जब वेष्टन-तल चुम्बकीय रेखाओं से ठीक समकोण बनाता है तब इस बल का सर्वथा लोप हो जाता है और इसके पश्चात् यह बल उलट कर गति को रोक देता है। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि वेष्टन बराबर घूमता ही रहे तो यह आवश्यक है कि बल की दिशा को उलटने न दें। इसका उपाय यही है कि जिस समय यह बल उलटने लगे ठीक उसी समय हम वेष्टन में की विद्युत्-धारा की दिशा भी उलट दें। चित्र २८५ में यह उपाय बतलाया गया है। वेष्टन के दोनों

सिरे अर्द्धबेलनाकार पत्ती $प_1$, और $प_2$ से जुड़े हुए हैं। ये दोनों एक दूसरे को स्पर्श नहीं कर सकतीं। और इन पत्तियों को दो ब्रुश $ब_1$ और $ब_2$ स्पर्श करते हैं। बैटरी के तार इन्हीं ब्रुशों से जोड़ दिये गये हैं। विद्युत्-धारा की दिशा बाणों के द्वारा अंकित है और वेष्टन के घूर्णन की दिशा भी चित्र में दिखलाई गई है। जब घूम कर वेष्टन का तार क दक्षिण ध्रुव के सामने आ जावेगा और ख उत्तर ध्रुव के सामने तब $प_1$ का स्पर्श भी $ब_2$ से होगा और $प_2$ का $ब_1$ से। अतः वेष्टन में धारा की दिशा भी चित्रांकित दिशा से उलटी हो जायगी। फलतः उसके घूर्णन की दिशा न बदलेगी। इस प्रकार वेष्टन बराबर एक ही दिशा में घूमता रहेगा। $प_1$ और $प_2$ युक्त छिन्न-बेलन को दिक्-परिवर्त्तक कहते हैं।

विद्युन्मोटर का रहस्य यही है। अधिक शक्ति के लिए और अधिक वेग से घूमने के लिए इस उपकरण में कई सुधार कर दिये जाते हैं। प्रथम तो साधारण चुम्बकों के स्थान में विद्युच्चुम्बक लगा दिये जाते हैं जो बहुत अधिक प्रबल होते हैं। दूसरे एक वेष्टन के स्थान में कई वेष्टन भी लगा दिये जाते हैं। ऐसे ही मोटरों से पंखा चलता है, कल-कारखाने चलते हैं, कुएँ में से पानी खींचने के पम्प भी चल सकते हैं। वस्तुतः जहां कहीं भी गति उत्पन्न करने की आवश्यकता हो वहीं ऐसे मोटरों का प्रयोग होता है।

प्रश्न

(१) अम्पीयरमापक का विवरण दो। इसमें और वोल्टमापक में क्या भेद है?

(२) वैद्युत मोटर के मुख्य अवयवों का वर्णन लिखो और उसकी क्रिया समझाओ।

(३) चलवेष्टन-धारामापक कैसे बनाया जाता है?

परिच्छेद ३६

उपपादन

३५१—उपपादन । सन् १८३१ ई० में फ़ैरेडे ने एक बड़ा आश्चर्य-जनक आविष्कार किया था जिसके कारण जो विद्युत् केवल वैज्ञानिकों के अध्ययन की वस्तु थी वह सर्वसाधारण के नित्य व्यवहार की वस्तु बन गई। इस समय तक विद्युत्-धारा केवल वोल्टीय सैल के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती थी अतः उसमें व्यय भी अधिक होता था और अधिक शक्तिशाली धारा उत्पन्न हो भी नहीं सकती थी। किन्तु फ़ैरेडे के आविष्कार ने भाप के इञ्जन से उत्पन्न यांत्रिक गति को ही विद्युत्-धारा में परिणत कर देना सम्भव कर दिया और आज-कल संसार भर में यही यांत्रिक गति से उत्पन्न विद्युत्-धारा तरह तरह के उपायों से मनुष्य-समाज का जीवन सुखमय बना रही है।
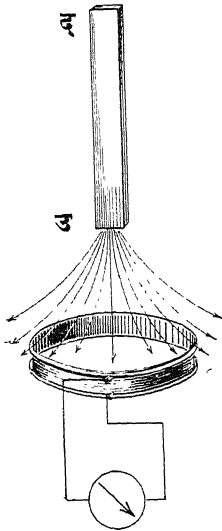
चित्र २८६

फ़ैरेडे का यह महान् आविष्कार था बहुत ही सरल। तार के एक वेष्टन को फ़ैरेडे ने एक विद्युत्-धारामापक से जोड़ दिया। तब एक लम्ब-चुम्बक लेकर उन्होंने उसका उत्तर ध्रुव शीघ्रता से वेष्टन के मध्य में घुसा दिया। तुरन्त ही धारा-मापक का निर्देशक घूम गया जिससे प्रत्यक्ष हो गया कि चुम्बक को वेष्टन में घुसाते समय विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है। यह सत्य है कि यह धारा अत्यन्त दुर्बल थी और उसका अस्तित्व भी क्षणिक ही था। किन्तु इसी दुर्बल और क्षणिक धारा ने आज संसार को चकित कर रखा है।

जब चुम्बक को वेष्टन में से पुनः बाहर खींच लेते हैं तब भी पहिले ही की भाँति एक क्षणिक धारा उत्पन्न होती है। किन्तु अब इसकी दशा विपरीत होती है। इसी प्रकार यदि दक्षिण ध्रुव

वेष्टन में घुसाया जाय तो भी उत्तर ध्रुव को घुसाने पर धारा की जो दिशा थी उससे विपरीत दिशा-युक्त धारा उत्पन्न होती है।

इस प्रयोग में चुम्बक के स्थान में ऐसे वेष्टन से भी काम चल सकता है जिसमें विद्युत्-धारा बह रही हो क्योंकि यह वेष्टन भी तो एक प्रकार का चुम्बक ही है। और धारामय वेष्टन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह निकट या दूर हटाया जाय। उसे एक ही स्थान पर स्थित रखकर भी यह प्रयोग किया जा सकता है। चित्र २८७ में $व_1$ और $व_2$ दो वेष्टन पास पास रखे हैं। $व_2$ धारामापक से सम्बद्ध है और $व_1$ एक सैल से कुंजी क के द्वारा इच्छानुसार जोड़ा जा सकता है। ज्यों ही कुंजी दबाई जाती है त्यों ही $व_2$ में क्षणिक धारा प्रवाहित होती है। और जब कुंजी को खोल कर $व_1$ में धारा-प्रवाह बन्द कर देते हैं उस समय भी $व_2$ में पहले से विपरीत दिशा में धारा-प्रवाह होता है।
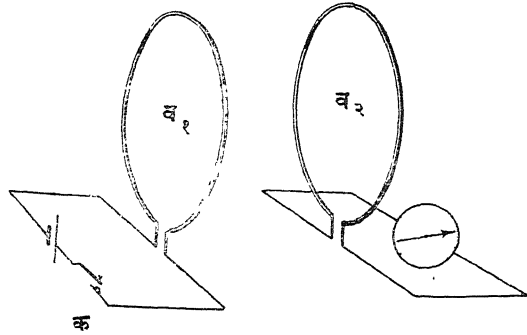
चित्र २८७

वास्तव में ये दोनों प्रयोग भिन्न नहीं हैं। यदि हम चुम्बक या धारा-युक्त वेष्टन को छोड़ कर तज्जन्य चुम्बकीय बलरेखाओं को लक्ष्य में रखें तो स्पष्ट हो जायगा कि $व_2$ में धारा उत्पन्न होने का कारण केवल उसमें होकर जानेवाली चुम्बकीय रेखाओं की संख्या का परिवर्त्तन है। इस परिवर्त्तन से ही विद्युद्वाहक बल उत्पन्न होता है। परिवर्त्तन जितना ही अधिक वेग से होगा उतनी ही अधिक प्रबल धारा भी उत्पन्न होगी। इस प्रकार विद्युत्-धारा की उत्पत्ति को उपपादन कहते हैं। और जो धारा उत्पन्न होती है उसे

उपपादित धारा कहते हैं। चित्र २८७ के प्रयोग में व$_1$ प्राथमिक वेष्टन कहलाता है और व$_2$ द्वैतीयिक वेष्टन।

३५२—उपपादित धारा की दिशा। वेष्टन में चुम्बक-ध्रुव को घुसाने से वेष्टन के तार में जो धारा प्रवाहित होती है उसकी दिशा जानने के लिए निम्नलिखित दक्षिण-हस्त-नियम बड़ा उपयोगी है:—

अपने दाहिने हाथ के अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा को परस्पर लम्ब-रूप कर लो। तब वेष्टन के तार के किसी भी विन्दु पर चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा में तर्जनी को रख दो और अँगूठे को चुम्बक की गति की दिशा में कर दो। अब मध्यमा धारा की दिशा बतलावेगी (चित्र २८८)।
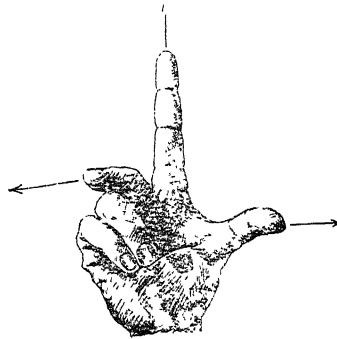
चित्र २८८

३५३—डायनमो। हम पहिले देख चुके हैं कि यदि किसी वेष्टन में विद्युत्-धारा प्रवाहित हो रही हो और उसके समीप कोई चुम्बक रखा हो तो उसमें आपेक्षिक गति उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् यदि चुम्बक स्थित हो तो वेष्टन अपने स्थान से हट जाता है और यदि वेष्टन स्थिर हो तो चुम्बक हट जाता है। उपपादन में ठीक इससे उलटा कार्य होता है। वेष्टन और चुम्बक अथवा चुम्बकीय बलरेखाओं की आपेक्षिक गति से विद्युद्वाहक बल उत्पन्न होता है और यदि वेष्टन का चक्र पूरा हुआ तो विद्युत्-धारा भी बहने लगती है।

विद्युन्मोटर (चित्र २८५) में पहिली बात का उपयोग है। चुम्बकीय क्षेत्र में स्थित वेष्टन में विद्युत्-धारा प्रवाहित करने से वेष्टन घूमने लगता है। यदि इस वेष्टन में धारा प्रवाहित न करके केवल उसे घुमाया जाय तो स्पष्ट ही है कि उसमें धारा का उपपादन हो जायगा। जब मोटर इस प्रकार धारा उत्पन्न करती है तो उसे डायनमो कहते हैं। वेष्टन को घुमाने का काम मनुष्य अपने हाथ से कर सकता है, इंजन के द्वारा कर सकता है अथवा जहां कहीं सुविधा हो जलप्रपात से भी कर सकता है। यह अन्तिम विधि सबसे सस्ती है क्योंकि इसमें कोयला इत्यादि कुछ भी नहीं जलाना पड़ता।
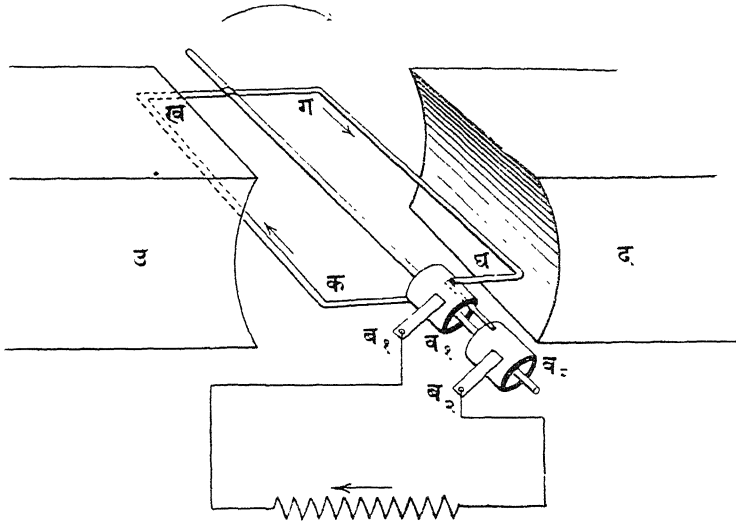
चित्र २८६

चित्र २८६ में डायनमो का कार्य कुछ अधिक विस्तार से समझाया गया है। क ख ग घ वेष्टन है जिसका तल प्रारम्भ में चुम्बकीय रेखाओं से समकोण बनाता है। इस वेष्टन के सिरे एक एक वलय $व_1$ और $व_2$ से

जुड़े हैं। इन वलयों पर कार्बन का एक एक ब्रुश लगा है। जब वेष्टन घूमता है तो $व_1$ और $व_2$ भी घूमते हैं किन्तु यह ब्रुश नहीं घूमते। वे केवल वलयों को स्पर्श ही करते रहते हैं। इन ही ब्रुशों से तार जोड़ कर वेष्टन का चक्र पूरा कर दिया गया है। जब वेष्टन को बाणांकित दिशा में घुमाया जाता है तो उसमें से जानेवाली बलरेखाओं की संख्या घटती है अतः उसमें विद्युत्-धारा उपपादित होती है। उसकी दिशा भी चित्र में दिखलाई गई है। जब वेष्टन बलरेखाओं से समानान्तर हो जाता है तब उसमें से जानेवाली बल-रेखाओं की संख्या शून्य हो जाती है। कुछ और घूमने पर यही रेखायें वेष्टन के दूसरे पार्श्व से प्रवेश करने लगती हैं। इसे हम यों कह सकते हैं अब रेखाओं की संख्या धन के स्थान में ऋण हो जाती है अर्थात् इनकी संख्या अब भी घटती ही जाती है। जब वेष्टन आधा चक्कर पूरा कर लेता है और क ख नीचे की ओर तथा ग घ ऊपर की ओर पहुँच जाता है तब इन रेखाओं की संख्या बढ़ने लगती है क्योंकि ऋण-संख्या घटना प्रारम्भ कर देती है। इस संख्या की वृद्धि का यह फल होता है कि उपपादित धारा की दिशा बदल जाती है। इस प्रकार वेष्टन के प्रत्येक चक्कर में धारा की दिशा दो बार बदलती है और ब्रुशों से जुड़े हुए बाहर के तार में धारा कभी एक ओर तथा कभी दूसरी ओर बहती है। इस प्रकार की धारा को प्रत्यावर्त्तक धारा कहते हैं। यद्यपि ऐसी ही धारा का आज-कल बहुत प्रचार हो गया है और प्रायः सभी कार्य इसके द्वारा हो जाते हैं किन्तु इसका कार्य समझना कुछ कठिन है।

अब तक साधारणतया एक दिशा में चलनेवाली धारा ही का प्रयोग अधिक था। इसलिए उपर्युक्त धारोत्पादक यन्त्र में ऐसी युक्ति भी लगानी पड़ी कि जिससे बाह्य तार में धारा की दिशा परिवर्त्तित न हो। यह युक्ति ठीक वही थी जो मोटर के वर्णन में बता चुके हैं। दो वलयों के स्थान में एक ही वलय के दो समान भाग करके एक एक भाग में वेष्टन का एक एक सिरा जोड़ दिया गया है। इससे ठीक जिस समय उपपादित धारा की दिशा परिवर्त्तित होती हो उसी समय ये वलयार्ध भी एक ब्रुश को छोड़ कर दूसरे

को स्पर्श कर लेते हैं (चित्र २९०)। इससे बाह्य तार में धारा का प्रवाह एक-

चित्र २९०
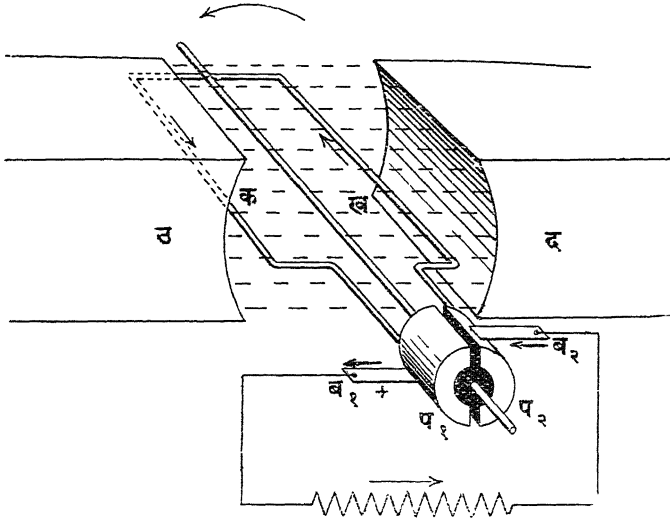
दैशिक ही रहता है। ऐसी एकदैशिक धारा को सरल धारा कहते हैं और उसको उत्पन्न करनेवाले यंत्र को डायनमो। प्रत्यावर्त्तक धारा को उत्पन्न करनेवाले यन्त्र का नाम प्रत्यावर्त्तक रख दिया गया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मोटर ही की भाँति डायनमो और प्रत्यावर्त्तक
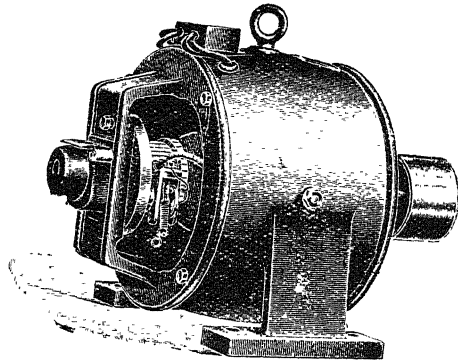
चित्र २९१

को भी अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए विद्युच्चुम्बकों का प्रयोग करना पड़ता है और घूमनेवाले वेष्टनों की संख्या भी बढ़ा देनी पड़ती है। चित्र २९१ में वास्तविक डायनमो दिखलाया गया है।

३५४—विभव-परिवर्त्तक। कई कामों के लिए यह आवश्यक होता है कि धारा का विभवत्व बहुत अधिक बढ़ा दिया जाय। यह कार्य भी उपपादन के द्वारा किया जाता है। प्रत्यावर्त्तक धारा का विभवत्व बढ़ाने के लिए जिस यन्त्र का प्रयोग होता है उसे आरोही विभव परिवर्त्तक कहते हैं। इसमें दो वेष्टन होते हैं। एक प्राथमिक जिसमें यह धारा चलाई जाती है और दूसरी द्वैतीयिक जिसमें अधिक विभवत्ववाली धारा उत्पन्न होती है। प्राथमिक वेष्टन के मध्य में नरम लोहे की पत्तियां भरी रहती हैं जिससे चुम्बकीय रेखाओं की संख्या बहुत अधिक हो जाय। द्वैतीयिक वेष्टन में तार के फेरे बहुत अधिक होते हैं। जितने ही अधिक फेरे होंगे उतना ही अधिक विभवत्व भी उत्पन्न होगा। यह द्वैतीयिक वेष्टन प्रायः प्राथमिक वेष्टन के ऊपर ही लपेट दिया जाता है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना होता है कि दोनों के बीच में तथा द्वैतीयिक के भिन्न भिन्न फेरों के बीच में पृथग्न्यासक अच्छा हो। अन्यथा विभवान्तर अधिक होने के कारण विद्युत्-स्फुलिंग निकल कर आग लग जाने का डर रहता है। अतः बहुधा विभव-परिवर्त्तक पाराफ़ीन या तेल में निमज्जित रहता है। इस प्रकार साधारण २०० वोल्ट की धारा से दस बीस लाख वोल्ट तक का विभवान्तर उत्पन्न कर लिया जाता है। ऐसी अवस्था में कई मील लम्बा तार द्वैतीयिक वेष्टन में लपेटना पड़ता है। चित्र २९२ में इस यंत्र के दो रूप दिखलाये गये हैं।
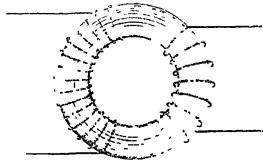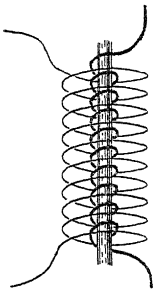
चित्र २९२

यदि द्वैतीयिक वेष्टन के फेरों की संख्या को प्राथमिक के फेरों की संख्या से कम कर दें तो विभवत्व कम भी हो सकता है। इस काम के विभव-परिवर्त्तक को अवरोही विभवपरिवर्त्तक कहते हैं।

सरल धारा का विभवत्व बढ़ाना ज़रा कठिन है। क्योंकि यदि विभव-परिवर्त्तक के प्राथमिक वेष्टन में सरल धारा चलाई जाय तो प्रारम्भ में
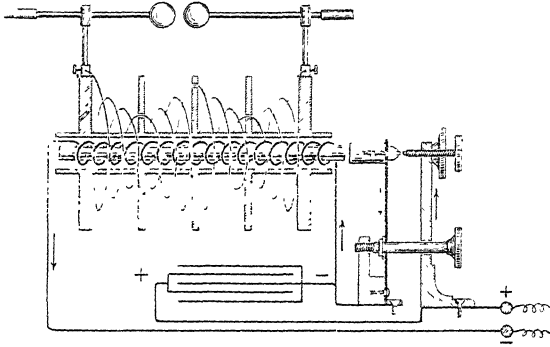
चित्र २६३

तो द्वैतीयिक में धारा उपपादित हो जायगी किन्तु क्षण भर के बाद ही उसका लोप हो जायगा। जब प्राथमिक धारा रोकी जायगी उस समय पुनः द्वैतीयिक में धारा उपपादित होगी किन्तु विपरीत दिशा में। किन्तु जब तक प्राथमिक धारा बराबर चलती रहेगी तब तक द्वैतीयिक में कुछ भी न होगा। अतः ऐसा उपाय करना आवश्यक है कि जिससे प्राथमिक धारा स्वयमेव चलती और रुकती रहे अर्थात् विच्छिन्न हो जाय। एक उपाय तो वही है जिससे बिजली की घण्टी बराबर बजती रहती है। इस उपाययुक्त विभव-परिवर्त्तक का नाम उपपादन-वेष्टन है (चित्र २६३)। और दूसरा उपाय यह है कि एक विद्युन्मोटर के द्वारा प्राथमिक धारा का बन्धन और मोचन होता रहे। वास्तविक उपपादन-वेष्टन चित्र २६४ में दिखलाई गई है।

ऐसे छोटे छोटे उपपादन-वेष्टन जिनमें विभवत्व बहुत अधिक नहीं हो जाता बहुधा डाक्टर लोग रोग-चिकित्सा में भी व्यवहार करते हैं।

इनका नाम चिकित्सा-वेष्टन है। इनके द्वारा बहुत हलकी प्रत्यावर्त्तक धारा मनुष्य-शरीर में चलाई जाती है जिससे पेशियों में संकोच तथा प्रसार होता
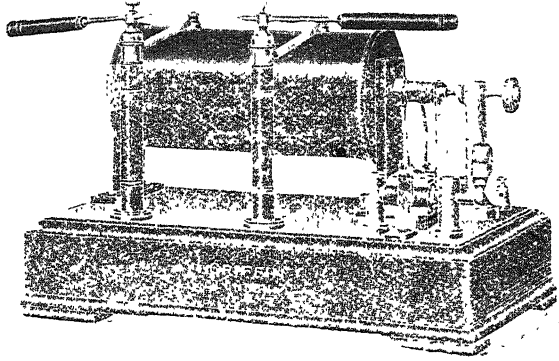
चित्र २९४

है। इससे उन्हें उत्तेजना मिलती है और वे पुनः अपना स्वाभाविक कार्य करने में समर्थ हो जाती हैं।

प्रश्न

(१) विद्युच्चुम्बकीय उपपादन को समझाने के लिए कैसे प्रयोग करोगे ?

(२) नालचुम्बक के ध्रुवों के मध्य में स्थित वेष्टन को घुमाने से उसमें जो धारा उपपादित होती है उसकी दिशा और उसका मान लेखाचित्र के द्वारा प्रदर्शित करो।

(३) सबसे सरल प्रकार की डायनमो का वर्णन लिखो और उसकी क्रिया समझाओ।

(४) विभवपरिवर्त्तक क्या होता है और उसका व्यवहार सरल धारा के साथ क्यों नहीं हो सकता ?

(५) सरल धारा से बहुत उच्च विभवत्व प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

(६) उपपादनवेष्टन का रहस्य समझाओ। चिकित्सा के लिए कैसा उपपादन-वेष्टन काम में आता है ?

परिच्छेद ३७

विद्युत् से ताप और प्रकाश की उत्पत्ति

३५५—विद्युत्-धारा से ताप की उत्पत्ति। जब किसी तार में विद्युत्-धारा बहती है तो उसे प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है और जिस प्रकार साधारण वस्तुओं की गति में घर्षण के कारण शक्ति का व्यय होता है और ताप की उत्पत्ति होती है ठीक उसी प्रकार विद्युत् के प्रवाह में भी शक्ति का व्यय होता है। यह शक्ति या तो किसी बैटरी की रासायनिक शक्ति होती है या डायनमो को चलानेवाले इंजन के कोयले की शक्ति होती है। प्रतिरोध पर विजय प्राप्त करने में यह शक्ति विद्युत्-रूप का परित्याग करके ताप-रूप में परिणत हो जाती है। इस बात की परीक्षा बड़ी सरल है। पतले तार का छोटा सा वेष्टन बना कर पानी में डुबा दो और इस वेष्टन में प्रबल विद्युत्-धारा चला दो। थोड़ी ही देर में पानी गरम हो जायगा और अन्त में उबलने भी लगेगा। यदि पानी तौला हुआ हो और नियत समय तक धारा चला कर तापक्रम की वृद्धि नाप लें तो यह भी ज्ञात हो सकता है कि कितनी धारा से कितना ताप प्रतिसैकंड उत्पन्न होता है। ऐसे ही प्रयोगों से सिद्ध हो गया है
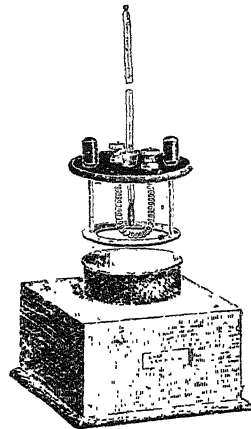
चित्र २६९

कि यदि तार का प्रतिरोध प्र ओह्म हो, धारा का मान ध अम्पीयर हो तो स सैकंड में उत्पन्न हुए ताप का मान होगा

$$त = \frac{ध^2 \times प्र \times स}{४.२} \text{ कलारी}$$

ओह्म के नियम के अनुसार प्र × ध = व = विभवान्तर

अतः ताप के मान का दूसरा सूत्र यह भी है ।

$$त = \frac{व \times ध \times स}{४.२}$$

यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि ध विद्युत् की वह मात्रा है जो प्रतिसैकंड तार में होकर चलती है और व विभवान्तर है अर्थात् एक एकांक विद्युत् के द्वारा होनेवाले कार्य का परिमाण है । अतः व × ध बराबर है उस कार्य के जो ध एकांक विद्युत् प्रतिसैकंड करती है । यही धारा के प्रति-सैकंड के कार्य का परिमाण है । इसे सामर्थ्य कहते हैं । एक अम्पीयर की धारा के एक वोल्ट विभवान्तर में चलने से जो सामर्थ्य होती है वही इस सामर्थ्य का एकांक माना जाता है और उसका नाम वाट रखा गया है अतः ध अम्पीयर और व वोल्ट की धारा की सामर्थ्य व × ध वाट हुई । धारा के पूरे कार्य अथवा सामर्थ्य को समय के सैकंडों से गुणा करने से समस्त शक्ति का परिमाण ज्ञात होता है । एक वाट की धारा से एक सैकंड में जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उसे जूल कहते हैं । ऊपर वाले प्रयोग में उत्पन्न शक्ति का मान ब × ध × स जूल है ।

३५६ बिजली का चूल्हा । इस प्रकार विद्युत्-धारा से ताप की उत्पत्ति बड़ी लाभदायक है । घर में भोजन बनाना, पानी गरम करना, सर्दी के मौसिम में कमरे को गरम रखना इत्यादि सब ही काम भिन्न भिन्न प्रकार के बिजली के चूल्हों से बड़ी सरलता और सफ़ाई के साथ हो जाते हैं ।

न तो इनमें धुआँ होता है, न बरतन मैले होते हैं और न ये वायु को दूषित करते हैं। इनको जलाने के लिए न दियासलाई चाहिए और न अन्य किसी प्रकार का झंझट ही करना पड़ता है। केवल इस प्रकार के चूल्हों के तार में धारा का प्रवाह कर देने ही से तुरन्त काम हो जाता है (चित्र २६६)।
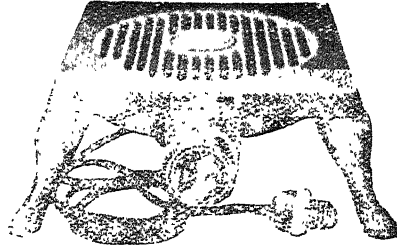
चित्र २६६

३५७—बिजली की रोशनी। शहरों में और रेलगाड़ी में जो बिजली की रोशनी हम देखते हैं वह भी विद्युत्-धारा से उत्पन्न ताप के द्वारा ही पैदा होती है। प्रकाश उत्पन्न करने के जितने भी साधन मनुष्य के पास हैं प्रायः सभी में कोई न कोई वस्तु अत्यन्त गरम की जाती है। अधिक गरम होने पर पहिले लाल रंग का प्रकाश उसमें से निकलने लगता है और यदि उससे भी अधिक गरम कर दें तो उस वस्तु में से क्रमशः वर्णपट के अन्य रंगों का प्रकाश भी निकलने लगता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह वस्तु श्वेत प्रकाश उत्पन्न करती हुई मालूम होती है। अतः यदि किसी तार में इतनी प्रबल विद्युत्-धारा चलाई जाय कि उसका तापक्रम प्रायः २,०००° श तक बढ़ जाय तब स्पष्ट ही है कि उसमें से श्वेत प्रकाश निकलने लगेगा। किन्तु ऐसी अवस्था में अन्य दीपकों की भाँति इस दीपक में भी गरम चीज़ जल जायगी अर्थात् वायु की आक्सिजन उस तार पर अपनी क्रिया करके
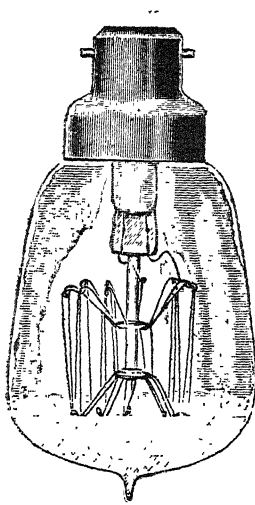
चित्र २६७

उसका नाश कर देगी और साधारण दीपक के तेल और बत्ती की नाईं इस दीपक का तार भी हमें बदलते रहना होगा। इस त्रुटि को दूर करने के लिए बिजली के लम्पों का तार काँच के पात्र में बन्द रहता है और इस पात्र में से वायु निकाल कर या तो वह सर्वथा रिक्त कर दिया जाता है या उसमें नाइट्रोजन जैसी क्रियाहीन गैस भर दी जाती है। दोनों प्रकार के लम्प आज कल प्रचलित हैं।

सबसे पहिले ऐसा लम्प अमेरिका के सुप्रसिद्ध एडिसन ने सन् १८८० के लगभग बनाया था और बहुत काल तक ऐसे लम्पों में कार्बन का तार लगाया जाता था। किन्तु उसका तापक्रम प्रायः १८००° श से अधिक करने से वह नष्ट हो जाता है। आज-कल टंगस्टन नामक धातु के तार ही का रिवाज है जो प्रायः २०००° श तक गरम किया जा सकता है। अतः इस तार के प्रयोग से उतनी ही बिजली से प्रायः तीन चार गुणा अधिक प्रकाश प्राप्त हो जाता है। और लम्प में नाइट्रोजन भर देने से तो यह और भी दो गुणा बढ़ जाता है क्योंकि अब तापक्रम प्रायः २४००° श तक पहुँचने पर भी तार पिघल कर नष्ट नहीं होता। इन गैस-पूर्ण लम्पों को अर्धवाट लम्प भी कहते हैं क्योंकि इनमें प्रति एक बत्ती-बल प्रकाश के लिये प्रायः आधे वाट की विद्युत्-सामर्थ्य की आवश्यकता होती है। वायुरिक्त लम्प में एक वाट प्रति बत्ती-बल ख़र्च होता है। इस हिसाब से २०० वोल्ट की धारा से जलनेवाले ५० बत्ती-बलवाले टंगस्टन लम्प के लिए प्रायः १/४ अम्पीयर की धारा की आवश्यकता है। अतः ऐसे लम्प का प्रतिरोध ८०० ओह्म होगा। इतने ही तीव्र प्रकाश के अर्धवाट लम्प में केवल १/८ अम्पीयर की धारा ही पर्याप्त होगी और उसका प्रतिरोध १६०० ओह्म होगा।

लम्प	तापक्रम	धारा की सामर्थ्य प्रति १ बत्ती-बल.
कार्बन लम्प	१८००° श	३-४ वाट
टंगस्टन लम्प (शून्य)	२०५०° श	१ वाट
,, ,, (गैसपूर्ण)	२४००° श	१/२ वाट

३५८—आर्क लम्प। जब बहुत ही अधिक तीव्र प्रकाश की आवश्यकता होती है तब बहुधा उपर्युक्त लम्पों के अतिरिक्त एक दूसरे ही प्रकार के लम्प का प्रयोग होता है। इसे आर्क लम्प कहते हैं। इसमें कार्बन की दो छड़ें डायनमो के दोनों सिरों से जोड़ दी जाती हैं। जब तक यह छड़ें आपस में छूती नहीं तब तक तो विद्युत्-धारा चलती नहीं। किन्तु यदि
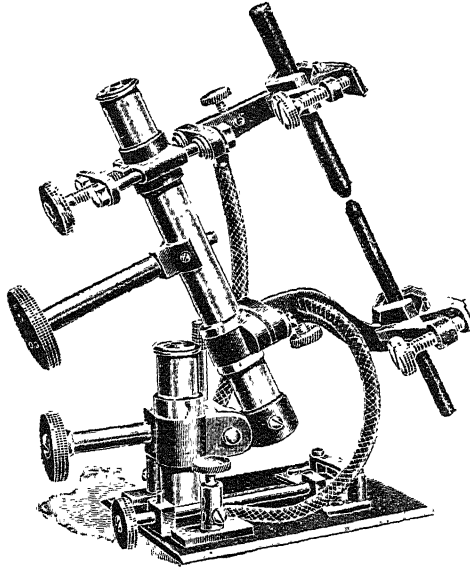
चित्र २६८

इन्हें क्षण भर के लिए मिला दें तो बड़ी प्रबल धारा इनमें होकर बहती है और स्पर्श के स्थान पर ही अधिक बाधा होने के कारण इतना अधिक ताप पैदा होता है कि वहाँ कार्बन जलने लगता है। अतः दोनों छड़ों को पृथक् कर देने पर भी बीच की ज्वाला के द्वारा धारा बहती ही रहती है। इसमें तापक्रम प्रायः ३०००° श तक पहुँच जाता है और अत्यन्त ही तीव्र प्रकाश इसमें से निकलता है। यह सत्य है कि इसमें कार्बन की छड़ें धीरे

धीरे जल जाती हैं और उन्हें बार बार बदलना भी पड़ता है। किन्तु जहां कहीं बहुत छोटे किन्तु अत्यन्त प्रबल दीपक की आवश्यकता होती है यथा चित्रदर्शक लालटैन अथवा सिनेमा में वहां आर्क लम्प ही का प्रयोग किया जाता है। इनमें यह दिक्कत अवश्य है कि जलाते समय दोनों कार्बन की छड़ों को पहिले स्पर्श कराकर तब अलग करना होता है और ज्यों ज्यों छड़ें जलती जाती हैं त्यों त्यों उन्हें हटा कर दोनों के बीच का अन्तर स्थिर रखना होता है। किन्तु आज-कल ऐसे उपाय भी निकाल लिये गये हैं कि जिनके द्वारा यह सब कार्य स्वयमेव ही हो जाता है।

३५९—बिजली की भट्टी। औद्योगिक रसायन के अनेक कार्यों में बहुत उच्च तापक्रम की भट्टियों की बहुधा आवश्यकता होती है। वहां प्रायः आर्क भट्टियों से ही काम लिया जाता है। कार्बन की दोनों छड़ों के बीच में वह मिश्रण भर दिया जाता है जिसे पिघलाना होता है। धारा चलाते ही आर्क की ज्वाला बनती है और उसके प्रबल ताप में मिश्रण पिघल जाता है।

३६०—विद्युत्-संधि। पहिले जब लोहे अथवा अन्य किसी धातु की छड़ों अथवा पट्टों को जोड़ना होता था तो उनमें कीलें लगा कर रिविट करने का रिवाज था। किन्तु आज-कल आर्क की सहायता से संधि के स्थान पर दोनों वस्तुओं को पिघला देते हैं। ठंडा होने पर जम कर दोनों एक हो जाते हैं। यह संधि बहुत ही मज़बूत होती है और इस कार्य में देर भी बहुत कम लगती है।

३६१—फ़्यूज़। शहरों में प्रायः सर्वत्र २२० वोल्ट विभवत्व की धारा घरों की रोशनी और पंखों के लिए काम में आती है। इस विभवत्व के धन और ऋण तार घर भर में लगे होते हैं। जब नियत संख्या के लम्प या पंखे इन तारों से जोड़ दिये जाते हैं तब तो धारा की प्रबलता बहुत अधिक नहीं होती। किन्तु यदि लम्प या पंखों की संख्या अधिक हो जाय, अथवा इनके दोष या काम में लानेवालों की ग़लती से किसी प्रकार धन और ऋण तारों का परस्पर स्पर्श हो जाय तो बड़ी प्रबल धारा बहने लगेगी। इससे बहुत अधिक ताप उत्पन्न होकर कारख़ाने का डायनमो भी जल सकता है और घर के

तार भी जल कर मकान में आग लगने का डर रहता है। अतः प्रत्येक घर में फ़्यूज़ लगा रहता है जिसके कारण धारा की प्रबलता एक नियत सीमा से अधिक नहीं बढ़ सकती। यह फ़्यूज़ सीसे और राँगे इत्यादि जल्दी पिघलनेवाली धातुओं का तार होता है जो चीनी की एक डिबिया में बन्द रहता है। घर की सब धारा इस तार में से जाती है। नियत सीमा से धारा के अधिक बढ़ते ही यह तार तुरन्त अधिक गरमी के मारे पिघल जाता है और तब डायनमो से मकान का सम्बन्ध टूट जाता है और धारा बन्द हो जाती है। कारख़ाने और घर दोनों ही की रक्षा के लिए यह बड़ी आवश्यक वस्तु है।

३६२—बिजली का मूल्य। जिस प्रकार हमारे व्यवहार की अन्य वस्तुएँ नाप तौल कर बिकती हैं उसी प्रकार बिजली की धारा भी नाप से बिकती है। हम उसकी शक्ति का उपयोग करते हैं अतः उसकी शक्ति ही नाप कर हमें उसका मूल्य देना पड़ता है। ऊपर हम देख चुके हैं कि शक्ति की नाप न केवल धारा की प्रबलता से हो सकती है, न उसके विभवत्व से। किन्तु इन दोनों के गुणनफल से ही हमें धारा की सामर्थ्य का पता लगता है और इस सामर्थ्य को समय से गुणा करने से शक्ति का परिमाण ज्ञात होता है। व्यवहार के लिए जो बिजली बेची जाती है उसकी नाप के लिए जो एकांक नियत है उसे "यूनिट" अथवा किलोवाट-घंटा कहते हैं। अर्थात् एक सहस्र वाट की सामर्थ्य की धारा यदि एक घंटे तक चले तो एक 'यूनिट' ख़र्च हुआ। यदि विभवत्व २२० हो तो प्रायः ५ अम्पीयर की धारा एक घंटे तक चलने से एक यूनिट ख़र्च होता है। इससे साधारणतया ३२ बत्ती-बल के ३० लम्प एक घंटे तक जल सकते हैं। भारतवर्ष के छोटे छोटे शहरों में एक यूनिट का मूल्य प्रायः ६ आना होता है। कलकत्ते और बम्बई में एक यूनिट का दाम चार आने से भी कम होता है। और जहां जल-प्रपात की शक्ति से डायनमो चलते हैं वहां तो प्रायः एक ही आने में एक यूनिट मिल जाता है। जो कारख़ाने बहुत अधिक बिजली ख़र्च करते हैं उन्हें इससे भी कम मूल्य पर बिजली मिल जाती है।

प्रश्न

(१) बिजली के लम्प की बनावट का वर्णन करो। क्या कारण है कि उसके भीतर का तार तो गरम हो जाता है किन्तु जिन तारों से धारा उसमें प्रवेश करती है वे गरम नहीं होते ?

(२) एक लम्प पर ४० वाट – २२० वोल्ट अंकित है। इसमें धारा कितनी चलेगी ? यदि बिजली का मूल्य ६ आना यूनिट हो तो इस लम्प को ४ घंटे रोज़ जलाने का माहवारी ख़र्च कितना होगा ?

(३) एक बिजली का चूल्हा २२० वोल्ट की २$\frac{१}{२}$ अम्पीयर धारा से जलता है। बताओ कि उसके तार का प्रतिरोध कितना है, कितने वाट उसमें ख़र्च होते हैं और ८ आने प्रति यूनिट के हिसाब से १५ मिनट में कितने दाम की बिजली काम आती है।

(४) साधारण लम्प और अर्धवाट लम्प की बनावट में क्या भेद है और दोनों की दक्षता में क्यों इतना अन्तर होता है ?

(५) ७ ओह्म प्रतिरोध के तार के वेष्टन में ·३ अम्पीयर धारा १० मिनट तक चलाने मे कितने पानी का तापक्रम १° श बढ़ सकता है ?

(६) यदि एक लम्प मेज़ से ५ फ़ुट ऊँचा लटकाया जाय और मेज़ पर ३ फ़ुट-बत्ती की प्रदीप्ति हो तो कितने वाट के लम्प की आवश्यकता होगी ?

(७) फ़्यूज़ किसे कहते है और वह क्यों काम में लाया जाता है ?

(८) आर्कलम्प किसका नाम है और वह कैसे जलाया जाता है ?

परिच्छेद ३८

विद्युत्-धारा के रासायनिक कार्य

३६३—द्रवों में विद्युत् का प्रवाह। जिस प्रकार ठोस पदार्थ कुछ तो ऐसे होते हैं जिनमें बिजली की धारा अच्छी तरह चल सकती है और कुछ ऐसे कुचालक (अथवा अचालक) होते हैं कि जिनमें इसका प्रवाह नहीं हो सकता उसी प्रकार द्रव भी दो प्रकार के हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के तैल, शुद्ध स्रुत जल, अलकाहल इत्यादि तो ऐसे द्रव हैं जो विद्युत् का चालन नहीं कर सकते। किन्तु यदि जल में कोई क्षार, अम्ल अथवा लवण घुला हो तो वह बिजली का अच्छा चालक हो जाता है।

ऐसे विलयनों के चालन में एक विलक्षणता यह होती है कि विद्युत् के प्रवाह के साथ ही साथ विलेय वस्तु का विच्छेदन भी होता जाता है। वह दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक भाग उस तार या धातु-पट्ट पर प्रकट होता है जहाँ से विद्युत्-धारा द्रव में प्रवेश करती है। और दूसरा भाग उस स्थान पर जहाँ से यह धारा द्रव से बाहर निकलती है। इन दोनों पट्टों को विद्युद्द्वार कहते हैं। पहिला धनद्वार कहलाता है और दूसरा ऋणद्वार।

विद्युत्-धारा के द्वारा इस प्रकार रासायनिक विच्छेदन को विद्युद्विच्छेदन कहते हैं और जिन द्रवों का ऐसा विच्छेदन होता है वे विद्युद्विच्छेद्य कहलाते हैं।

३६४—विद्युद्विच्छेदन के उदाहरण। काँच की एक जार में स्रुत जल भर कर उसमें थोड़ा सा गंधक का तेज़ाब (गन्धकाम्ल) डाल दो।

प्लाटिनम के तारों के द्वारा इस विलयन में विद्युत् की धारा प्रवाहित करो क्योंकि अन्य तारों पर गन्धकाम्ल की क्रिया होने लगेगी। आप देखेंगे कि दोनों विद्युद्द्वारों पर गैस के बुलबुले निकलने लगेंगे। प्लाटिनम के तारों पर उसी विलयन से पूर्ण एक एक काँच की नली उलट उलट कर इस प्रकार रख दो कि यह गैस उसमें एकत्रित हो जाय। परीक्षा करने पर आप देखेंगे कि धनद्वार से आक्सिजन गैस निकल रही है और ऋणद्वार से हाइड्रोजन। गन्धकाम्ल दो भागों में विभक्त हो जाता है एक तो हाइड्रोजन जो ऋण-द्वार पर निकल आता है और दूसरा भाग जो धन-द्वार पर मुक्त होता है वह जल से संयोजित होकर पुनः गन्धकाम्ल बन जाता है और इस संयोजन में आक्सिजन निकल आती है। अतः अन्त में गन्धकाम्ल ज्यों का त्यों रहता है किन्तु जल का विच्छेदन अवश्य हो जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि इस प्रयोग में जल ही का विच्छेदन हो रहा है। नापने से यह भी ज्ञात हो जायगा कि हाइड्रोजन का आयतन आक्सिजन के आयतन से दो गुणा अधिक है।
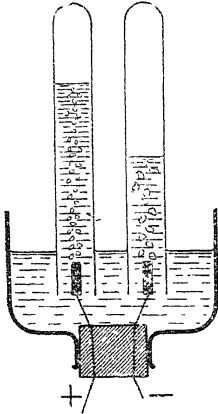
चित्र २९९

इसी प्रकार नीलेथोथे [ताम्र (कापर) सलफ़ेट] के विलयन में दो ताम्र-पट्टों के द्वारा विद्युत् का प्रवाह कराने से नीलेथोथे का विच्छेदन हो कर ऋणद्वार पर ताँबा जम जाता है। ऋण-पट्ट को तौलने से उसका भार बढ़ा हुआ देख पड़ेगा। इस प्रकार जमा हुआ ताँबा बहुत शुद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य भी बहुत सी धातुएँ विद्युद्विच्छेदन के द्वारा शुद्ध की जाती
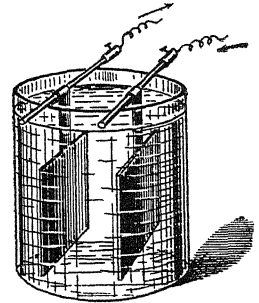
चित्र २००

हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि समस्त धातुएँ और हाइड्रोजन विद्युद्विच्छेदन में सदा ऋण-द्वार पर एकत्रित होती हैं।

३६५—मुलम्मा करना । इसी क्रिया के द्वारा अक्सर ताँबे पीतल आदि की वस्तुओं पर चाँदी या सोने का मुलम्मा किया जाता है,
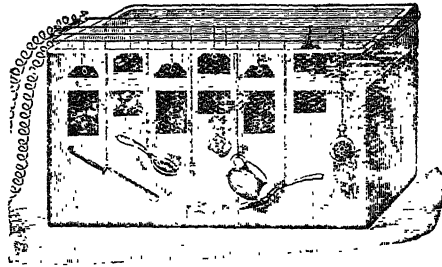
चित्र ३०१

जिससे चांदी या सोने की बहुत पतली तह उस वस्तु पर सर्वत्र बराबर जम जाती है। इस रीति से थोड़े व्यय में कई प्रकार के सुन्दर गहने तैयार हो जाते हैं। भोजन के पात्रों पर भी मुलम्मा करने का रिवाज है जिससे सुन्दरता के अतिरिक्त उनकी खटाई इत्यादि से भी रक्षा हो सकती है। बाइसिकल के पहियों और हैन्डल पर निकल भी इसी प्रकार चढ़ाया जाता है।

मुलम्मा करने की विधि यह है कि जिस वस्तु पर मुलम्मा करना हो उसे खूब साफ़ माँज कर ऋणद्वार पर लटका देते हैं और जिस धातु का मुलम्मा चढ़ाना हो उसी के किसी विशेष लवण का विलयन विच्छेदक पात्र में भर देते हैं फिर उचित परिमाण की धारा उसमें से चला देते हैं। जितनी अधिक देर तक धारा चलेगी उतनी ही अधिक मोटी तह मुलम्मे की चढ़ जायगी।

३६६—धारा का माप। इस व्यावहारिक उपयोग के अतिरिक्त विद्युद्विच्छेदन का एक और वैज्ञानिक उपयोग भी बड़े महत्व का है। इसके द्वारा विद्युत्-धारा का माप भी हो सकता है। अनुभव से यह प्रमाणित हो गया है कि इस क्रिया में जितनी धातु ऋणद्वार पर एकत्रित होती है वह विद्युत् के परिमाण पर निर्भर है। अर्थात् यदि धारा की प्रबलता ध अम्पीयर हो तो स सैकंड समय में किसी धातु का जितना भार (भ ग्राम) एकत्रित होगा वह निम्न सूत्र से ज्ञात हो सकता है:—

$$भ = त \times ध \times स$$

त का मूल्य भिन्न भिन्न धातुओं के लिए भिन्न भिन्न है। उसे उस धातु का विद्युत्-रासायनिक तुल्यांक कहते हैं। निम्नसारिणी में मुख्य मुख्य धातुओं के तुल्यांक दिये गये हैं:—

विद्युत्-रासायनिक तुल्यांक

ताँबा	·०००३२९३
सुवर्ण	·०००६८०८
चाँदी	·००१११८
निकल	·०००३०४
हाइड्रोजन	·००००१०४

अतः मान लीजिए कि हम नीलेथोथे का विच्छेदन करके ताँबा एकत्रित कर रहे हैं और हमने देखा कि १५ मिनट या ९०० सैकंड में हमारे ऋण-द्वार का भार १ ग्रांम बढ़ा तो स्पष्ट ही है कि

$$१ = ·०००३२९३ \times ध \times ९००$$

$$अतः\ ध = \frac{१}{·०००३२९३ \times ९००} = ३·४\ अम्पीयर$$

३६७—विद्युद्विच्छेदन का सिद्धान्त। यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि जो विद्युत् का प्रवाह द्रवों का विच्छेदन करता है वह उस

प्रवाह से भिन्न है जो धातु के तार में होता है। धातु में तो केवल अति सूक्ष्म इलैक्ट्रन-मात्र ही विद्युद्वाहक बल के कारण दौड़ते हैं। किन्तु इन द्रवों में ऐसा नहीं होता। विद्युद्विच्छेद्य पदार्थ के अणु जल में घुलने ही से दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। एक भाग में एक या दो इलैक्ट्रन अधिक रह जाते हैं और दूसरे में कम। प्रथम भाग ऋण-विद्युन्मय होता है और दूसरा धन-विद्युन्मय। इन विद्युत् से आविष्ट, अणु, परमाणु या अणुपुंजों को 'आयन' कहते हैं।
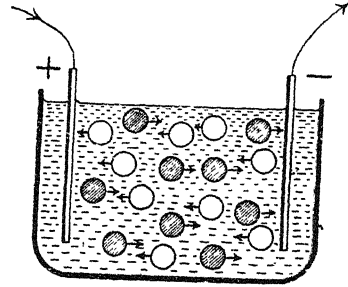
चित्र २०२

बैटरी का विद्युद्वाहक बल लगते ही ऋण-आयन धन-द्वार की ओर दौड़ता है और धन-आयन ऋण-द्वार की ओर। यही धारा का प्रवाह है। इसमें अणु या परमाणु से मुक्त इलैक्ट्रन नहीं दौड़ते किन्तु अपेक्षाकृत भारी अणु या परमाणु पर सवार होकर ही इलैक्ट्रनों की यात्रा होती है। अतः यदि धातु के तार में विद्युत् के प्रवाह की क्रिया को चालन कहा जाय तो विद्युत्-विच्छेदन में प्रवाह की क्रिया को वाहन कहना चाहिए।

३६८—संचायक सैल। इस सैल का वर्णन परिच्छेद ३३ में किया जा चुका है। गन्धकाम्ल के घोल में सीसे के दो पट्ट रख दिये जाते हैं। डायनमो की धारा इन पट्टों के द्वारा जब गन्धकाम्ल में प्रवाहित होती है तब गन्धकाम्ल का विच्छेदन होकर एक ओर आक्सिजन जाती है और दूसरी ओर हाइड्रोजन। यह आक्सिजन सीस पट्ट पर रासायनिक क्रिया करके उसे आक्साइड में परिणत कर देती है और इस पट्ट का विभव बढ़ जाता है। हम यों कह सकते हैं कि विद्युत्-धारा इस सैल को आविष्ट कर देती है। पूर्ण आविष्ट अवस्था में दोनों पट्टों का विभवान्तर प्रायः २·२ वोल्ट हो जाता है। अतः अब यह ठीक वोल्टा की सैल के समान कार्य करने के योग्य बन जाती है। अक्साइडवाला पट्ट धनध्रुव होता है और दूसरा ऋणध्रुव।

किन्तु जब इससे धारा ली जाती है तब वोल्टा की सैल के यशद पट्ट के समान इसका ऋणध्रुव घुल कर गन्धकाम्ल में मिल नहीं जाता। उस पर

चित्र ३०३

केवल सल्फ़ेट जम जाता है। धनध्रुव पर हाइड्रोजन जाकर उसे भी सल्फ़ेट में परिणत कर देता है। अतः दोनों का विभवान्तर घट कर इसका आवेश जाता रहता है। पुनः डायनमो की धारा चला कर इसे आविष्ट कर सकते हैं। और तब यह पुनः धारा देने में समर्थ हो जाती है। इसी प्रकार यह बारम्बार आविष्ट हो सकती है।
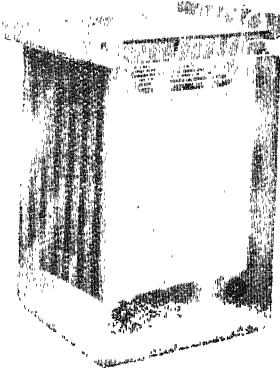
एक दूसरे प्रकार की संचायक सैल में पोटाशियम हाइड्रोक्साइड के विलयन में निकल और लोह के पट्ट रखे जाते हैं। यह अमेरिका के सुप्रसिद्ध एडिसन की आविष्कार की हुई है। अतः यह एडिसन सैल के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रश्न

(१) ठोस ताँबे के तार में और नीलेथोथे के विलयन में विद्युत्-धारा का जो प्रवाह होता है उसमें क्या भेद है?

(२) विद्युद्विच्छेदन का नियम क्या है और इसके द्वारा धारा का प्राबल्य कैसे नापा जा सकता है?

(३) यदि १० वर्ग सम०वाली ताँबे की चद्दर के दोनों ओर १ अम्पीयर की धारा के द्वारा १ घंटे तक सोने का मुलम्मा किया जाय तो उस पर चढ़े हुए सोने की मोटाई बताओ।

(४) संचायक सैल और उसकी क्रिया का वर्णन करो।

(५) यदि २ अम्पीयर की धारा के द्वारा चाँदी का मुलम्मा किया जाय तो ५ ग्राम चाँदी कितनी देर में जम जायगी?

परिच्छेद ३६

ऐक्सकिरणें तथा अन्य किरणें

३६९—गैसों में विद्युत्-धारा का प्रवाह। यह हम पहिले लिख चुके हैं कि साधारण वायु में विद्युत् का प्रवाह नहीं होता। वह एक प्रकार का पृथग्न्यासक है। किन्तु यह भी बतलाया जा चुका है कि जब दो स्थानों का विभवान्तर बहुत अधिक बढ़ जाता है तब मध्यवर्त्ती वायु को विदीर्ण करके तेज़ दमक और कड़ाके की आवाज़ के साथ विद्युत् इधर से उधर चली जाती है। विद्युद्विच्छेदन के समान ही यह प्रवाह भी आयनों के द्वारा होता है। वायु के अणु जब अधिक संख्या में आयनित हो जाते हैं तब ही इस प्रकार का प्रवाह संभव होता है। वायु में आयनों की संख्या बढ़ाने के दो उपाय हैं। पहिला तो विभवान्तर को बढ़ाना और दूसरा उपाय है वायु के दबाव को घटाकर उसके अणुओं को अधिक दूर तक भ्रमण करने की स्वतन्त्रता देना। आकाश की बिजली में पहिला कारण प्रबल है किन्तु प्रयोगशाला में द्वितीय उपाय के अवलम्बन से अनेक अद्भुत बातों का पता लगा है।

३७०—कैथोडकिरण। चित्र ३०४ में काँच की लम्बी नली में दोनों सिरों पर अल्यूमिनियम अथवा अन्य धातु की कटोरियाँ
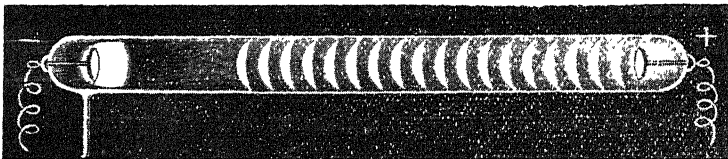
चित्र ३०४

लगी हैं और उनसे जुड़े हुए तार दोनों ओर बाहर निकले हैं। ये तार उपपादन वेष्टन की द्वैतीयिक वेष्टन से जोड़ दिये गये हैं। पार्श्व की नली

के द्वारा वायु-पम्प की सहायता से नली की वायु निकाल दी जा सकती है। जब तक नली में से हवा नहीं निकलती तब तक तो उपपादन वेष्टन की धारा उसमें से नहीं बहती किन्तु कुछ हवा निकलने पर नली में से धारा बहने लगती है और नली की वायु प्रकाशित हो जाती है। ज्यों ज्यों अधिक अधिक हवा निकलती जाती है नली के इस प्रकाश में बड़े विचित्र परिवर्त्तन होते जाते हैं और अन्त में जब हवा का दबाव घट कर प्रायः $\frac{१}{१०००}$ मिलीमीटर मात्र रह जाता है तब तो यह नली के भीतर का सब प्रकाश लुप्त हो जाता है। हाँ ऋणद्वार के सामनेवाले नली के काँच में से कुछ हरी या नीली सी ज्योति निकलने लगती है। यही अवस्था सबसे अधिक महत्त्व की है क्योंकि इँगलैंड के सर जे० जे० टामसन आदि विद्वानों को इसी अवस्था में सबसे प्रथम 'इलैक्ट्रन' का परिचय हुआ था। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि इस दशा में ऋणद्वार से निकल कर मुक्त इलैक्ट्रन बड़े वेग से नली में दौड़ते हैं। यही जाकर जब नली के कांच से टकराते हैं तो उसमें से हरा या नीला प्रकाश निकलता है। पहिले लोग इन्हें भी एक प्रकार की किरण ही समझते थे और इनका नाम कैथोडकिरण रख दिया था क्योंकि ऋणद्वार को यूरोप की भाषाओं में कैथोड कहते हैं। आज तक भी इनका यही नाम प्रचलित है।

३७१—एक्सकिरण। ये कैथोडकिरणें अथवा इलैक्ट्रनों की धारा सीधी रेखा में चलती है। इनका प्रत्येक इलैक्ट्रन विद्युत्-द्वारों के विभवान्तर के अनुपात से प्रायः $१०^{८}$ सम० से $१०^{९}$ सम० अर्थात् ५०० मील से ६०० मील प्रतिसैकंड के वेग से दौड़ता है। अतः जब यह जाकर किसी वस्तु से टकराते हैं तो उसके परमाणु पर इतने ज़ोर का धक्का लगता है कि परमाणु के अन्तर्गत इलैक्ट्रन विचलित हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि परमाणुओं में से एक प्रकार के प्रकाश की तरंगें पैदा हो जाती हैं। यह प्रकाश साधारण प्रकाश से भिन्न होता है क्योंकि इसका हमारी नेत्र इन्द्रिय पर कुछ भी असर नहीं होता। हम इसकी सहायता से कुछ देख नहीं सकते। इसका कारण यह है कि इस प्रकाश

की तरंगों की लम्बाई साधारण प्रकाशतरंगों की अपेक्षा प्रायः १००० गुणा छोटी होती है । किन्तु इसकी किरणों में यह विलक्षणता है कि वे अपारदर्शक वस्तुओं में से भी बिना रुकावट पार हो जाती हैं । इनका नाम इनके आविष्कारक रंजन महोदय (Rontgen) ने ऐक्सकिरण रखा था क्योंकि उस समय इनका रहस्य किसी के समझ में न आया था । यही नाम आज भी प्रचलित है । किन्तु बहुधा इन्हें आविष्कारक के नाम से रंजनकिरणें भी कहते हैं । इनका आविष्कार १८९२ में हुआ था ।

इनको उत्पन्न करने के लिए जो उपकरण आज-कल काम में लाये जाते हैं वे कई प्रकार के होते हैं किन्तु चित्र ३०५ से उन सबका कार्य समझ में आ जायगा । क ऋणद्वार है । यह अल्यूमिनियम का नतोदर दर्पण है । ध धनद्वार है और प्र एक और द्वार है जिसे प्रति-ऋणद्वार कह सकते हैं । नली में पर्याप्त शून्य कर दिया जाता है और उपपादन वेष्टन से जोड़ने पर क में से कैथोडकिरणें निकलती हैं । ये क के नतोदरत्व के कारण एकत्रित होकर प्र पर एक ही स्थान पर जा टकराती हैं । प्र पर बहुधा किसी उच्च परमाणु-क्रमांक की धातु का पत्र जड़ा रहता है यथा टंगस्टन । इसी पत्र के परमाणुओं से ऐक्सकिरणें उत्पन्न होती हैं ।
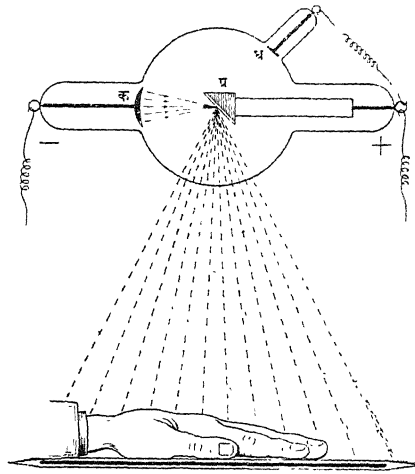
चित्र ३०५

ऊपर कहा जा चुका है कि इन किरणों के द्वारा हमारे नेत्र कुछ भी नहीं देख सकते । किन्तु कुछ पदार्थ ऐसे हैं कि जिन पर पड़ने से ये किरणें

नेत्रोपयोगी प्रकाश उत्पन्न कर देती हैं। ये पदार्थ वही हैं जिन्हें प्रतिदीप्त पदार्थ कहते हैं। यथा यशद सलफ़ाइड; बारियम प्लाटिनोस्यानाइड इत्यादि। साधारण कांच में भी इनके द्वारा प्रतिदीप्ति उत्पन्न हो जाती है तभी तो ऐक्स-किरण-नली के कांच में से हरे या नीले रंग का प्रकाश निकलने लगता है। अतः इन किरणों का प्रयोग करने के लिए एक काग़ज़ पर बारियम प्लाटिनोस्यानाइड पोत लिया जाता है और बहुधा इसे तसवीरों के समान काँच लगाकर चौखट में जड़ लेते हैं ताकि यह परदा ख़राब न होने पावे। इसे प्रतिदीप्ति-परदा कहते हैं।

३७२—ऐक्सकिरणों का उपयोग। ऊपर हम कह चुके हैं कि ऐक्सकिरणें साधारण अपारदर्शक पदार्थों में से निकल जाती हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सब वस्तुएँ इनके लिए समानरूप से पारदर्शक हैं। काग़ज़, लकड़ी, कपड़ा, चमड़ा, मांस आदि हलके परमाणुओं से बने पदार्थ तो इनका शोषण कम करते हैं किन्तु भारी परमाणुओं के पदार्थ लोहा, पीतल, चाँदी, सोना इत्यादि प्रायः अपारदर्शक हैं। हड्डी भी कालशियम के कारण अपेक्षाकृत अपारदर्शक ही है। अतः यदि ऐक्सकिरण नली के सामने प्रतिदीप्ति परदा रखा जावे तो वह इन किरणों के कारण प्रकाशित हो जायगा। अब यदि नली और परदे के बीच में हम अपना हाथ रख दें तो हमारी हड्डियाँ तो किरणों को रोक लेंगी किन्तु मांस और चमड़ा न रोक सकेगा। अतः परदे पर हड्डियों की छाया पड़ जायगी (चित्र ३०६)। इस प्रकार जिन हड्डियों को हम यों नहीं देख सकते वे ऐक्सकिरण की सहायता से स्पष्ट देखी जा सकती हैं। यदि कोई हड्डी टूटी है अथवा अपने स्थान से हटी है, अथवा हमारे शरीर में कोई अन्य पदार्थ, बन्दूक़ की गोली आदि घुस गया है तो इन किरणों की सहायता से हमें उसका यथार्थ ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार शरीर-चिकित्सा में यह बड़े काम की सिद्ध हुई हैं। यही क्यों अब तो इनकी सहायता से रोग-निदान में यहाँ तक उन्नति कर ली गई है कि क्षय इत्यादि रोगों का भी ठीक ठीक पता चल जाता है।

ऐक्सकिरणों के अन्य वैज्ञानिक और व्यावहारिक उपयोगों का वर्णन करने का यहाँ स्थान नहीं है। इतना ही कह देना पर्याप्त है कि जहां कहीं कोई भी वस्तु ऐसी हो जो किसी आवरण के कारण हमारी दृष्टि से छिपी हो वहीं ये किरणें हमें सब भेद बतलाने के लिए तैयार हैं।

३७३—ऐक्सकिरणचित्र । प्रतिदीप्ति-परदे के अतिरिक्त एक और भी अच्छा उपाय एक्सकिरणों के द्वारा शरीर आदि की परीक्षा करने का है। ये किरणें फ़ोटो के प्लेट पर ठीक उसी प्रकार क्रिया करती हैं जैसे कि साधारण प्रकाश। अतः प्रतिदीप्ति परदे के स्थान में यदि फ़ोटो का प्लेट रख दिया जाय तो उस पर भी हमारे हाथ की हड्डियों का चित्र अंकित हो जायगा। यह प्लेट और सब जगह तो काला हो जायगा किन्तु जहाँ हड्डियों की छाया पड़ी थी वहां काला न पड़ेगा। अस्पतालों में इसी विधि का प्रयोग अधिक किया जाता है क्योंकि इससे चित्र पक्का हो जाता है और उसे इधर-उधर भेजा भी जा सकता है और अनुभवी डाक्टर उसे जब समय मिले देख सकते हैं।

यहां यह समझ लेना चाहिए कि यह चित्र वैसा चित्र नहीं है जैसा फ़ोटोग्राफ़र खींचता है। यह तो केवल छाया ही का चित्र है। अतः इसके लिए कैमेरा इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त इसमें प्लेट कागज़ इत्यादि से बराबर ढका ही रहता है। इससे साधारण प्रकाश तो उस पर पहुँच नहीं सकता किन्तु ऐक्सकिरण बिना रुकावट पहुँच जाती है। चित्र २०९ में ऐसा चित्र खींचने की विधि स्पष्ट है।

३७४—ऐक्सकिरणचिकित्सा । इतनी लाभदायक होने पर भी इन किरणों में एक बड़ा दोष है। यदि बहुत देर तक ये हमारे शरीर पर पड़ें तो बड़ा नुक़सान पहुँचाती हैं। चमड़ी जल जाती है और उसमें ऐसे घाव हो जाते हैं कि जिनका फिर अच्छा होना कठिन ही नहीं प्रायः असम्भव हो जाता है। भीतरी अवयवों पर भी कभी कभी बड़ा बुरा असर होता है। मनुष्य के वीर्यस्थान पर पड़ने से ये उसकी प्रजननशक्ति को नष्ट कर

चित्र २०६
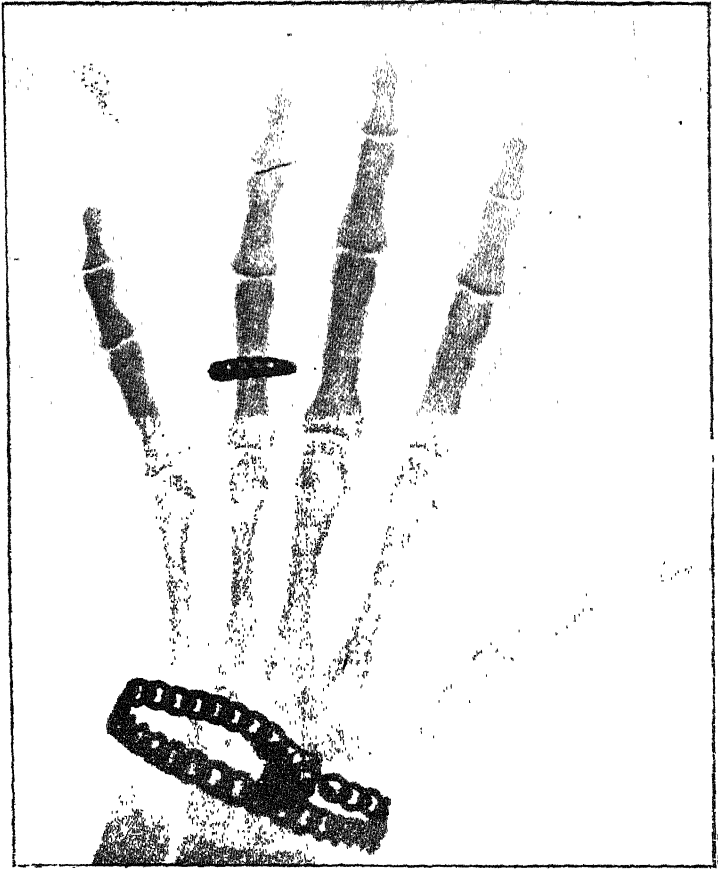
देती हैं। अतः इन्हें काम में लाने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। पहिले तो इच्छित स्थान के अतिरिक्त ये किरणें अन्यत्र पड़ना ही न चाहिए। इसके लिए ऐक्सकिरणनली को या तो चारों ओर मोटे सीसे के आवरण से ढके हुए सन्दूक में रख देते हैं या उसे अधिक सीसमय एक विशेष प्रकार के काँच के आवरण में रखते हैं। दूसरे इन्हें शरीर पर अधिक देर तक पड़ने नहीं देते। चित्र खींचने के लिए भी दो चार सैकंड से अधिक इन्हें शरीर पर न पड़ने देना चाहिए।

किन्तु इनका यह भयङ्कर दोष भी हमारे लिए बड़े काम का प्रमाणित हुआ है। रोग के जीवाणुओं को ये नष्ट कर देती हैं और अनेक प्रकार के रोगों में शरीर पर ये किरणें नियत मात्रा में और नियत समय तक डालने से बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। चर्म रोगों की चिकित्सा में ये बहुत काम आती हैं। इस कार्य के लिये अब अनेक अस्पताल खुल गये हैं।

३७५—अन्य प्रकार की किरणें। कैथोडकिरण और ऐक्स-किरण तो मनुष्य कृत्रिम उपायों से उत्पन्न करता है किन्तु इसी प्रकार की कुछ किरणें प्रकृति में स्वयमेव भी उत्पन्न होती रहती हैं। इस पुस्तक के प्रारम्भ में ही बतलाया गया है कि प्रत्येक परमाणु इलैक्ट्रन और प्रोटनों का बना है। यद्यपि अभी यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि ये इलैक्ट्रन और प्रोटन परमाणु में किस प्रकार स्थित हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि परमाणु का अस्तित्व इन्हीं की संख्या और वितरण पर निर्भर है। जिन परमाणुओं का भार अधिक नहीं है उनमें तो ये परस्पर ऐसे सम्बद्ध हैं कि उन परमाणुओं में किसी प्रकार का विकार होना अत्यन्त कठिन है। किन्तु यूरेनियम और रेडियम के समान भारी परमाणुओं में जान पड़ता है कि यह संगठन इतना सुदृढ़ नहीं है। क्योंकि अनुभव से ज्ञात हुआ है कि ऐसे परमाणु स्वयमेव टूट टूट कर अन्य रूप में बदलते रहते हैं। कभी उनमें से इलैक्ट्रन निकल जाते हैं तो कभी प्रोटन और इलैक्ट्रनों का एक पुञ्ज-विशेष एक ही साथ निकल पड़ता है। यह पुञ्ज हीलियम नामक गैस का

परमाणु ही प्रमाणित हुआ है। अन्तर केवल यह है कि इस पर धनविद्युत् का आवेश होता है। इस पुञ्ज का नाम आलफ़ा-कण रखा गया है। और ऐसे कणों के समूह को आलफ़ाकिरण या आलफ़ारश्मि कहते हैं। इसके निकलने से परमाणु का भार घट जाता है। जो इलैक्ट्रन परमाणु के भीतर से निकलते हैं उन्हें बीटाकण कहते हैं और उनके समूह को बीटाकिरण या बीटारश्मि कहते हैं। इन बीटा-किरणों में और कैथोड-किरणों में उत्पत्ति-भेद के अतिरिक्त केवल यही भेद है कि बीटा-किरणों का वेग बहुत अधिक होता है। औसत यह समझिए कि इस वेग का परिमाण प्रायः १,००,००० से १,८०,००० मील प्रति सैकंड तक होता है। यह कैथोडकिरण से प्रायः १० गुना अधिक हुआ। इनके साथ ही साथ ऐक्स-किरण के समान ही वास्तविक किरणें अथवा तरंगें भी इन परमाणुओं में से निकलती हैं जिन्हें गामा-किरण कहते हैं। ये तरंगें ऐक्स-किरणों से भी प्रायः दस-गुनी छोटी होती हैं और अपारदर्शक वस्तुओं के पार निकल जाने की शक्ति भी इनमें ऐक्स-किरणों से बहुत अधिक होती है। ये लगभग फ़ुट डेढ़ फ़ुट मोटे सीसे को पार कर सकती हैं।

३७६—रश्मि-क्षेपकता। परमाणुओं में से स्वाभाविक रीति ही से इन तीन प्रकार की किरणों का निकलना और परमाणु का टूट कर अन्य प्रकार का परमाणु बन जाना रेडियमधर्मिता या रश्मि-क्षेपकता कहलाता है। रेडियम ही इस प्रकार का सबसे अधिक शक्तिशाली परमाणु है। वह है भी बड़ा मूल्यवान्। इसे अध्यापक और श्रीमती क्यूरी ने सर्वप्रथम पैरिस में सन् १८९८ ई० में बड़े परिश्रम से खनिजों में से पृथक् किया था। इस रेडियम ही से टूट टूट कर प्रायः १० तरह के नवीन परमाणु बन जाते हैं। अन्तिम अवस्था में वह सीसे का परमाणु रह जाता है। इसी प्रकार थोरियम का भी अन्तिम परिणाम सीसा है। इस रीति से अब हम दो प्रकार के सीसों को जानते हैं जिनका परमाणु-भार क्रमशः २०६·०८ तथा २०७·७७ है। साधारण सीसा इन्हीं दोनों का मिश्रण-मात्र है और उसका परमाणु भार २०७·१९ है।

इसमें सबसे विलक्षण बात यह है कि अभी तक हम इस रश्मिक्षेपण के कार्य में कृत्रिम रीति से कोई दख़ल नहीं दे सके हैं। किसी भी उपाय से आज तक हम इसमें कोई भी हेर फेर नहीं कर सके हैं। स्वाभाविक रीति से जो कुछ हो रहा है वही होता है। हाँ कुछ हलके परमाणुओं को इँगलैंड के प्रोफ़ेसर रदरफोर्ड ने अवश्य ही कृत्रिम रीति से तोड़ डाला है। इसी से कुछ लोगों को आशा हो गई है कि हम जिस परमाणु को चाहेंगे तोड़ डालेंगे जिससे सम्भव है कि किसी दिन हम सीसे से पारा बना लें और पारे से सुवर्ण। अभी कई विद्वानों ने यह प्रकाशित किया था कि वे इस कार्य में सफल हो गये हैं किन्तु बाद में यह ज्ञात हुआ कि अभी उनका यह दावा ठीक नहीं है। यदि इसमें सफलता हो गई तो जिस पारस पत्थर की खोज दो तीन सहस्र वर्षों से हो रही थी वह भी मनुष्य को प्राप्त हो जायगा।

प्रश्न

(१) ऐक्स-किरणें कैसे उत्पन्न की जाती हैं ?

(२) मनुष्य के हाथ की हड्डियों का चित्र खींचने की विधि का वर्णन करो।

(३) ऐक्स-किरणों के द्वारा टूटी हुई हड्डी को देखने के लिए कैसे परदे का व्यवहार करना पड़ता है और उसे कहाँ रखना पड़ता है ?

(४) तत्त्वों के परमाणुओं के भी टुकड़े हो सकते हैं यह बात कैसे ज्ञात हुई है ?

परिच्छेद ४०

बेतार का टेलीफ़ोन

३७७—प्रत्यावर्त्तक धारा और वैद्युत दोलन। डायनमो का वर्णन करते समय प्रत्यावर्त्तक धारा के सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ लिखी जा चुकी हैं। सरल धारा में इलेक्ट्रन एक ही दिशा में चलते हैं। किन्तु प्रत्यावर्त्तक धारा में ये इलैक्ट्रन इधर से उधर दोलक के समान दोलन करते हैं। अतः धारा थोड़ी देर एक ओर चलती है, तब लौट कर विपरीत दिशा में चलने लगती है और नियत समय के पश्चात् पुनः पुनः यह प्रत्यावर्त्तन होते रहते हैं। जो प्रत्यावर्त्तक धारा साधारणतया नगरों में रोशनी इत्यादि के लिए काम में आती है उसमें इन प्रत्यावर्त्तनों की संख्या प्रायः ५० या ६० प्रतिसैकंड होती है।

किन्तु विशेष उपायों के द्वारा इलैक्ट्रनों के दोलन बहुत वेगवान् भी हो सकते हैं। सबसे प्रथम जिस रीति से यह दोलन उत्पन्न किये गये थे वह निम्नलिखित थी। एक लीडन जार अथवा अन्य द्ंहक द के दोनों चालक उपपादन वेष्टन की द्वैतीयिक से जोड़ दिये गये (चित्र ३०७)। और एक मोटा सा तार ख ग घ इस प्रकार लगा दिया गया कि उसका एक सिरा घ तो द्ंहक के एक चालक से जुड़ गया और दूसरे सिरे की घुंडी ख द्ंहक के दूसरे चालक से जुड़ी हुई घुंडी क के निकट स्थित रही। जब उपपादन वेष्टन में धारा प्रवाहित की गई तो क और ख के बीच में कई चिनगारियाँ निकलती दिखलाई पड़ीं। बड़े वेग से चलती हुई फ़ोटो की फ़िल्म पर

इन चिनगारियों का चित्र खींचने से तुरन्त ज्ञात हो गया कि प्रत्येक चिनगारी वास्तव में अनेक चिनगारियों का समुदाय है जो एक के पश्चात् एक क से ख की ओर तथा ख से क की ओर दौड़ती हैं। इससे ज्ञात
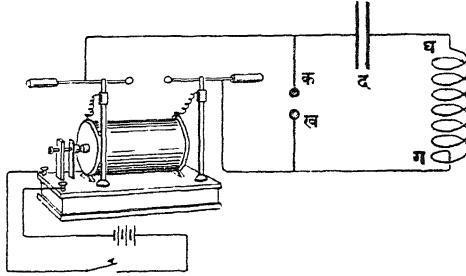
चित्र २०७

होता है कि दंहक में जो विद्युत् का आवेश होता है वह क ख ग घ मार्ग के द्वारा विसर्जित होता है। अतः इलैक्ट्रन क से घ की ओर दौड़ते हैं। किन्तु जिस प्रकार दोलक को एक ओर खींच कर छोड़ देने से, वह अपने पूर्व स्थान पर पहुँच कर सहसा ठहर नहीं जाता किन्तु उसका वेग उसे दूसरी ओर ले जाता है और इसी प्रकार अनेक बार इधर से उधर दोलन करने के पश्चात् ही वह स्थिरता को प्राप्त करता है ठीक उसी प्रकार इन इलैक्ट्रनों की दशा भी है। ये भी कई बार इधर से उधर दौड़े बिना स्थिरता को प्राप्त नहीं कर सकते।

इन दोलनों की आवृत्ति लीडन जार के समावेशन तथा ख ग घ की लम्बाई और आकार अर्थात् उसके उपपादकत्व पर निर्भर है। साधारण लीडन जार से इस आवृत्ति की संख्या ३०-४० लाख प्रतिसैकंड आसानी से हो सकती है। और यदि लीडन जार के स्थान में अन्य किसी प्रकार का छोटा सा दंहक लिया जाय जिसका समावेशन कम हो और क ख ग घ का उपपादकत्व भी घटा दिया जाय तो यह आवृत्ति बढ़ कर ५०-६० अरब तक पहुँच सकती है।

३७८—विद्युत् की तरंगें। यह हम देख चुके हैं कि जब कोई जड़ वस्तु कम्पन करती है तब वायु में शब्द-तरंगें पैदा होती हैं। इसी प्रकार इलैक्ट्रनों के कम्पन से भी एक प्रकार की विद्युत् की तरंगें उत्पन्न होती हैं। किन्तु ये तरंगें वायु अथवा अन्य किसी जड़ पदार्थ में नहीं उत्पन्न होतीं। ये होती हैं उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म ईथर में जो प्रकाश-तरंगों के गमन के लिए समस्त संसार में व्याप्त माना गया है। वास्तव में प्रकाश-तरंगों में और इन विद्युत् की तरंगों में कोई भेद है ही नहीं। प्रकाश की तरंगें भी इलैक्ट्रनों के कम्पन ही के द्वारा उत्पन्न होती हैं। किन्तु उन कम्पनों की आवृत्ति बहुत ही अधिक होती है। साधारण लाल प्रकाश-तरंगों की आवृत्ति प्रायः ४×१०^{१४} अर्थात् ४० नील प्रतिसैकंड होती है और नीले प्रकाश की आवृत्ति इससे दुगुनी और ऐक्स किरणों की आवृत्ति तो इससे भी सहस्रगुनी अधिक होती है। हम कृत्रिम रीति से इतने ज़ोर का कम्पन उत्पन्न नहीं कर सकते। किन्तु परमाणुओं के अन्तर्गत जो इलैक्ट्रन हैं उन्हीं के द्वारा विशेष अवस्थाओं में ऐसी तरंगें पैदा होती हैं।

ये विद्युत् की तरंगें भी प्रकाश ही के समान १,८६,००० मील प्रतिसैकंड या ३×१०^{१०} सम०/सैकंड के वेग से ईथर में चलती हैं और अन्य सब तरंगों के समान ही पृष्ठ ३५४ का सूत्र $व = स \times त$ इनके लिए भी सत्य है। अतः इन तरंगों की लम्बाई $त = \frac{३ \times १०^{१०}}{स}$। अब तक बेतार के तार में प्रायः लम्बी तरंगें (१,००० से १०,००० मीटर तक) काम में आती थीं और टेलीफ़ोन के लिए छोटी (१०० से १,००० मीटर तक)। किन्तु अब बहुत ही छोटी तरंगों का प्रयोग बढ़ चला है जिनकी लम्बाई प्रायः १५ से ५० मीटर तक होती है।

३७९—अनुनाद। शब्द-तरंगें जब किसी ऐसी वस्तु पर पड़ती हैं जिसके स्वाभाविक कम्पनों की आवृत्ति तरंगों की आवृत्ति के

बराबर हो तो हम देख चुके हैं कि तरंगें उस वस्तु को कम्पित कर देती हैं। इस घटना को अनुनाद कहते हैं। इसी प्रकार जब ये विद्युत्-तरंगें किसी ऐसे उपकरण पर पड़ती हैं जिसके इलैक्ट्रन स्वयं उसी आवृत्ति के आवर्त्तन कर सकते हों तो यहाँ भी अनुनाद हो जाता है। इस उपकरण में दंहक और उपपादकत्व दोनों का होना आवश्यक है और यदि इन दोनों में से कोई एक भी इच्छानुसार बदला जा सके तो प्रत्येक लम्बाई की तरंग के द्वारा अनुनाद उत्पन्न हो सकता है। इसी अनुनाद के द्वारा इन विद्युत्-तरंगों का पता चलता है।

३८०—बेतार का तार। उपर्युक्त सभी बातें बहुत वर्षों से ज्ञात थीं। लार्ड केलविन ने सन् १८५३ में इन विद्युत् कम्पनों का पता चला लिया था और १८६५ में मैक्सवैल ने गणित-द्वारा यह भी प्रमाणित कर दिया था कि इन कम्पनों से विद्युत्-तरंगें उत्पन्न होनी चाहिए। किन्तु १८८८ तक इन तरंगों का पता न चला। इस वर्ष हर्ट्ज़ ने सबसे प्रथम इन तरंगों का अस्तित्व प्रमाणित किया। इसके पश्चात् १८९४ में सर आलिवर लाज ने सबसे प्रथम इन तरंगों को उत्पत्ति-स्थान से कुछ दूर तक भेजने में सफलता प्राप्त की। किन्तु इन तरंगों के द्वारा पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक बिना कठिनाई समाचार भेजने में सफल होने का श्रेय मारकोनी को है। इन्हीं ने अनेक प्रकार के यंत्र बनाये और इन्हीं ने इस विधि का व्यापारिक रीति से प्रचार भी किया।

विद्युत् की सहायता से समाचार भेजने और बातचीत करने के कुछ उपाय पहले बतलाये जा चुके हैं किन्तु उन सबमें यह आवश्यक था कि जिन दोनों स्थानों में बातचीत करना हो उनके बीच में विद्युत्-धारा के लिए धातु का तार लगा हो। इस तार को लगाने में बहुत रुपया ख़र्च होता है। यही कारण है कि तार-द्वारा समाचार भेजने के लिए हमें इतने दाम देने पड़ते हैं। मारकोनी की इस नवीन विधि में यह ख़र्चा बिलकुल ही मिट गया क्योंकि जब ईथर ही अपनी तरंगों के द्वारा हमारे समाचार ले जा सके तो

तार की आवश्यकता ही क्या। इस स्थान पर यह सम्भव नहीं है कि हम उन सब यन्त्रों का वर्णन कर सकें जो इसके लिए काम में आते हैं। अतः हम केवल उतना ही वर्णन करेंगे कि जिससे इस आश्चर्य्यजनक विधि का कार्य स्थूल रूप से समझ में आ जाय।

जिस यन्त्र के द्वारा समाचार भेजे जाते हैं उसका नाम 'प्रेषक' है। चित्र ३०८ में इसके मुख्य भाग दिखलाये गये हैं। ब बैटरी की धारा उपपादन वेष्टन की प्राथमिक में बहती है। डेमी ड के द्वारा यह धारा इच्छानुसार चलाई और रोकी जा सकती है। उपपादन वेष्टन की द्वैतीयिक से लगा हुआ क ख ग घ विद्युत्-दोलन-चक्र है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस चक्र में उपपादकत्व गघ वेष्टन का है। इसी वेष्टन के समीप एक और वेष्टन च छ रखा है जिसका
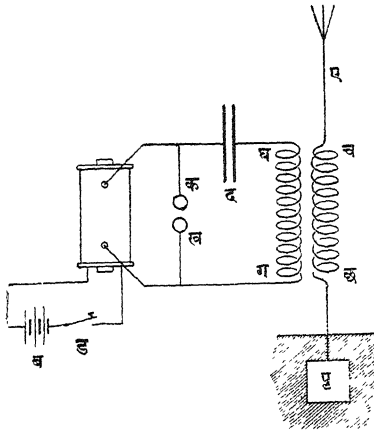
चित्र ३०८

एक सिरा पृथ्वी में गड़े हुए धातुपट्ट से जुड़ा है और दूसरा एक लम्बे ताँबे के तार से जुड़ा है। यह तार प्रायः १०० फुट लम्बा है और मकान की छत से बहुत ऊँचे पर खम्भों के सहारे लटका रहता है। किन्तु है यह सर्वथा पृथग्न्यस्त। इस तार को एरियल कहते हैं और इससे लगे हुए वेष्टन च छ को अनुनादी वेष्टन कहते हैं। क ख ग घ के विद्युद्दोलन इस एरियल में भी उसी आवृत्ति के दोलन उत्पन्न कर देते हैं। इनसे तरंगें उत्पन्न होती हैं जो एरियल के आकार के कारण तथा उसका पृथ्वी से सम्बन्ध होने के कारण सैकड़ों मील दूर तक चली जाती हैं। जब जब डेमी को दबाया जायगा तब तब एरियल में से तरंगें निकलेंगी।

३८९—ग्राहक। जिस यन्त्र से प्रेषक की तरंगों को ग्रहण कर समाचार समझा जाता है उसे ग्राहक कहते हैं। चित्र ३०६ में इसका कार्य समझाया गया है।

चित्र ३०६

ए' प्रेषक के जैसा ही एरियल है और इसका सम्बन्ध भी अनुनादी वेष्टन च'छ' तथा पृथ्वी में गड़े हुए धातुपट्ट पृ'से है। प्रेषक की तरंगें आकर इसी एरियल-चक्र में दोलन उत्पन्न करती हैं। किन्तु इस कार्य के लिए च'छ' के उपपादकत्व में परिवर्त्तन करके एरियल-चक्र को अनुनाद करने के योग्य बनाना पड़ता है। संगीत-विद्या की भाषा में यों कह सकते हैं कि इसका सुर प्रेषक के सुर से मिलाना पड़ता है। इस एरियल-चक्र के दोलन समीपस्थ चक्र क ख ग घ में वैसे ही दोलन उत्पन्न करते हैं और ये ही उससे लगे हुए टेलीफ़ोन ट में पहुँचते हैं।
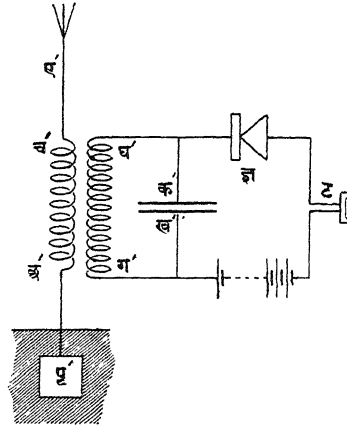
किन्तु टेलीफ़ोन में पहुँच कर भी ये दोलन कोई शब्द उत्पन्न नहीं कर सकते क्योंकि जिस आवृत्ति के ये दोलन हैं उस अत्यधिक आवृत्ति से टेलीफ़ोन का स्थूल पट्ट कम्पन नहीं कर सकता। और यदि करे भी तो हमारा कान उन्हें सुन नहीं सकता। अतः एक ऐसी वस्तु की आवश्यकता है जो इन दोलनों की प्रत्यावर्त्तक धारा को सरल बना दे अर्थात् जिसके द्वारा इस प्रत्यावर्त्तक धारा का एक दिशावाला भाग तो टेलीफ़ोन में पहुँच जाय किन्तु विपरीत दिशा की धारा वहाँ न पहुँच सके। जो उपकरण यह काम कर सकता है उसे ज्ञापक या सरल-कारक कहते हैं। ग्राहक यंत्र का यही कार्य सबसे अधिक महत्त्व का है और इसी में पिछले

१५ वर्षों में बहुत उन्नति हुई है। पिछले चित्र में जो ज्ञापक ज्ञ दिखलाया गया है वह मणिभ-ज्ञापक है। इसमें फ़ौलाद की नोक कार्बोरंडम नामक मणिभ को दबा रही है। विद्युत्-धारा को इसी नोक से मणिभ में प्रवेश करना पड़ता है। इस संधि का प्रतिरोध एक दिशावाली धारा के लिए बहुत अधिक है और दूसरी दिशावाली धारा के लिए बहुत कम। अतः इसमें धारा एकही ओर बह सकती है। जब जब प्रेषक की डेमी दबाई जाती है, तब तब तरंगें आकर ग्राहक के एरियल में दोलन उत्पन्न करती हैं और तभी टेलीफ़ोन में भी धारा का प्रवाह होता है और शब्द भी उत्पन्न होता है। अतः यदि मार्स संकेत के अनुसार प्रेषक की डेमी दबाई जाय तो ग्राहक के टेलीफ़ोन में कट् कट् शब्दों से समाचार समझा जा सकता है।

चित्र ३१०

३८२—तापायनिक वाल्व। १९०४ ई० में अध्यापक फ्लेमिंग ने एक नये प्रकार का ज्ञापक तैयार किया जिसको १९०७ ई० में अमेरिका के डाक्टर ली० डी० फ़ारेस्ट ने सुधार कर बहुत ही लाभदायक बना दिया। इसे तापायनिक वाल्व कहते हैं क्योंकि इसमें ताप के द्वारा इलैक्ट्रन उत्पन्न किये जाते हैं। चित्र ३१० में ऐसा वाल्व दिखलाया गया है। साधारण बिजली के लम्पों के समान ही काँच के शून्य गोले में त टंगस्टन का तार है जिसे थ थ के द्वारा बैटरी से विद्युत्धारा भेजकर प्रज्वलित कर दिया जाता है। गरम होने पर इस तार में से इलैक्ट्रन निकलते हैं। प धातु की नली है जो

त को चारों ओर से घेरे हुए है। इसे फ के द्वारा उच्च विभवत्व की बैटरी के धन ध्रुव से जोड़ देते हैं। अतः त से निकलनेवाले ऋण-विद्युन्मय इलैक्ट्रन दौड़कर प पर पहुँच जाते हैं और उस उच्च विभवत्ववाली बैटरी की धारा प से त में चली जाती है। ज तार की सर्पिल अथवा जाली है जो प और त के बीच में स्थित है। यह जाली भ के द्वारा ग्राहक के दोलन-चक्र से जुड़ी रहती है जिससे कभी इसका विभव विद्युद्दोलनों के साथ साथ धन से ऋण और ऋण से धन होता रहता है। जब यह विभव धन होता है तब तो वह त से प की ओर जानेवाले इलैक्ट्रनों का वेग बढ़ा देती है किन्तु जब ऋण होता है तब वह इन इलैक्ट्रनों को रोक देती है। वाल्व-ग्राहक चित्र २११ में दिखलाया गया है।

इस वाल्व ने बेतार के समाचार भेजने में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। अब इसी की सहायता से तरंगें उत्पन्न होती हैं, इसी की सहायता से
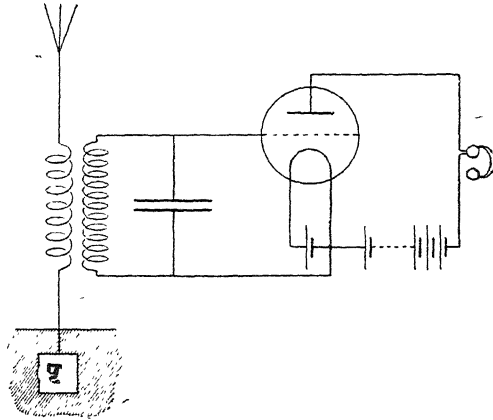
चित्र २११

उनके दोलनों की शक्ति परिवर्धित होती है और इसी से ज्ञापक का काम लिया जाता है। ऐसे कई वाल्व एकत्रित करके अब ऐसे प्रेषक और ग्राहक

बना लिये गये हैं कि जिन्हें आसानी से जहाँ चाहें ले जा सकते हैं और जिनमें व्यय भी अधिक नहीं होता। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात इस वाल्व ने यह की है कि अब हमें मार्स संकेत से समाचार भेजने की आवश्यकता नहीं। हम अब तरंगों के द्वारा टेलीफ़ोन की तरह बातचीत कर सकते हैं।

३८४—बेतार का टेलीफ़ोन। इस कार्य के लिए उपर्युक्त वाल्व नियत कम्प-विस्तार की तरंगें उत्पन्न करता है। चित्र ३०८ का प्रेषक
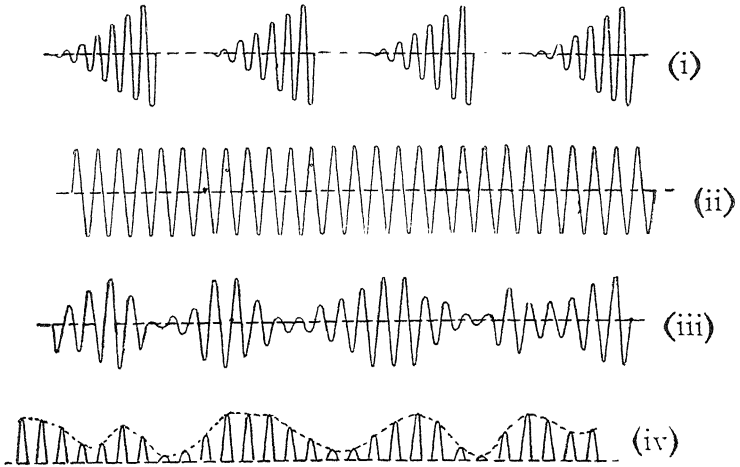
चित्र ३१२

तो डेमी के प्रत्येक खटके से एक एक तरंग-समूह पैदा करता है जिसका आकार चित्र ३१२-i के समान होता है। किन्तु टेलीफ़ोन के काम की जो तरंगें वाल्व उत्पन्न करता है वे चित्र ३१२-ii के आकार की अविच्छिन्न तरंगें होती हैं। जब प्रेषक के सूक्ष्म-शब्दग्राही में हम कुछ बोलते हैं तो शब्द-तरंगें अपने अनुरूप ही धारा में विकार उत्पन्न करती हैं जिससे उक्त तरंग के कम्प-विस्तार में भी वैसी ही घट-बढ़ हो जाती है (चित्र ३१२-iii)। इसी को हम

यों कह सकते हैं कि चित्र ३१२-ii की तरंग वाहक तरंग है और उसी पर सवार होकर हमारी शब्द-तरंग का वैद्युत रूपान्तर स्थानान्तरित होता है। वाहक तरंग का तो ग्राहक-यंत्र के टेलीफ़ोन पर कुछ असर होता नहीं क्योंकि इसकी आवृत्ति इतनी अधिक है कि टेलीफ़ोन का लोह-पत्र उतनी शीघ्रता से कम्पन नहीं कर सकता किन्तु उस पर चढ़कर जो तरंग आई थी (चित्र ३१२-iv की छिन्न-रेखावाली तरंग) उसका असर टेलीफ़ोन पर हो सकता है। उसे वह पुनः शब्दरूप में परिणत कर देता है। जब बहुत से मनुष्य एक ही साथ सुनना चाहें तब टेलीफ़ोन के स्थान में एक और यंत्र लगा दिया जाता है जिसे तीव्रोच्चारक कहते हैं।

आजकल इस प्रकार के वैद्युत तरंग के टेलीफ़ोन का सर्वसाधारण में बड़ा प्रचार हो गया है क्योंकि इसमें सबसे बड़ी सुविधा की बात यह है कि प्रेषक और ग्राहक के बीच में किसी प्रकार का तार इत्यादि जोड़ना नहीं पड़ता। अतः प्रत्येक मनुष्य ग्राहक यंत्र अपने घर में रख सकता है और जहां चाहे उसे ले भी जा सकता है। शिक्षा तथा मनोरंजन के लिए भी इसका प्रचार बहुत बढ़ा है। यूरोप और अमेरिका की बात तो छोड़ दीजिए इस समय भारतवर्ष में भी कलकत्ता तथा बम्बई से नित्यप्रति सायंकाल के समय मधुर भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत, शिक्षाप्रद व्याख्यान, व्यापार-सम्बन्धी बाज़ार-भाव, ताज़ा समाचार, बच्चों के लिए मनोरंजक कहानियाँ इत्यादि इसी तरकीब से ईथर-समुद्र में परिक्षिप्त की जाती हैं। जिन्हें समस्त भारतवर्ष के लोग अपने घर में बैठकर बिना कठिनाई के सुनकर लाभ उठाते हैं और वर्षभर नित्य यह आनन्द उठाने के लिए केवल १०) मात्र डाकखाने को देना पड़ता है।

इन तरंगों ही के द्वारा अब चित्र भी भेजे जाते हैं। और अमेरिका में होनेवाली घटना का चित्र संसारभर के समाचार-पत्रों में दूसरे ही दिन छप सकता है। यही क्यों अब तो एक और यंत्र का आविष्कार हो गया है जिसके द्वारा हम यहीं बैठे बैठे लन्दन और न्यूयार्क में स्थित मनुष्य से न केवल बात-चीत कर सकते हैं किन्तु उसे देख भी सकते हैं। अब तक कलकत्ते और बम्बई

अथवा यूरोप का गाना ही नित्य सुना जाता था किन्तु गानेवाले मनुष्य को नहीं देख सकते थे। अब उसे भी देख सकेंगे। नाच तमाशे भी अब थियेटर में जाकर देखने की आवश्यकता न रहेगी। घर ही में यह सब दृश्य दिखलाई देगा। यह दूरस्थदर्शन यंत्र अभी इस रूप में नहीं बना है कि हम उसे अपने घर में आसानी से लगा लें किन्तु अब उसके प्रचार में अधिक देर नहीं है। कदाचित् इन्हीं तरंगों की सहायता से मनुष्य कल-कारखाने भी चलाने लगें, घरों में रोशनी भी करने लगें और अपना भोजन भी पकाने लगें। जो दिव्य दृष्टि तथा अन्य अलौकिक शक्तियाँ सुनते हैं कि भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि कठिन तपस्या के बाद प्राप्त करते थे वह आज केवल थोड़ा सा रुपया खर्च करने ही से प्राप्त हो सकती है। पिछले ५० वर्षों में विज्ञान की सचमुच आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। भविष्य में और भी कितनी उन्नति होगी यह कहना कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस परिश्रम और अध्यवसाय से मनुष्य इस समय प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है वह भी ऋषियों की तपस्या के समान ही कड़ी तपस्या है और उसका सफल होना भी अनिवार्य है।

प्रश्न

(१) बिजली की तरंगें कैसे उत्पन्न होती है ?

(२) एरियल किसे कहते हैं और उससे क्या लाभ है ?

(३) बेतार के टेलीफ़ोन की विद्युत्-तरंगों की आवृत्ति साधारणतया कितनी होती है ?

(४) जब हम कलकत्ते का गाना अपने ग्राहक-यंत्र से सुनते हैं तब बम्बई का भी क्यों नहीं सुनाई देता ?

(५) बेतार के टेलीफ़ोन से बातचीत करते समय बोलनेवाले के मुख से लेकर सुननेवाले के कान तक शक्ति किस किस रूप में और कैसे कैसे चलती है ?

परिशिष्ट—१

(क) क्षेत्रफलों की गणना के सूत्रः—

(१) त्रिकोण $= \frac{१}{२}$ (आ × ल)
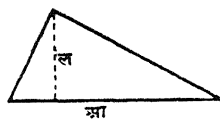
(२) समानान्तर चतुर्भुज = आ × ल

(३) समलम्ब $= \frac{१}{२}$ (क × ख) × ल

(४) वृत्त $= \pi \times$ त्र^{२}

(५) दीर्घवृत्त $= \pi \times$ क × ख

(६) गोले का पृष्ठ $= ४\pi \times$ त्र^{२}
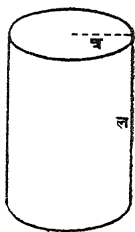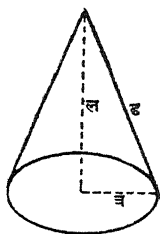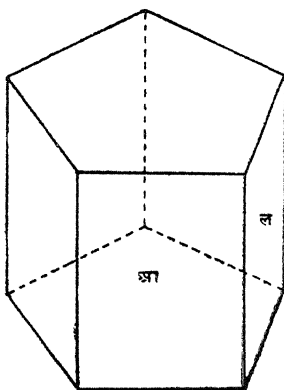
(७) बेलन का वक्र पृष्ठ = २ π × त्र × ल

(८) शंकु का वक्र पृष्ठ = π × त्र × ह

(ख) आयतनों की गणना के सूत्रः—

(१) समफलक = आधार का क्षेत्रफल × ऊँचाई
= आ × ल

(२) सूची स्तम्भ $= \frac{1}{3}$ (आधार का क्षेत्रफल × ऊँचाई)

$= \frac{1}{3}$ (आ × ल)

(३) गोला $= \frac{4}{3} \times \pi \times$ त्र^3

(४) बेलन $= \pi \times$ त्र$^2 \times$ ल

(५) शंकु $= \frac{1}{3} \pi \times$ त्र$^2 \times$ ल
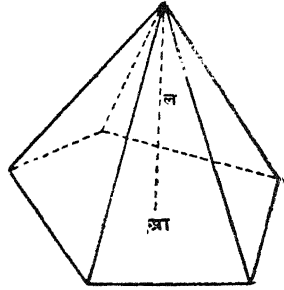
उत्तर-माला

पृष्ठ १५

(३) २१३३·६ मी०

(४) १०९३ ग० १ फ़ु० १०·७९ इं० ।

(५) (१) २८ व० इं० ।

(२) १२०० व० मम० ।

(३) ४३२०० व० इं० ।

(४) ५×१०^{६} व० मम० ।

(६) (१) ३ मम० ।

(२) १९२ इं० ।

(७) १५० व० समo ।

(११) (१) $२\frac{२}{३}$ घ० इं० ।

(२) १३५ घ० सम० ।

(१३) २८·३२ लिटर ।

(१४) ९३००० सेर ।

(१५) (१) १८१४·३६ ग्रा० ।

(२) ८६४·२१ ग्रेन ।

(३) ३५·२७ आउ० ।

(१६) २६६·६७ ग्रा० ।

(१७) २/५ स० म० ।

(१८) ५४०० ग्रा० ।

पृष्ठ ५०

(१) १५·५ लाख मील / दिन

(२) २२३५·२ सम/सै० ।

(३) $११^{२}/_{३}$ मी०/घ० ।

(५) २५ सै० ।

(६) १·६ फ़ु०/सै० ।

(७) ५६० फ़ु०/सै० ।

(८) १० सै० ।

(१७) ·६ सम/$सै०^{२}$ ।

(१८) ·३ ग्रा० ।

(२३) ९८१० डाइन ।

(२४) १·६ सै० ।

(२५) ३६०० फ़ु० ।

पृष्ठ ६७

(४) $२\frac{२}{११}$ फ़ु०

(६) २ फ़ु०—६ फ़ु०

(८) $२\frac{१}{३४२}$ मन

पृष्ठ ७६

(२) १९६२ × १०^{७} अर्ग ।
(३) ३ $^{७}/_{३}$ अ० सा०
(४) २ फु० पाउंड ।
(५) ४८ अश्व सा०
(६) २००३ अ० सा०
(७) २९·४३ जूल
(८) ३·६ जूल
(९) १००० फु० पाउंड ।

पृष्ठ ९३

(१) (क) २·५ ग्रा०/घ० सम ।
(ख) १०·५ ग्रा०/घ० सम० ।
(ग) १·०३ ग्रा०/घ० सम ।
(घ) ·०००० ९ ग्रा०/घ० सम ।

(२) (क) १६८ ग्रा०
(ख) ५४४ ग्रा०
(ग) १६ ग्रा०
(घ) ५० ग्रा०

(३) (क) २०० घ० सम०
(ख) २ घ० सम
(ग) ६० घ० सम० ।
(घ) ५०० घ० सम०

(४) (क) ७११·७ पा०/घ० फु०
(ख) ५५५·६ पा०/घ० फु० ।
(ग) ·०७५ पा०/घ० फु० ।

(५) ·९८ म० म ।
(६) ७४० घ० सम
(७) १११९ पाउंड ल/ब० फु० ।
(८) ·८३ ग्रा०/घ० सम
(९) $^{१}/_{२}$; २५ ग्रा० ।
(१०) ५२०० घ० सम
(१३) ३०२५ घ० सम०
(१४) ११·४ ग्रा०/घ० सम०
(१५) ·८ ग्रा०/घ० सम०
(१६) २०० घ० सम०
(१८) ५·१५ घ० सम०
(२१) २९ पाउंड; १३८६ पाउंड ।

पृष्ठ ११५

(२) १५·२५ × १०^{६} डाइन ।
(३) ७९५० म० ।
(४) ३६८·४ घ० सम ।
(५) ८·६ ग्रा०
(७) ४२·१ म ।

पृ० १४५

(८) २०३$^{\circ}$ फ०; –४०$^{\circ}$ फ०; ५४३२$^{\circ}$ फ०; –४५९·४$^{\circ}$ फ०

(९) ३६·९° श; ४८·९° श; –१२·२°श; –६२·२° श।
(१०)–४०°

पृष्ठ १५९

(१) ·०००০২
(২) ২५०·২५ सम०; २२५° श।
(३) ·०८ इं०
(४) ८०·०२ सम
(५) ३००·१६२ ब० सम।
(६) ३०·०७९ ब० फु०
(७) १००·०३ ब० सम।
(८) ८·८५ ग्रा/ब० सम
(९) १३४० ग्रा०; १३५५ ग्रा०
(१०) ·०००५२०४.
(११) ६·५२ ब० सम
(१२) ९३·२ ब० सम
(१३) ·०००२९ ग्रा०/ब० सम०
(१४) १४·९२ ब० सम०

पृष्ठ १७०

(१) १२५०० कलारी
(२) २८·५७ ग्रा०
(३) २८·९° श
(४) ८९१७ ग्रा०
(५) ७९३·८ कलारी; ४५·३६ ग्रा०
(६) २७·५° श
(७) १९०·४ कलारी
(८) १६·१३° श
(९) १७८·२५ ग्रा०
(१०) ·१५
(११) २२·६२ ग्रा०
(१२) ४·२७९ ग्रा०
(१३) ·१९९
(१६) ·४५९

पृष्ठ १८५

(१) २४०० कलारी
(२) १०° श
(३) १००·७ ग्रा०
(४) २६·४४ कलारी
(५) १०००°श
(६) ६३७·७ कलारी
(१३) ९०९० कलारी
(१४) ६·७२ ग्रा०
(१५) ५९·२१° श
(१६) ३९१·९ कलारी
(१७) ६३·२°श
(१८) २३७२ कलारी

पृष्ठ १९८

(१) ७३६·५ मम
(२) लगभग २००°
(७) ५२·३%
(६) ५५·७४%
(१२) लगभग ८५
(१३) ·०४०५ ग्रा०

पृष्ठ २४०

(४) ३ गज
(५) ६० सम
(१०) २५/१६
(११) ५·६६ फ़ु०
(१२) ४ फ़ु०
(१४) ८४ %

पृष्ठ २५१

(४) (१) ३।
(२) ५
(३) ७।
(६) ५५°

पृष्ठ २६०

(५)—६ सम; १·८ सम०
(७) १३ १/३ सम
(८) (१) ६″
(२) १५″
(९)– १७ १/७ सम, २१/७ सम; ६० सम, ५ सम ; २५ ५/७ सम, ५/७ सम।
(१०) (१)– ५५/२३ सम, १५/२३ सम;
(२) – ८२/११ सम० ५/११ सम;
(३) – १० १०/१७ सम, ५/१७ सम।

पृष्ठ २७६

(१) √३/२, १/२, १/√२, √३/२, ०, १
(३) १·६३ ; १·४६
(१०) १२ ४००० मील/सै०; १४३०७७ मील/सै०
(१४) ६०°

पृष्ठ २८८

(५) १५ सम, २·५ सम ; –२२·५ सम, (६) ३$^{1}/_{3}$ सम
१ $^{1}/_{4}$ सम ; ६ सम, $^{4}/_{3}$ सम । (७) (१) – ६ $^{2}/_{5}$ (२) २० सम ।
(८) ६ $^{2}/_{3}$ सम, ३$^{1}/_{3}$ सम० ।

पृष्ठ ३०७

(३) (१) – १०·६६″
(२) – १६·६″
(८) + २·२ डायोप्टर ।
(६) – ·६८ डायोप्टर; ४·४″
(१२) – १०″
(१४) उपनेत्र से $^{10}/_{11}$″
(१५) $^{78}/_{613}$″
(१६) $^{558}/_{11}$; ६१३

पृष्ठ ३३२

(७) १/२०० सैक०
(८) ५१२

पृष्ठ ३४३

(३) १३२८ मीटर
(५) १·२६ सें०
(७) १·१ सै०

पृष्ठ ३५६

(४) ३ मीटर
(५) ·८६ मीटर
(६) १६·६ मीटर

पृष्ठ ३७८

(३) (१) २२·२ डाइन
(२) ३१·२५ डाइन
(४) १·६ सम०

पृष्ठ ३८७

(२) १०० डाइन
(५) ·४३ ; ·५६

पृष्ठ ४१५

(२) (१) १० स० ग० स० (२) – ४ स० ग० स० ।

पृष्ठ ४४९

(८) ११०० ओह्म

(९) ·३१ अर्म्पायर; ·३१ वोल्ट; ·६२ वोल्ट; ·९३ वोल्ट ।

(१०) १/३ ओह्म ।

(११) ·०२ अम्प०

(१२) ८२० ओह्म

(१३) ·१४ ओह्म

पृष्ठ ४७४

(२) ·१८ अम्प०; १४/५ रू०

(३) ९७·८ ओह्म; ४९५ वाट; १ आ०

(५) ९० ग्राम

(६) ७५ वाट (१ वाट लम्प).

पृष्ठ ४८०

(३) ·०६४ मम०

(५) २२३७ सैकंड ।

अनुक्रमणिका ।

(अंक पृष्ठ-संख्या बतलाते हैं)

अशुद्धियाँ

	अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ १५—प्रश्न ६—(१)	४० व० .फुट	१५ सम०
,, ,, ,, ,, (२)	१५ सम०	४० व० .फुट
,, १६८—सूत्र (२)	क = स × म = (त′ − त)	क = स × म × (त′ − त)
,, १८५—प्रश्न (४)	अंतिम तापक्रम १६° श	अंतिम तापक्रम १३° श
,, १८६—प्रश्न (१६)	६५·०६	६४·७६
,, २३७	$\frac{\text{पहले की दीप्ति}}{\text{दूसरे की दीप्ति}} = \frac{द_2^2}{द_1^2}$	$\frac{\text{पहले की दीप्ति}}{\text{दूसरे की दीप्ति}} = \frac{द_1^2}{द_2^2}$
,, २३८	$\frac{\text{क की दीप्ति}}{\text{ख की दीप्ति}} = \frac{\text{खग}^2}{\text{कघ}^2}$	$\frac{\text{क की दीप्ति}}{\text{ख की दीप्ति}} = \frac{\text{कघ}^2}{\text{खग}^2}$
,, ३६५ चित्र २३४—	कार्बन	सोडियम
,, ,, ,, ,,	सोडियम	कार्बन